जैन कथामाला

[भाग २६ से ३० संयुक्त]

जैन राम-कथा

लेखक

उपाध्याय श्री मधुकर मुनि

सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

ब्यावर (राजस्थान)

☐ पुस्तक— जैन राम-कथा

☐ लेखक—उपाध्याय श्री मधुकर मुनि

☐ सम्पादक—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

☐ सहयोगी सम्पादक—श्री बृजमोहन जैन

☐ प्रेरक—श्री विनय मुनि 'भीम'
श्री महेन्द्र मुनि 'दिनकर'

☐ प्रथमावृत्ति : वि० सं० २०३४ मृगसर
ई० सं० १९७७ दिसम्बर

☐ मुद्रक : श्रीचन्द सुराना के लिये
शैल प्रिन्टर्स, आगरा-२

☐ मूल्य : आठ रुपया मात्र
[प्राप्त प्रकाशन सहयोग के आधार पर रियायती मूल्य]

समर्पण

जिनके सान्निध्य में
गुरु, पिता एवं मित्र के समान
मार्ग-दर्शन, वात्सल्य एवं स्नेह
सतत मिलता रहता है,
उन
शासनसेवी सरलात्मा
श्री बृजलालजी महाराज की
सेवा में समर्पित।

— मधुकर मुनि

प्रकाशकीय

जैन साहित्य के अक्षय कथा भण्डार का दोहन करके सरल-सुबोध तथा सरस भाषा-शैली में कथाओं का प्रकाशन करने की योजना आज से लगभग ५ वर्ष पूर्व हमने प्रारम्भ की थी। इस बीच अब तक २५ भाग प्रकाशित हो चुके हैं और प्रथम ६ भागों का तो द्वितीय संस्करण भी हो गया है। विभिन्न क्षेत्रों के पाठकों व विद्वानों की प्रतिक्रिया से हमारा उत्साह और बढ़ा है अतः हमने कथामाला की शृंखला को आगे बढ़ाते रहने का संकल्प किया है।

उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी म० का प्रारम्भ से ही लक्ष्य था—धीरे-धीरे समग्र जैन कथा साहित्य का दोहन कर लेना। अब तक के भागों में पौराणिक तथा ऐतिहासिक जैन कथा साहित्य की लगभग २५० से अधिक कहानियाँ आ चुकी हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र को आधार मानकर वासुदेव-बलदेवों का जीवन वृत्त लिखा जा रहा है, जिसके अन्तर्गत यह अष्टम बलदेव मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं वासुदेव लक्ष्मण का जीवन वृत्त प्रकाशित हो रहा है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन भारतीय साहित्य की ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है, एक आदर्श प्रेरणास्रोत है। राम, सीता और लक्ष्मण का आदर्श चरित्र भारतीय संस्कृति का जीवंत काव्य है। मानव को महामानवीय या अतिमानवीय शक्ति की ओर गतिशील करता है।

हिन्दू ग्रन्थों एवं जैन ग्रन्थों में श्रीराम की जीवन घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ मतभेद भी हैं, पर समानताएँ अधिक हैं, और एक सार्वभौम तत्व समान है कि उनके महान गुणों व आदर्शों का जीवन में अनुसरण कर हम सच्चे मानव बन सकते है—यह प्रेरणा।

बहुश्रुत मनीषी उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी महाराज ने अपने व्यापक अध्ययन एवं तटस्थ चिन्तन के आधार पर जैन रामायण को बहुत ही संतुलित शैली में प्रस्तुत किया है। साथ ही वाल्मीकि रामायण एवं तुलसी रामायण आदि के कथाभेद को भी पाठकों की जानकारी एवं तुलनात्मक दृष्टि के लिए प्रस्तुत किया है। ऐसी सन्तुलित तटस्थ तथा व्यापक रामायण पाठकों के लिए बहुत ही रुचिकर तथा ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगी।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीचन्द जी सुराना का सुन्दर श्रमपूर्ण सम्पादन, मुद्रण आदि तो हमारी कथामाला एवं अन्य साहित्य का मुख्य आधार है अतः हम उनके इस सहयोग के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

सुविस्तृत राम-कथा को अलग-अलग भागों में प्रकाशित करने से कथा-माला के पाँच भाग बनते। इससे रामायण का रूप कुछ अस्त-व्यस्त सा रहता, अतः पाँचों भागों की एक ही जिल्द बनाई गई है। इससे अध्ययन में पाठकों को विशेष सुविधा रहेगी; ऐसी आशा है।

इस प्रकाशन में अर्थ सहयोग प्रदान करने वाले सज्जनों का हम हार्दिक आभार मानते हैं।

—मन्त्री

अमरचन्द मोदी

स्वत

जैन कथामाला के क्रम में जब अष्टम बलदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं अष्टम वासुदेव श्री लक्ष्मण तथा महासती सीता का वर्णन प्रारम्भ हुआ तो मन में एक संकल्प उठा कि—मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, जो भारतीय संस्कृति के महान व्यक्तित्व माने जाते हैं, जो मानव से भगवान बने, और नीति, मर्यादा, सदाचार आदि के अपूर्व आदर्श-गुणों से मण्डित थे उनका समग्र जीवन वृत्त ही लिख लिया जाय तो अधिक उपयोगी होगा। एक प्रकार से समग्र जैन रामायण पाठकों के हाथों में पहुँच जायेगी।

हेमचन्द्राचार्यकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र के आधार पर राम-कथा का आलेखन प्रारम्भ हुआ। स्थान-स्थान पर ऐसे प्रसंग आये, जिन पर प्रचलित राम-कथा (हिन्दू रामायण) के अनुसार कुछ कथान्तर व मतभेद भी था। उसके लिए वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीकृत रामचरितमानस का पारायण किया गया, अन्य प्राचीन रामायणें भी देखीं और जहाँ-जहाँ कुछ विशेष अन्तर प्रतीत हुआ वह चालू प्रसंग में ही नीचे फुटनोट के रूप में दे दिया गया, ताकि पाठक जैन एवं हिन्दू रामायण की तुलना करता हुआ पढ़ता जाय, जहाँ भी शिक्षाप्रद आदर्श मिले उसे लेता जाय—हंसबुद्धि के साथ।

यह स्पष्ट बात है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम का महान व्यक्तित्व समग्र भारतीय लोक जीवन में आदर्श माना गया है। अपार लोक श्रद्धा ने उन्हें भगवान के रूप में भी स्वीकार कर लिया है। यह भ्रान्ति भी निराधार है, कि जैनों ने राम को भगवान नहीं माना। जैन दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य प्रारम्भ में मनुष्य ही होता है, चाहे वे तीर्थंकर ऋषभदेव रहे हों, तीर्थंकर पार्श्वनाथ

रहे हों, तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) रहे हों, या बलदेव राम रहे हों। उच्चतम आध्यात्मिक विकास करके, मानवता की महान सेवा करके, वे मानव से महामानव, मनुष्य से भगवान बने हैं। वर्द्धमान महावीर भी देहत्याग कर सिद्ध भगवान बने और मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी देह त्याग कर सिद्ध भगवान बने हैं। दोनों ही परम श्रद्धेय हैं, उनकी वर्तमान भूमिका में आज कोई अन्तर नहीं है।

प्रश्न है, फिर राम-कथा में जैन व हिन्दू ग्रन्थों में इतना अन्तर क्यों? जहां तक मेरा अध्ययन-मनन है, इसका मुख्य कारण दृष्टिकोण का है। जैन दृष्टि में—भगवान कभी भी अवतार (देह) धारण नहीं करते। भगवान बनने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रथम मनुष्य रूप में ही जन्म धारण करता है, फिर अपनी साधना के आधार पर व्यक्तित्व का, आत्मा का विकास करता हुआ वह आध्यात्मिक विकास की उस चरम भूमिका पर पहुँच जाता है, जहाँ पहुँचकर मानव भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जैन दृष्टि—महावीर को एवं राम को इसी दृष्टि से देखती है, इसलिए उनका जीवन वृत्त भी मानवीय होता है, भगवदीय नहीं। जैन दृष्टिकोण राम के व्यक्तित्व को मानवीय धरातल से विकसित करता हुआ, रामचरित को ऊँचा से ऊँचा उठाता हुआ अन्त में भगवद् सीमा पर पहुँचाता है। जबकि हिन्दू दृष्टिकोण इसके विपरीत—राम को भगवान का अवतार मानकर चलता है। राम-कथा में जहां-जहाँ भी अन्तर आया है, उसका मुख्य कारण यही दृष्टिकोण रहा है। सचाई तो यह है कि हिन्दू ग्रन्थों की अपेक्षा जैन ग्रन्थों में राम, सीता आदि रामायण के सभी पात्रों का चरित्र अधिक श्रेष्ठ, अधिक उदार और सहज-स्वाभाविक चित्रित हुआ है।[1]

रामचरित (ग्रन्थों एवं घटनाओं) की तुलना के लिए पाठक इसी पुस्तक की भूमिका—'राम-कथा एक अनुशीलन' पढ़ेंगे तो इस सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्तियों का निराकरण सहज ही हो जायेगा।

---

[1] सम्पादकीय—"रामकथा : एक अनुशीलन" देखें।

रामचरित बहुत विशाल है, घटनाबहुल है, इसलिए प्रस्तुत कथामाला के पाँच भागों में इसे सम्पूर्ण किया गया है और सम्पूर्ण रामकथा एक ही जिल्द में रखी गई है। साथ ही विषयवस्तु की दृष्टि से भी राम-कथा को चार विभागों में बाँट दिया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठक तटस्थ एवं स्वस्थ दृष्टि से इसका अनुशीलन करेंगे। राम के उज्ज्वल चरित्र से प्रेरणा लेंगे। अगर कहीं किसी को कुछ विचारणीय, तर्कणीय जैसा लगे तो वह सहृदयतापूर्वक सम्पादक बन्धु से विचार चर्चा भी कर सकता है। हाँ, रामकथा को समझने का परम्परागत साम्प्रदायिक चश्मा उतारकर-विवेक बुद्धि के साथ उसे पढ़े, देखें।

मेरा स्वास्थ्य अनुकूल न रहते हुए भी मैंने यथाशक्य प्रयत्न किया है कि पुस्तक सार्वजनिक सर्वजनोपयोगी बने। इसे अधिक से अधिक सुन्दर अनुशीलनात्मक बनाने में श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने तथा श्री बृजमोहन जैन ने जो सहयोग दिया है, उसके लिए मैं उन्हें भूरि-भूरि साधुवाद देता हूँ।

पूज्य स्वामी श्री बृजलालजी महाराज की सतत प्रेरणा एवं श्रीविनय मुनि, श्री महेन्द्र मुनि की सेवा-सुश्रूषा ने मेरी साहित्य-सर्जना को गतिशील रखा है, उसके लिए मैं किन शब्दों में आत्म-सन्तोष व्यक्त करूँ।

आशा है यह 'राम-कथा' मानव को 'राम' बनने की प्रेरणा देती रहेगी....

२०३४ कार्तिक पूर्णिमा
पाली

—मधुकर मुनि

रामकथा : एक अनुशीलन

दशरथसुत श्रीराम और जनकसुता महासती सीता का उदात्त और उज्ज्वल चरित्र भारतीय जनमानस को प्राचीनकाल से ही सच्चरित्र की ओर प्रेरित करता रहा है तो श्रद्धाशील भावुक लेखकों की लेखनी को गतिशील भी बनाता रहता है। अनेक कवियों ने इस पावन गंगा में डुबकी लगा कर स्वयं को पवित्र भी किया है और काव्य चमत्कार भी दिखाये हैं।

भारत की तीनों प्रमुख परम्पराओं (जैन, बौद्ध और वैदिक) ने राम-सीता की यशोगाथा गाई है। पुराणों, काव्यों, नाटकों, कथा-कहानियों में इनका पावन-चरित्र बाँधा है। प्राचीन युग से अब तक रामकथा निरन्तर लिखी जाती रही है। युग-युगों में लेखक बदलते रहे, भाषाएँ परिवर्तित होती रहीं, किन्तु मूल एक ही रहा—राम-सीता का प्रेरणाप्रद आख्यान।

जिस कथानक के लेखक अनेक हों, उसमें वर्णन वैविध्य आ जाना सहज-स्वाभाविक होता है। प्रत्येक रचनाकार मूल कथा में अपनी कल्पना से अपने देशकाल की परिस्थिति के अनुकूल कुछ-न-कुछ जोड़ना अपना जन्मसिद्ध अधिकार-सा मानता है, अथवा यों समझिये कि बिना कल्पना का रंग चढ़ाये कथा-साहित्य का निर्माण हो ही नहीं पाता। इसके अतिरिक्त सोचने-समझने का ढंग, लेखन शैली, विषय का प्रस्तुतीकरण आदि तो लेखक का अपना होता ही है। राम-कथा में भी इसी प्रकार के अनेक वैविध्यपूर्ण वर्णन हैं। यह विविधता कथा लेखकों की विभिन्न रुचि का प्रमाण भी है।

जिस प्रकार महानदी में अनेक छोटी-मोटी नदियाँ आकर मिलती हैं उसी प्रकार महाकाव्य में अनेक अन्तर्कथाएँ, उपाख्यान भी जुड़ते रहते हैं। राम-

कथा में भी अनेक अन्तर्कथाएँ हैं, उपाख्यान हैं। इनसे मूलकथा को आगे बढ़ने में गति मिलती है किन्तु अनेक अन्तर्विरोधों के कारण उसमें गतिरोध भी होता है। मूल कथा एक होते हुए भी अन्तर्कथाओं में अन्तर आ जाता है। इन अन्तरों के अनेक कारण होते हैं—कुछ लेखकों के कल्पना-प्रसूत तो कुछ परिस्थितिजन्य। लेखकों के कल्पना-प्रसूत अन्तरों में उनकी व्यक्तिगत मान्यताओं और परम्पराओं का भी प्रभाव पड़ता है।

यह बात नहीं कि विभिन्न परम्पराओं के राम-कथानकों में ही अन्तर आये हों। एक ही परम्परा की विभिन्न रामायणों में भी पर्याप्त मतभेद और वर्णन वैविध्य हैं।

उत्स एक

मूल एक होने पर समानता तो होनी ही चाहिए किन्तु विविधता हो गई—यही विचारणीय है। श्रीराम की मूल कथा इतनी सी ही है कि—

श्रीराम अयोध्यानरेश राजा दशरथ के पुत्र थे और उनकी पत्नी सीता विदेहराज जनक की पुत्री। राजा दशरथ की तीन रानियाँ थीं—कौशल्या सुमित्रा और कैकेयी तथा चार पुत्र—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न। कैकेयी के अपने पुत्र भरत के प्रति मोह के कारण राम को वन में जाना पड़ता है। उनके साथ छोटा भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता भी वन को जाते हैं। वहाँ लंका का राजा रावण धोखे से सीता का अपहरण करके ले जाता है। वन्य जातियों, ऋक्ष और वानर वंशियों की सहायता से वे लंका पर आक्रमण करते हैं, रावण का वध करते हैं और सीता को वापिस ले आते हैं। अयोध्या में सीता के चरित्र के प्रति अपवाद फैलता है। परिणामस्वरूप श्रीराम गर्भिणी सीता का परित्याग कर देते हैं। सीता दो पुत्रों को जन्म देती है। पुत्रों के कारण पति-पत्नी पुनः आमने सामने आ जाते हैं। सीता संसार से विरक्त होकर स्वर्ग को चली जाती हैं और बाद में राम आयु पूरी करके परम धाम (मोक्ष) को चले जाते हैं।

इस मूल कथा को अक्षुण्ण रखते हुए सभी लेखकों ने रामचरित गाया है। तीनों परम्पराओं में इनका वर्णन हुआ है।

वैदिक परम्परा में राम-कथा

राम-कथा का वैदिक परम्परानुमोदित प्राचीनतम ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण है। इसका सम्मान भी अधिक है और प्रामाणिकता भी सबसे ज्यादा। इस प्रामाणिकता का कारण यह बताया जाता है कि वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे अतः रामायण की सभी घटनाओं का उन्होंने यथातथ्य चित्रण किया है। परित्याग का समय भी सीताजी ने वहीं व्यतीत किया और वहीं दोनों पुत्र को जन्म दिया।

वाल्मीकि ऋषि ने जो--

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहिताम् ॥

कहकर रामायण की करुणरस पूर्ण सुर-सरिता बहाई तो बाद के अनेक कवियों ने इसमें स्नान किया।

संस्कृत भाषा में महाकवि कालिदास का 'रघुवंश,' अध्यात्म-रामायण, भवभूति का 'उत्तर रामचरित', 'हनुमन्नाटक', दक्षिण के प्रसिद्ध कवि कम्बन का 'राम चरित', आदि अनेक प्रमुख ग्रन्थ हैं।

संस्कृत से धारा बही तो अपभ्रंश तथा अन्य सभी देशज भाषाओं में बहती हुई आज की राष्ट्रभाषा हिन्दी में अवतरित हुई। अवधी और ब्रज-भाषाओं में केशवदास की 'रामचन्द्रिका', रामशलाका, तुलसीकृत 'राम-चरितमानस' आदि प्रमुख हैं।

राष्ट्र भाषा हिन्दी में राम-कथा गद्य और पद्य दोनों में लिखी गई है। स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्त का 'साकेत', अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का 'वैदेही वनवास' यदि पद्य में हैं तो सेठ गोविन्ददास का 'कर्तव्य' नाटक शैली में तथा भूमिजा, 'दशकंधर' आदि गद्य की उपन्यास शैली में और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' के नाम से एक निराले ही खण्ड महाकाव्य की रचना की।

अंग्रेजी भाषा में स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल सी० राजगोपालाचारी ने कहानी विधा में 'Stories from Ramayana & Mahabharata' की रचना की तो कवि कम्बन की रामायण के आधार पर 'A Faithful Brother—Bharata और Long Poem में चित्रकूट पर भरत-राम मिलाप का हृदय-स्पर्शी चित्रण किया।

यह बात अवश्य मननीय है कि इन सब परवर्ती रचनाओं में वाल्मीकि रामायण ने आधार का काम किया है।

वैदिक परम्परानुमोदित रामायणों में वैविध्य

वैदिक परम्परा की सभी रामायणों में आधार रूप में वालमीकि रामायण को स्वीकार किया गया गया है। तुलसी ने तो अपने रामचरितमानस में इसका अत्यधिक सहारा लिया है। इसलिए सभी रामायणों में समानता तो होनी ही चाहिए किन्तु अन्तरवाले स्थल अवश्य ही दर्शनीय है।

अनेक रामायणों के अन्तरों का तुलनात्मक अध्ययन तो वहुत लम्बा विषय हो जायगा, यहाँ वालमीकि 'रामायण' और तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के कुछ अन्तर अवश्य ही उल्लेखनीय हैं। प्रमुख अन्तर निम्न है—

(१) तुलसीदास रचित 'मानस' में राम के जन्म लेने के चार कारण वताये है—(क) विश्व मोहिनी और नारद-मोह की कथा तथा नारद मुनि का विष्णु को शाप[1], (ख) मनु शतरूपा को विष्णु द्वारा दिया गया वरदान[2], (ग) कपट मुनि का आख्यान,[3] (घ) रावण के अत्याचारों से दुखी होकर पृथ्वी गो का रूप वनाकर गई तो विष्णु द्वारा रावण के वध की प्रतिज्ञा।[4] जवकि वालमीकि रामायण में केवल एक ही कारण दिया गया—देवताओं, ऋषियों

---

१ तुलसीदास रचित—रामचरितमानस, वालकाण्ड, दोहा, १२६-१३९

२ वही दोहा, १४१-१५२

३ वही दोहा, १५३-१७५

४ वही दोहा, १८३-१८७

और ब्राह्मणों ने रावण के अत्याचारों से दुखी होकर विष्णु से प्रार्थना की तब उन्होंने रावण-वध की प्रतिज्ञा की।[१]

(२) वाल्मीकि रामायण में परशुराम का गर्वहरण तब होता है जब राम सीता से विवाह करके अपने पिता दशरथ आदि के साथ अयोध्या लौट रहे होते हैं—अर्थात वन-मार्ग[२] में और मानस में यह प्रसंग धनुर्भंग होते ही स्वयंवर मण्डप में दिखाया गया है।[३]

(३) शिव-पार्वती विवाह[४], केवट की भक्ति-भावना—वनवास जाते समय नाव से गंगा नदी पार उतरने के अवसर पर हुई चरण धोने की घटना[५], चित्रकूट में राम-भरत मिलाप के समय राजा जनक की उपस्थिति[६], इन्द्रपुत्र जयन्त की कुटिलता—कौए का रूप रखकर सीताजी के चरणों में चोंच मार देना तथा राम द्वारा उसकी एक आँख फोड़ना[७] आदि घटनाएँ 'मानस' में तो हैं किन्तु वाल्मीकि रामायण में इनका उल्लेख नहीं है।

(४), तुलसी के 'मानस' में तारा प्रारम्भ से ही सुग्रीव की पत्नी है जिसे वाली बलात् रख लेता है और इसी के कारण सुग्रीव-वाली-संघर्ष होता है।[८] जबकि वाल्मीकीय में तारा बालि की ही पत्नी है और संघर्ष का कारण है अंकोमा जो कि सुग्रीव की पत्नी है और उसे वाली बलपूर्वक रख लेता है।[९]

---

१ संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, पृष्ठ ५४-५५
(हिन्दी संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर)

२ वही, पृष्ठ ८५-८७

३ तुलसीदास : रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा २७०-२८५

४ वही, दोहा-६४-१०३

५ तुलसीदास रचित : रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा १००

६ वही, दोहा २७५-२७६

७ वही, अरण्यकाण्ड, दोहा, २

८ वही, किष्किंधाकाण्ड, दोहा ६

९ वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, पृष्ठ २३७-३९

(५) वाल्मीकीय में ही रावण द्वारा सीता पर बलात्कार न करने के तीन कारण दिये गये हैं—(क) युवावस्था में ही जब रावण ब्रह्मा के आश्रम में रहता था तब पुंजिकास्थला नाम की अप्सरा पर बलात्कार करने के कारण ब्रह्मा द्वारा दिया गया शाप,[१] (ख) वैश्रवण के पुत्र नलकूबर की वधू रम्भा अप्सरा के साथ बलात् भोग करने के कारण नलकूबर द्वारा दिया गया श्राप,[२] (ग) वरुण-युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् जब रावण अनेक स्त्रियों को बलात् ला रहा था तब उन पतिव्रताओं द्वारा दिया गया श्राप।[३]

(६) वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण सीता को अंक में उठाकर ले जाता है[४] जबकि 'मानस' में पुष्पक विमान में बिठाकर।[५]

(७) लक्ष्मण शक्ति लगने के प्रसंग में भी अन्तर है। वाल्मीकीय में लक्ष्मण रावण की शक्ति (यह शक्ति उसे मय दानव द्वारा मन्दोदरी के विवाह अवसर पर दहेज के रूप में प्राप्त हुई थी) द्वारा विभीषण को बचाने के प्रयास में मूर्छित होते हैं[६] और तुलसी के 'मानस' में मेघनाद की वीरघातिनी शक्ति द्वारा।[७] मानस के अनुसार रावण ने अपनी यह शक्ति राम पर चलाई किन्तु उनका कुछ न बिगड़ा। वे केवल थोड़ी देर को मूर्च्छित हो गए।[८]

(८) इसी प्रकार लक्ष्मण को सचेत करने वाला तो दोनों ग्रन्थों में सुषेण ही है किन्तु वाल्मीकीय में यह वानर[९] (वरुण का पुत्र) था और तुलसी ने इसे लंका का वैद्य[१०] बताया है।

---

१ वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड, पृष्ठ ३४३
२ वही, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ४७२
३ वही, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ४६६
४ वही, अरण्यकाण्ड, पृष्ठ २१३
५ तुलसीदास रचित : रामचरितमानस अरण्यकाण्ड, दोहा २८
६ वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, पृष्ठ ४१७
७ तुलसीदास : रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दोहा ५४
८ वही, दोहा ६३-६४
९ वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड, पृष्ठ ४१७
१० तुलसीदास : रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दोहा ५५

इसी प्रकार और भी बहुत से अन्तर हैं।

वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास कृत रामचरितमानस दोनों ही ग्रन्थ हिन्दू संस्कृति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। वाल्मीकीय तो रामकथा का प्रथम और राम का समकालीन ग्रन्थ होने के कारण और तुलसी का मानस जन-जन का कण्ठहार होने के कारण ! वर्तमान युग में राम-कथा का सर्वमान्य उद्घोषक और प्रचारक एकमात्र तुलसी का मानस है। इन दोनों विशिष्ट ग्रन्थों में ऐसे अन्तर अवश्य ही विचारणीय हैं।

देवी भागवत

राम का चरित देवी भागवत में भी प्राप्त होता है। उसमें एक विशिष्ट घटना है—राम द्वारा की जाने वाली शक्ति पूजा। यह स्थल उस समय का है जब राम-रावण युद्ध में रावण की रक्षा 'चण्डी' (देवी का एक रूप) कर रही थी। उसके कारण राम के हाथ-पैर बँध से जाते है। राम शस्त्र-संचालन नहीं कर पाते। वे निराश हो जाते हैं तब ऋक्षराज जाम्बवान् उन्हें देवी की आराधना की सम्मति देते हैं। आश्विन शुक्ला एकम् (पड़वा) से राम शक्ति की आराधना करते हैं। आठ दिन की आराधना से शक्ति (दुर्गा) प्रसन्न होकर उन्हें विजयी होने का वरदान देती है। साथ ही वह इनके मुख में होकर शरीर में प्रवेश कर जाती है। इसके पश्चात ही राम लंकापति रावण को मारने में सफल हो पाते हैं।[1]

इस घटना की साक्षी स्वरूप सेतुबन्ध रामेश्वरम् का शिव मन्दिर प्रसिद्ध है।

अद्भुत रामायण

अद्भुत रामायण का नाम ही अद्भुत है तो घटना क्रम अद्भुत क्यों नहीं होगा ? जरा सीता-जन्म के प्रसंग पर दृष्टिपात कीजिए—

---

१ देखिए देवी भागवत, शिवमहिम्नि स्तोत्र और निरालाजी का खण्ड महाकाव्य 'राम की शक्ति पूजा'।

गृत्समद नामक एक ऋषि दण्डकारण्य में रहते थे। उनकी स्त्री की इच्छा थी कि 'मेरे लक्ष्मीस्वरूपा कन्या हो।' ऋषि इसी अनुष्ठान में लगे थे। वे प्रतिदिन अभिमन्त्रित दूध एक घड़े में डालते जाते। एक दिन अचानक ही रावण वहाँ आ गया और उसने ऋषि के शरीर में तीर चुभो-चुभो कर वह दूध वाला घड़ा उनके रक्त से पूरा भर लिया। रावण ने वह घड़ा लाकर मन्दोदरी को दिया और बोला—'ध्यान रखना यह विषकुम्भ है।' मन्दोदरी उन दिनों रावण से अप्रसन्न थी। उसने सोचा 'मेरा पति अन्य स्त्रियों के साथ रमण करता है अतः मेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है।' उसने वह रक्त मिश्रित दूध पी लिया। वह मरी तो नहीं, गर्भवती अवश्य हो गयी। पति के सहयोग विना सगर्भा हो जाने से वह चिन्तित हुई। प्रसवकाल में वह विमान द्वारा कुरुक्षेत्र में चली गई और वहाँ उसने सीता को जन्म दिया और जन्मते ही उसे ज़मीन में गाढ़कर लंका लौट आई। यही बालिका हल जोतते समय जनक राजा को प्राप्त हुई और उन्होंने अपनी पुत्री मानकर पाला-पोसा।[1]

अद्‌भुत रामायण में सीता को शक्ति का अवतार माना गया है। राम उसी की शक्ति के आधार से रावण को मार सके। इसके पश्चात एक सहस्र मुख और दो सहस्र भुजा वाले राक्षस की घटना भी दी गई है। इसे राम की बजाय सीता ने मारा।[2]

इसके अतिरिक्त अन्य रामायणों तथा लोक-परम्परा में 'अहिरावण का उपाख्यान', मेघनाद की पत्नी सती सुलोचना का उपाख्यान आदि अनेक घटनाएँ श्रीराम के कथानक में जुड़ गई हैं।

वैदिक परम्परा की विभिन्न रामायणों की घटना-विविधता की तो बात ही अलग है किन्तु एक रामायण के घटना क्रम पर भी अनेक प्रश्न उठाये जा सकते हैं। सर्वमान्य ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण भी इसका अपवाद नहीं है।

---

१ उत्स एक : धारा अनेक—मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी प्रथम, पृष्ठ ५५-५६

२ कादम्बिनी (मानस चतुःशती अंक) १९७२

सीता पर बलात्कार न करने के प्रसंग में रावण को तीन-तीन बार श्राप मिलने का वर्णन है। दूसरी बार नलकूबर की पत्नी रम्भा अप्सरा से भोग करते समय ही वह क्यों न मर गया जबकि उसे पुंजिकास्थला अप्सरा के साथ बलात्कार करने पर ब्रह्माजी 'सिर के सौ टुकड़े हो जाने का श्राप' दे चुके थे।

दूसरी बात कैकेयी द्वारा राम को चौदह वर्ष का ही वनवास माँगने की घटना भी विचारणीय है। यदि कैकेयी का पुत्र-मोह भरत को राजा देखना चाहता था तो चौदह वर्ष बाद उसे राज्य-भ्रष्ट कैसे देख पाता? काश! भरत राजा बन जाते और जब राम १४ वर्ष बाद वन से लौटते तो क्या स्थिति होती? इसकी कल्पना भी शरीर में सिहरन पैदा कर देती है।

इसी प्रकार जब सीताजी की अग्नि-परीक्षा लंका के बाहर युद्ध क्षेत्र में ही ले ली गई थी और उनके सतीत्व की साक्षी देवताओं ने दे दी थी तो उनके परित्याग का औचित्य ही नहीं रह जाता। फिर तुलसीदास जी ने तो अपने मानस में एक कदम और आगे बढ़कर नकली सीता का हरण कराया है। देखिए—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला।
तुम पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करहुँ निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभुपद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहू यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥[1]

और यही नकली सीता (सीता का प्रतिबिंब) अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि में जल जाती है और असली सीता अग्निदेव वापिस दे देते हैं—

श्रीखण्ड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस वंदित चरन रति अति निर्मली॥

---

१ मानस, अरण्यकाण्ड, दोहा २४ के अन्तर्गत चौपाई संख्या २-३।

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥१॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्रीसत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीरसागर इन्दिरा रामहिं समर्पि आनि सो॥
सो राम वाम विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली ॥२॥

—लंका काण्ड, दोहा १०६

इस प्रकार जब नकली सीता का हरण हुआ, वही रावण की लंका में रही, और वह अग्नि में जल गई तथा उसके साथ समस्त लौकिक कलंक भी— तो फिर असली सीता पर लौकिक कलंक क्यों लगा और क्यों उनका परित्याग हुआ ?

तपस्या करते हुए निरपराध शम्बूक वध पर तो अनेक विद्वान अँगुलियाँ उठा ही चुके हैं।

किन्तु इन भिन्नताजन्य विवादों में पड़ना, न उचित है और न अभीष्ट। यहाँ इन्हें दिखाने का आशय तो केवल इतना ही है कि राम-कथा के सम्बन्ध में अनेक लेखकों में ही नहीं वरन् एक ही लेखक और एक ही ग्रन्थ में अनेक विवादास्पद स्थल हैं।

बौद्ध परम्परा में राम-कथा

बौद्ध परम्परा का कथा-साहित्य जातकों में वर्णित है। इनमें एक दशरथ जातक भी है। इसमें राम-कथा दी गई है। इसके अनुसार—

राजा दशरथ काशी के राजा थे। उनकी सोलह हजार रानियाँ थीं। मुख्य रानी से राम और लक्ष्मण दो पुत्र तथा सीता एक पुत्री उत्पन्न हुई। कालान्तर में उस मुख्य रानी की मृत्यु हुई तो दूसरी रानी पटरानी बनी। उससे भरत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

नई पटरानी अपने पुत्र भरत को राज्य दिलवाना चाहती थी। अतः राजा ने यह सोचकर कि वह राम-लक्ष्मण-सीता को मरवा न डाले उन्हें

वारह वर्ष का वनवास दे दिया। दोनों भाई अपनी वहन सीता को लेकर हिमालय की ओर चले गये।

मन्त्रियों के समझाने से भरत उनको वापिस लौटाने के लिए गये। जब वे तीनों वापिस लौटने को तैयार नहीं हुए तो भरत राम की चरण-पादुका ले आये और उन्हें सिंहासन पर रखकर राज कार्य चलाने लगे।

हिमालय पर से लंका का राजा रावण सीताजी को चुरा ले गया। दोनों भाई उसे मार कर सीता को छुड़ा लाये।

वारह वर्ष पूरे होने पर राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और सीता सहित काशी वापिस लौट आये। उनका राज्याभिषेक हुआ।

अपनी वहन सीता के साथ राम ने विवाह कर लिया और सोलह हजार वर्ष तक राज्य करते रहे।

उस जन्म में राजा शुद्धोवन (सिद्धार्थ गौतमबुद्ध के पिता) राजा दशरथ थे। बुद्ध की माता महामाया राजा दशरथ की पहली पटरानी, राम स्वयं बुद्ध, सीता उनकी पत्नी यशोधरा, भरत उनके प्रधान शिष्य आनन्द और सारिपुत्र लक्ष्मण थे।[1]

इस कथा में सबसे विचित्र वात है राम का अपनी सगी वहन सीता से विवाह। ऐतिहासिक धारणा के अनुसार शाक्यवंशीय राज्य परिवारों में राजवंश की शुद्धता सुरक्षित रखने के लिए भाई-वहनों का भी विवाह कर दिया जाता था।[2]

सम्भवतः लेखक पर भी इसी परम्परा का प्रभाव रहा हो।

जैन परम्परा में राम-कथा

राम-कथा सम्बन्धी जितना वाङ्मय वैदिक परम्परा में रचा गया, लग-

---

१ देखिए—दशरथ जातक, उत्स एक : धारा अनेक—मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', पृष्ठ, ५६-५७, तथा कादम्बिनी मानस चतुःशती अंक, १९७२।

२ मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'प्रथम' : उत्स एक : धारा अनेक, पृष्ठ ५७

भग उतना ही जैनपरम्परा में भी। प्राचीनता और विपुलता दोनों ही दृष्टियों से जैन राम-कथा साहित्य समृद्ध है। जैन मनीषियों ने अनेक भाषाओं में राम-कथा का प्रणयन किया है। भारत की लगभग सभी समृद्ध और देशज भाषाओं में इन मनीषियों ने राम-कथा का वर्णन किया है।

प्राचीन और अर्वाचीन जैन मनीषियों द्वारा रचित राम-कथा सम्बन्धी कुछ प्रमुख ग्रन्थों का कालक्रमानुसार संक्षिप्त विवरण निम्न है—

ग्रन्थ का नाम	रचयिता	समय	
पउम चरियं (प्राकृत)	विमलसूरि	ई० दूसरी-तीसरी शताब्दी	
पद्म पुराण (संस्कृत)	रविषेण	सातवीं	,,
वसुदेव हिन्डी (प्राकृत)	संघदासगणी	,,	,,
उत्तर पुराण (संस्कृत)	गुणभद्र	,,	,,
पउम चरिउ (अपभ्रंश)	स्वयम्भू	आठवीं	,,
चउप्पन्न महापुरिस चरियं (प्राकृत)	शीलांकाचार्य	नवीं	,,
महापुराण (संस्कृत)	पुष्पदन्त	दसवीं	,,
बृहत्कथा कोष (संस्कृत)	हरिषेण	दसवीं	,,
पंप रामायण (कन्नड़)	नागदेव (चन्द्र)	ग्यारहवीं	,,
कहावली (प्राकृत)	भद्रेश्वर	,,	,,
त्रिषष्टि शलाका पुरुष (कन्नड़)	चामुण्डराय	,,	,,
धर्म परीक्षा (संस्कृत)	अमितगति	,,	,,
त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र	हेमचन्द्राचार्य	बारहवीं	,,
कुमुदेन्दु रामायण (कन्नड़)	कुमुदेन्दु	तेरहवीं	,,
अंजना पवनंजय (संस्कृत)	—	,,	,,
जीवन संबोधन (संस्कृत)	—	चौदहवीं	,,
शत्रुञ्जय महात्म्य (संस्कृत)	धनेश्वर	,,	,,
रामचरित्र (संस्कृत)	देवविजय	सोलहवीं	,,

पुण्यचन्द्रोदय (संस्कृत)	कृष्णदास	सोलहवीं शताब्दी
रामचरित (संस्कृत)	पद्मविजय	,, ,,
बलभद्र पुराण	रइधू	,, ,,
सीता राम चौपई	समयसुन्दर	सत्रहवीं ,,
रामजस रास	कवि केशराजजी	
पदम चरित (हिन्दी)	दौलतराम	उन्नीसवीं ,,
आदर्श रामायण	जैन दिवाकर चौथमलजी म०	उन्नीसवीं ,,
शुक्ल रामायण	प्रवर्तक शुक्लचन्द्रजी म०	उन्नीसवीं ,,
जैन रामायण (राजस्थानी पद्य)	प्रवर्तक श्री मिश्रीमलजी म०	(अप्रकाशित)

इनके अतिरिक्त और भी अनेक रचनाएँ राम कथा के सम्बन्ध में मिलती हैं। अब इनमें से प्रमुख का भाषा वार संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है।

प्राकृत भाषा में

विक्रम संवत् ६० के लगभग नागिल वंशीय स्थविर आचार्य राहुप्रभ के शिष्य विमलसूरि द्वारा प्राकृत भाषा में रचित 'पउम चरियं' (संस्कृत पद्मचरित्र अर्थात रामचरित्र) जैन परम्परा का रामचरित विषयक प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसका सम्पादन जर्मन विद्वान डा० हरमन याकोवी ने किया है।

किसी अन्य विद्वान ने सीया चरिय (सीता चरित्र) लिखा है। भाषा-भाव, रचना शैली आदि की दृष्टि से इसकी भी प्राचीनता असंदिग्ध है।

वसुदेव हिंडी, चउप्पन महापुरिस चरियं, कहावली आदि अनेक ग्रन्थों में श्रीराम के चरित्र का वर्णन हुआ है।

संस्कृत भाषा में

संस्कृत भाषा में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में राम-कथा का विस्तृत वर्णन है। दिगम्बर आम्नाय के गुणभद्र कृत 'उत्तर पुराण', रविषेणकृत 'पद्मपुराण' तथा जिनसेन रचित 'पद्मपुराण' आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ हैं।

अपभ्रंश भाषा में

महाकवि और वैयाकरण स्वयंभूसूरि ने अपभ्रंश भाषा में १२००० श्लोक प्रमाण 'पउम चरिउ' (राम चरित) रचा। उनके विद्वान पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू ने इस ग्रन्थ का संवर्द्धन किया। इसकी मौलिक विशेषताओं की प्रशंसा राहुल सांकृत्यायन ने भी की। दूसरा ग्रन्थ 'तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु' है।

कन्नड़ भाषा में

कन्नड़ दक्षिण भारत की प्रमुख भाषा है। पम्प, पौन्न और रत्न इस भाषा के अपने युग के श्रेष्ठ कवि थे और तीनों ही जिनधर्मानुयायी। पौन्न ने रामाभ्युदय नामक काव्य रचा। कविश्री नागचन्द्र ने रविषेण और विमलसूरि के राम-काव्यों के आधार पर 'रामचंद्र चरित्र'नामक काव्य लिखा। तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुनिश्री कुमुदेन्दु ने 'कुमुदेन्दु रामायण' की रचना की।

राजस्थानी भाषा में

राजस्थानी भाषा में भी जैन मनीषियों और विद्वानों ने राम-कथा सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने एक लेख में २२ ग्रन्थों का परिचय दिया है।[1] प्राचीन रामायणों में यतिराज श्रीकेसराज जी कृत 'राम-रास' एक सरस तथा उत्कृष्ट राजस्थानी गेयकाव्य है। वर्तमान में मरुधर-केसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज कृत 'रामायण' भी काव्य की दृष्टि से बड़ी उत्तम रचना है।

हिन्दी में

राष्ट्र भाषा हिन्दी में भी राम-चरित सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। जैन दिवाकर चौथमल जी महाराज की आदर्श रामायण, पं० श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज की जैन रामायण भी प्रसिद्ध हैं।

जैन रामायणों में वर्णन वैविध्य

जैन रामायणों में राम-कथा के दो रूप मिलते हैं—एक विमल सूरिकृत 'पउम चरियं' व रविषेण के 'पद्मचरित्र' का और दूसरा गुणभद्राचार्य के

---

१ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ ८४०

'उत्तरपुराण' का। पउम चरियं का कथानक अधिक मान्य और प्राचीन है जबकि उत्तरपुराण का कथानक अद्‌भुत रामायण की याद दिलाता है। उत्तरपुराण के अनुसार संक्षिप्त राम-कथा इस प्रकार है—

राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुवाला और लक्ष्मण की माता का नाम कैकेई था। भरत और शत्रुघ्न की माताओं के नाम नहीं वताये गये हैं; केवल इतना ही उल्लेख है कि वे किसी अन्य रानी से उत्पन्न हुए थे।

सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। उसके गर्भ में आते ही लंका में अनेक उपद्रव होने लगे थे। नैमित्तिकों ने वताया कि यह पुत्री कुल का नाश करने वाली होगी। अतः रावण ने उत्पन्न होते ही मारीचि के हाथों उसे जनक के राज्य में गड़वा दिया। घर बनाने के लिए भूमि खोदते समय वह कन्या नगर-जनों को मिली। उन्होंने राजा जनक को बुलाकर सौंप दी। जनक ने उसका पुत्रीवत् पालन-पोषण किया। यही कन्या सीता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

जब सीता विवाह योग्य हो गई तो जनक ने एक यज्ञ किया। उसकी रक्षा के लिए राम को बुलवाया और सीता का विवाह उनके साथ कर दिया।

वाराणसी के निकट ही चित्रकूट वन में राम-सीता-लक्ष्मण आदि उद्यान क्रीड़ा को जाते हैं। नारद के मुख से सीता के रूप की प्रशंसा सुनकर रावण उसे चुरा ले जाता है। रावण को मार कर दोनों भाई सीता को वापिस ले आते हैं। लक्ष्मणजी असाध्य रोग से पीड़ित होकर मर जाते हैं और राम श्रामणी दीक्षा लेकर तप करते और मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार इस रामायण में कैकेई के कारण हुआ वनवास, सीता परित्याग, सीताजी की अग्नि-परीक्षा आदि अनेक घटनाओं का उल्लेख मात्र भी नहीं है।

महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने उत्तर-पुराण में भी यही कथा लिखी है और चामुंडराय पुराण (कन्नड़ भाषा की जैन रामायण) में भी इसे ही अपनाया गया है।

किन्तु यह कथा लोकप्रिय न हो सकी। जनमानस ने सीता को रावण की पुत्री नहीं माना तथा जिन घटनाओं का इसमें उल्लेख नहीं है उन्हें जन-साधारण कभी विस्मृत नहीं कर पाया।

अतः जैन परम्परा में दो प्रकार की राम कथा होते हुए भी विमलसूरि के पउम चरियं तथा रविषेण के पद्म पुराण की कथा ही मान्य रही है।

जैन और वैदिक परम्परा की रामायणों में कथान्तर

राम-कथा के सम्बन्ध में जैन और वैदिक परम्परा की रामायणों में भी कुछ अन्तर है। प्रमुख अन्तर राम, सीता और हनुमान तथा रावण विभीषण और कुम्भकर्ण के सम्बन्ध मे हैं। यही राम-कथा के प्रमुख पात्र है।

(१) वैदिक परम्परा में राम की एक पत्नी सीता मानी गई है जबकि जैन परम्परा में चार।

(२) सीताजी का जैन रामायण में एक सहोदर (युगल रूप से उत्पन्न हुआ) भाई भामण्डल माना गया है जबकि वैदिक परम्परा में सीता माता के उदर से उत्पन्न ही नही हुई वरन् भूमि मे से निकली अर्थात् ये भूमिजा—अयोनिजा हैं।

(३) वैदिक परम्परा के हनुमान बाल ब्रह्मचारी हैं जबकि जैन परम्परा के विवाहित। साथ ही प्रथम परम्परा इन्हें पूंछधारी वानर मानती है और द्वितीय विद्याधर मानव—अनेक चमत्कारी विद्या सम्पन्न।[1]

(४) वैदिक परम्परा सीताजी की अग्नि-परीक्षा रावण वध के तत्काल बाद लंका के बाहर युद्ध-क्षेत्र में ही मानती है जब कि जैन परम्परा सीता परित्याग और लवण-अंकुश (लव-कुश) जन्म के पश्चात् अयोध्या में।

(५) वैदिक परम्परा का रावण प्रारम्भ से अन्त तक पापी ही है। वह स्थान-स्थान पर बलात्कार करता है, ऋषि मुनियों को उत्पीड़ित करता है, यज्ञों को नष्ट-भ्रष्ट करता रहता है, ब्राह्मणों का काल है और देवताओं का प्राण-घातक शत्रु। सिर्फ उसमें एक गुण है कि वह वेदों का प्रकाण्ड विद्वान है।

---

१ इसके लिए और भी देखिए कादम्बिनी का मानस चतुःशती अंक, १९७२

(यह भी इसलिए मानना पड़ा कि वह अनेक चमत्कारी विद्याओं और दिव्यास्त्रों का स्वामी था और सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान ऋद्धि-सिद्धि वेदों में ही हैं) जब कि जैन परम्परा उसे हिंसक यज्ञों का विरोधी मानती है। वह एक पराक्रमी और कुशल शासक था। उसके चरित्र में अगर कोई दोष था तो सीता-हरण का किन्तु परस्त्री के साथ वह बलात्कार न करने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है।

(६) वैदिक परम्परा का विभीषण सर्वगुणसम्पन्न है। भ्रातृद्रोह, जाति-द्रोह, देशद्रोह तो कर सकता है किन्तु राम की भक्ति से विमुख नहीं होता। किन्तु जैन परम्परा में विभीषण को उत्कृष्ट भ्रातृप्रेमी दिखाया गया है। वह भाई की रक्षा के लिए हर सम्भव प्रयास करता है। वह न्यायप्रिय अवश्य है और केवल सीता को लौटाने के प्रश्न पर ही उसका रावण से मतभेद होता है। अन्तिम समय तक भी रावण की भलाई के लिए प्रयत्न करता है।

(७) वैदिक परम्परा का कुम्भकर्ण महा आलसी, छह मास तक सोने वाला और एक दिन जागने वाला है जब कि जैन परम्परा उसे ऐसा नहीं मानती।

(८) एक अन्य प्रमुख अन्तर है अयोध्या के राज्य पद का। जैन परम्परा के अनुसार अयोध्या के राजा लक्ष्मण होते हैं जब कि वैदिक परम्परा राम का राज्याभिषेक मानती है।

ये अन्तर तो पात्रों और घटनाओं के सम्बन्ध में हैं, कुछ अन्तर ऐसे हैं जो सैद्धान्तिक मान्यता और धर्म एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण आ गये हैं।

अवतारवाद बनाम उत्तारवाद—वैदिक परम्परा के भगवान अपने भक्तों की रक्षा और दुष्टों का दलन करने हेतु अवतार लेकर पृथ्वी पर आते हैं। राम भी इसी हेतु भूमि पर आये थे। वे विष्णु के अवतार थे। जैन परम्परा के ईश्वर दुबारा जन्म नहीं ग्रहण करते—वे तो एक बार कर्म-बन्धन से मुक्त होकर सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं, कृतकृत्य हो जाते हैं, कुछ भी करने को शेष नहीं रहता। जैन परम्परा के अनुसार श्रीराम भी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में श्रामणी दीक्षा लेते हैं, तपश्चर्या करते हैं तथा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाते हैं—ईश्वर बन जाते हैं।

अवतारवाद का अभिप्राय है दूसरों की हित कामना के लिए ऊपर से नीचे आना, निष्कलंक होकर भी कलंक-पंक को ग्रहण करना जबकि उत्तारवाद का अभिप्राय है शुद्धता की ओर बढ़ना, ऊँचे चढ़ना और परमशुद्ध आत्मस्वरूप में लीन हो जाना।

वैदिक परम्परा के अनुसार राम जन्म से पहले भी भगवान थे, जीवन भर भगवान रहे और अन्त में सदेह ही अपने धाम पहुँचे तब भी भगवान थे। जैन परम्परा भी उन्हें भगवान मानती है, किन्तु तपश्चरण करके कर्म-निर्जरा के बाद।

अवतारवाद के अनुसार वे भगवान थे और उत्तारवाद के अनुसार वे भगवान बने। बस इस 'थे' और 'बने' का अन्तर ही वैदिक और जैन परम्परा का सैद्धान्तिक अन्तर है। जैन रामायण में भी राम उतने ही पूज्य हैं उतने ही आदर योग्य हैं जितने वैदिक रामायण में वरन् उससे भी कुछ अधिक ही।

कृपावाद बनाम पुरुषार्थवाद—वैदिक परम्परा की दूसरी भित्ति है कृपा-वाद। यह कृपावाद वैदिक ही नहीं संसार के सभी धर्मों की जड़ है—चाहे वह मुस्लिम हो अथवा ईसाई, अफ्रीका के जंगली लोगों का धर्म हो अथवा साइबेरिया के बर्फीले इलाकों का। केवल जैन श्रमण संस्कृति ही इसका अपवाद है। कृपावाद का अर्थ है भगवान अथवा इष्टदेव की कृपा। भक्त अथवा संसार के सभी प्राणी भगवान की कृपा पर आश्रित होते हैं। यदि उसकी कृपा हो जाये तो ससार से मुक्ति हो जाय अन्यथा संसार के कष्ट तो हैं ही। वह अर्थात् भगवान चाहे तो क्षणमात्र में घोर पापी को भी अपनी कृपा से क्षमा कर देते हैं। लाख पाप करने पर भी प्राणी यदि किसी प्रकार भगवत् कृपा प्राप्त करने में सफल हो जाय तो वह क्षणमात्र में मुक्त हो सकता है।

कुम्भकर्ण आदि मुक्त हुए दोनों ही परम्पराओं में। वैदिक परम्परा के अनुसार श्री राम ने मार कर उनका कल्याण कर दिया और जैन परम्परा

में वे अपनी तपश्चर्या के बल पर—स्वयं के शुद्ध भावों के कारण। क्योंकि जैनधर्म कृपा पर नहीं, पुरुषार्थ पर विश्वास करता है। प्रत्येक प्राणी अपने पुरुपार्थ—किये हुए कर्मो के अनुसार ही नीचे गिरता है अथवा ऊपर चढ़ता है। सच्चा जैनधर्मानुयायी किसी की कृपा का आकांक्षी नहीं होता।

इसीप्रकार सीताजी वैदिक परम्परा के अनुसार सदेह भूमि में प्रवेश कर जाती हैं और जैन परम्परा में तपस्या के पश्चात् आयुष्य पूर्ण होने पर देह त्याग कर स्वर्ग चली जाती हैं।

हनुमान भी अमर होते हैं। वैदिक परम्परा में राम के आशीर्वाद-वरदान से सदेह और जैन परम्परा में तपश्चरण करके मुक्त—अमर (जो पुनः न कभी जन्म लेगा और न मरेगा)। इसलिए हनुमान भी यहाँ परम वन्दनीय-पूजनीय हैं।

राम-कथा के प्रमुख पात्र

इन उपरोक्त भेदों के अनुसार ही दोनों परम्पराओं के प्रमुख चरित्रों के चित्रण में भी भेद हो गया है। कुछ घटनाओं में भी भेद हैं और उनके वर्णन और आशय में भी अन्तर आ गया है।

राम-कथा के प्रमुख पात्र हैं—राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, कैकेयी, भामण्डल, वालि, सुग्रीव, हनुमान, तारा, रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा (शूर्पनखा) आदि। इनके अतिरिक्त शम्बूक भी एक ऐसा पात्र है जिसका राम-कथा में वड़ा विचित्र स्थान है। इन प्रमुख पात्रों की तुलना दोनों ही परम्परा की दृष्टियों को समझने में उपयोगी होगी।

श्रीराम

वैदिक परम्परा में राम को विष्णु का अवतार माना है किन्तु जैन परम्परा में उन्हें महापुरुप ही स्वीकार किया गया है। हाँ, आयु के अन्त में वे अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करके भगवान बनते हैं। उनके जीवन की मुख्य घटनाओं में प्रमुख भिन्नताएँ निम्न हैं—

(१) जैन रामायण पउम चरियं[1] (विमलसूरि कृत) में उनका विद्यागुरु कांपिल्य नगर के भार्गव का पुत्र था जबकि वैदिक परम्परा ऋषि वसिष्ठ को उनका गुरु स्वीकार करती है ।

(२) राम वनगमन का कारण वैदिक परम्परानुसार १४ वर्ष का वनवास माँगना है, जबकि जैन परम्परा में राम स्वयं ही वन जाने का निर्णय करते हैं । उनका विचार है कि 'मेरी उपस्थिति में भरत राज्य नहीं लेगा । इसलिए मुझे वन चला जाना चाहिए । मेरी अनुपस्थिति में भरत स्वयं ही राज्य सँभाल लेगा ।'

(३) सीता के अग्नि दिव्य में भी जैन और वैदिक राम-कथा में बहुत अन्तर है—स्थान का भी और राम की भावना का भी । वैदिक परम्परा में सीता लंका विजय के पश्चात जब राम के पास लाई जाती है तो राम उसको कठोर वचन कहकर अस्वीकार[2] कर देते हैं तब सीता अग्नि दिव्य द्वारा अपने अखण्डित शील को प्रमाणित करती है । किन्तु जैन परम्परा में यह दिव्य अयोध्या में हुआ और वह भी लोकापवाद को नष्ट करने के लिए । श्रीराम ने सीता के प्रति न कभी अविश्वास किया और न कभी दुर्वचन कहे । उन्हें सीताजी और उनके निर्मल शील पर दृढ़ विश्वास था ।

इसी कारण तो डा० चन्द्र ने लिखा है—विमलसूरि के पउम चरियं में राम का चरित्र कुछ बातों में वाल्मीकि रामायण से ऊँचा उठता है ।[3]

इस घटना (लंका विजय के बाद सीता के राम के समक्ष आने की घटना) की कटु आलोचना करते हुए श्री अरविन्दकुमार ने लिखा है—"राम की सच्ची कसौटी तो तब हुई जब युद्ध में विजय प्राप्त करने पर अपहरण के बाद पहली बार सीता उनके सामने आई । राम के मुख पर क्रोध, सुख एवं दुःख के भाव

---

१ पउम चरियं (विमलसूरि विरचित) वि० २५।१७-२६

२ वाल्मीकि रामायण ७६।३६-५५

३ डा० चन्द्र : लिटरेरी इनवेल्युएशन आफ पउम चरियं, पृष्ठ ८

छा गए। सीता के प्रत्यागमन से राम को तनिक भी प्रसन्नता न हुई। वास्तविकता का उन्हें खयाल आया कि अब सीता का क्या किया जाय ? वे अपने मनोभावों का विश्लेषण करने लगे। सीता को स्वीकार करना उनको अभीष्ट नहीं था। अपने गौरव पर की गई चोट से वे तिलमिला उठे। रावण ने सीता का शील भंग किया होगा इसी सन्देहात्मक तर्क के कारण वे सीता को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। सीता के शील के प्रति उनके मन में सन्देह था।[1]

(४) वालिवध के प्रसंग में भी वैदिक परम्परा द्वारा वर्णित उसे छिपकर मारना श्रीराम के चरित्र को ऊँचा नहीं उठाता। जैन परम्परा में यह दोष नहीं है। यहाँ श्रीराम के द्वारा वालि का वध नहीं कराया गया, वरन् साहसगति विद्याधर का, जो सुग्रीव का रूप बनाकर उसके राज्य और अन्तःपुर पर छलपूर्वक अधिकार कर लेता है, वध श्रीराम द्वारा हुआ है और वह भी सामने से, छिपकर नहीं।

(५) लक्ष्मण के अन्त का प्रसंग भी वैदिक परम्परा में दूसरे ढंग से चित्रित है। वहाँ श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण को पहरे पर बिठाकर कालपुरुष से गुप्त वार्ता करने लगते हैं। तभी दुर्वासा ऋषि आ जाते हैं और राम से तत्काल ही भेंट करने का आग्रह करते हैं। लक्ष्मण द्वारा थोड़ी देर प्रतीक्षा करने की अनुनय पर वे कुटुम्ब नाश का शाप देने को उद्यत हो जाते हैं। विवश लक्ष्मण उन्हें अन्दर चला जाने देते हैं। यही उनके लिए अभिशाप हो जाता है। राजाज्ञा (राम की आज्ञा) भंग के परिणामस्वरूप वे सरयू में जाकर देह-विसर्जन कर देते हैं। किन्तु जैन परम्परा में इस घटना का उल्लेख नहीं है। वहाँ लक्ष्मण की मृत्यु राम की मृत्यु की झूठी खबर सुनकर दिखाई गई है और राम भ्रातृमोह से विह्वल हो जाते हैं। जीवन भर के प्रगाढ़ प्रेम को देखते हुए राम की विह्वलता और कातरता स्वाभाविक ही लगती है;

---

१ अरविन्दकुमार : ए स्टडी इन द एथिक्स आफ दि बेनिशमेंट आफ सीता, पृष्ठ १६ —डा० शान्तिलाल खेमचन्द शाह की पुस्तक 'राम-कथा साहित्य : एक अनुशीलन' में उद्धृत।

जबकि सदाशयता और कुटुम्ब नाश को बचाने हेतु राजाज्ञा भंग के परिणाम-स्वरूप ऐसा कठोर दण्ड स्वाभाविक नहीं लगता।

लक्ष्मण

लक्ष्मण के चरित्रांकन में वैदिक और जैन परम्परा में अधिकांश स्थलों पर साम्य है, किन्तु कुछ स्थलों पर अन्तर भी है। प्रमुख अन्तर निम्न हैं—

(१) राम के वन-गमन के प्रसंग पर लक्ष्मण कुपित नहीं होते वरन् अपने कर्तव्य पालन और भ्रातृप्रेम के वशीभूत होकर माता से वन-गमन की आज्ञा माँगते है; जबकि वैदिक परम्परा में पहले उन्हें क्रोधाभिभूत दिखाया गया है।

(२) जैन परम्परा के अनुसार लक्ष्मण के हाथों अनायास अनजाने ही तपस्वी शम्बूक का वध हो जाता है। शम्बूक चन्द्रनखा (शूर्पनखा) का पुत्र है और उसकी मृत्यु से राम-रावण युद्ध का समुचित कारण उत्पन्न हो जाता है। शम्बूक-वध वैदिक परम्परा में भी दिखाया गया है किन्तु वहाँ राम के द्वारा हुआ है, वह भी तब जबकि राम राजा बन चुके थे। कारण था—एक ब्राह्मण के पुत्र का मर जाना। राम ने तपस्वी शम्बूक का जान-बूझकर वध किया। जो कारण (ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु) वैदिक परम्परा में दिखाया गया है वह इतना लचर है कि गले नहीं उतरता और अनेक विद्वानों ने इसकी आलोचना की है। यह बात भी सहज विश्वास योग्य नहीं है कि राम जैसा विवेकी और कृपालु महापुरुष अकारण ही तपस्यारत किसी निरपराध व्यक्ति का प्राणान्त कर दे।

(३) खर-दूषण का वध वैदिक परम्परा में राम द्वारा दिखाया गया है जबकि जैन परम्परा में लक्ष्मण द्वारा। शम्बूक वध के पश्चात खर-दूषण आते हैं और लक्ष्मण उनसे युद्ध करने जाते है। राम जब चलने को उद्यत होते है तो वे कहते है —'तात! मुझे आज्ञा दीजिए, मेरे रहते हुए आपका युद्ध हेतु जाना उचित नहीं।' उनका यह कथन उनके स्वभाव के अनुकूल था।

(४) जैन परम्परा में रावण का वध लक्ष्मण द्वारा हुआ बताया है जो उनके बल-पराक्रम को देखते हुए अस्वाभाविक नहीं लगता।

(५) वैदिक परम्परा में लक्ष्मण के क्रोधी स्वभाव को ही उजागर किया गया है, जबकि जैन परम्परा में वे अतिशय बली और गुरुजनों के प्रति विनयावनत हैं।

भरत

भरत के चरित्र में जैन परम्परा में एक विशेषता है कि वे सर्वत्र धीर-गम्भीर और शान्त बने रहते हैं। उनका शील उत्तम कोटि का है। राम-वन-गमन के प्रसंग पर भी वे माता कैकेयी से दुर्वचन नहीं कहते। भ्रातृ-प्रेम उनके हृदय में कूट-कूटकर भरा हुआ है। जबकि वैदिक परम्परा में राम-वन-गमन के समय उनका धैर्य विचलित हो जाता है और वे अपनी माता कैकेयी से कटुवचन कहने लगते हैं।

कैकेयी

कैकेयी का चरित्र वैदिक परम्परा में स्वार्थी नारी के रूप में चित्रित हुआ है। वह अपने पुत्र-मोह (भरत के मोह) में विवेकान्ध हो जाती है। वह दो वर माँगती है। एक से—भरत को राज्यसिंहासन और दूसरे से राम को चौदह वर्ष का वनवास। वह इतना भी नहीं सोच पाती कि चौदह वर्ष बाद जब राम वन से वापिस आयेंगे तो क्या स्थिति होगी। भरत को सिंहासन छोड़ना पड़ेगा। किन्तु उसकी बुद्धि पर तो स्वार्थ का परदा पड़ गया था—इतना सोच ही कैसे सकती थी! लेकिन जैन परम्परा में कैकेयी का चरित्र इतना गिरा हुआ नहीं है। वह केवल एक ही वरदान माँगती है—भरत को राज्य तिलक। इसका भी एक कारण था कि भरत ने अपने पिता राजा दशरथ के साथ ही प्रव्रजित होने का निर्णय कर लिया था। कैकेई अपने पति और पुत्र दोनों का वियोग एक साथ सहने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी। इस प्रकार जैन परम्परा की कैकेयी राम-विरोधी नहीं थी, वह उन्हें वन नहीं भेजना चाहती थी, उसका भरत के लिए सिंहासन माँगना तो पुत्र को प्रव्रजित होने से रोकने का बहाना था। जबकि वैदिक परम्परा की कैकेयी राम-विरोधी है।

सीता

सीता के चरित्र के सम्बन्ध में वैदिक परम्परा में वैविध्यपूर्ण वर्णन है। वैदिक परम्परा उन्हें अयोनिजा मानती है। इसी कारण वे राजा जनक को हल

चलाते हुए भूमि से प्राप्त होती है। किन्तु जैन परम्परा उन्हें राजा जनक की पुत्री मानती है।

एक ओर तो सीता के प्रति राम का अनन्य प्रेम दिखाया गया है और दूसरी ओर वे कटुवचन कहकर त्याग करने को उद्यत हो जाते हैं (लंका विजय के पश्चात) तब सीता अग्निदिव्य करके स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करती है। इसके बाद भी अयोध्या में सम्पूर्ण सभा के विरोध करने पर भी राम अपनी कुल-कीर्ति के लिए सीता का त्याग कर ही देते है, उसे निर्जन वन में छुड़वा देते है। अग्निदिव्य के बाद भी राम द्वारा सीता-परित्याग के औचित्य को स्वीकारना बड़ा कठिन है। जैन परम्परा में स्थिति भिन्न है। सीता सपत्नी डाह का शिकार बनती है और उसका अग्निदिव्य भी अयोध्या में सम्पन्न होता है। इसके बाद वह संसार के सुख-भोग त्यागकर जैन साध्वी बन जाती है।

सीता के महासती और विवेकी स्त्री होते हुए भी स्वर्णमय मृग के लोभ में फँसना कुछ उचित नहीं प्रतीत होता। साथ ही जब वह लक्ष्मण को दुर्वचन कहती हैं (मृग को मारने हेतु श्रीराम के जाने बाद जब मृग श्रीराम के स्वर में आर्तनाद करता है) तो वे एक सामान्य नारी से भी नीची भूमिका पर उतर आती है। लक्ष्मण के शीलस्वभाव को जानते हुए भी सीता की यह आशंका और उनके चरित्र के प्रति आक्षेप विडम्बना ही कहे जा सकते हैं। जबकि जैन परम्परा में सीता के मुख से कहीं भी न ऐसे वचन कहलवाए गए हे और न उनके हृदय में ऐसी कोई शंका है। सती सीता का जैन परम्परा में सर्वत्र उज्ज्वल और गम्भीर चरित्र ही प्रकट हुआ है, वे कहीं भी अपनी गरिमा से नीचे नहीं उतरी है।

वालि

वालि का चरित्र वैदिक परम्परा में असंगति का शिकार है। एक ओर तो वालि को इतना भगवद्भक्त बताया गया है कि वह नियम से संध्योपासना आदि धार्मिक क्रियाएँ करता है, विवेकी है और अतिशय बलवान है, रावण का पराभव करता है किन्तु दूसरी ओर अपने छोटे भाई की स्त्री से अनुचित

सम्बन्ध रखता है और भाई को राज्य से बाहर भी निकाल देता है; इस प्रकार वह अधर्म, अनीति और अन्याय का पोपण करता है। किन्तु वालि के मरने के बाद तारा जिस प्रकार शोकाकुल होती है, विह्वल होकर रोती और श्रीराम से पुकार करती है तो सहसा यह प्रश्न मस्तिष्क में उद्भूत हो जाता है कि 'क्या कोई नारी उस पुरुष के लिए ऐसा करुण विलाप कर सकती है जिसने बलपूर्वक उसके साथ बलात्कार किया हो ? इस प्रश्न का उत्तर वैदिक परम्परा में कहीं भी नहीं है। सिर्फ इतना ही कह दिया गया है कि—

'राम वालि निज धाम पठावा।'

वालि के चरित्र में ऐसी असंगति जैन परम्परा में नहीं है। यहाँ भी वह रावण का पराभव करता है, भगवद्भक्त है, अतिशय बली है किन्तु पाप में लिप्त नहीं है। वह पहले ही संयम स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार वालि का चरित्र आदि से अन्त तक निर्मल है और है शौर्य एव वैराग्य की अनुपम गाथा।

हनुमान

हनुमान राम-कथा के प्रमुख पात्र हैं। यदि यह कहा जाय कि इनके बिना राम-कथा पूरी नहीं होती तो अतिशयोक्ति न होगी। वैदिक परम्परा के अनुसार तो वे राम के अनन्य भक्त, अतुलित बलशाली, विवेकी, आजन्म ब्रह्मचारी और राम के वरदान स्वरूप अमर हैं। इन्हें ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्र आदि सभी देवताओं से वरदान प्राप्त हुए हैं किन्तु ऋषियों की कृपा इन पर भी हुई। इनकी बाल सुलभ चपलताओं से रुष्ट होकर ऋषियों ने इन्हें 'अपना बल भूल जाने का शाप' दिया; किन्तु तुरन्त ही फिर खयाल आया कि सागर-संतरण करके सीताजी की खबर कौन लाएगा तो उपाय भी बता दिया कि 'जब कोई तुम्हें तुम्हारे बल की स्मृति करायेगा तो तुम्हें अपने विस्मृत बल की स्मृति हो जायेगी।'

दूसरी विशेषता यह है कि 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' को मानने वाली वैदिक परम्परा में हनुमान का पुत्र होना भी आवश्यक था। वह हुआ भी, चाहे पसीने से ही हुआ—मकरध्वज नाम था उसका। (सागर-संतरण के समय

हनुमान को पसीना आ गया था। वह उन्होंने पोंछा तो मकराकृति राक्षसी उसे पी गई। उसी से वह गर्भवती हुई और मकरध्वज नाम का पुत्र हुआ। यह हनुमान का पुत्र था।)

ऐसी विचित्र विशेषताएँ जैन परम्परा में नहीं हैं। यहाँ हनुमान को आजन्म ब्रह्मचारी नहीं माना गया है। उनका बल-पौरुष, विवेक एवं संयम तो जगविख्यात है ही।

रावण

वैदिक परम्परा का रावण तो पाप की साक्षात् मूर्ति ही है। उसने तपस्या आदि द्वारा जो कुछ भी शक्ति प्राप्त की उसका उसने अन्याय और उत्पीड़न में ही प्रयोग किया। वह स्थान-स्थान पर स्त्रियों का शीलभंग करता है, उन्हें बलात् हर ले जाता है। ऋषियों का तो वह घोर शत्रु ही है—उन्हें भाँति-भाँति से तंग करता है, कर (टैक्स) के रूप में उनका रक्त लेता है, यज्ञों का विध्वंस करता है, समस्त धार्मिक क्रियाओं का विरोधी है। देवताओं के उत्पीड़न में उसे आनन्द आता है। देवराज इन्द्र को वन्दी बना लेता है, यम को उसके सामने युद्धक्षेत्र से भागना पड़ता है, कुवेर को वह लंका से निकाल बाहर करता है—सभी देवता उसके सामने निरीह से हो जाते हैं। अपनी स्त्रैण्यता के कारण उसे कई बार शाप भी मिलते हैं—कभी ब्रह्मा द्वारा तो कभी वैश्रमण द्वारा और कभी शीलवती नारियों द्वारा। फिर भी वह अपनी वासना को वश में नहीं रख पाता और सीता की सुन्दरता पर मोहित होकर छलपूर्वक उसका अपहरण कर लेता है। सीता का अंकशायिनी न बनाने का कारण उसके चरित्र की दृढ़ता न होकर उन शापों का भय है जो उसे अनेक बार मिल चुके थे।

किन्तु जैन परम्परा का रावण ऐसा नहीं है। वह यज्ञ-विरोधी तो है लेकिन सिर्फ हिंसक यज्ञों का ही। वह ऋषियों को कभी भी उत्पीड़ित नहीं करता। स्त्रियों को सद्धर्म पालन की प्रेरणा देता है जैसा कि उसने नलकूबर की पत्नी उपरम्भा के साथ किया। उसने जहाँ भी कदम रखा लोगों को

निर्भय किया, शासकों को प्रजा की सेवा के लिए प्रेरित किया। यह उसका प्रताप ही था कि उसके राज्य में जनता सुखी और समृद्ध थी। धन्य-धान्य और सुख-समृद्धि से आप्लावित सोने की लंका तो वैदिक परम्परा को भी मान्य है।

रावण के चरित्र में केवल एक ही दोष है और वह है छलपूर्वक सती सीता का अपहरण। वह सीता की विरहाग्नि में तिल-तिल जलता है, छटपटाता है किन्तु 'नहीं इच्छती नारी को नहीं भोगूंगा' अपने इस नियम का भंग नहीं करता, अपने वश में पड़ी सीता पर बलात्कार नहीं करता। वह अपनी गरिमा को कायम रखता है और शूर्पणखा की तरह सीता को न अपमानित करता है और न ही कुरूप बनाता है (जैसा कि श्रीराम लक्ष्मण ने किया था)। उसकी प्रतिशोधाग्नि इस सीमा तक नीचे नहीं गिरती कि अपने भानजे और बहनोई के प्राणान्त करने वाले तथा बहन का अपमान करने वालों का बदला सीताजी से चुकाता।

जैन परम्परा में रावण का चरित्र पाप की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित न होकर एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है जिसमें गुण भी हैं और दोष भी है। सीताहरण ही उसका ऐसा अक्षम्य अपराध है जिसके कारण उसका नाश हुआ, लंका का विध्वंस हुआ और राक्षस जाति भी पतन के गर्त में सदा के लिए समा गई।

कुम्भकर्ण

कुम्भकर्ण राक्षसराज रावण का अनुज था। वैदिक परम्परा के अनुसार वह महा आलसी और छह महीने तक सोने वाला है। उसका रूप भी भयभीत करने वाला है। वह अति विशाल शरीर और तामसी वृत्ति वाला है। उसका केवल एक ही गुण है और वह है रावण की आज्ञा पालन करना। उसकी आज्ञा से वह राम के विरुद्ध युद्ध भूमि में जाता है, अपना बल प्रगट करता है और राम के बाण से वीर गति प्राप्त करके मुक्त होता है।

जैन परम्परा इसका नाम भानुकर्ण मानती है। इसके अनुसार वह न आलसी है और न ही उसका रूप भयोत्पादक है। वह छह महीने तक सोता

भी नहीं। वह विवेकी, भ्रातृप्रेमी, अतिवली और निर्भीक है। सीताहरण के प्रसंग पर वह रावण की निर्भीक आलोचना करता है। वह सीता को लौटाने का आग्रह भी करता है। युद्धभूमि में आकर राम की सेना के सभी सुभटों को हतप्रभ कर देता है। वही एक मात्र ऐसा योद्धा है जो हनुमान को अपनी बगल में दबाकर लंका की ओर चल देता है।

जैन परम्परा में वह मुक्त भी होता है किन्तु अपनी तपस्या द्वारा; राम के बाण द्वारा वीर गति प्राप्त करके नहीं।

विभीषण

विभीषण राम-कथा का ऐसा पात्र है जिसका रूप वैदिक परम्परा में द्विविध है। एक ओर तो उसे गद्दार माना गया और उसके नाम पर ही 'घर का भेदी लंका ढावे' जैसी लोकोक्ति बनी; आज भी वह आदि-गद्दार माना जाता है और किसी भी गद्दार व्यक्ति को विभीषण के नाम की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। दूसरी ओर उसे राम का परमभक्त माना जाता है। इस द्विविध वर्णन का कारण यह है कि राक्षस जाति और देश के प्रति तो उसका व्यवहार गद्दारी का रहा किन्तु श्रीराम के प्रति भक्तिपूर्ण। वैदिक परम्परा में राम को विष्णु का अवतार माना गया है और रावण उनका विरोधी था अतः विभीषण की गद्दारी उनके कार्य सम्पन्न होने में सहायक हुई और भगवान की सहायता करने वाले को परमभक्त की उपाधि से सुशोभित किया गया।

विभीषण राम-रावण युद्ध में पग-पग पर राम की सहायता करता है, उन्हें रावण और राक्षस जाति के गुप्त भेद बताता है, मेघनाद के यज्ञ विध्वस की प्रेरणा देता है, एक शब्द में कहें तो वह राम की रावण पर विजय प्राप्ति का प्रमुख कारण है। इस सब सेवा के बदले उसे लंका का राज्य प्राप्त हुआ और मिला अमर रहने का वरदान तथा भक्त शिरोमणि की उपाधि।

जैन परम्परा का विभीषण यद्यपि श्रीराम से आ मिलता है किन्तु वह उन्हें रावण के गुप्त भेद नहीं बताता। वह ऐसा कोई कार्य नहीं करता जिससे उसे गद्दार कहा जा सके। उसका भ्रातृप्रेम भी उच्चकोटि का है।

दोनों ही परम्पराओं में उसे सदाचारी, विवेकी और धर्मपरायण के रूप में चित्रित किया गया है।

चन्द्रनखा (शूर्पणखा)

वैदिक परम्परा की शूर्पणखा एक स्वच्छन्द कामान्ध नारी है। उसका वर्णन दो ही स्थानों पर मिलता है। प्रथम, जब रावण कालकेय दानवों पर विजय करने के बाद आता है तो वह विधवा के रूप में दिखाई गई है। वह कहती है—'तुमने मेरे पति विद्युज्जिह्व को मार कर मुझे विधवा बना दिया।'[1] तब रावण उसे दण्डकवन की रक्षार्थ नियुक्त किये खर के साथ रख देता है। दूसरी बार वह तब दिखाई देती है जब वह अनायास ही राम लक्ष्मण के पास पहुँचकर काम-याचना करने लगती है। अपनी याचना ठुकराये जाने और अपमानित एवं कुरूपित होने पर वह पहले तो खर को भड़काती है और फिर रावण को। इस प्रकार राम-रावण युद्ध का कारण उसकी अतृप्त वासना और बदले की आग है।

जैन परम्परा की चन्द्रनखा विकृत मुख वाली नहीं है। वह अनायास ही दण्डकवन नहीं पहुँच जाती है। उसके राम-लक्ष्मण के पास पहुँचने का स्पष्ट कारण है। लक्ष्मण के हाथों उसके पुत्र शंबूक का वध हो गया है और वह उनके पद-चिह्न देखती हुई उनके पास तक जा पहुँचती है। हाँ, इतना दोनों परम्पराओं को मान्य है कि चन्द्रनखा (शूर्पणखा) ही सीता-हरण का प्रमुख कारण रही। उसी ने एक ओर तो पुत्र की हत्या का बदला लेने के लिए खर को भडकाया और राम-लक्ष्मण का प्राणान्त करने भेजा और दूसरी ओर रावण को सीता के अनुपम रूप का वर्णन करके सीताहरण के लिए प्रेरित किया। इतना होने पर भी जैन दृष्टि से चन्द्रनखा न तो स्वच्छन्द नारी है और न कामुक।

इन पात्रों के अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों का वर्णन जैन परम्परा में सहानुभूतिपूर्वक हुआ है। जैन दृष्टि से राक्षस जाति मूलतः धर्म-विरोधी नहीं

---

१ वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड ६३।४।

है जैसा कि वैदिक परम्परा में है। जैन परम्परा राक्षस जाति का उद्भव भी एक ही मूल से मानती है। वह विद्याधर जाति से उत्पन्न हुई, जो भारत की ही एक जाति थी। इस दृष्टि से राम-रावण युद्ध दो संस्कृतियों का युद्ध न होकर केवल धर्म का अधर्म के विरुद्ध युद्ध था और अधर्म था पर-स्त्रीहरण। इस अधर्म का ही इस युद्ध के द्वारा नाश हुआ। रावण इसी दोष के कारण मारा गया और राम विजयी हुए।

तुलना का आशय

वैदिक और जैन परम्परा की तुलना और कथा-भेद दिखाने का आशय मतभेद बढ़ाना नहीं अपितु समग्रता लाना है।

वास्तव में महापुरुषों के जीवन पर विवाह होने या न होने अथवा एक विवाह और अनेक विवाह का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक पत्नीव्रत धारी राम भी वैदिक परम्परा के अनुसार भगवान हैं तो सोलह हजार पत्नियों के स्वामी श्री कृष्ण भी। बल्कि एक पत्नीधारी राम विष्णु के चतुर्थांश, बारह कला के अवतार थे और श्री कृष्ण सम्पूर्ण—सोलह कलाओं के।

महापुरुषों के जीवन-चरित्र के मूल्यांकन की एक ही कसौटी होती है और वह है उनके लोकहितकारी कार्य, उज्ज्वल चरित्र, लोकनायकत्व। विवाह आदि अन्य बातें तो गौण होती हैं। यही मार्ग समीचीन है और यही होना भी चाहिए। विवादास्पद स्थलों को छोड़कर प्रेरणाप्रद बातों को ग्रहण करना यही अभीप्सित और सुख शान्ति का मार्ग है।

राम के सद्गुण

राम-कथा की रोचकता और राम के सद्गुणों के कारण प्राचीन काल से ही इसका प्रसार विश्वव्यापी रहा। एशिया की सभी प्राचीन भाषाओं में राम का गुण-गान मिलता है। भारत में तो वे ईश्वर के रूप में पूजे जाते ही रहे हैं किन्तु बाहर भी उनका रूप कम लोककल्याणकारी नहीं रहा। भारत की तो सभी भाषाओं में राम का लोकरंजनकारी रूप प्रगट हुआ है। उनके उज्ज्वल चरित्र और सद्गुणों को प्रगट करने वाले उद्धरण भरे पड़े हैं। किन्तु

यहाँ कुछ ऐसी भाषाओं में वर्णित राम के सद्गुणों का उल्लेख किया जा रहा है जो सहज प्राप्य नहीं हैं।

नैपाली भाषा में

नैपाली भाषा में 'भानुभक्त को रामायण' एक उत्तम काव्य ग्रन्थ है। वन गमन के अवसर पर राम अपने क्रोधित अनुज लक्ष्मण को शान्त करने के लिए समझाते हैं—

> यस्तै हो सुन कर्म का वश हुँदा बस्तैन् एक ठाम् रही।
> फस्तै कोहि हवस् अवश्य करलै जानू छ जहाँ गई॥
> कर्म को फलभोग गर्छ दुनियाँ यै चित्रमा लेउ भाई।
>
> —श्री अयोध्या काण्ड ३०।३६

अर्थात्—शान्त होकर सुनो ! कर्म के वश होकर अब तक हम एक स्थान पर रहते थे। कितनी भी किसी की आकांक्षा हो, जो करना हो उसे भले ही कर डालो; किन्तु मैं जानता हूँ कि जो प्रयत्न की (गति) अवश्य होती है। हे भाई लक्ष्मण ! लेकिन यह बात हृदय में विश्वास करके रख लो कि इस संसार में सबको कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

एशिया के हृदयांचल में भी राम के उज्ज्वल चरित्र का आलोक फैला।

सन् ४७२ ई० में चीनी लेखक 'चि-चिआ-य' ने अपने ग्रन्थ 'त्सा-पाओ-त्सांङ' का प्रारम्भ ही रामायण से किया। राम आदि चारों भाइयों के पारस्परिक प्रेम और उसका जनता पर प्रभाव बताते हुए वह लिखता है—

'पिउङ् ति तुन् मु। फङ्-षिङ् ता षिङ्। ताङचि सो पेइ।० युआन् मङ् सा इ। जन स्स त्स छुआन् फङ् शि षिआउ चिङ्।

अर्थात्—भाइयों (श्री राम और उनके भाई) में अतिशय प्रेम था। एक दूसरे के प्रति प्रेम और आदर था। लोकचर्या पर इनका पूर्ण प्रभाव हुआ। सदाचार सभी ओर व्याप्त हो गया। सम्पूर्ण जन सदाचार में इन चारों भाइयों के अनुगामी हो गये।

एशिया के सबसे उत्तर में शिविर देश (साइबेरिया) है। वहाँ के बुर्यात्

प्रदेश में हिम (वर्फ) का ही साम्राज्य है। उसके वाह्यान्तर भागों और रूस की नदी वोल्गा तट के निवासी काल्पुकों में भी प्राचीन काल से ही राम चरित चर्चित रहा। वहाँ के सुलतान कुब्लइखाँ (सन् ११८२-१२५१) के गुरु साचा पण्डित आनन्दध्वज ने 'एर्देनिथिन् साङ् सुवाशिदि' नामक ग्रन्थ की रचना की। ऐर्देनि का अर्थ है रत्न और सुवाशिदि का सुभाषित। इस ग्रन्थ पर रिन्छेन्पाल्साङ्पो (रत्न श्री भद्र) की टीका प्राप्त होती है। उसमें राम कथा का वर्णन है। वहाँ रावण की मृत्यु का कारण वताते हुए कहा है—

ओलान्-दुर आख वोलुग्सान येखे खुमुन् देभि आलिया नाग्रादुग्वा। ओल्यु आमुर सागुरक्षुवा इद्गेन् ओम्दागान् दुर नेङ् उलु शिनुग्युगाइ। ओल्ज गुसेल-दुर नेङ् येसे शिनुग्सेन् उ गेम् इयेर। ओरिदु मान्गोस-उन् निगेन् खागान् लंगा-दुर आलाग्दासान्।

अर्थात्—जन-नेताओं, राजाओं तथा महान पुरुषों को व्यर्थ के आमोद-प्रमोद एवं इन्द्रियों की लंपटता में लीन नहीं होना चाहिए। काम, लोभ, मोह आदि में अतिलीन होने के दोष से राक्षसराज लंका में मारा गया।

इण्डोनेसिया में भी राम-कथा का प्रचार-प्रसार हुआ। वहाँ की ११वीं सदी की 'कवि' भाषा में योगीश्वर द्वारा रचित रामायण को वहाँ का आदि काव्य होने का गौरव प्राप्त हुआ है। भरत-मिलाप के पश्चात् भरत को अयोध्या जाकर शासन सूत्र संचालन की प्रेरणा देते हुए श्रीराम उनसे प्रेम पूर्ण शब्दों में कहते हैं—

शील रहयु रक्षन्, रागद्वेष हिलङ्कॅन्।
किम्बुरु य त हीलन्, शून्याम्वक्त लवन् अवक्॥
न्याङ् विनय गॅगॅान आंसि सोलः कि नलुलुतन्।
व्वङ्भिमन सम्पत्तन्तॅकुं प्रभु मङ्लिः॥ (३१५५)

अर्थात्—सुशील की रक्षा करो, राग-द्वेष छोड़ दो, ईर्ष्या नष्ट करो, मन और शरीर को इनसे शून्य करो। इस प्रकार सव लुभाने वाले विषयों का परिवर्जन करो। मेरे अनुज! वहुत अभिमानी प्रभु का पतन हो जाता है।

इसी प्रकार आगे श्रीराम भरत को समझाते हुए कहते हैं—

गॉङ् हँकोर य त हिलन् । निन्दा तन् गवयार्कन् ।
तं जन्मामुहर वॅङ्क । येन प्रश्रय सुमुख ।। (३।६१)

अर्थात्—अत्यधिक अहंकार से दूर रहना चाहिए । निन्दा नहीं करनी चाहिए । कुलीन (उच्च-कुल) जन्म का मद नहीं करना चाहिए । हे सुमुख ! यही प्रश्रय है ।

इसी प्रकार के अन्य अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे श्रीराम के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष स्पष्ट होता है और उनके सद्गुणों की झलक मिलती है । सत्य यह है कि श्रीराम अनेक गुणों के आगार हैं । उनके सद्गुण उनके जीवन-चरित्र में प्रगट हो रहे हैं । उनकी ज्योति सुदीर्घकाल बीत जाने पर भी धूमिल नहीं पड़ी है ।

राम के चरित्र की प्रेरणा

श्रीराम का चरित्र अनेक सद्गुणों का भण्डार है, जो लौकिक दृष्टि से बड़े ही उपयोगी और प्रेरणाप्रद हैं । यद्यपि उनके उज्ज्वल और उदात्त चरित्र में इतने मोती हैं कि उनकी गणना भी कठिन है किन्तु कुछ प्रमुख प्रेरक तत्त्वों पर दृष्टिपात करना उचित होगा ।

राम की पितृभक्ति अनुपम है । वे कहते हैं कि 'पिता की आज्ञा से मैं अग्नि में कूद सकता हूँ, समुद्र में छलाँग लगा सकता हूँ ।' इसी प्रकार मातृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृस्नेह, पत्नीप्रेम आदि गुण उनमें भरपूर मात्रा में थे । चारों भाइयों का स्नेह आज भी भारतीय जनता का आदर्श है ।

साहस ! अदम्य साहस था उनमें । उस युग के सर्वश्रेष्ठ साधन सम्पन्न लंकापति रावण से साधन-हीन होने पर भी भिड़ गये और सफलता प्राप्त की । सीताहरण के समय क्या था उनके पास ? केवल दो भाई ही तो थे ।

वंशगौरव की रक्षा की भावना भी उनके कण-कण में समाई थी । रघुकुल की कीर्ति कलंकित न हो जाय इसके लिए वह प्राणप्यारी सीता का भी परित्याग कर देते हैं ।

शरणागत वत्सल इतने कि विभीषण के लिए उनके हृदय में अपार चिन्ता है। लक्ष्मण के शक्ति लग जाने पर वे दुःखी स्वर में कहते हैं 'मुझे केवल विभीषण की चिन्ता है। इसका क्या होगा ?'

उन्होंने रावण-वध अन्याय के प्रतिकार के लिए किया। स्त्रीहरण की परम्परा को नष्ट करने के लिए इतने दुःख झेले।

उदारता में तो उनकी समानता मिलना ही कठिन है। अपशब्द कहने वाले कपिल ब्राह्मण को भी इच्छित दान देते हैं। लंका का राज्य विभीषण को देते हुए भी सकुचाते हैं कि कुछ नहीं दिया।

निस्पृहता और त्यागप्रवृत्ति इतनी है कि बड़े होते हुए भी राज्य स्वयं नहीं ग्रहण करते, छोटे भाई लक्ष्मण को दे देते हैं।

राम का वचन-पालन, दृढ़ प्रतिज्ञा तो प्रसिद्ध ही है—'प्राण जाय पर वचन न जाई।'

ये सभी गुण सदा से ही ग्रहणीय रहे हैं और सदा ही रहेंगे। इसीलिए तो राम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये।

सीताजी का पातिव्रत-धर्म और कष्ट-सहिष्णुता तो भारतीय नारी का सदा ही आदर्श रहा है। आज भी भारतीय नारी सीता कहलाने में गौरव का अनुभव करती है।

श्रीराम का पावन-चरित्र एक पावन गंगा की धारा है। जिसमें अन्त-कथाओं रूपी अनेक नाले आकर मिले और सब गंगा बन गये। इनसे गंगा अपवित्र नहीं हुई वरन् ये नाले ही पवित्र हो गये।

सम्प्रदाय मोह में पड़कर राम के चरित्र को सीमाओं में बांध लेना न तो उचित है और न सम्भव! यह तो उन्मुक्त गंगा है और उन्मुक्त ही रहेगी।

जैन रामायण की विशेषताएँ

जैन रामायण की विशेषता है तथ्यों का यथातथ्य निरूपण। सांप्रदायिक वैमनस्य, प्रतिपक्ष भाव अथवा ईर्ष्या के कारण किसी का भी अतिरंजित बुरा या अच्छा चित्रण जैन साधुओं को अभीष्ट नहीं था। वैदिक परम्परा में राम

के विरोधियों में अनेक अवगुण आरोपित कर दिये गये हैं—जैसे राक्षस मनुष्यों को जीवित ही खा जाते थे। रावण अपनी पुत्रवधू से ही बलात् भोग कर लेता है आदि। कैकेयी का चरित्र भी कुत्सित और विकृत दिखाया गया है। वीर हनुमान को पूरी तरह वानर सिद्ध करने के लिए उनकी पूँछ भी दिखाई गई है। राम को पूरी तरह भगवान सिद्ध करने के लिए अहल्या, शवरी, केवट आदि के प्रसंग भी जोड़े गये हैं।

ऐसी कोई बात जैन रामायण में नहीं है। इसमें न तो कैकेई का कुत्सित रूप है, न रावण का। वीर हनुमान भी पूँछधारी वानर नहीं हैं किन्तु अति वीर, परम पराक्रमी और मेधावान, अनेक विद्यासम्पन्न, सच्चरित्र मनुष्य थे। सीताजी भी न भूमि से निकली, न भूमि में समाई।

इस प्रकार सभी पात्रों का तटस्थतापूर्वक वर्णन ही जैन श्रमणों को अभीष्ट रहा। अतः सभी का मानवीय धरातल पर उदात्त चित्रण हुआ है।

अतः डॉ० चन्द्र के शब्दों में यह कहना सर्वथा उचित होगा कि 'जैन रामायण (पउम चरियं) में राम का चरित्र वाल्मीकि रामायण से ऊँचा उठता है।'

प्रस्तुत कथामाला में राम-चरित्र की रचना का भी यही उद्देश्य है कि तथ्यों का सही चित्रण किया जाय। राम-कथा में प्रक्षेपित की गई अलौकिक और चमत्कारी घटनाओं की सही जानकारी मिले। राम का उज्ज्वल और प्रेरणाप्रद चरित्र पढ़कर पाठक उनके गुणों से प्रेरणा ग्रहण करें और स्वयं अपने जीवन में उतारें। साथ ही जैन दृष्टि से राम-चरित क्या है, इसकी भी जानकारी हो जाय। कथामाला की शृंखला के अनुसार राम-कथा के पाँच भागों को एक ही जिल्द में बाँधकर प्रस्तुत किया गया है, जो पाठकों के लिए सुविधा जनक ही रहेगा।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'
—बृजमोहन जैन

अर्थ सौजन्य : सादर आभार

[जैन कथामाला के २६ से ३० भाग तक]

सम्पादन एवं प्रकाशन में अर्थसहयोगी

☐ **श्री मंगलचन्दजी चोरड़िया**

मूल निवासी—चांदावतों का नोखा (राज०)
वर्तमान में—हुवली

श्रीयुत चोरड़ियाजी एक उत्साही नवयुवक हैं। आप नौ भाई हैं। जोगीलाल जी, सायरमलजी, जेठमलजी, आदि आपके अग्रज भ्राता हैं। अभी वर्तमान में आप आठवें नम्बर के भाई हैं। आप औषध-विक्रेता हैं। हुवली में महावीर ड्रग हाउस का संचालन आप ही कर रहे हैं।

इस सम्पादन में आपने अच्छा अर्थ-सहयोग दिया है, एतदर्थ धन्यवाद ! संस्था के अन्य प्रकाशनों में भी आप का सदा सहयोग मिलता रहेगा—ऐसा हमारा विश्वास है।

☐ **दीक्षा के अवसर पर उपलब्ध अर्थ राशि का सहयोग**

वि० सं० २०३४ वैशाख शुक्ला प्रतिपदा दि० १६-४-७७ मंगलवार को उप-प्रवर्तक पूज्य स्वामीजी श्री व्रजलालजी महाराज के श्रीमुख से सतीजी श्री कानकुंवरजी, विदुषी सतीजी श्री चम्पाकुंवरजी व सतीजी श्री वसंतकुंवरजी के सान्निध्य में चांदावतों के नोखा में वैरागिन श्री कंचनवाई ने दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा ग्रहण करते समय उपलब्ध अर्थ-राशि के अर्थ के कुछ भाग का उपयोग कंचनवाई ने इस प्रकाशन के सम्पादन में किया है।

साध्वीजी श्री कंचनकुंवरजी संसार पक्ष में कुचेरा-निवासी स्व० श्रीरूप चन्दजी नाहर की पुत्र-वधू है तथा स्व० श्रीवुधमलजी नाहर की धर्मपत्नी है।

☐ महावीर ड्रग हाउस, बेंगलोर

संस्था के अनेक प्रकाशनों में महावीर ड्रग हाउस—बेंगलोर का अर्थ सहयोग रहा है और इस ओर से संस्था के प्रकाशनों में अर्थ-सहयोग निरन्तर मिलता ही जा रहा है। प्रतिष्ठान के संचालक श्रीयुत जेठमलजी चोरड़िया साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में सदा सहयोगी रहे हैं। इस प्रकाशन के सम्पादन में भी आपकी ओर से उदार अर्थ सहयोग मिला है। एतदर्थ अनेकशः धन्यवाद

☐ श्री एस० किसनलाल जी चोरड़िया

मूल निवासी—चांदावतों का नोखा (राज०)
वर्तमान में—उलंदरपेठ व मद्रास।

श्रीयुत चोरडियाजी एक उत्साही समझदार व विनम्र सज्जन पुरुष हैं।

आपने इस प्रकाशन में एक अच्छी अर्थ-राशि का योग-दान दिया है। एतदर्थ धन्यवाद।

जैन कथामाला के २० वें भाग के प्रकाशन में भी आपकी ओर से अर्थ सहयोग मिला है। उक्त भाग में आप का जीवन परिचय भी दिया गया है। आप से इस संस्था को अनेक आशाएँ हैं।

☐ श्री मांगीलालजी चोरड़िया

मूल निवासी—चांदावतों का नोखा (राज०)
वर्तमान में—मद्रास

आप मद्रास के सुप्रसिद्ध समाज-सेवी श्रीगुमानमलजी चोरड़िया के द्वितीय नम्बर के अनुज भ्राता हैं। आप बहुत ही सीधे-सादे स्वभाव वाले सज्जन पुरुष हैं।

आपने इस प्रकाशन में अपने अर्थ का अच्छा योग-दान दिया है। एतदर्थ धन्यवाद। संस्था आप से अपने आगे के प्रकाशनों में भी सहयोग की आशा रखती है।

□ श्री चन्दनमलजी चोरड़िया

मूल निवासी—चांदावतों का नोखा (राज०)
वर्तमान में—मद्रास

आप भी श्रीयुत गुमानमलजी चोरडिया के चौथे नम्बर के अनुज भ्राता हैं। आप उदार हैं, उत्साही हैं, तपस्वी है और भद्र प्रकृति वाले महानुभाव हैं।

वि० सं० २०३० में जब पूज्य गुरुदेवश्री ब्रजलालजी म० सा० का वर्षावास नोखा में था तब आपने मास खमण की तपस्या की थी।

आपकी ओर से इस प्रकाशन में अच्छी अर्थ-राशि का योग-दान मिला है। बहुत-बहुत धन्यवाद। संस्था को आपसे सहयोग मिलता रहेगा—ऐसा पूर्ण विश्वास।

□ श्री माणिकचन्दजी बेताला

मूल निवासी—नागौर जिले के अन्तर्गत डेह गाँव के पास
सोमणा गाँव (राजस्थान)
वर्तमान में—बागलकोट (कर्नाटक)।

श्रीमान बेतालाजी अच्छे सम्पन्न व समझदार हैं, गम्भीर, उदार मना है और समाज सेवा व धार्मिक कार्यों में रुचि रख रहे। अपने गाँव सोमणा में तथा बागलकोट में आपको सम्मान व समादर का स्थान मिला है। यद्यपि आप बागलकोट ही रहते है और सोमणा में तो आप कभी-कभी ही आ पाते हैं, फिर भी सोमणा के जन-जन के हृदय में आपके लिए पूरा स्थान बना हुआ है। अपनी जन्मभूमि के प्रति आपके अन्तःकरण में पूर्ण ममता है, अतः आपने वहाँ पर एक विद्यालय भवन का निर्माण करवाकर गाँव की एक महत्वपूर्ण समस्या को हल कर दी।

आप स्व० स्वामीजी श्रीरावतमलजी महाराज की भक्त-मण्डली के एक प्रधान सदस्य हैं। स्वामीजी श्रीब्रजलालजी म० सा० श्री मधुकर मुनिजी म० सा० आदि मुनिराजों के प्रति भी आपके हृदय में अपार श्रद्धा है।

इस प्रकाशन में आपने जो अच्छा अर्थ-सहयोग दिया है, एतदर्थ संस्था की ओर से शतशः साधुवाद। आगे के प्रकाशनों में भी संस्था को आपके सहयोग की अपेक्षा सदा बनी रहेगी।

☐ **श्री माणकचन्दजी सुराना**

मूल निवासी—कुचेरा (राजस्थान)
वर्तमान में—मद्रास

श्रीयुत सुरानाजी एक उत्साही नवयुवक है। आपका मुख-मण्डल सदा मृदु-हास्य से उद्भासित होता रहता है।

आप वस्त्रों का व्यवसाय करने वाले हैं। आपके पूज्य पिताजी श्रीभंवर-लालजी भी अच्छे मधुर-स्वभाव वाले हैं।

पूज्य गुरुदेव स्वामीजी श्री ब्रजलालजी म० सा० तथा उपाध्याय श्रीमधुकर मुनिजी के श्रद्धालु भक्तों में आपका भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकाशन में आपने एक अच्छी अर्थ-राशि का योग दान दिया है, एतदर्थ संस्था की ओर से धन्यवाद। संस्था के आगे के प्रकाशनों में भी आपका सहयोग अपेक्षित है।

●●●

विषय-सूची

१. राक्षस राज्य १-१३०

‘रा’ उच्चरता मुख थकी,
पाप पलाई जाय।
मति फरि आवै तेहथी,
‘म’ मो किवाड़ी थाय॥

—कविवर केशराजजी
[राम जस रसायन]

जैन कथामाला

[भाग २६ से भाग २६ तक संयुक्त]

राम-कथा

१ : राक्षस-राज्य

: १ :

राक्षसवंश की उत्पत्ति

सुहावना मौसम था, ठण्डी मनभावनी हवाएँ चल रही थीं। राक्षसद्वीप के अधिपति तडित्केश अपनी पटरानी चन्द्रा के साथ उपवन में एक सरोवर के किनारे वन-क्रीड़ा कर रहे थे।

अचानक वृक्ष से एक वानर उतरा और पटरानी चन्द्रा के स्तन पर तीव्र नख-क्षत कर दिया।

भय और पीड़ा के कारण रानी चीख पड़ी।

वानर उछला और छलांग मारकर वृक्ष के तरु-पल्लवों में जा छिपा।

राक्षसपति[1] तडित्केश ने क्रुद्ध होकर धनुष पर बाण चढ़ाया और तीव्र वेग से छोड़ दिया। तरु-पल्लवों को छेदता हुआ तीर

---

१ (क) राक्षसवंश की उत्पत्ति द्वितीय तीर्थंकर भगवान अजितनाथ के शासन-काल में हुई थी और उसका प्रथम राजा मेघवाहन था। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—

एक वार तीर्थंकर भगवान अजितनाथ साकेतपुर के वाहर उद्यान में पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। सगर चक्रवर्ती, अन्य राजा तथा असंख्य नर-नारी, पशु-पक्षी, देवी-देवता भगवान की धर्म-देशना सुनकर कृतार्थ हो रहे थे।

वानर के मर्म-स्थल को वींध गया। मर्मान्तिक पीड़ा से वह चीखा और गिरता-पड़ता निकट ही कायोत्सर्ग करते हुए एक मुनि के श्री चरणों के समीप जाकर गिरा।

अचानक ही एक भयभीत व्यक्ति आया और भगवान की वन्दना करके एक ओर वैठ गया। उसके पीछे-पीछे अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए एक अन्य व्यक्ति ने प्रवेश किया। किन्तु भगवान की धर्मसभा में प्रवेश करते ही उसका शत्रु-भाव समाप्त हो गया और वह भी शस्त्रास्त्रों को छोड़कर त्रिभुवन तिलक भगवान की वन्दना करके एक ओर जा वैठा।

दोनों पुरुषों के प्रति चक्रवर्ती सगर के हृदय में जिज्ञासा जाग्रत हुई। उसने अंजलिवद्ध होकर भगवान से पूछा—

—नाथ ! ये दोनों पुरुष कौन हैं ?

प्रभु ने वताया—

—सगर ! भयभीत होकर आया हुआ पुरुष मेघवाहन है। यह वैताढ्यगिरि पर निवास करने वाले विद्याधर पूर्णमेघ का पुत्र है और इसके पीछे-पीछे इसे मारने की भावना से आने वाले पुरुष का नाम है सहस्रलोचन। यह भी वहीं के निवासी विद्याधर सुलोचन का पुत्र है।

—इनकी शत्रुता का कारण क्या है, विभो ?—सगर का प्रश्न था।

उत्तर मिला—पूर्वजन्म का वैर-भाव !

—चक्री ! पूर्वजन्म में पूर्णमेघ सूर्यपुरनगर में भावन नाम का कोट्याधिपति व्यापारी था और सुलोचन था उसका पुत्र हरिदास।

एक वार भावन अपने पुत्र हरिदास को घर पर ही छोड़कर धनोपार्जन हेतु परदेश चला गया। वह वारह वर्ष तक देश-देशान्तर भ्रमण करता रहा और वहुत-सा द्रव्य कमाकर घर वापिस लौटा।

वानर अन्तिम साँसें ले रहा था। मुनिश्री ने करुणार्द्र हृदय से उसे परलोक के संवल रूप महामन्त्र नवकार सुनाया। वानर के परिणाम शान्त हुए। शरीर छोड़कर उसने लब्धिकुमार (भुवनपति

जिस समय वह अपने नगर पहुँचा तो सन्ध्या हो चुकी थी और चारों ओर अँधेरा छाने लगा था। परिणामस्वरूप वह नगर के बाहर ही ठहर गया। किन्तु आधी रात के समय पिता का हृदय नहीं माना और उसी अँधेरे में वह अपने घर चल दिया। रात्रि के अन्धकार में वह अपने पुत्र को घर के अन्दर खोज रहा था कि उसके पद-चापों से पुत्र हरिदास की नींद खुल गई। हरिदास ने समझा कोई चोर घुस आया है। उसने विना सोचे-समझे और विना पूछे-ताछे तलवार का तेज प्रहार कर दिया। पिता सांघातिक रूप से घायल हो गया। उसने देखा कि उसका पुत्र ही उसे मार रहा है तो उसके क्रोध का पार नहीं रहा। उसने तीव्र शत्रुता के भाव लिए ही प्राण छोड़े।

इधर जव हरिदास ने देखा कि उसके हाथ से अनजाने में ही पिता की हत्या हो गई तो उसे घोर दुःख हुआ। तीव्र पश्चात्ताप-पूर्वक उसने पिता का अन्तिम संस्कार किया। कालान्तर में हरिदास भी मर गया।

अनेक भवों में भटकते हुए भावन तो पूर्णमेघ हुआ और हरिदास सुलोचन। उसी भव की शत्रुता का बदला पूर्णमेघ ने सुलोचन से चुकाया है।

—त्रैलोक्यपति ! इन दोनों के पुत्रों की शत्रुता क्यों हुई ? और मेरे हृदय में सहस्रलोचन के प्रति स्नेह किस कारण उमड़ रहा है—सगर ने प्रभु के समक्ष जिज्ञासा प्रकट की।

समाधान मिला—

—सगर ! तुम पूर्वभव में रम्भक नाम के संन्यासी थे। तुम्हारी प्रवृत्ति दान देने में अधिक थी। तुम्हारे दो शिष्य भी थे—शशि और

देवों में लब्धिकुमार अथवा उदधिकुमार नाम का एक निकाय है) देवों में देव पर्याय पाई।

देव पर्याय प्राप्त होते ही वानर ने अवधिज्ञान से उपयोग लगाया और देखा कि मुनिराज के उपकार के कारण ही मैं पशु से

आवली। आवली अपनी विनम्रता के कारण तुम्हें अधिक प्रिय था। एक दिन आवली ने एक गाय का सौदा किया। वह उस गाय को अपने लिए खरीदना चाहता था किन्तु शशि ने गाय बेचने वाले को फुसलाकर स्वयं खरीद ली। इसी बात पर दोनों में झगड़ा हो गया और झगड़े में शशि ने आवली को मार डाला। भव भ्रमण करते हुए शशि का जीव तो मेघवाहन हुआ और आवली का सहस्रलोचन तथा रम्भक संन्यासी के जीव तुम हो ही!

पूर्वभव के वैर के कारण ही सहस्रलोचन अपने शत्रु मेघवाहन का प्राणान्त कर देना चाहता था और उसी जन्म के प्रेम के कारण तुम्हारे हृदय में सहस्रलोचन के प्रति स्नेह-भाव उमड़ रहा है।

चक्रवर्ती सगर की जिज्ञासा तो शान्त हो गई किन्तु सभा में उपस्थित राक्षसाधिपति भीम ने सविनय भगवान ने पूछा—

—सर्वज्ञ प्रभु! मेघवाहन के प्रति मेरे हृदय में भी असीम प्रेम उमड़ रहा है, इसका कारण?

प्रभु ने मन्द स्मित सहित कहा—

—राक्षसपति! पूर्वजन्म में तुम विद्युद्दंष्ट्र नाम के विद्याधर थे। पुष्करवर द्वीपार्ध के भरतक्षेत्र में स्थित वैताढ्यगिरि पर कांचनपुर नगर तुम्हारी राजधानी था। तुम्हारा एक पुत्र था—रतिवल्लभ! उससे तुम्हें प्रगाढ़ प्रेम था। उसी रतिवल्लभ का जीव यह मेघवाहन है।

भगवान से पूर्वजन्म का सम्बन्ध जानकर भीम ने मेघवाहन को गले से लगा लिया। गद्गद स्वर में बोला—

इस देव योनि में आया हूँ। उन निष्कारण परम उपकारी मुनिश्री की वन्दना हेतु देव चल दिया। भक्तिपूर्वक वन्दना करके लौटा तो उसने देखा, राक्षसपति तडित्‌केश के सैनिक निरपराध वानरों को वीन-वीनकर मार रहे हैं। पहले तो उसे वड़ा दुःख हुआ—'यदि मैं गलती न करता तो इतने निरपराध जीवों का वध न होता।' किन्तु फिर उसे राजा और राज कर्मचारियों पर क्रोध आया—'एक जीव

—पुत्र ! वड़ा ही अच्छा हुआ जो तू मुझे आज मिल गया। मैं इस जन्म में भी तुझे ही अपना पुत्र मानता हूँ। मेरे सर्वस्व का एकमात्र तू ही अधिकारी है। मेरे साथ चल।

लवण समुद्र में सात सौ योजन विस्तार वाला और सभी दिशाओं में फैला हुआ एक राक्षस द्वीप है। उसके मध्य में त्रिकूट नाम का वलयाकार पर्वत है। वह नौ योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तार वाला है। उस पर्वत पर लंका नाम की नगरी है। वह स्वर्णमय गढ़ से सुरक्षित और मेरी ही वसाई हुई है। इसके छः योजन पृथ्वी में नीचे प्राचीनकाल की पाताल लंका नगरी है। इन सवका स्वामी मैं ही हूँ।

हे पुत्र ! इन दोनों नगरियों का स्वामित्व मैं तुझे देता हूँ। तीर्थंकर भगवान के वन्दन के सुफल रूप में इसे स्वीकार कर !

यह कहकर राक्षसद्वीपाधिपति भीम ने राक्षसी विद्या और नौ मणियों वाला अपना दिव्यहार मेघवाहन को दे दिया। मेघवाहन राक्षसाधिपति भीम के साथ प्रभु की वन्दना करके लंका नगरी को चला आया।

—त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २।५

विशेष—राक्षसीविद्या और राक्षसद्वीप के स्वामित्व के कारण ही मेघवाहन का वंश राक्षसवंश के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ।

—सम्पादक

ने अपराध किया, उसे दण्ड मिला, उचित और न्यायपूर्ण ही हुआ यह; किन्तु अन्य निरपराध जीवों की हिंसा करना, उन्हें पीड़ित करना, यह तो घोर अन्याय है।'

सैनिकों और राजा को अन्याय का प्रतिफल चखाने के लिए उसने एक विशालकाय वानर का रूप बनाया और एक बड़ी शिला उखाड़कर उनकी तरफ फेंकी।

भयभीत होकर राक्षसों ने मधुर वचनों से उस वानर का सत्कार किया और पूछा—हे स्वामी ! आप कौन हैं और हम लोगों को क्यों कष्ट दे रहे हो ?

—तुम लोग भी तो निरपराध वानरों को पीड़ित कर रहे हो ?

—अब नहीं करेंगे।

—तो मैं भी तुम्हारा अपकार नहीं करूँगा।

(ख) वाल्मीकि रामायण में राक्षसवंश की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है—

सत्ययुग में ब्रह्माजी के पुलस्त्य नाम के पुत्र हुए। ये ब्रह्मर्षि पुलस्त्य के नाम से विख्यात हैं। ब्रह्मर्षि पुलस्त्य महागिरि मेरु के निकटवर्ती राजर्षि तृणविन्दु के आश्रम में रहने लगे। वहाँ उनके वेदाभ्यास आदि में विघ्न पड़ने लगा क्योंकि अनेक कन्याएँ आ जातीं और गायन-वादन आदि करके अपना मनोरंजन करती रहतीं। एक दिन ऋषि पुलस्त्य ने कहा कि 'कल से जो कन्या यहाँ आयेगी वह गर्भिणी हो जायगी।' दूसरी कन्याएँ तो आईं नहीं किन्तु राजर्षि तृणविन्दु की पुत्री ने पुलस्त्य ऋषि के यह वचन नहीं सुने थे, अतः वह चली आई। मुनि के सामने आते ही वह गर्भिणी हो गई। राजर्षि तृणविन्दु ने पुत्री की यह दशा देखी तो उसे पुलस्त्य की सेवा में ही रख दिया। उसका पुत्र हुआ विश्रवा !

वानरों का उत्पीड़न सभी ने छोड़ दिया और राक्षसाधिपति तडित्केश ने विनयपूर्वक पूछा—

—आपके विषय में मुझे उत्सुकता हो रही है, कृपया अपना परिचय दीजिए।

वानर ने अपना असली स्वरूप प्रगट किया और पूर्व-परिचय वता दिया।

समीप ही कायोत्सर्गपूर्वक कोई मुनि विराजमान हैं, यह सुनकर तडित्केश को वहुत प्रसन्नता हुई। वह तुरन्त ही मुनि चरणों में पहुँचा और वन्दन करके एक ओर श्रद्धावनत वैठ गया। मुनि ने वात्सल्य भरा हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया तो राजा ने पूछा—

—गुरुदेव ! इस वानर के साथ मेरे वैर का क्या कारण है ?

मुनिश्री ने वताया—राजन् ! इसका और तुम्हारा पिछले जन्मों का सम्बन्ध है। सुनो—

श्रावस्ती नगरी में तुम राजमन्त्री के पुत्र थे और नाम तुम्हारा था दत्त। यह वानर काशी नगर में लुब्धक (वहेलिया) था। तुमने श्रामणी दीक्षा ले ली और आत्म-कल्याणार्थ तत्पर हुए।

एक वार लुब्धक जीविकार्थ नगर से वाहर वन की ओर जा रहा

विश्रवा मुनि भी पिता पुलस्त्य की भाँति वेदाभ्यासी थे। भारद्वाज मुनि ने अपनी पुत्री का विवाह उनसे कर दिया। उनका पुत्र हुआ वैश्रवण (कुवेर)। ब्रह्माजी से वैश्रवण ने अपनी तपस्या द्वारा कुवेर का पद, लंका का राज्य और पुष्पक विमान प्राप्त कर लिया।

विष्णु के भय से माली वहुत समय तक रसातल में निवास करता रहा। इस समय लंका का सिंहासन रिक्त था अतः ब्रह्माजी ने उस पर वैश्रवण को विठा दिया।

इससे पहले लंका राक्षसों के अधिकार में थी। [उत्तरकाण्ड]

था और तुम नगर में प्रवेश कर रहे थे। तुम्हें देखकर इसने अपशकुन समझा और शस्त्र प्रहार करके भूमि पर पटक दिया। तुमने शान्त भावों से मरण किया और महेन्द्र कल्प नाम के चौथे स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से च्यवकर तुम लंका में राक्षसपति वने हो। वह लुब्धक साधु-घात के पाप से नरक में गया और वहाँ से निकलकर यहाँ वानर के रूप में उत्पन्न हुआ।

राक्षसवंश की उत्पत्ति वताते हुए कहा गया है—

ब्रह्माजी ने पहले जल की सृष्टि की और उसकी रक्षा के लिए अनेक प्राणियों की उत्पत्ति। इनमें हेति और प्रहेति दो राक्षस भी थे। दोनों परस्पर भाई थे। प्रहेति तो तपस्या करने लगा किन्तु हेति ने 'काल' की भयंकर रूप वाली वहन 'भया' से विवाह कर लिया। इससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम पड़ा विद्युत्केश। विद्युत्केश का विवाह हुआ 'सन्ध्या' की पुत्री 'सालकटंकटा' से। उसने गर्भधारण किया और मन्दराचल पर्वत पर जाकर एक पुत्र प्रसव किया। अपने नवजात शिशु को वहीं छोड़कर वह विद्युत्केश के पास लौट आई। वालक वहीं पड़ा-पड़ा रोने लगा।

उधर आकाश-मार्ग से शंकर-पार्वती जा रहे थे। वालक पर दया करके उन्होंने उस राक्षसकुमार को युवा बना दिया। साथ ही पार्वती ने वरदान दिया—'राक्षसियाँ जल्दी ही गर्भ धारण करके प्रसव करेंगी और उनकी सन्तानें शीघ्र ही युवा हो जायेंगी।' शंकर जी ने उसे एक दिव्य विमान भी दिया। इस राक्षस पुत्र का नाम पड़ा सुकेश!

सुकेश शंकरजी के वरदान से समृद्धिशाली हो गया। इसका विवाह ग्रामणी नामक गन्धर्व की पुत्री देववती से हुआ। देववती के तीन पुत्र हुए माल्यवान, माली और सुमाली। तीनों ने घोर तपस्या करके ब्रह्माजी से 'किसी से भी परास्त न होने का वरदान' प्राप्त कर लिया।

राक्षसपति ! तुम दोनों के वैर-भाव का यही कारण है।

लब्धिकुमार देव ने परम उपकारी गुरुदेव को सिर झुकाया और वहाँ से चला गया।

तडित्केश राजा अपना पूर्वभव जानकर संसार के भोगों से विरक्त हुआ। उसने लंका वापिस आकर अपने पुत्र सुकेश को राज्य-भार दिया और स्वयं वापिस आकर मुनिश्री के पास दीक्षित हो गया।

मुनि तडित्केश ने घोर तपस्या की। संयम और ज्ञान की आराधना के फलस्वरूप उन्हें निर्मल केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अनुक्रम से उन्होंने परमपद प्राप्त कर लिया।

इसके बाद इन्होंने विश्वकर्मा से अपने लिए महल बनाने का आग्रह किया। विश्वकर्मा ने उन्हें दक्षिण दिशा में सुवेल और त्रिकूट पर्वत पर बसी तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी नगरी लंकापुरी का पता बता दिया। ये तीनों अपने परिवार सहित वहाँ रहने लगे।

इन तीनों भाइयों का विवाह नर्मदा नाम की गन्धर्वी की तीन कन्याओं से हुआ।

माल्यवान की स्त्री का नाम सुन्दरी था और उसके सात पुत्र थे—वज्रमुष्टि, विरुपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त; तथा एक पुत्री अनला।

सुमाली की पत्नी केतुमती के पुत्र हुए—प्रहस्त, अकंपन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्लादि, प्रघस और भासकर्ण तथा पुत्रियाँ राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी।

माली की पत्नी सुनन्दा ने जन्म दिया—अनिल, अनल, हर और सम्पाति को।

ये सभी मदोन्मत्त होकर ऋषियों और उनके यज्ञों का विध्वंस करने लगे।

[उत्तरकाण्ड]

किष्किधा नगरी के राजा घनोदधि ने सुना कि उसके मित्र राजा तडित्केश मुनि हो गये हैं तो उसे भी संसार से विरक्ति हुई। पुत्र किष्किंधि को सिंहासन पर आरूढ़ किया और चल दिये दीक्षा लेने !

राजा घनोदधि ने भी श्रामणी दीक्षा ली, निरतिचार संयम का पालन किया और केवली हुए।

केवली घनोदधि ने शैलेशी अवस्था प्राप्त कर सिद्ध गति पाई।

अब लंका पर सुकेश और किष्किधा नगरी पर राजा किष्किंधि राज्य करने लगे।

—त्रिषष्टि शलाका० ७।१

●●

: २ :

वानरवंश की उत्पत्ति

तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथ के शासनकाल में लंकानगरी पर राक्षसवंशी राजा कीर्तिधवल शासन कर रहा था।

उसी समय वैताढ्यगिरि के मेघपुर नगर में अतीन्द्र नाम का वलशाली और प्रसिद्ध विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी रानी श्रीमती से श्रीकण्ठ नाम का तेजस्वी पुत्र और देवी नाम की रूपवती कन्या हुई। अनुक्रम से दोनों भाई-वहनों ने युवावस्था में प्रवेश किया।

युवती कन्या वैसे ही आकर्षक होती है और यदि वह रूपवती भी हो तो अनेक कामी पुरुषों के आकर्षण का केन्द्र वन जाती है। वहुत से पुरुष उसकी याचना करने लगते हैं। रत्नपुर के विद्याधर राजा पुष्पोत्तर ने भी अपने पुत्र पद्मोत्तर के लिए राजा अतीन्द्र से उसकी पुत्री देवी की याचना की। परन्तु अतीन्द्र ने उसकी याचना की अवहेलना करके देवी का विवाह राक्षसपति कीर्तिधवल के साथ कर दिया।

इस वात पर पद्मोत्तर ने अपने हृदय में श्रीकण्ठ के प्रति शत्रुता की गाँठ वाँध ली। जिसकी इच्छा पूरी नहीं होती उसे वुरा लगता ही है।

एक बार कुमार श्रीकण्ठ मेरुपर्वत से वापिस आ रहा था। उस समय उसे एक अति रूपवती कन्या दिखाई दी। कन्या भी उसकी ओर प्रेमपूर्वक देख रही थी। दोनों की दृष्टि परस्पर मिली और अंग में अनंग समा गया। श्रीकण्ठ ने कन्या को अनुकूल जानकर उठाया और आकाश-मार्ग से ले चला।

दासियों ने नीचे से शोर मचा दिया—'अरे! पद्मा को कोई लिए जा रहा है।'

पद्मा कोई साधारण कन्या नहीं थी, वह राजपुत्री थी। श्रीकण्ठ के शत्रु पद्मोत्तर की बहन और राजा पुष्पोत्तर की लाड़ली पुत्री!

दासियों की पुकार सुनकर राजा पुष्पोत्तर ने सैन्य सहित कुमार श्रीकण्ठ का पीछा किया। भयभीत कुमार राक्षसपति राजा कीर्तिधवल के पास पहुँचा और अपने बहनोई को सभी हकीकत बता दी। कीर्तिधवल ने उसे अभय दिया और अपने पास रख लिया।

राजा पुष्पोत्तर की सेना राक्षसद्वीप की ओर बाढ़ के जल की भाँति बढ़ी चली आ रही थी। नीतिवान् कीर्तिधवल ने पुष्पोत्तर राजा के पास अपना दूत भेजा।

दूत राजा पुष्पोत्तर के सम्मुख पहुँचा और अभिवादन करके कहा—

—राजन्! मैं महाराज कीर्तिधवल का दूत हूँ!

पुष्पोत्तर ने अभिवादन स्वीकार करके पूछा—

—क्या समाचार लाये हो?

दूत ने विनम्र स्वर में उत्तर दिया—महाराज आपका युद्ध करना व्यर्थ है। श्रीकण्ठ अपराधी नहीं है।

—क्या कहते हो? किसी की कन्या को बलात् उठा ले जाना भी अपराध नहीं है तो फिर अपराध क्या होता है?

—श्रीकण्ठ ने आपकी पुत्री का बलात् अपहरण नहीं किया है।

—तो........?

—आपकी पुत्री स्वेच्छा से उसके साथ गई है।

—यह तुम्हारे स्वामी का युद्ध न करने का बहाना है।

—यह बहाना नहीं सत्य है, राजन् !

—तुम्हारे कथन पर मुझे विश्वास नहीं होता।

—तो फिर आपको कैसे विश्वास होगा ?

राजा पुष्पोत्तर कुछ देर तक विचार-मग्न रहा। वह स्वयं भी युद्ध के पक्ष में नहीं था किन्तु अपमान का जीवन तो मृत्यु से भी बुरा है। पुत्री का बलात् अपहरण हो जाय और पिता देखता रहे, कुछ न कर सके—इससे बड़ा अपमान इस पृथ्वी पर और क्या होगा ?

राजा मौनपूर्वक विचार कर ही रहा था कि एक स्त्री ने प्रवेश करके कहा—महाराज की जय हो !

—कौन हो और कहाँ से आई हो ? —राजा ने उस स्त्री से पूछा।

—महाराज ! मैं राजकुमारी पद्मा की ओर से आई हूँ।

—क्या समाचार है ?

—कुमारीजी ने आपके लिए सन्देश दिया है।

—क्या ?

दूती ने विनयपूर्वक कहा—कुमारीजी का सन्देश है 'पिताजी ! श्रीकण्ठ ने मेरा हरण नहीं किया है, वरन् मैंने ही स्वेच्छा से उनका वरण किया है। अब वे ही मेरे पति हैं।'

राजा ने दूती को घूरकर देखा और पूछा—तुम सत्य कह रही हो ? इसमें कोई चाल तो नहीं है ?

—नहीं महाराज ! मेरा कथन अक्षरशः सत्य है। इसमें कोई चाल नहीं। —दृढ़तापूर्वक दूती ने कहा।

दूती की दृढ़ता से राजा पुष्पोत्तर आश्वस्त हो गया। पुत्री की इच्छा जानकर उसने युद्ध का निर्णय त्याग दिया और धूमधाम से विवाहोत्सव मनाया। समझदार माता-पिता विवाह सम्बन्ध में पुत्र-पुत्री की इच्छा को ही प्राथमिकता देते हैं।

विवाहोत्सव मनाकर पुष्पोत्तर तो वापस रत्नपुर लौट गया, किन्तु जब श्रीकण्ठ अपनी नव-विवाहिता रानी पद्मा को लेकर चलने को तत्पर हुआ तो राजा कीर्तिधवल ने उसे रोककर समझाया—मित्र ! तुम यहीं रहो !

—क्यों ? —श्रीकण्ठ ने पूछा।

—वैताढ्यगिरि पर तुम्हारे बहुत से शत्रु हैं।

कुमार श्रीकण्ठ विचार-मग्न हो गया। बात यथार्थ थी। कुछ देर बाद बोला—किन्तु मैं यहाँ भी नहीं रह सकता। बहन के घर भाई का सदैव के लिए रहना उचित नहीं है। मैं कहीं और चला जाऊँगा।

—कहीं दूसरे स्थान पर ही जाना चाहते हो तो तुम वानरद्वीप चले जाओ। —कीर्तिधवल ने कहा।

—वानरद्वीप कहाँ है ?

राक्षसपति कहने लगा—

—वानरद्वीप इस नगरी की वायव्य दिशा में अवस्थित है। इसके अतिरिक्त बर्बर कुल और सिंहल आदि मेरे द्वीप हैं। इनमें से किसी एक में राजधानी बनाकर तुम सुखपूर्वक निवास करो।

कीर्तिधवल के स्नेहसिक्त वचनों से प्रभावित होकर श्रीकण्ठ ने वानरद्वीप में निवास करना स्वीकार कर लिया। राक्षसपति ने उसे वानरद्वीप की किष्किंधा नगरी के सिंहासन पर लाकर बिठा दिया और स्वयं वापिस लंका चला गया।

किष्किधा नगरी की एक विशेषता थी—वहाँ चारों ओर वानरों के झुण्ड के झुण्ड घूमते दिखाई देते थे। श्रीकण्ठ ने विचार किया—इतने वानरों को मारना या भगाना तो असम्भव है। साथ ही उत्पीड़न करने से ये उपद्रवी भी हो जायेंगे और हम लोगों को टिकने भी नहीं देंगे। इसलिए इन्हें अन्न-पानादिक देकर सन्तुष्ट रखा जाय। सन्तुष्ट होने पर ये मित्र हो जायेंगे तथा बाह्य शत्रुओं से नगर-रक्षा करने में सहायक सिद्ध होंगे। ऐसा विचार करके उसने नगर में घोषणा कराई—'राजा श्रीकण्ठ वानरों को अन्न-पानादिक देगा। सभी प्रजा-जन भी उनको अन्न-पान आदि देकर सन्तुष्ट करें।"

कहावत है—यथा राजा तथा प्रजा। जब राजा ने वानरों को सन्तुष्ट करना प्रारम्भ कर दिया तो प्रजा भी उनका सत्कार करने लगी। विद्याधरों[1] ने उन वानरों के चित्र दीवालों पर, छत्र आदि सभी स्थानों पर अंकित कर दिये। सम्पूर्ण वानरद्वीप में वानरों के चित्र दिखाई देने लगे।

वानर चिह्नों के कारण यह विद्याधर जाति वानरवंशी के नाम से लोक-प्रसिद्ध हुई।

वानर भी समुचित आदर-सत्कार और यथेष्ट अन्न-पानादिक पाकर सन्तुष्ट हुए और उनके परम सहयोगी मित्र बन गये।

सत्य है, जिसको सत्कार से सन्तुष्ट रखा जायेगा वही मित्र बन जायेगा—चाहे वह देव हो, मनुष्य हो अथवा पशु।

राजा श्रीकण्ठ के रानी पद्मा से एक पुत्र हुआ वज्रकण्ठ। वज्र-

---

१ श्रीकण्ठ वैताढ्यगिरि के मेघपुर नगर के विद्याधर राजा अतीन्द्र का पुत्र था। अतः वह स्वयं विद्याधर था और उसके अनुचर आदि सभी विद्याधर थे। उन्हीं विद्याधरों ने वानरों के चित्र यत्र-तत्र बनाये थे।

—सम्पादक

कण्ठ युद्धप्रिय और अति तेजस्वी का। उसके पराक्रम से शासन सुचारु रूप से चल रहा था।

एक दिन राजा श्रीकण्ठ राजसभा में बैठा था। उसी समय आकाश-मार्ग से कुछ देव-विमान जा रहे थे। राजा ने बाहर आकर विमान देखे तो उसे ज्ञात हुआ कि वे सब नन्दीश्वर द्वीप में अर्हन्तों की वन्दना के लिए जा रहे थे। उसके हृदय में भी भक्ति भाव का उद्रेक हुआ और वह भी अपने विद्याबल के सहारे उनके पीछे-पीछे चल दिया।

श्रीकण्ठ विमानों के पीछे-पीछे चला जा रहा था। उसकी लगन अर्हन्त परमेष्ठी में लगी हुई थी। नगर, वन, सरिता, पर्वत, सागर पीछे छूटते जा रहे थे। एकाएक वह अटक गया। नीचे देखा पर्वत-

---

विशेष—वाल्मीकि रामायण में वानरवंश की उत्पत्ति न बताकर वानरों को देवपुत्र ही बताया है।

श्रीराम के जन्म लेने के पश्चात् ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि वे अपने ही समान बलशाली पुत्रों को उत्पन्न करें।

वहाँ ऋक्षराज जाम्बवान की उत्पत्ति ब्रह्माजी की जंभाई से हुई बताई गई है। इन्द्र ने बाली को उत्पन्न किया और सूर्य ने सुग्रीव को। हनुमान पवनदेव के पुत्र हुए। बृहस्पति का पुत्र तार वानर था, कुबेर का पुत्र गंधमादन तथा विश्वकर्मा का पुत्र नल। अग्निदेव का पुत्र नील था तथा अश्विनीकुमारों के मैन्द और द्विविद। वरुण का पुत्र सुषेण था और पर्जन्य का शरभ। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं ने और भी करोड़ों वानरों की उत्पत्ति की। ये सभी इच्छानुसार रूप बनाने वाले, अति पराक्रमी और चाहे जहाँ आ-जा सकते थे।

इन्द्र पुत्र बाली और सूर्य पुत्र सुग्रीव दोनों परस्पर भाई थे।

इस प्रकार भालू, वानर तथा गोलांगूल (लंगूर) जाति के करोड़ों वीर शीघ्र ही उत्पन्न हो गये। [वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड]

शिखर—कोई मुनि भी नहीं, फिर क्या कारण है ? तव तक मानो उसकी शक्ति चुक गई, वह स्खलित होकर नीचे आ पड़ा। सोचने लगा—'यह मैं कहाँ गिर गया ? कहाँ चला गया मेरा विद्यावल ?' तभी उसके मानस में आगम का अटल वाक्य उभरा—'मानुषोत्तर पर्वत का उल्लंघन मनुष्य नहीं कर सकते।' पुनः विचारधारा उमड़ी–'तो यह पुष्करवर द्वीप है और यह मानुषोत्तर पर्वत।'

श्रीकण्ठ देव विमानों को जाते देख रहा था और चित्त में खेद कर रहा था—हाय ! मैं आज देव-दर्शनों से वंचित रह गया। मैं अल्प तपस्या वाला हूँ।

तपस्या शब्द मानस में आते ही श्रामणी दीक्षा लेने को दृढ़ संकल्प हृदय में जाग उठा। उसने प्रव्रज्या ली और कठोर तपश्चरण के फलस्वरूप सिद्ध गति पाई।

उसके बाद वज्रजंघ आदि अनेक राजा किष्किंधा नगरी के सिंहासन पर सुशोभित होते रहे।

तदनन्तर तीर्थंकर मुनिसुव्रत प्रभु के शासन काल में घनोदधि नाम का राजा किष्किंधा नरेश हुआ।

कीर्तिधवल के राक्षसवंश में भी कुल परम्परा से अनेक राजा हुए और घनोदधि का समकालीन लंकानरेश तडित्केश था। उनके पुत्रों किष्किंधि (घनोदधि का पुत्र) और सुकेश (तडित्केश का पुत्र) में भी कुल परम्परा से चली आई गहरी मित्रता थी।

—त्रिषष्टि शलाका ७/१

***

: ३ :

नकली इन्द्र

वैताढ्यगिरि के रथनूपुर नगर में पराक्रमी विद्याधर राजा अशनिवेग अपने दोनों अति बलिष्ठ पुत्रों—विजयसिंह और विद्युद्वेग—के साथ शासन करता था। उसी पर्वत पर आदित्यपुर में मन्दरमाली नाम के विद्याधर नरेश का शासन था। उसने अपनी पुत्री श्रीमाला का स्वयंवर किया।

स्वयंवर में अनेक विद्याधर राजा आये। किष्किधा का अधिपति किष्किधि, लंकाधिपति सुकेश और रथनूपुर के राजकुमार विजयसिंह आदि भी सम्मिलित हुए।

वरमाला हाथ में लेकर श्रीमाला ने स्वयंवर मण्डप में पदार्पण किया। एक-एक विद्याधर पर दृष्टि निक्षेप करती हुई वह आगे बढ़ती जा रही थी। जिसके सामने से वह आगे बढ़ जाती उसी का चित्त खेद-खिन्न हो जाता।

श्रीमाला किष्किधि कुमार के सम्मुख पहुँची तो खड़ी रह गई। उसने वरमाला डाल दी—किष्किधि के कण्ठ में।

किष्किधि के कण्ठ में वरमाला देखकर रथनूपुर का राजकुमार विजयसिंह गर्वपूर्वक गरजा—

—इसके पूर्वजों ने तो चिरकाल से वैताढ्यगिरि छोड़ दिया है। इसे यहाँ किसने बुलाया ?

किष्किंधि के पक्षधरों ने प्रतिप्रश्न किया—तो क्या ये विद्याधर नहीं रहे। इनका कुल विद्याधर कुल नहीं है ?

—हाँ, अव ये विद्याधर नहीं रहे। इन्हें विद्याधर समाज से अलग समझा जाता है।

—तुम्हारे समझने का क्या मूल्य ?

—अभी पता लग जाता है। देखूँ कैसे तुम इस सुन्दरी को अपने साथ ले जाते हो ?

—इसमें क्या कठिनाई है, कन्या ने जिसका वरण किया वही उसका पति—और पति को अधिकार है कि पत्नी को अपने घर ले जाय।

—स्त्री-रत्न को प्राप्त करने के लिए वाहुवल चाहिए।

—वह हममें यथेष्ठ मात्रा में है।

स्वयंवर मण्डप में उपस्थित राजा दो दलों में विभक्त हो गये—एक विजयसिंह के पक्ष में तो दूसरे उसके विरोधी।

विजयसिंह ने शस्त्र उठाकर आह्वान किया—दिखाओ अपना बल।

अस्त्र-शस्त्र बाहर निकल आये। वीर एक-दूसरे को चुनौती देने लगे।

युद्ध का प्रारम्भ किया विजयसिंह ने। उसने आगे बढ़कर किष्किंधि कुमार पर प्रहार कर दिया। एक तलवार का चमकना था कि असंख्य तलवारें चमक उठीं। स्वयंवर-स्थल रणस्थल बन गया। दासियाँ और नारी समुदाय कुमारी श्रीमाला को लेकर अन्त:पुर में जा छिपी। रह गये वहाँ युद्धप्रिय सुभट।

सुभट परस्पर युद्ध करने लगे। रक्त की धाराएँ पृथ्वी पर वह

चलीं। भयंकर संग्राम में किष्किंधि के अनुज अन्धक ने विजयसिंह का मस्तक खड्ग प्रहार से भूमि पर गिरा दिया।

विजयसिंह के धराशायी होते ही इसके पक्ष के विद्याधर मैदान छोड़कर भाग गये और श्रीमाला को लेकर किष्किंधि अपनी नगरी को चला आया।

पुत्र की मृत्यु ने राजा अशनिवेग के हृदय में क्रोध की अग्नि प्रज्वलित कर दी। कुपित होकर वह सैन्य सहित निकला और किष्किंधा नगर पर महाकाल की भाँति टूट पड़ा। विजयसिंह का कण्ठच्छेद करने वाले अन्धक का सिर उसने धड़ से उड़ा दिया।

शत्रु प्रचण्ड और दुर्दमनीय था, अतः किष्किंधापति अपने परिवार को लेकर पाताल लंका भाग गया। भयभीत होकर सुकेश भी लंका छोड़कर पाताल लंका जा पहुँचा।

सिंहासनों को रिक्त देखकर अशनिवेग का क्रोध शान्त हो गया। उसने निर्घात नाम के विद्याधर को लंका के सिंहासन पर बिठाया और वापिस रथनूपुर लौट आया।

कुछ समय पश्चात अशनिवेग अपने एक अन्य पुत्र सहस्रार को राज्य सौंप कर प्रव्रजित हो गया।

× × ×

पाताल लंका में निवास करते हुए सुकेश के इन्द्राणी नाम की रानी से माली, सुमाली और माल्यवान तीन पुत्र हुए तथा किष्किंधि के श्रीमाला से आदित्यराजा और ऋक्षराजा दो पुत्र हुए। अनुक्रम से पाँचों बालक युवा हो गये।

एक बार किष्किंधि अर्हंत भगवान की वन्दना करके लौट रहा था कि मार्ग में उसे मधु नाम का पर्वत दिखाई दिया। वहाँ उद्यान में क्रीड़ा करते हुए उसे बहुत शान्ति मिली। उसने परिवार सहित

वहीं स्थायी निवास स्थान वना लिया और एक नगरी की रचना की जो उसी के नाम पर किष्किधिना (किष्किधा) कहलाई।

सुकेश के तीनों वलवान पुत्रों ने निर्घात विद्याधर को लंका से निकाल वाहर कर दिया।

तदनन्दर लंकापुरी का राजा माली वन गया और किष्किधिना (किष्किधा) का आदित्यराजा।

× × ×

रथनूपुर के अधिपति सहस्रार की रानी त्रित्तसुन्दरी ने एक रात को स्वप्न देखा कि कोई उत्तम देव च्यव कर उसकी कुक्षि में अवतरित हुआ है। गर्भावस्था में रानी को विचित्र दोहद[1] हुआ—'मैं इन्द्र के साथ रमण करूँ।'

अपनी इच्छा न तो वह किसी से कह सकती थी और न ही इसके पूर्ण होने की आशा थी। गर्भवती अपने दोहद को हृदय में ही दवाये रही। परिणामस्वरूप उसका शरीर दुर्वल होता चला गया, मुख की कान्ति क्षीण हो गई।

सहस्रार राजा ने रानी से इस दुर्बलता का कारण पूछा तो पहले तो वह टालमटोल ही करती रही परन्तु विशेष आग्रह पर उसने नीचा मुख करके धीरे से दोहद की वात पति को वता दी। पति ने विद्यावल से इन्द्र का रूप वनाकर पत्नी का दोहद पूर्ण किया।

गर्भकाल व्यतीत हो जाने पर रानी चित्तसुन्दरी ने एक पराक्रमी पुत्र को जन्म दिया। दोहद के अनुसार पुत्र का नाम रखा गया 'इन्द्र'। इन्द्र युवा हो गया तो राजा सहस्रार उसे सिंहासन सौंपकर स्वयं धर्म-पालन में दत्तचित्त हो गया।

---

१ दोहद—गर्भवती की तीव्र अभिलाषा।

इन्द्र ने अपने पराक्रम से वैताढ्यगिरि के सभी विद्याधर राजाओं को अधीन कर लिया। अब वह स्वयं को सचमुच का इन्द्र समझने लगा। उसने इन्द्र के समान ही सात प्रकार की सेना तथा उसके सात सेनापति, तीन प्रकार की पार्षद, अपने मुख्य अस्त्र का नाम वज्र, हाथी का नाम ऐरावण, वारांगना (राज-नर्तकी) का नाम रम्भा, मन्त्री का नाम बृहस्पति और पत्तिसैन्य के नायक का नाम नैगमेषी रख दिया। इस प्रकार वह स्वयं को इन्द्र मानकर शासन संचालन करने लगा।

उसके चार दिक्पाल थे—सोम, यम, वरुण और कुबेर। सोम था ज्योतिःपुर के राजा मयूरध्वज और रानी आदित्यकीर्ति का पुत्र। वह पूर्व दिशा का दिक्पाल बना। दक्षिण दिशा का दिक्पाल था किष्किधापुरी के राजा कालाग्नि और उनकी रानी श्रीप्रभा का पुत्र यम। मेघपुर के राजा मेघरथ की रानी वरुणा के पुत्र वरुण ने पश्चिम दिशा का दिक्पालत्व ग्रहण किया और कांचनपुर के राजा सूर की रानी कनकावती के पुत्र कुबेर को उत्तर दिशा का दिक्पालत्व मिला।

दिक्पाल आदि सभी समृद्धियों से विभूषित होकर वह राज्य करने लगा। अपने इन्द्रपने के अभिमान में वह किसी को अपने सम्मुख अश्व, हाथी आदि पर न बैठने देता, सभी का तिरस्कार करता, किसी को कुछ न समझता।

उसका यह अभिमान लंकापति माली को सहन न हो सका। माली ने उसकी अवहेलना प्रारम्भ कर दी। परिणामस्वरूप युद्ध का समुचित कारण उत्पन्न हो गया। माली ने राक्षसों और वानरों[1] की सेना सजाई और युद्ध हेतु वैताढ्यगिरि की ओर चल दिया। उस

1 वानर से अभिप्राय पशु से नहीं, वरन् वानरवंशी विद्याधरों से है।

समय अनेक अपशकुन हुए किन्तु सबकी अवहेलना करके माली अपने भाई सुमाली के साथ उसी प्रकार चला जैसे पतंगा दीपक की ओर जाता है।

रथनूपुर के बाहर माली की सेना को देख कर इन्द्र भी अपने समस्त लोकपालों, सेनापतियों और सैन्य सहित रणक्षेत्र में आ डटा।

रणभेरी बजी और युद्ध प्रारम्भ हो गया। कभी माली की सेना भंग होती तो कभी इन्द्र की। दोनों ओर के सुभट जी-जान से लड़ रहे थे।

इन्द्र और माली में घोर संग्राम होने लगा। दोनों ही दूसरे का बचाते और अपना प्रहार करते। इन्द्र ने अपने वज्र नाम के अस्त्र का प्रयोग किया और माली रणभूमि में धराशायी हो गया।

राजा के भूमि पर गिरते ही सेना का मनोबल टूट गया। राक्षस और वानर वीर प्राण बचाकर इधर-उधर भागने लगे। सुमाली भी भागा और पाताल लंका में जा छिपा।[1]

इन्द्र ने विजयी होकर कौशिका की कुक्षि से उत्पन्न यक्षपुर के राजा विश्रवा के पुत्र वैश्रमण को स्वर्णपुरी लंका का अधिपति बना दिया।

लंका विजय होते ही इन्द्र को अक्षय धनराशि की प्राप्ति हुई। भगवान अजितनाथ के शासनकाल से संचित की हुई राक्षसवंशी क्षत्रियों की अक्षय निधि का स्वामी बन गया इन्द्र!

---

१ देवों की प्रार्थना पर देवलोक की ओर जाती हुई राक्षस सेना से विष्णु ने युद्ध किया। युद्ध में माली मारा गया और माल्यवान तथा सुमाली लंका भाग आये।

[वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड]

इन्द्र की एक अन्य विभूति और होती है अक्षय कोप ! वह भी इस (नकली) इन्द्र के पास हो गई। अब क्या कमी थी उसके इन्द्र होने में।

वह पूर्णरूप से स्वयं को इन्द्र मानता और उसके सेवक स्वयं को साक्षात इन्द्र के ही सेवक।

इन्द्र अब सुखपूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगा।

त्रिषष्टि शलाका ७/१

●●

: ४ :

रावण का जन्म

पाताल लंका में सुमाली की पत्नी प्रीतिमती ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया रत्नश्रवा। युवावस्था प्राप्त करके कुमार रत्नश्रवा एक बार विद्या सिद्ध करने के लिए कुसुमोद्यान में गया। वहाँ एकान्त में वह आसन जमाकर बैठा। हाथ में अक्षमाला, नासाग्र दृष्टि, हृदय में मन्त्र का ध्यान करता हुआ वह चित्र-सा प्रतीत होता था।

उसी समय निर्दोष अंगवाली एक दिव्य कुमारी उसके सम्मुख आई और बोली—मानव सुन्दरी नाम की महाविद्या मैं तुम्हें सिद्ध हो गई हूँ।

रत्नश्रवा ने जप छोड़कर सुन्दरी की ओर देखा और पूछा—महाभागे ! आप कौन हैं ?

युवती ने अपना परिचय दिया—

मैं कौतुकमंगल नगर के स्वामी विद्याधर राजा व्योमविन्दु की पुत्री केकसी हूँ। मेरी बड़ी बहन कौशिका का विवाह यक्षपुर के राजा विश्रवा के साथ हुआ था। उसका पुत्र वैश्रमण इस समय लंका का राजा है। किसी निमित्तज्ञानी के कथनानुसार मेरे पिता ने मुझे तुमको अर्पित कर दिया, इसीलिए मैं तुम्हारे पास आई हूँ।

सुमाली पुत्र रत्नश्रवा ने अपने वन्धु-वान्धवों को बुलाया और सवके समक्ष उसके साथ विवाह कर लिया।

केकसी और रत्नश्रवा सुख-भोग में लीन हो गये।

एक रात्रि को केकसी ने स्वप्न देखा कि 'उसके मुख में कोई एक महाबलशाली केशरीसिंह प्रवेश कर गया।' रात्रि का अन्तिम प्रहर था—केकसी की निद्रा भंग हो गई। शैया पर पड़ी-पड़ी इस विचित्र स्वप्न पर विचार करने लगी। प्रातःकाल अपनी उत्सुकता पति के समक्ष प्रकट की तो रत्नश्रवा ने स्वप्न का फल वताया—'तुम्हारे उदर से अद्वितीय पराक्रमी पुत्र होगा।'

केकसी ने महासत्वशाली गर्भ धारण किया। गर्भ के कारण उसकी चेष्टाएँ ही वदल गई। महल में अनेक दर्पण होते हुए भी तलवार की चमक में वह अपना मुख देखती, वाणी में क्रूरता आ गई, गुरुजनों का आदर और उनको मस्तक झुकाना उसने वन्द कर दिया। वह इतनी निडर हो गई कि इन्द्र को भी आज्ञा देने की उसकी अभिलाषा होने लगी। उसके हृदय में वार-वार शत्रुओं के सिर पैरों से कुचलने की इच्छा होती। उसके परिणामों में क्रूरता, रौद्रता और हिंसकपने का समावेश हो गया।

यह सव गर्भस्थ शिशु का प्रभाव था जो माता की प्रवृत्तियों में परिलक्षित हो रहा था।[1]

---

1 आज भी प्रत्येक गर्भिणी माता पर उसके गर्भस्थ शिशु का प्रभाव पड़ता है। उसकी चित्तवृत्तियों में परिवर्तन हो जाता है। यह वात दूसरी है कि परिवारीजन उन वदली हुई प्रवृत्तियों पर ध्यान न दें। आगत शिशु कैसा होगा—पापी या पुण्यात्मा, सदाचारी या दुराचारी—इसका पता गर्भिणी की चित्तवृत्ति से लगाया जा सकता है किन्तु कुछ अज्ञानवश और कुछ भौतिकता की चकाचौंध में परिवारी जन गर्भिणी की चित्त-वृत्ति और क्रिया-कलापों का सूक्ष्म अध्ययन नहीं कर पाते। —सम्पादक

गर्भकाल व्यतीत होने पर शत्रुओं के आसन कम्पायमान करता हुआ, चौदह हजार वर्ष की आयु वाला पुत्र केकसी की उदरगुहा से बाहर आया। अति पराक्रमी शिशु शैया पर पड़ते ही हाथ-पैरों को वेग से चलाने लगा। अचानक ही उछलकर वह खड़ा हो गया तथा चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखने लगा—मानो वह कुछ खोज रहा हो।

शिशु की इन विचित्र और अद्भुत क्रियाओं को माता केकसी तथा अन्य उपस्थित दासियाँ विस्मित होकर देख रही थीं। उनके नेत्र खुले के खुले रह गये और दृष्टि शिशु पर जम गई।

शिशु इन सबसे निर्लिप्त सचमुच ही कुछ खोज रहा था। एकाएक उसकी आँखों में चमक आ गई। वह उछला और सिरहाने गवाक्ष में रखा भीमेन्द्र द्वारा प्रदत्त नवमणि हार[1] उठाकर अपने गले में डाल लिया।

केकसी ने अति विस्मित होकर पति रत्नश्रवा को बुलाकर कहा—

—नाथ ! देखिए अपने पुत्र की अद्भुत क्रीड़ायें। प्रसूति शय्या पर ही उठकर खड़ा हो गया और कुल परम्परा से आया हुआ नवमणि हार भी सहज ही कण्ठ में धारण कर लिया।

रत्नश्रवा भी पुत्र को विस्मित होकर देखने लगा। शिशु के मुख

---

1 भीमेन्द्र राक्षसद्वीप के अति प्राचीन अधिपति थे। इन्होंने ही राक्षस वंश के प्रवर्तक मेघवाहन को भगवान् अजितनाथ की धर्मसभा में लंका और पाताल लंका का राज्य तथा राक्षसी विद्या दी थी, जिसके कारण ही मेघवाहन का वंश राक्षसवंश कहलाया। उसी समय उन्होंने यह नवमणि हार भी दिया था। इस हार की विशेषता यह थी कि एक हजार नागकुमार देव इसकी रक्षा करते थे और रावण से पहले कोई भी राक्षसवंशी इसे धारण नहीं कर सका था। (देखिए इसी पुस्तक में 'राक्षसवंश की उत्पत्ति' और त्रिषष्टि शलाका पर्व २, सर्ग ५)

पर दृढ़ता और दर्प स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे। नवमणियों में उसके नौ मुख झिलमिला रहे थे। केकसी से बोला—

—प्रिये ! यह पुत्र तो मेरे हृदय में भी कौतूहल उत्पन्न कर रहा है। इस नवमणिहार को आज तक हमारे कुल में कोई धारण न सका।

—क्यों ?

—यही जिज्ञासा मेरे पिता सुमाली ने भी एक श्रमणमुनि के समक्ष प्रकट की थी।

—तो उन्होंने क्या बताया ?

—मुनि चार ज्ञान के धारी थे। उन्होंने बताया—'इस नवमणि हार को धारण करने वाला अर्द्धचक्री होगा। इससे कम पुण्य वाला जीव इसे धारण नहीं कर सकता।'

पुत्र को अर्द्धचक्री जानकर केकसी के मुख पर प्रसन्नतायुक्त दर्प आ गया। वह शिशु को बड़े स्नेह से देखने लगी। पिता रत्नश्रवा ने हार में पुत्र के मुख प्रतिविम्बों के कारण बालक का नाम दशमुख[1] रख दिया।

---

१ एक मुख तो बालक का था ही और नौ मणियों में उसके मुख के नौ ही प्रतिविम्ब झलक रहे थे। अतः बालक के दस मुख दिखाई पड़ते थे।

—सम्पादक

उत्तर पुराण के अनुसार रावण के पूर्वजों का वर्णन इस प्रकार है—

इसी (जम्बूद्वीप के) भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नाम का नगर है। इस पर राजा विनमि के वंश में उत्पन्न हुआ सहस्त्रग्रीव नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था। उसके भाई का पुत्र बहुत बलवान था इसलिए उसने क्रोधित होकर सहस्त्रग्रीव

शिशु दशमुख शनैः-शनैः वढ़ने लगा। माता-पिता अपने भावी अर्द्धचक्री पुत्र को देखकर आनन्द विभोर हो जाते।

केकसी सूर्य को स्वप्न में देखकर पुनः गर्भवती हुई और भानुकर्ण नाम के पुत्र को जन्म दिया। इसका लोक प्रसिद्ध दूसरा नाम कुम्भकर्ण पड़ा। चन्द्रमा के समान नखवाली एक पुत्री चन्द्रनखा की माता भी केकसी वनी और यह कन्या सूर्पनखा के नाम से जग-प्रसिद्ध हुई। तदनन्तर केकसी ने स्वप्न में चन्द्रमा देखा और उसके एक पुत्र जन्मा जो विभीषण नाम से जाना गया।

को निकाल दिया। सहस्रग्रीव वहाँ से चलकर लंकापुरी में आया और उसने वहाँ तीस हजार वर्ष तक राज्य किया। उसके पुत्र का नाम शतग्रीव था और उसने पच्चीस हजार वर्ष तक राज्य किया। उसके वाद उसके पुत्र पचासग्रीव ने वीस हजार वर्ष तक और उसके पुत्र पुलस्त्य ने पन्द्रह हजार वर्ष तक राज्य किया। पुलस्त्य के मेघश्री नाम की एक रानी थी। उसके उदर से दशानन नाम का पुत्र हुआ। इसकी उत्कृष्ट आयु चौदह हजार वर्ष की थी।

विशेष—रानी मेघश्री के उदर से जन्म लेने वाला दशानन पूर्वभव में सौधर्म देवलोक में देव था और उससे पहले जन्म में धातकीखण्ड द्वीप के सार समुच्चय देश के नाकपुर नगर का राजा नरदेव था। नरदेव ने अनंत गणधर से प्रव्रज्या ली किन्तु चपलवेग विद्याधर राजा की समृद्धि देखकर निदान कर लिया। इसी कारण यह प्रति वासुदेव दशानन वना।

(पर्व ६८ श्लोक ३-७)

वाल्मीकि रामायण में रावण के जन्म की दूसरी घटना दी गई है। माता का नाम तो केकसी ही है किन्तु पिता मुनि विश्रवा वताये गये हैं। संक्षेप में घटना इस प्रकार है—

एक वार सुमाली अपनी पुत्री केकसी को साथ लेकर वाहर निकला। उसकी दृष्टि पुष्पक विमान में वैठकर पिता से मिलने के लिए

में बैठे व्यक्ति का उनके जीवन से ऐसा सम्बन्ध है । वह अपनी उत्सुकता न रोक सका । आग्रहपूर्वक बोला—माँ, तुम मुझे पूरी बात बताओ ।

—क्या लाभ होगा, पुत्र ? —केकसी ने ठण्डी साँस लेकर कहा ।

—लाभ ? हमारे शत्रुओं का विनाश होगा !

—बहुत बलशाली हैं, वे लोग !

—मुझसे अधिक नहीं । तुम बताओ तो सही । यदि अपने कुल के अपकारी और शत्रुओं को मृत्यु शैय्या पर नहीं सुला दिया तो अपना पुत्र मत समझना । —कहते-कहते रावण की मुखमुद्रा रौद्र हो गई ।

केकसी ने समझ लिया कि अब समय आ गया है । पुत्रों को सब कुछ बता देना चाहिए । दीर्घ निश्वास लेकर बोली—तुम नहीं मानते, तोसुनो—

यह सम्पूर्ण राक्षसद्वीप और लंका नगरी कुल-परम्परा से तुम्हारे पूर्वजों के अधिकार में थी । किन्तु रथनूपुर के राजा इन्द्र ने तुम्हारे पितामह के ज्येष्ठ बन्धु माली को मारकर लंका का राज्य विश्रवा के पुत्र वैश्रवण को दे दिया । तुम्हारे पितामह और पिता यहाँ पाताल लंका में दीनतापूर्वक अपने दिन व्यतीत कर रहे हैं । अपने ही कुल-क्रमागत राज्य पर किसी दूसरे को आसीन देखकर मेरे हृदय में काँटा सा खटकता रहता है लेकिन बलवान शत्रु का कोई करे भी क्या ? क्या बिगाड़ सकता है उसका ? हम लोग निर्बल हैं इसीलिए तो यहाँ मुँह छिपाये जैसे बिल में पड़े हैं ।

निर्बलता का आरोप सुनकर विभीषण की मुख-मुद्रा भीषण हो गई, कठोर स्वर में कहने लगा—

—क्या कह रही हो, माँ ? हम लोग और निर्बल ? बड़े भाई

दशमुख के समक्ष इन्द्र, वैश्रवण और विद्याधर क्या हैं ? तिनके हैं, तिनके ! फूँक मारते ही उड़ जायेंगे; और मातेश्वरी ! दशमुख की बात ही क्या यदि बड़े भाई कुम्भकर्ण ही कुपित होकर पृथ्वी पर पदाघात कर दें तो समस्त राजा और विद्याधर सिंहासनों से लुढ़क-कर भूमि पर लौटने लगेंगे । जननी ! मैं तो सबसे छोटा हूँ । मुझे ही आज्ञा दे तो यह विभीषण ऐसा भीषण तूफान बन जायेगा कि इन सभी के मस्तक तेरे चरणों में पके आमों की भाँति आ गिरेंगे ।

कोपावेश में हाथ मलता हुआ कुम्भकर्ण बोला—

—एक बार आज्ञा तो दे दो मातेश्वरी ! सभी शत्रुओं को निःशेष करके तुम्हारे हृदय की शल्य को सदा-सदा के लिए निकाल दूँगा ।

होठ चबाते हुए रावण ने गर्जना की—

माँ ! तुम वज्र समान कठोर शल्य से अपने हृदय को बींधती रहीं और हमसे कहा तक नहीं । इन इन्द्रादिक विद्याधरों को तो मैं भुजाओं से ही निष्प्राण कर दूँगा । अस्त्रों की आवश्यकता ही क्या है ? तुम मुझे आशीर्वाद दे दो, बस !

तीनों पुत्रों को शान्त करते हुए केकसी ने कहा—

पुत्रो ! मैं जानती हूँ कि तुम तीनों असाधारण बली हो किन्तु क्रोधावेश में विवेक को भूल रहे हो । जैसा शत्रु हो, उसके मारने का उपाय भी वैसा ही होना चाहिए । इन्द्र आदि सभी अनेक विद्याओं के स्वामी हैं । उन्हें विद्याबल से ही परास्त किया जा सकता है । तुम भी अपनी कुल-परम्परा से प्राप्त विद्याओं को सिद्ध करो । तभी शत्रुओं से उलझना । सफलता के लिए विद्याबल अनिवार्य है ।

आज्ञाकारी पुत्रों ने माता की इच्छा शिरोधार्य की और विद्या-सिद्धि के लिए भीम नामक भयंकर वन में पहुँचे ।

तीनों भाई दशमुख, भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) और विभीषण तथा बहन चन्द्रनखा (सूर्पनखा) काल क्रमानुसार युवावस्था में प्रवेश कर गये।

तीनों सहोदर भाई सोलह धनुष से कुछ अधिक ऊँची काया वाले थे। उन्होंने अस्त्र-शस्त्र संचालन, युद्ध-विद्या, कूटनीति आदि सभी कला और विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर ली।

त्रिषष्टि शलाका ७।१
—उत्तरपुराण, पर्व ६८, श्लोक ३-१२

• •

जाते हुए वैश्रवण पर पड़ गई। वैसा ही तेजस्वी पुत्र प्राप्त करने के लिए उसने अपनी कन्या को विश्रवा मुनि के पास भेजा। जिस समय केकसी ऋषि के पास पहुँची तो दारुण वेला थी। उस काल में गर्भ धारण करने के कारण उसका पुत्र दस ग्रीवा वाला और क्रूरकर्मी दशग्रीव (प्रसिद्ध नाम रावण) हुआ। दूसरी बार गर्भ धारण करने पर विशाल शरीर वाला कुम्भकर्ण; तीसरी बार जन्म लिया विकराल मुख वाली पुत्री शूर्पणखा ने और चौथी बार धर्मात्मा विभीषण ने।

सुमाली की पुत्री केकसी ऋषि विश्रवा के आश्रम में ही रहने लगी।

[वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड]

: ५ :

विद्या-सिद्धि

—माता, आकाश में वड़ी तेजी से उड़ता हुआ यह विमान किसका है ?

—वैश्रवण[1] का।

—वैश्रवण कौन है, माँ ?

—मेरी वड़ी वहन कौशिका का पुत्र।

—फिर यह हमसे मिलने क्यों नहीं आता ?

—हमसे शत्रुता रखता है, इसीलिए।

—क्यों ?

—यह एक लम्बी कहानी है, सुनकर क्या करोगे, बेटा ! जाने दो, हृदय के पुराने घाव फिर टीसने लगेंगे। —कहते-कहते केकसी की आँखें डवड़वा आईं।

माता की दशा देखकर तीनों भाई—दशमुख, कुम्भकर्ण और विभीषण—इस घटना को सुनने के लिए आतुर हो गये। दशमुख (रावण) ने तो जिज्ञासापूर्वक उस नभोगामी विमान के वारे में यों ही पूछ लिया था। उसे क्या मालूम था कि इस विमान और विमान

---

१ केकसी को वैश्रवण विश्रवा ऋषि के आश्रम में ही दिखाई दिया था।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

भयंकर भीमवन[1] के अतिविकट भाग में रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण तीनों भाई मन्त्र-जाप हेतु आसन लगाकर जम गये। हाथ में अक्षमाला, नासाग्र दृष्टि और श्वेत वस्त्र धारण किये हुए तीनों भाइयों ने दो पहर में मनवांछित फल देने वाली अष्टाक्षरी विद्या सिद्ध कर ली और तत्पश्चात् दश हजार जप के वाद फल देने वाले षोडशाक्षरी मन्त्र का जप करना प्रारम्भ किया।

उसी समय जम्बूद्वीप का अधपति अनाधृत नाम का यक्ष (देव) अपने परिवार सहित वहाँ क्रीड़ा करने आया। तीनों तपस्वियों को विद्या सिद्ध करते देख वह चौंका। उन्हें चलित करने के लिए उसने उपद्रव प्रारम्भ किये। अनुकूल और प्रतिकूल सभी उपद्रवों को तीनों भाई सहते रहे, तनिक भी विचलित हुए किन्तु जव देव ने मायारचित, रावण का सिर विभीषण तथा कुम्भकर्ण के आगे और कुम्भकर्ण तथा विभीषण का सिर रावण के आगे रखा तो रावण तो अविचलित रहा किन्तु विभीषण और कुम्भकर्ण विचलित हो गये।

जप पूर्ण होते ही आकाश से साधु-साधु की ध्वनि हुई और रावण को प्रज्ञप्ति, रोहिणी आदि एक हजार विद्याएँ सिद्ध हो गईं।[2] संवृद्धि, जांभृणी, सर्वहारिणी, व्योमगामिनी और इन्द्राणी—ये पाँच कुम्भकर्ण[3]

---

१ तीनों भाइयों (दशग्रीव, कुम्भकर्ण और विभीषण) ने गोकर्ण नामक स्थान पर तपस्या की और ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किये।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

२ रावण ने गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं से अवध्य होने का वरदान प्राप्त किया। साथ ही इच्छानुसार रूप धारण करने की योग्यता भी।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

३ कुम्भकर्ण के वर माँगने से पहले ही ब्रह्माजी की आज्ञा से सरस्वती उसकी जिह्वा पर आ बैठी। अतः उसने वर माँगा—'मैं अनेकानेक वर्ष तक सोता ही रहूँ।' ब्रह्मा ने एवमस्तु कहा और चले गये।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

को और सिद्धार्था, शत्रुदमनी, निर्व्याघाता तथा आकाशगामिनी—ये चार विद्याएँ विभीषण को प्राप्त हुईं।[1]

विद्यासिद्ध होने पर अनाधृत यक्ष ने अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी और महामनस्वी रावण ने उसे क्षमा कर दिया। अपराध के प्रायश्चित्त स्वरूप उस यक्ष ने वहाँ स्वयंप्रभा नगरी की रचना की।

माता-पिता और सभी परिवारी जनों ने वहाँ आकर तीनों भाइयों को विद्यासिद्धि के उपलक्ष में वधाइयाँ दीं और बड़ा उत्सव मनाया।

तदनन्तर रावण ने छह उपवासपूर्वक चन्द्रहास खड्ग सिद्ध किया।

× × ×

मन्दोदरी सुरसंगीतपुर के विद्याधर राजा मय और रानी हेमवती की अनिंद्य सुन्दरी पुत्री थी।[2] सुरसंगीतपुर वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी का समृद्ध नगर था और मय समर्थ विद्याधर। उसे पुत्री के योग्य वर की खोज थी। उसने दोनों श्रेणियों के सभी राजाओं और राज-पुत्रों पर दृष्टि दौड़ाई किन्तु कोई भी उसे नहीं जंचा।

एक दिन वह मन्त्री से वोला—

—मन्त्रिवर ! पुत्री के लिए योग्य वर दिखाई नहीं देता।

मन्त्री ने उत्तर दिया—महाराज ! आप खेद न करें। एक हजार अलभ्य विद्याओं का स्वामी रत्नश्रवा का पुत्र दशमुख सभी प्रकार

---

१ विभीषण को उसकी इच्छानुसार वड़ी से बड़ी विपत्ति में धर्म से विचलित न होने वाली वुद्धि प्राप्त हुई, साथ ही अमरत्व।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

२ मन्दोदरी का पिता 'मय' (दानव) कश्यप ऋषि की पत्नी दिति का पुत्र था और उसकी पत्नी हेमा अप्सरा थी।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

से कन्या के उपयुक्त वर है। वह देवों द्वारा भी अकम्पित और विद्याधरों में सर्वश्रेष्ठ है।

—आपकी सम्मति सर्वथा उचित है।—राजा ने सहमति दी और अपनी पुत्री सहित स्वयंप्रभ नगर आकर रावण के साथ कन्या का विवाह कर दिया।[1]

विवाहोत्सव करने के वाद मय विद्याधर तो अपने नगर को चला गया और रावण सुन्दरी मन्दोदरी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

× × ×

छह हजार विद्याधर कन्याएँ मेघरव पर्वत के एक सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रही थीं।

रावण भी वहाँ क्रीड़ा निमित्त आया। खेचर कन्याओं ने सुरूप और शक्तिवान युवक देखा तो कामाभिभूत हो गईं। कामदेव के प्रवल वेग से लज्जा त्यागकर कन्याएँ बोलीं—हे महाभाग ! हमें पत्नी रूप में स्वीकार करो।

अचानक ही इतनी स्त्रियों की प्रणय याचना ने रावण को विस्मय में डाल दिया। उसके मुख से कोई शब्द ही न निकल सका। आतुर कन्याओं ने ही पुनः कहा—हमारी विनय स्वीकार करो।

दशानन ने उन पर एक दृष्टि डाली और उन्हें स्वीकार कर लिया। वहीं उन सबके साथ गांधर्व विवाह किया और विमान में विठाकर ले चला।

---

१ मन्दोदरी के पाणिग्रहण-संस्कार के समय ही मय ने अमोघ शक्ति रावण को दी जिसके द्वारा उसने राम के अनुज लक्ष्मण को मूर्च्छित किया था।
[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

तव तक रक्षक राजपुरुषों ने उन कन्याओं के पिताओं को जाकर वता दिया कि कोई पुरुष तुम्हारी कन्याओं को लिए जा रहा है।

यह सुनकर विद्याधरों में इन्द्र के समान तेजस्वी अमरसुन्दर अन्य सभी विद्याधरों के साथ रावण को मारने की इच्छा से उसका पीछा करने लगा। उसे देखकर नवोढा कन्याओं ने कहा—स्वामी ! यह अकेला अमरसुन्दर ही अजेय है और इस समय तो इसके साथ अन्य अनेक विद्याधर भी हैं। घोर संकट है, विमान की गति वढ़ाइए।

रावण खिल-खिलाकर हँस पड़ा। वोला—सुन्दरियो ! हजारों हरिणों के लिए सिंह की एक दहाड़ ही काफी होती है। तुम सव धैर्यपूर्वक मेरा वल देखो। और रावण ने विमान धीमा कर दिया।

तव तक विद्याधर राजा समीप आ चुके थे। रावण ने उनसे शस्त्र-युद्ध उचित न समझा और प्रस्वापन अस्त्र द्वारा उन्हें मोहित करके नागपाश में वाँध लिया।

सभी विद्याधर विवश हो गये। उनके मुखों पर खेद और लज्जा की रेखाएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगीं। पुत्रियों से पिताओं का दुःख न देखा गया और उन्होंने प्रार्थना करके उन्हें वन्धनमुक्त करवा दिया।

विद्याधर अपने-अपने नगर वापस चले गये और रावण स्वयंप्रभ नगर में आ गया। छह हजार रानियाँ महलों में आनन्द के साथ रहने लगीं।

पटरानी मन्दोदरी से रावण के दो पुत्र हुए—इन्द्रजीत और मेघवाहन।

× × ×

कुम्भकर्ण का विवाह कुम्भपुर के राजा मनोहर और रानी सुरूपनयना की पुत्री तडिन्माला के साथ हुआ तथा विभीषण का विवाह वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी में ज्योतिषपुर नगर के विद्याधर राजा वीर और रानी नन्दवती की पुत्री पंकजश्री के साथ।[1]

—त्रिषष्टि शलाका ७।२

❊❊

---

१ कुम्भकर्ण की पत्नी का नाम वैरोचन की धेवती वज्रमाला और विभीषण की स्त्री का नाम गन्धर्वराज शैलूष की पुत्री सरमा था।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

विशेष—वाल्मीकि रामायण जैसा ही वर्णन तुलसीकृत रामचरित मानस में भी है। केवल लक्ष्मण को मूर्च्छित करने के प्रसंग में अन्तर है। उन्हें इन्द्रजीत ने मूर्च्छित किया था। [देखिए बालकांड, दोहा १७६-१८२]

: ६ :

रावण का पराक्रम

कुम्भकर्ण और विभीषण अपने पितामह की शत्रुता भूले नहीं थे। उन्होंने लंकापुरी में उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया। उनके उत्पातों से तंग आकर एक दिन वैश्रवण ने अपना दूत पाताल लंका में सुमाली के पास भेजा और कहलवाया—

—राजन् ! तुम तो हमारी शक्ति को जानते हो। अपने नादान पोतों विभीषण और कुम्भकर्ण को समझा दो, अन्यथा पाताल लंका से भी निकाल दिये जाओगे।

राज्यसभा में रावण भी उपस्थित था। उसने कुपित होकर उत्तर दिया—

—दूत ! तुम्हारा स्वामी वैश्रवण स्वयं किसी का दास होकर भी हमको धमकी देने का साहस करता है। उससे जाकर कह दो कि इस धृष्टता का दण्ड देने रावण स्वयं आ रहा है।

रावण की कुपित मुद्रा देखकर दूत चला आया और अपने स्वामी को सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया।

वैश्रवण क्रोधित होकर सैन्य सहित लंका से बाहर निकला तो रावण ससैन्य उसका स्वागत करने को तैयार खड़ा मिला।

युद्ध प्रारम्भ हो गया किन्तु रावण के शक्तिशाली राक्षस सुभटों

के समक्ष वैश्रवण के योद्धा न टिक सके। वे रण-भूमि छोड़कर भाग खड़े हुए। वैश्रवण ने यह देखा तो उसे वैराग्य हो आया और वह युद्ध-भूमि छोड़कर प्रव्रजित हो गया।[1]

प्रव्रज्या की खबर पाकर रावण उसके पास गया और अनेक प्रकार से भक्तिपूर्वक वन्दन करके कहने लगा—

—भाई ! मैं तो तुम्हारा छोटा भाई हूँ। तुम राज्य ले लो। मुझे क्षमा कर दो। मुझे नहीं मालूम था कि तुम ऐसे विरागी हो अन्यथा कभी विरोध न करता।

रावण मुनि वैश्रवण के वार-वार चरण पकड़कर विनती करने लगा। उसे अपने कार्य पर वहुत लज्जा थी किन्तु तद्भवमोक्षगामी वैश्रवण मुनि कायोत्सर्गपूर्वक ध्यानस्थ खड़े रहे। उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। निराश रावण हृदय में खेद करता हुआ वहाँ से वापिस चला आया और लंकापुरी के सिंहासन पर बैठकर राज्य-कार्य का संचालन करने लगा।

× × ×

एक वार पुष्पक विमान में वैठकर रावण सम्मेतशिखर पर अर्हन्तों के वन्दन हेतु गया। वन्दना करके जव वापस चलने को उद्यत हुआ तो उसके कर्णपुटों में हाथी की गर्जना का भयंकर स्वर पड़ा। स्वर उच्च था और हाथी की शक्ति एवं विशाल काया

---

१ वैश्रवण के सिर पर रावण ने गदा का प्रहार किया। इससे वे मूर्च्छित हो गये। देवों ने आकर वैश्रवण को उठाया और नन्दनवन में ले जाकर सचेत किया। इसके पश्चात पिता विश्रवा के आग्रह और प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने उसे कैलास पर्वत के समीप यक्षपुरी का शासक वना दिया।
[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

का परिचायक ! दशानन कुछ समय तक ठगा-सा रह गया। तभी प्रहस्त नाम के अनुचर ने आकर कहा—

—देव ! जिस हाथी की गर्जना सुनकर आप विस्मित हो रहे हैं वह अति विशालकाय और दुर्धर्ष है। सात हाथ ऊँचा और नौ हाथ लम्बा यह गज नहीं गजराज ऐरावण के समान दिखाई पड़ता है। अति स्वच्छन्द होकर वन में विचरता और मनमानी क्रीड़ाएँ करता है। आज तक कोई इसे वश में नहीं कर सका है।

दशमुख के भुजदण्ड फड़कने लगे। वह वहाँ से चला और वन गजेन्द्र को लीलामात्र में वशीभूत करके उस पर सवार हो गया। विशालकाय गजराज पर बैठा हुआ दशानन इन्द्र के समान सुशोभित होने लगा।

सम्मेत शिखर से लंका तक का मार्ग उसने गजराज पर सवार होकर तय किया और प्यार से उसका नाम भुवनालंकार रख दिया।

× × ×

प्रातःकाल रावण राजसभा में बैठा था। उसी समय द्वारपाल से आज्ञा लेकर विद्याधर पवनवेग ने सभा में प्रवेश किया और रावण को प्रणाम करके कहने लगा—

—लंकेश ! किष्किंधिराजा के पुत्र—आदित्यराजा और ऋक्ष-राजा पाताल लंका से निकलकर किष्किंधा नगरी गये थे। वहाँ उनका युद्ध यम के समान कराल यमराजा से हुआ। यमराजा ने उन्हें परास्त करके बन्दी बना लिया और उन्हें भाँति-भाँति के नरक-तुल्य कष्ट दे रहा है। उनको छुड़ाइए। वे आपके मित्र हैं अतः उनका पराभव आपका भी पराभव समझना चाहिए।

रावण ने विद्याधर को आश्वस्त करते हुए उत्तर दिया—

—भद्र ! तुम्हारा कथन यथार्थ है। मैं यम को इन्द्रपुरी का रास्ता दिखाने हेतु अभी प्रस्थान करता हूँ।

महावली रावण अपनी सेना सहित किष्किधा की ओर चल दिया। वहाँ यम द्वारा निर्मित नरक के समान ही भाँति-भाँति के घोर कष्ट देने वाले सात नरक दिखाई दिखाई दिये। दशानन ने वे सव नष्ट कर दिये और आदित्यराजा तथा ऋक्षराजा दोनों किष्किधि पुत्रों को मुक्त कराया।

भयभीत होकर नरक-रक्षक वहाँ से भाग गये और यमराजा के पास जाकर पुकार करने लगे। क्रोधित होकर यम सेना सहित रावण के सम्मुख आया और अपने वल के अनुरूप घोर युद्ध करने लगा। रावण ने युद्ध में उसे पराजित कर दिया और यम प्राण वचाकर भाग निकला।[1]

---

१ रावण को यम से लड़ने के लिए नारदजी ने प्रेरित था। एक ओर तो उन्होंने रावण को 'क्या मर्त्य-लोक के मनुष्यों को मारते हो ? इन्हें मारने वाले यम पर ही विजय प्राप्त कर लो' कहकर भड़काया और जव रावण यमलोक पर चढ़ाई करने लगा तो यम को जाकर यह वताया कि 'राक्षस-राज रावण आप पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से आ रहा है।'

युद्ध के दौरान यम ने जव अपना कालदण्ड रावण पर मारना चाहा तो ब्रह्माजी प्रकट होकर वोले—'यमराज ! मैंने रावण को देवताओं से अवध्य रहने का वरदान दिया है। यदि तुम्हारे काल-दण्ड से यह मर गया तो और न मरा तो दोनों ही दशाओं में मेरा वचन असत्य हो जायगा। इसलिए तुम इस पर यमदण्ड का प्रहार मत करो !'

ब्रह्माजी की वात सुनकर यमराज ने अपना कालदण्ड रावण पर नहीं छोड़ा और वे स्वयं अदृश्य हो गये।

परिणामस्वरूप रावण ने स्वयं को विजयी मान लिया।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

सेवक की दौड़ स्वामी तक । इन्द्र (रथनूपुर का राजा) की सभा में जाकर उसने हाथ जोड़कर अपनी दुर्दशा बताते हुए कहा—

—स्वामी ! राक्षसपति रावण ने मेरा यमपना भुला दिया । मेरा पराभव करके राज्य छीन लिया और प्राण बचाने के लिए मुझे भागकर आपकी शरण में आना पड़ा ।

यमराजा की बात सुनकर इन्द्र कुपित होकर रावण से युद्ध करने को तत्पर हुआ किन्तु उसके मन्त्रियों ने अनेक प्रकार से समझाकर उसे रोक दिया । इन्द्र ने यम को सुरसंगीतपुर का राज्य दे दिया ।

यम सुरसंगीतपुर में और इन्द्र रथनूपुर में सुख-भोग करने लगा । स्वामी भी खुश और सेवक भी प्रसन्न !

रावण भी किष्किधापुरी आदित्यराजा को और ऋक्षपुर ऋक्ष-राजा को सौंपकर वापिस लंकापुरी चला आया ।

आदित्यराजा की रानी इन्दुमालिनी से महाबलवान पुत्र बाली हुआ । वह दृढ़ सम्यक्त्वी, सच्चा जिनेन्द्र भक्त और धर्मानुरागी था । पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त किसी अन्य को आराध्य मानकर मस्तक न झुकाना उसका नियम था । उसके बाद इन्दुमालिनी ने सुग्रीव तथा श्रीप्रभा नाम की कन्या को और जन्म दिया ।

ऋक्षराजा के हरिकान्ता नाम की स्त्री से नल और नील नाम के जग विख्यात पुत्र हुए ।

अपने अति बलवान और योग्य एवं समर्थ पुत्र बाली को राज्य देकर आदित्यराजा ने प्रव्रज्या ले ली और तप करके सिद्ध गति प्राप्त की ।

अब किष्किधा नगरी का अधिपति बाली था और युवराज सुग्रीव !

—त्रिषष्टि शलाका ७।२

* *

वाहरी शक्ति के अभय की आवश्यकता नहीं। —वाली का प्रत्युत्तर था।

—दशानन की शरण ले लीजिए आपका कल्याण होगा।

—जिसने पंचपरमेष्ठी की शरण ले ली है, उसे किसी अन्य की शरण की क्या आवश्यकता ? दूत ! अधिक वातों से क्या लाभ ? जाकर राक्षसेन्द्र से कह दो—वाली उसे कभी स्वामी नहीं मानेगा।

वाली की स्पष्टोक्ति ने दूत की जवान वन्द कर दी। वह अभिवादन करके लौट आया और रावण को सम्पूर्ण स्थिति से अवगत करा दिया।

अभिमानी रावण का दर्प जाग उठा। वह राक्षस सुभटों को लेकर किष्किधा पर जा चढ़ा। वानर-वीरों ने भी चूड़ियाँ नहीं पहनी हुई थीं। वे भी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर रणभूमि में उतर पड़े और लगे राक्षसों से जूझने। दोनों ओर से भयंकर संग्राम होने लगा। वीरों के रक्त से पृथ्वी लाल हो गई।

वानर वीरों की विकट मार से राक्षस सेना विचलित होकर भाग गई। स्वयं रावण रणक्षेत्र में उतरा और भयंकर संहार करने लगा।

भीषण हिंसा को देखकर वाली के हृदय में असीम करुणा जाग्रत हुई। अभी तक उसने शस्त्र नहीं उठाया था। वह हिंसा से विरक्त था। किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर उसका रोम-रोम सिहर उठता। यहाँ तो हिंसा का भीषण नृत्य ही हो रहा था। करुणार्द्र वाली ने रावण को ललकारा—

—लंकेश ! विवेकी पुरुष एकेन्द्रिय जीव की भी व्यर्थ हिंसा नहीं करते और तुम यहाँ भीषण संहार कर रहे हो। यदि तुम्हें अपने वल का अत्यधिक दर्प है तो आओ मुझसे अकेले ही युद्ध करके निर्णय कर लो। अनेक प्राणियों के हनन से क्या लाभ ?

रावण गर्व में चूर तो था ही। एक हजार विद्या और चन्द्रहास खड्ग को सिद्ध करके वह स्वयं को अपराजेय समझने लगा था। दर्प-पूर्ण गर्जना करते हुए कहने लगा—

—हाँ! तुम्हीं ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। तुमको ही अपने चरणों में नतमस्तक करके मुझे शान्ति मिलेगी।

यह कहकर रावण ने युद्ध वन्द करने का आदेश दे दिया। दोनों ओर के सुभट खड़े होकर अपने स्वामियों का युद्ध देखने लगे।

अब युद्ध प्रारम्भ हुआ—उपशान्त कषायी वाली और प्रबल कषायी रावण के मध्य।

शारीरिक वल में रावण पराजित हो गया तो उसने विद्या वल का आश्रय लिया। एक-एक करके उसने अपनी सभी विद्याओं का प्रयोग कर लिया किन्तु परमार्हत वाली के समक्ष सभी निष्फल हुई। कषायों के आवेश में रावण यह भूल गया था कि स्वयं इन्द्र भी श्रावकों का वन्दन करते हैं तो इन क्षुद्र विद्याओं की गिनती ही क्या?

लगातार पराजय से खीझकर रावण हाथ में चन्द्रहास खड्ग लेकर वाली को मारने के लिए दौड़ पड़ा। वाली ने साधारण लकड़ी के खम्भे के समान उसे वाँए हाथ से उठाया और चन्द्रहास खड्ग सहित वगल में दवा लिया।

वानरेन्द्र बाली उसे वगल में दबाए हुए ही चार समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का चक्कर लगाकर वहीं वापिस आया। तब तक राक्षसराज उसकी वगल में दवा हुआ छटपटाता ही रहा। दया करके वाली ने रावण को छोड़ा तो लज्जावश नीचा मुख करके खड़ा ही रह गया। वाली ने ही उसे संवोधित किया—

—हे रावण! संसार में पंच परमेष्ठी के सिवाय कोई भी नमस्कार योग्य नहीं है। तुम्हारे गर्व को धिक्कार हो जो तुमने साधर्मी वन्धु

को दास बनाने के उपक्रम में असंख्य जीवों की हिंसा कर दी और इस प्रकार लज्जित हुए। मैं चाहूँ तो तुम्हें च्यूँटी की भाँति मसल सकता हूँ किन्तु तुम और तुम्हारे पूर्वजों के उपकारों को स्मरण करके मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ।[1]

रावण लज्जावश मुख नीचा किये खड़ा था। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वाली ने ही पुनः कहा—

—दशानन ! विजय कौन नहीं चाहता। तुम भी विजयाभिलाषी हो और मैं भी, किन्तु मुझमें और तुममें अन्तर है। तुम इस जड़भूमि को जीतना चाहते हो और मैं कर्मों को। मैं दीक्षा ले रहा हूँ और तुम यह राज्य सँभालो। मेरा अनुज सुग्रीव तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हुआ यहाँ का शासन संचालन करता रहेगा।

यह कहकर वाली ने तुरन्त गगनचन्द्र मुनिराज के चरणों में जाकर संयम ग्रहण कर लिया।

सुग्रीव ने रावण को अपनी बहिन श्रीप्रभा देकर सन्तुष्ट किया और वाली के पराक्रमी पुत्र चन्द्ररश्मि को किष्किंधा का युवराज बना लिया।

---

१ वाली द्वारा रावण के पराभव के सम्बन्ध में यह घटना प्रसिद्ध है—

एक बार मदोन्मत्त हुआ रावण वाली को जीतने की इच्छा से किष्किंधा नगरी जा पहुँचा। वहाँ उसे सुग्रीव आदि से ज्ञात हुआ कि वाली दक्षिण समुद्र पर सन्ध्योपासना में व्यस्त है। रावण वहीं पहुँचा और देव-मन्त्रों का पाठ करते हुए वाली को बाँधने का प्रयास करने लगा। वाली ने उसे काँख में दबा लिया और उसे दबाये हुए उत्तर, पूर्व, पश्चिम समुद्र तटों पर सन्ध्योपासन किया। अन्त में किष्किंधा के बाहर लाकर छोड़ दिया। वाली के बल को देखकर रावण ने उससे मित्रता कर ली। [वा० रा० उत्तरकांड]

रावण सन्तुष्ट होकर लंका वापिस चला आया।

× × ×

एक दिन रावण नित्यालोक नगर के राजा नित्यालोक की कन्या रत्नावली के साथ परिणय करने के लिए परिवार सहित विमान में बैठकर चला। मार्ग में अष्टापद पर्वत के ऊपर आते ही विमान रुक गया। कुपित रावण के मुख से निकला—'मेरे विमान को रोककर कौन काल का ग्रास बनना चाहता है?' नीचे देखा तो वाली मुनि कायोत्सर्ग में ध्यानलीन खड़े थे।

मुनि वाली को कठोर तप के फलस्वरूप अनेक लब्धियाँ तथा अवधिज्ञान प्राप्त हो चुका था। दुरभिमानी रावण अपने अहंकार में भूल गया था कि लब्धिधारी वीतराग श्रमणों का उल्लंघन करके इन्द्र का विमान भी नहीं जा सकता है तो साधारण विद्या निर्मित विमान की हस्ती ही क्या?

रावण ने विमान को आगे बढ़ाने के लिए बहुत जोर लगाया। सभी विद्याओं, मन्त्रों आदि का आह्वान कर लिया, परन्तु परिणाम निकला शून्य—विमान टस से मस न हुआ। क्रोधाभिभूत रावण के हृदय में विचार आया—यह वाली मेरा शत्रु है। किष्किंधा में तो इसने मेरा सार्वजनिक अपमान किया ही और अब मुनि होकर भी पीछा नहीं छोड़ा। आज इसे लवण समुद्र में ले जाकर डुबो ही दूँगा—न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

यह सोचकर दशानन विमान से उतरा और अपनी समस्त विद्याओं को एक साथ स्मरण करके अष्टापद पर्वत को उखाड़ने हेतु प्रयत्नशील हुआ। सभी के समवेत बल प्रयोग से कठोर कड़कड़ाहट शब्द के साथ पर्वत उखड़ गया। सुख से विचरते वन्य पशु-पक्षी भय-भीत होकर इधर-उधर भागने लगे। व्यन्तर आदि देव थर-थर काँपने लगे। प्रथम चक्रवर्ती भरतेश द्वारा निर्मित महानिषद्या चैत्य हिलने

लगा। महामुनि वाली की काया भी कम्पायमान हुई और उनका ध्यान भंग हो गया। अवधिज्ञान से उपयोग लगाकर जाना कि यह सब विपत्ति ईर्ष्यालु और अभिमानी रावण का ही कुकृत्य है। यद्यपि मुनि अपने प्रति तो निस्पृह थे किन्तु भयभीत प्राणियों पर उन्हें करुणा आई, साथ ही अष्टापद तीर्थ के रक्षण की भावना भी। वे जानते थे कि रावण वातों का नहीं लातों का भूत है। वातों से यह समझेगा नहीं, शिक्षा देनी ही पड़ेगी। करुणार्द्र हृदय महामुनि ने अपने पैर के अगूठे का थोड़ा सा दवाव पर्वत पर डाल दिया।

मुनियों का पराक्रम कौन सह सकता है? तत्काल अपनी समस्त शक्तियों सहित रावण पर्वत के नीचे दव गया। मुख से रक्त निकलने लगा और करुण स्वर में विलाप करने लगा। उसके रुदन से महा-मुनि का करुणार्द्र हृदय भर आया और उन्होंने अँगूठे का दवाव हटा लिया। उस समय रोने के कारण ही दशानन का नाम रावण पड़ गया और इसी नाम से वह आज तक प्रसिद्ध है।[1]

---

१ वाल्मीकि रामायण में रावण के पर्वत को उठाने, उसके नीचे दवकर रोने आदि की घटना शंकरजी से सम्बद्ध की गई है।

एक वार दशानन 'शरवण' नाम से प्रसिद्ध सरकण्डों के वन में गया। वहाँ से वह विमान में वैठकर चलने लगा। एकाएक उसके विमान की गति रुक गई। देखा तो नीचे एक पर्वत था। कारण जानने के लिए पर्वत पर उतरा तो शंकरजी के पार्षद नन्दी आकर वोले—'दशानन! लौट जाओ! इस पर सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, नाग, देवता, राक्षस आदि किसी को नहीं आने दिया जाता। यह शंकरजी की क्रीड़ा-स्थली है।' रावण उनका वानर रूप देखकर अट्टहास करने लगा। नन्दी ने शाप दिया—'राक्षस! जिस वानर रूप में देख तुमने मेरी अवहेलना की है, वही वानर तुम्हारे कुल-विनाश के कारण होंगे।'

रावण पहाड़ के नीचे से निकलकर वाहर आया । उसे मुनि वाली की शक्ति और अपनी क्षुद्रता का विश्वास हो चुका था । आकर महा-मुनि के चरणों में गिर गया और उनकी स्तुति करने लगा किन्तु मुनिराज तो ध्यान में लीन हो चुके थे । मुनियों का चरित्र ऐसा ही होता है, जगत के प्राणियों के उपकार हेतु कोई क्रिया की और फिर आत्म-ध्यान में लीन हो गये ।

मुनि वाली की वन्दना करके रावण अष्टापद तीर्थ में पहुँचा और परिवार सहित भगवान का गुणगान करके मधुर स्वर में स्तुति गाने लगा ।

उसी समय धरणेन्द्र भी भगवान की वन्दना करने आया और रावण की स्तुति से बहुत प्रसन्न हुआ । भगवान की वन्दना के वाद

विमान का मार्ग अवरुद्ध होने के कारण दशानन कुपित तो था ही । पर्वत को समूल उखाड़कर नष्ट करने हेतु वह उसके नीचे घुस गया । अपनी विशाल बीस भुजाओं से उसने उसे उठा लिया । पर्वत के हिलते ही शंकरजी के गण काँप गये । तब शंकरजी ने उसे अपने पैर के अँगूठे से खिलवाड़ में ही दवा दिया ।

अँगूठे का भार न सह पाने के कारण रावण रोने लगा । वह एक हजार वर्ष तक पर्वत के नीचे दवा शंकरजी की स्तुति करता रहा । प्रसन्न होकर शंकर ने अपने अँगूठे का दवाव हटा लिया ।

शंकरजी उससे वोले—दशानन ! मैं तुम्हारे पराक्रम (एक हजार वर्ष तक अँगूठे का दवाव सहने का पराक्रम) से प्रसन्न हूँ । तुम्हारे भयंकर राव (रुदन) से तीनों लोकों के प्राणी रो पड़े थे । अतः तुम 'रावण' नाम से प्रसिद्ध होगे ।

साथ ही रावण की याचना पर उन्होंने चन्द्रहास नाम का खड्ग भी दिया । [उत्तरकाण्ड : वाल्मीकि रामायण]

उसने रावण से कहा—दशानन ! भगवान की स्तुति का फल तो मोक्ष प्राप्ति है किन्तु सांसारिक फल भी कम नहीं। मैं प्रभु गुण श्रवण से बहुत प्रसन्न हुआ। माँगो, क्या माँगते हो ? तुम्हें क्या दूँ ?

भक्ति विह्वल रावण ने उत्तर दिया—नागेन्द्र ! प्रभु की भक्ति के बदले कुछ लेना अपनी भक्ति को हीन करना है।

—धन्य है लंकेश तुम्हें ! —धरणेन्द्र ने गद्‌गद कण्ठ से कहा—किन्तु प्रभु की भक्ति कभी निष्फल नहीं होती। मैं अपनी ओर से यह अमोघविजया शक्ति और रूप विकारिणी विद्या देता हूँ। इन्हें ग्रहण करो।

धरणेन्द्र रावण को विद्या देकर वहाँ से चला गया। रावण भी अपने अनुचरों सहित नित्यालोक नगर गया और रत्नावली से विवाह करके वापिस लंका आ गया।

महामुनि वाली को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और आयु के अन्त में शैलेशी दशा प्राप्त कर वे सिद्धशिला में जा विराजे।

—त्रिषष्टि शलाका ७।२

**

: ८ :

सहस्रांशु की दीक्षा

धरणेन्द्र से प्राप्त अमोघविजया शक्ति तथा अन्य अनेक विद्याओं का स्वामी तो रावण हो ही चुका था। अव उसने दिग्विजय का निर्णय किया।

निर्णयानुसार रावण लंका से निकल कर पाताल लंका गया। पाताल लंका के अधिपति खर[1] ने उसका भेंट आदि से सत्कार किया

---

1 आदित्यराजा और ऋक्षरजा को यम के वन्दीगृह से छुड़ाने के वाद एक बार रावण परिवार सहित मेरु पर्वत पर अर्हन्त भगवन्तों की वन्दना हेतु गया था। उसकी अनुपस्थिति में मेघप्रभ का पुत्र खर विद्याधर लंका में आया। चन्दनखा ने उसको देखा और उसने चन्द्रनखा को—दोनों में प्रेम हो गया और खर उसे लेकर पाताल लंका चला गया।

पाताल लंका में उस समय आदित्यराजा का पुत्र चन्द्रोदर राज्य कर रहा था। किष्किधा जाते समय आदित्यराजा इसे पाताल लंका का भार सौंप गये थे। विद्याधर खर ने उसे वहाँ से मार भगाया और स्वयं पाताल लंका का राजा वन वैठा।

रावण ज्यों ही मेरु गिरि से वापस आया तो वहन के अपहरण की बात सुनकर आगवबूला हो गया और खर को मारने चला। उसी समय पटरानी मन्दोदरी ने समझाया—नाथ ! खर दोषी नहीं है। चन्द्रनखा

और उसके पीछे-पीछे अनुचर के रूप में चौदह हजार विद्याधरों के साथ चल दिया।

लंकेश दिग्विजय के लिए चल दिया है यह समाचार सुनकर वानरेश सुग्रीव भी अपनी सेना सहित उससे आ मिला। दशानन अपने विशाल कटक के साथ विन्ध्यगिरि के समीप आ पहुँचा। वहाँ उसने पर्वत से निकलती हुई शुद्ध जल से परिपूर्ण रेवा नदी देखी।

राक्षसराज को वह स्थान पड़ाव के लिए अच्छा लगा। उसकी आज्ञानुसार नदी किनारे सेना ने शिविर डाल दिये। रावण नदी किनारे एक निर्मल स्थान पर स्नान आदि से निवृत्त हो, शुद्ध वस्त्र पहनकर प्रभु का ध्यान करने बैठ गया।

अचानक ही जैसे नदी में बाढ़ आ गई। जलधारा किनारों का बन्धन तोड़कर भूमि पर बहने लगी। सेना के शिविर जल में तैरने लगे। रावण आकण्ठ जल में डूब गया। ध्यान भंग हो गया। कुपित

स्वेच्छा से उसके साथ गई है। अतः आपका कोप व्यर्थ है। अब समझदारी इसी में है कि आप अपनी बहन का विधिवत विवाह उसके साथ कर दें।

रावण को मन्दोदरी की युक्तियुक्त बात पसन्द आई और उसने मय और मारीच राक्षस अनुचरों को भेजकर बहन चन्द्रनखा और खर को बुलवाया तथा उनका विधिवत विवाह कर दिया।

खर ने जिस चन्द्रोदर को पाताल लंका से निष्कासित कर दिया था, कुछ समय पश्चात वह मर गया। मृत्यु के समय उसकी पत्नी अनुराधा गर्भवती थी। उसने विराध नाम का पुत्र प्रसव किया। विराध अनेक कलाओं में निष्णात युवक हो गया। वह वन में विचरता रहा और चन्द्रनखा का पति खर पाताल लंका का राज्य सुख भोगने लगा। उसी खर ने रावण का इस समय सत्कार किया।

रावण उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—कौन मिथ्यात्वी है जो मेरे धर्मध्यान में विघ्न कर रहा है।

आकाश मार्ग से जाते हुए एक विद्याधर ने लंकेश के क्रोधयुक्त शब्द सुने तो नीचे उतर कर कहने लगा—

—राक्षसपति ! यहाँ से थोड़ी ही दूर आगे चलकर माहिष्मती नगरी है। वहाँ का राजा सहस्रांशु बड़ा बलवान है। एक हजार राजा उसकी सेवा करते हैं। उसका अन्तःपुर भी बहुत बड़ा है। अपनी हजार रानियों के साथ वह जलक्रीड़ा कर रहा है। जलक्रीड़ा निर्विघ्न हो इसलिए उसने एक बाँध सा बना कर जल रोक लिया था। उन सबकी निर्द्वन्द्व जल-क्रीड़ा से जलदेवी भी क्षुब्ध होकर चली गई। अब उसने स्वेच्छा से जल छोड़ दिया है। रुका हुआ जल तीव्र वेग से आया और तुम्हारा शिविर डूब गया।

—लंकेश ! यह देखो उन रानियों के निर्माल्य द्रव्य—जूड़े के पुष्प आदि जल में बहकर आ रहे हैं।

रावण को राजा सहस्रांशु पर बड़ा क्रोध आया। उसने तुरन्त राक्षस वीरों को उसे पकड़ लाने की आज्ञा दी। किन्तु सहस्रांशु भी निर्बल नहीं था, उसने राक्षसों को पराजित करके भगा दिया। दशानन स्वयं गया और विद्याबल से मोहित करके उसे बन्दी बना लाया।

× × ×

हर्षोत्फुल्ल रावण शिविर में अपने सभासदों सहित बैठा था उसी समय चारणऋद्धिधारी मुनि शतबाहु आकाश से उतरे। दशानन ने भक्तिपूर्वक उन्हें वन्दन किया और मुनिश्री को उच्चासन पर बिठाकर स्वयं भूमि पर बैठ गया। मुनिश्री ने धर्मलाभ रूप आशीर्वाद दिया। विनम्रतापूर्वक रावण ने पूछा—

—भगवन् ! आपके आने का कारण ?

मुनि निर्दोष वाणी में बोले—

—दशानन ! मुनि तो स्वेच्छा-विहारी होते हैं। मैं माहिष्मती नगरी का स्वामी राजा शतबाहु हूँ। अपने पुत्र सहस्रांशु को राज्य देकर दीक्षित हो गया था। इधर से निकला तो नीचे उतर आया।

अंजलि जोड़कर रावण कहने लगा—

—प्रभो ! मैं दिग्विजय के लिए निकला। यहाँ नदी तट पर मैं भगवान का ध्यान कर रहा था कि आपके पुत्र ने उसमें विघ्न डाल दिया। मैंने कुपित होकर उसे बन्दी बना लिया। मैं तो उसे मिथ्यात्वी समझ रहा था। किन्तु अब समझा कि उससे यह भूल अनजान में हुई है।

रावण ने सहस्रांशु के बन्धन खुलवाकर उसे बुलवाया। सहस्रांशु ने अपने पिता को देखा तो लज्जित होकर षाष्टांग प्रणाम किया। सहस्रांशु[1] को सम्बोधित करके रावण ने कहा—

---

१ नगरी का नाम तो माहिष्मती ही है किन्तु यह कैलास पर्वत के समीप बताई गई है और राजा का नाम सहस्रांशु के बजाय हैहयराज अर्जुन है। हाँ, इसे हजार भुजा वाला बताया गया है। साथ ही नदी का नाम है रेवा के बजाय नर्मदा।

रावण शिवलिंग की पूजा करता है और अर्जुन थोड़ी दूर ही अपनी पत्नियों के साथ जल-क्रीड़ा। पानी के बहाव से रावण के पुष्प बह जाते हैं। दोनों में युद्ध होता है। अर्जुन रावण को पकड़ ले जाता है। उसे बन्धनमुक्त कराते हैं ऋषि पुलस्त्य।

ऋषि पुलस्त्य रावण के पितामह (बाबा) थे। अपने पौत्र का पराभव उन्हें सहन नहीं हुआ। पौत्र मोह के कारण वे वहाँ आये और उन्होंने रावण को बन्धनमुक्त कराया।

—मित्र ! आज से तुम मेरे भाई हो, क्योंकि साधर्मी भाई ही होता है। अब तक हम तीन भाई थे और अब तुम्हारे मिलने से चार हो गये। तुम निर्विघ्न राज्य करो।

सहस्रांशु चित्त में बहुत दुःखी था। उससे अर्हन्तभक्त की अशातना हो गई थी—चाहे अनजाने में ही सही, बोला—

—भाई ! अब मेरा हृदय तो संसार से ऊब गया है। मुझे न राज्य चाहिए और न सुख ! मैं तो पिताश्री के चरणों में दीक्षित होता हूँ।

और सहस्रांसु तत्काल दीक्षित हो गया।

दशमुख ने दोनों मुनियों की वन्दना की और सहस्रांशु के पुत्र को माहिष्मती का भार सौंपकर आगे चल दिया।

× × ×

माहिष्मती नरेश सहस्रांशु की प्रव्रज्या का समाचार अयोध्यापति राजा अनरण्य[1] को मिला। दोनों ही मित्र थे और उनकी प्रतिज्ञा थी कि दोनों साथ ही प्रव्रजित होंगे। उन्होंने भी अपने अल्पवयस्क पुत्र दशरथ को अयोध्या का राज्यभार दिया और स्वयं प्रव्रजित हो गये। —त्रिषष्टि शलाका ७।२

※ ※

हैहयराज ने भी ऋषि पुलस्त्य के प्रति आदर भाव प्रदर्शित करते हुए रावण को स्वतन्त्र कर दिया।

इस प्रकार हैहयराज अर्जुन के द्वारा रावण का पराभव हुआ था।

[उत्तरकाण्ड वा० रा०]

१ रावण अपनी दिग्विजय करता हुआ अयोध्या पहुँचा। उस समय अयोध्या पर राजा अनरण्य राज्य कर रहे थे। उन्होंने युद्ध करना चाहा तो दशग्रीव ने उनके माथे पर एक तमाचा मारा। राजा के प्राण-पखेरू उड़ गये और युद्ध-भूमि में मरने के कारण वे स्वर्गलोक पहुँचे। [उत्तरकाण्ड : वा० रा०]

: ८ :

मरुतराजा को प्रतिबोध

माहिष्मती नगरी का राज्य-भार सहस्रांशु के पुत्र को देकर राक्षसेन्द्र रावण आकाश मार्ग से चल दिया। मार्ग में सामने से आते हुए मुनि नारद दिखाई पड़े। मुनि का शरीर यष्टि और मुष्टि प्रहारों से जर्जरित (लकड़ी और मुक्कों अथवा घूँसों की चोट से घायल) था। उनके मुख से क्षुभित शब्द 'अन्याय, अन्याय' निकल रहा था।

रावण ने मुनि नारद की इस दुर्दशा को देखा तो पूछ बैठा—

—कहाँ से आ रहे हैं, मुनिवर? किसने आपकी यह दशा कर दी? कैसा अन्याय हुआ है आपके साथ?

लंकापति के मधुर सम्बोधन और सहानुभूतिपूर्ण वचनों से नारद आश्वस्त हुए। कहने लगे—

—राक्षसेन्द्र! अन्याय मेरे साथ नहीं, मूक पशुओं के साथ हो रहा है।

—कहाँ! कौन कर रहा है, यह अन्याय? आप पूरी बात बताइए, देवर्षि।

देवर्षि बताने लगे—

इस राजपुर नगर में मरुत राजा राज्य करता है। कुछ मांस-लोलुपियों की प्रेरणा से वह हिंसक यज्ञ कर रहा है। उस यज्ञ की

अग्नि में हवन करने के लिए निरपराध पशुओं को ले जाया जा रहा था तो मैंने राजा से ऐसा यज्ञ न करने को कहा। मेरे विरोध को वे लोग सह न सके और मुझे मार-पीटकर भगा दिया। राजन् ! मैं निर्बल था अपने प्राण बचाकर भाग निकला और आप बलवान हैं उन मूक पशुओं की रक्षा कीजिए। थोड़े से विलंब से ही असंख्य पशु यज्ञाग्नि में भून दिये जायेंगे। शीघ्रता करिए।

निरपराध पशुओं की धर्म के नाम पर सामूहिक हत्या—रावण तिलमिला गया। कुपित होकर तीव्र वेग से चला और शीघ्र ही मरुत की यज्ञशाला में जा पहुँचा। पीछे-पीछे नारद भी थे।

—क्या हो रहा है, यह ?—महबली रावण के कर्कश स्वर से दिशाएँ गूँज गईं।

यज्ञकर्ता पुरोहित और यजमान मरुत ने विस्मित होकर देखा—सामने मरु के समान महाबली लंकेश खड़ा था। उसके कुपित भ्रूभंग को देखकर सभी सहम गये। किसी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

—किसलिए इन पशुओं को बाँधा गया है ?—रावण ने पुनः पूछा।

पुरोहित ने डरते हुए बताया—

—इन्हें यज्ञ में हवन किया जायगा ?

—ऐसा घोर पाप ? इतने निरीह प्राणियों की हत्या ?

—पाप नहीं, हत्या भी नहीं ! ये सब इस पवित्र अग्नि में देह त्यागकर स्वर्ग को चले जायेंगे।

—और आप लोग सीधे मोक्ष को।—रावण विद्रूप हँसी हँसते हुए बोला।

—हाँ लंकापति, बिलकुल यही। इस यज्ञ के प्रताप से स्वर्ग-मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।

लंकेश ने व्यंग्यपूर्वक कहा—

—बड़ा सरल साधन है मुक्ति का! लाइए मैं आप लोगों को उठा-उठाकर इस यज्ञाग्नि में फेंके देता हूँ। आप लोग स्वर्ग के सुख भोगिये और मैं मुक्त हो जाऊँगा!

उपस्थित सभी व्यक्तियों के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। साहस करके पुरोहित ने ही कहा—

—'नहीं महाबली, ऐसा नहीं। पशु ही यज्ञ में हवन किये जाने चाहिए—ऐसा शास्त्र का आदेश है।

—शास्त्र या शस्त्र? किस शास्त्र का आदेश है कि निरीह प्राणियों को आग में भून डालो। सच्चा शास्त्र तो अर्हत प्रणीत है, जिसमें जीव दया ही प्रमुख धर्म है। मूर्खो! यज्ञ का सही अर्थ समझो—यह शरीर वेदी, आत्मा यजमान, तप अग्नि, ज्ञान व्रत और हवन सामग्री कर्म है। इसी से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। निर-पराध प्राणियों के प्राणनाश से तो घोर पाप का बन्ध होगा और नरक में वास करना पड़ेगा।

सभी मौन होकर रावण की बात सुन रहे थे किन्तु उस हिंसक यज्ञ से निवृत नहीं हुए। पशुओं को बन्धनमुक्त नहीं किया।

कुपित रावण ने कहा—

—राजा मरुत! या तो इस यज्ञ को अभी भंग कर दो अन्यथा लंकापुरी का कारागार तुम सब लोगों की प्रतीक्षा में खुला हुआ है और मृत्यु के उपरान्त नरक के द्वार!

रावण के भय से मरुतराजा ने यज्ञ भंग कर दिया। पुरोहित

पराजित से चले गये और वंन्धनमुक्त होकर पशु कुलाँचे भरते हुए प्रसन्नमन चारों दिशाओं में भाग गये।

राक्षसेन्द्र की प्रेरणा से यज्ञ भंग हो गया। तभी से इस वर्ग ने रावण को यज्ञ विरोधी, यज्ञों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला, धर्मद्रोही, पापी आदि कहकर वदनाम करना प्रारम्भ कर दिया और उसका यह अपवाद इतना वढ़ा कि रावण नाम ही लोक में पाप का प्रतीक हो गया। उसका यह अपयश चिरकाल से अब तक चला आ रहा है और न जाने कव तक चलेगा !

पशुओं को प्रसन्नहृदय उछलते-कूदते जाते देखकर रावण का कोप शान्त हो गया। मरुतराजा ने वड़े आदर और सम्मानपूर्वक उसे विठाया। नारद को भी योग्य आसन मिला। मरुतराजा ने विश्वास दिलाया—

—लंकापति ! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब कभी यज्ञ के प्रपंच में नहीं पड़ूँगा। जोव-दया धर्म का पालन ही मेरे जीवन का ध्येय होगा। हिंसक यज्ञों से विमुख करके आपने मुझे नरकवास से बचा लिया। आपका यह उपकार कभी नहीं भूलूँगा।

रावण ने उत्तर दिया—

—उपकार की वात नहीं, मरुतराज ! प्राण सभी को प्यारे होते हैं। मरना कोई नहीं चाहता। धर्म का मूल है 'जो तुम्हारी आत्मा को वुरा लगे वैसा व्यवहार किसी अन्य के साथ मत करो।' सदैव इसे मूलमन्त्र मानकर मनुष्य को आचरण करना चाहिए।

नारद को सम्बोधित करके उसने पूछा—

—मुनिवर ! शाश्वत अर्हन्त धर्म के विपरीत यह हिंसा-धर्म का प्रचलन कैसे हो गया ?

देवर्षि ने बताया—

—लंकेश यह मिथ्या अभिनिवेश का परिणाम है। पर्वत ने अपनी मिथ्या बात को सत्य प्रमाणित करने के लिए इन हिंसक यज्ञों का प्रवर्तन किया और उसका सहयोगी बना राजा वसु।

राक्षसपति को इतनी सी बात से सन्तोष न हुआ। वह बोला—

—नारदजी ! पूरी बात स्पष्ट रूप से बताइए।

—दशमुख ! इस कहानी का मेरे जीवन से भी अभिन्न सम्बन्ध है। मैं भी इनका एक कारण रहा हूँ, चाहे विरोधी रूप में ही सही।

—त्रिषष्टि शलाका ७।२

❊ ❊

: १० :

हिंसक यज्ञों की उत्पत्ति

'राक्षसेन्द्र ! वात मेरे बचपन की है, जबकि मैं विद्याध्ययन करता था।'—नारद जी कहने लगे—

चेदि देश में शुक्तिमती[1] नाम की नगरी है। उसके समीप ही नदी शुक्तिमती वहती है। भगवान मुनिसुव्रत नाथ के तीर्थ में इस नगरी का राजा हुआ—भद्र परिणामी अभिचन्द्र। उस राजा के वसु नाम का एक पुत्र था।[2]

नदी किनारे क्षीरकदम्व गुरु का आश्रम था। उसमें तीन विद्यार्थी पढ़ते थे—गुरुपुत्र पर्वत, राजपुत्र वसु और मैं। गुरु आज्ञा पालन में तीनों ही तत्पर रहते थे।

एक दिन मध्यान्ह वेला में हम गुरु द्वारा दिया हुआ पाठ याद कर रहे थे कि आकाश से दो चारणऋद्धिधारी मुनि[3] निकले। हम

---

१ नगरी का नाम स्वस्तिकावती है तथा इसे धवल देश में स्थित बताया गया है। —उत्तरपुराण, पर्व ६७, श्लोक २५६

२ वसु के पिता का नाम अभिचन्द्र की वजाय विश्वावसु दिया गया है तथा माता का नाम श्रीमती। —उत्तरपुराण पर्व ६७, श्लोक २५७

३ (क) यहाँ चारण ऋद्धिधारी मुनियों का उल्लेख न करके एक अन्य घटना है—

तीनों की समान वय और विद्या प्राप्ति की एकसी लगन देखकर एक मुनि ने दूसरे से जिज्ञासा प्रकट की—

—प्रभो ! ये तीनों विद्यार्थी समानवय के और सदाचारी हैं। इनका भविष्य क्या होगा ? ये कालधर्म प्राप्त कर किस गति में जायेंगे ?

दूसरे मुनि ने उत्तर दिया—

—आयुष्मान् ! इन तीनों विद्यार्थियों में से एक को तो स्वर्ग और शेष दोनों को नरक गति मिलेगी।

दोनों मुनियों की यह वातचीत गुरु क्षीरकदम्व ने सुन ली। वे

किसी एक दिन वे तीनों (नारद, पर्वत और वसु) ही उपाध्याय (क्षीरकदंव) के साथ वन में डाभ आदि लेने गये। वहाँ आचार्य श्रुतधर अचल नाम की शिला पर विराजमान थे। समीप ही गुरु-चरणों में उनके तीन शिष्य वैठे थे। उन शिष्यों ने गुरु श्रुतधर से अष्टांग निमित्त सुना था। उनकी परीक्षा लेने के लिए आचार्य ने शिष्यों से पूछा—'इन विद्यार्थियों के क्या नाम हैं, इनके परिणाम कैसे हैं, मरकर किस गति में जायेंगे—यह सब वातें अनुक्रम से तुम तीनों ही कहो।

उन तीनों में से एक मुनि ने वताया—यह जो समीप वैठा है, वह राजा का पुत्र वसु है, तीव्र राग आदि दोषों से दूषित हिंसा रूप धर्म के पक्ष में निर्णय करके नरक को जायगा।

दूसरे मुनि ने वताया—मध्य में वैठा हुआ विद्यार्थी ब्राह्मण है। इसका नाम पर्वत है। यह दुर्वुद्धि और क्रूर परिणाम वाला है। महाकाल व्यन्तर की प्रेरणा से पाप कर्म का उपदेश देगा। यह अथर्वण नाम के पाप शास्त्र को पढ़ेगा और हिंसक यज्ञों का प्रचार-प्रसार करके रौद्रध्यान में ही लीन रहेगा। परिणामस्वरूप घोर पाप का उपार्जन करके नरकगामी होगा।

वहुत चिन्तित हुए। हृदय में विचार करने लगे—मुझ जैसा गुरु होते हुए भी मेरे शिष्य नरक को जायँ, यह तो वड़ी विचित्र वात है; किन्तु श्रमण कभी मिथ्या नहीं वोलते। उनके वचन सत्य ही होते हैं। इनमें से एक अवश्य ही भद्र परिणामी और शेष दो रौद्र परिणामी हैं।

कौन भद्र परिणामी है और कौन रौद्र परिणामी—यह जानने के लिए गुरु किसी योग्य उपाय की खोज करने लगे।

एक दिन गुरुजी ने हम तीनों को तीन मुर्गे देकर आदेश दिया—

—वत्स! जहाँ कोई न देखता हो ऐसे एकान्त स्थान पर ले जाकर इन्हें मार डालो।

तीसरे मुनि ने कहा—सवसे पीछे वैठा विद्यार्थी नारद है। यह भी ब्राह्मण है। यह सदा धर्मध्यान में लीन रहता है और अहिंसा रूप धर्म का ही पालन करेगा। गिरि तट पर परिग्रह त्याग कर तप में लीन हो जायेगा और कालधर्म प्राप्त करके अनुत्तर विमान में अहमिंद्र होगा।

तीनों शिष्यों के वचन सुनकर आचार्य श्रुतधर सन्तुष्ट हुए और कहने लगे—तुमने अष्टांग निमित्त को भली-भाँति समझ लिया है। तुम्हारा कथन सत्य है।

यह सुनकर उपाध्याय क्षीरकदंव को वड़ा दुःख हुआ और वह उदासीनतापूर्वक लौट आये।

—उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २६१-२७४

३ (ख) नारद की वुद्धिमत्ता और पर्वत की जड़वुद्धि का प्रदर्शन करने वाली एक अन्य घटना और है। यह घटना वसु के राजा वनने के वाद की है। घटना इस प्रकार है--

एक दिन नारद और पर्वत समिधा (यज्ञ की लकड़ी) और फल-फूल लेने गये। उन्होंने मार्ग में देखा कि आठ मयूर नदी-प्रवाह का जल पीकर वापस लौट रहे हैं। उन्हें देखकर नारद ने कहा—भाई पर्वत!

हम तीनों गुरुजी के आदेश से कुछ चकित हुए। फिर चुपचाप मुर्गे लेकर अलग-अलग चल दिये। पर्वत मुर्गे को मारकर पहले लौटा और बाद में वसु। मुझे कोई ऐसा स्थान ही नहीं मिला जहाँ मैं उसे मार सकता। क्योंकि और कोई नहीं तो मैं तो मुर्गे को देख ही रहा था और मुर्गा मुझे ! गुरु का आदेश था 'जहाँ कोई न देखता हो, ऐसे स्थान पर ले जाकर मारना।' मैं मन में सोचने लगा—'गुरुजी ने ऐसा विपरीत आदेश क्यों दिया ? मुर्गा तो देखने वाला सदा ही होगा। अवश्य ही उनका कोई गूढ़ अभिप्राय है। सम्भवतः वे हम लोगों की परीक्षा लेना चाहते हैं। आज तक तो गुरुजी ने अहिंसा

इनमें एक मयूर है और सातों मयूरिणी। पर्वत को यह वात सहन नहीं हुई। उसने स्वयं जाकर देखा किन्तु नारद की वात सत्य निकली।

कुछ समय के लिए वे दोनों एक स्थान पर विश्राम करने लगे। नारद अचानक ही वोल उठा—इस मार्ग से एक कानी हथिनी गई है और उस पर एक गर्भिणी स्त्री सफेद साड़ी पहने हुए वैठी थी। वह स्त्री आज ही प्रसव करेगी।

पर्वत को यह वात भी बुरी लगी। उसने पर्वत का विश्वास नहीं किया किन्तु इस वात की सत्यता परखने का कोई साधन नहीं था। अतः घर आकर पर्वत ने अपनी माता से शिकायत की कि 'पिताजी ! मुझे उतनी अच्छी तरह नहीं पढ़ाते जैसे नारद को।' माता ने पिता से शिकायत की तो उपाध्याय क्षीरकदंब ने नारद से पूछा—'तुमने वन में पर्वत के साथ क्या उपद्रव किया ?' विनीत स्वर में नारद ने सम्पूर्ण घटना सुना कर अपने हेतु वताए—'गुरुजी ! उन आठ मयूरों में से एक मयूर अपनी पूछ के पानी में भीगकर भारी हो जाने के डर से उलटा लौट रहा था। इसलिए मैंने जाना कि वह मयूर (नर) है और शेष मयूर सीधे लौट रहे थे, इन्हें पूछ भीगने का कोई भय ही नहीं था क्योंकि उनकी पूछ छोटी थी इसलिए मैंने समझ लिया कि ये मयूरिणी (मादाएँ) हैं।

को ही परम धर्म वताया है और अव अचानक ही अकारण जीव हिंसा का आदेश।'

इस प्रकार विचार करता हुआ मैं मुर्गे को जीवित ही वापिस लौटा लाया और विनम्र स्वर में निवेदन कर दिया—

—गुरुजी ! मुझे कोई ऐसा स्थान नहीं मिला जहाँ कोई न देख रहा हो।

गुरुजी ने मेरी प्रशंसा की और उन दोनों की भर्त्सना ! वे वोले—

—मेरी शिक्षा का सही अर्थ केवल नारद ही समझा है, तुम दोनों तो चलनी के समान ही रहे। जिस प्रकार चलनी के छेदों में

नारद ने आगे कहा—'इसी प्रकार मैंने वन में देखा कि हथिनी के पिछले पैरों के चिह्न उसके मूत्र से भीगे हुए हैं अतः निश्चय हो गया कि वह हथिनी ही है। दाईं ओर के वृक्ष टूटे हुए थे अतः उसके कानी होने का अनुमान लग गया। उस पर सवार स्त्री मार्ग की थकावट के कारण उतरकर नदी के विलकुल ही समीप लेटी थी। वहाँ पर जो उसके उदर का चिह्न वना उससे उसका गर्भिणी होना स्पष्ट नजर आता था। समीप के झाड़ पर उसकी साड़ी का एक कोना काँटों में उलझ कर फट गया था अतः स्पष्ट था कि वह सफेद साड़ी पहने है। इन्हीं सव वातों से मैंने अनुमान लगाए।

उपाध्याय क्षीरकदंव नारद की इन वातों से सन्तुष्ट हुए।

—उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २८२-३०४

३ (ग) यहाँ मुर्गे मारने की घटना के स्थान पर आटे के वकरों के कान छेदने का उल्लेख है।

पर्वत तो वकरे के कान छेद कर ले आया किन्तु नारद नहीं।

—श्लोक ३०५-३१७

से निर्मल जल तो निकल जाता है और कचरा ही शेष रह जाता है उसी प्रकार तुम दोनों के हृदय में परमार्थ तो ठहरा नहीं, पाप-पंक ही एकत्र हो गया है।

गुरुजी ने निर्वेद (वैराग्य) पाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। मैं वहाँ से चला आया और वसु राजमहल में चला गया। पर्वत ने पिता की गद्दी सँभाल ली। अभ्यासियों को विद्या दान करने लगा। कुछ समय पश्चात् राजा अभिचन्द्र भी प्रव्रजित हो गये और वसु शुक्तिमती नगरी का राजा बना। सत्यवादी के रूप में वसु की प्रसिद्धि सभी ओर व्याप्त हो गई—वह था भी सत्यवादी !

एक वार विंध्यगिरि की तलहटी में किसी शिकारी को एक हरिण दिखाई दिया। उसने निशाना बाँधकर तीर छोड़ा तो वाण मार्ग में ही किसी वस्तु से टकराकर गिर पड़ा। शिकारी आश्चर्य-चकित रह गया। वह कारण जानने को वहाँ पहुँचा तो वह भी टकरा गया। हाथों से स्पर्श किया तो मालूम हुआ कि एक विशाल शिला पड़ी है जिसे देखा नहीं जा सकता। उसने विचार किया—यदि यह अद्भुत शिला राजा वसु को भेंट कर दी जाय तो मुझे अच्छा पुरस्कार मिलेगा ! उसने वह शिला राजा को दिखाई। वसु वहुत प्रसन्न हुआ और उसे वहुत-सा धन पुरस्कारस्वरूप दे दिया। वह शिला को उठवा लाया और कारीगरों द्वारा एक आसन वेदिका निर्मित कराई। वेदिका वन जाने के वाद उसने उन सव कारीगरों को मरवा डाला और निःशंक होकर यह प्रचारित करा दिया कि सत्यवादी राजा वसु का सिंहासन आकाश में स्थिर है। भोले लोगों ने उसकी वात पर विश्वास भी कर लिया। उसका यश और भी ज्यादा फैल गया।[1]

---

१ स्फटिक शिला प्राप्त करने की घटना इस प्रकार वर्णित है—

एक दिन राजा वसु वन-क्रीड़ा के लिए गया। वहाँ उसने देखा कि पक्षी उड़ते हुए मार्ग में ही टक्कर खाकर गिर पड़ते हैं। इसका

मैं तो जन्म से घुमक्कड़ हूँ ही। एक बार घूमता-फिरता पर्वत के आश्रम में जा पहुँचा। उस समय वह विद्यार्थियों को 'अजैर्यष्टव्यं'[1] शब्द का अर्थ समझा रहा था। उसने अर्थ किया—'मेढ़ा (वकरा) से यज्ञ करना।' मैंने उसे वीच में ही टोक दिया और कहा—भाई, गुरुजी ने तो इसका अर्थ 'तीन वर्ष पुराने चावल अथवा यव (जौ) से यज्ञ करना' ऐसा वताया था, तुम यह विपरीत अर्थ क्यों कर रहे हो? अभ्यासियों को सही अर्थ वताओ।

पर्वत ने समझा कि मैं उसका अपमान कर रहा हूँ। उसने अपनी भूल स्वीकार नहीं की वरन् मुझसे ही कहने लगा—

—मेरे पिता ने तो अज का अर्थ मेढ़ा ही वताया था।

मैंने समझाने का प्रयास किया—

—भाई 'अज' शब्द की व्युत्पत्ति है 'न जायन्ते इति अजाः' अर्थात् जो उत्पन्न न हो सके, उगे नहीं वह 'अज' कहलाता है।

मेरी इस युक्तियुक्त वात से वह चिढ़कर कहने लगा—

—निघंटु (कोष) में भी अज का अर्थ मेढ़ा (वकरा) है।

—कोष में इसका अर्थ तीन वर्ष पुराना चावल भी है। एक शब्द के अनेक अर्थ कोष में दिये होते हैं, प्रसंगानुसार सही अर्थ का

कारण जानने के लिए उसने वाण छोड़ा तो वह भी गिर गया। तव राजा स्वयं उस स्थान पर गया। टटोलने पर उसे अनुभव हुआ कि यह अदृश्य स्फटिक स्तम्भ है। वह उसे उठवा लाया और अपने सिंहासन के चार पाये वनवा लिए। उसका यश चारों ओर फैल गया कि वसु का सिंहासन सत्य के प्रताप से आकाश में स्थित है।

—उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २७६-२८१

१ 'अजैर्होतव्यम्' का अर्थ नारद के अनुसार तीन वर्ष पुराना जौ का वीज और पर्वत के अनुसार वकरा। —उत्तर पुराण ६७।३२९-३३२

प्रयोग करना चाहिए। यज्ञ के प्रसंग में 'तीन वर्ष पुराना चावल' यह अर्थ ही उचित और लोकमान्य है। —मैंने तर्क दिया।

हम दोनों में तर्क-वितर्क और वाद-विवाद होने लगा। न मैं उसकी वात स्वीकार कर रहा था, न वह मेरी। जव कोई निर्णय न हो सका तो उसने कहा—

—नगरी का राजा वसु विख्यात सत्यवादी है। वह जो भी निर्णय देगा वही मान्य होगा। जिसका मत मिथ्या होगा राजाज्ञा से उसकी जिह्वा काट ली जायेगी। तुम्हें स्वीकार है?

मैं भी जानता था कि वसु सत्यवादी है। मैंने उसकी शर्त स्वीकार कर ली।

हम दोनों के इस विवाद को पर्वत की माता सुन रही थी क्योंकि आश्रम के पीछे ही निवास भी था। एकान्त में माता ने उससे कहा—

—पुत्र! तुम्हारे पिता को 'अज' शव्द का अर्थ वताते हुए मैंने भी सुना है। उन्होंने सदा ही इसका अर्थ 'तीन वर्ष पुराना चावल' किया; मेढ़ा कभी नहीं। राजा वसु के सामने जाओगे तो वह भी यही वतायेगा। तुमने जिह्वा कटवाने की कठिन प्रतिज्ञा क्यों कर ली?

पर्वत ने उत्तर दिया—

—नारद ने मेरे शिष्यों के समक्ष ही मुझे मिथ्यावादी सिद्ध करने का प्रयास किया। माँ! तुम तो जानती ही हो यदि मैं नारद के पक्ष को स्वीकार कर लेता तो विद्यार्थियों के हृदय में मेरे लिए क्या इज्जत रह जाती। इसी आवेश में मैं प्रतिज्ञा कर वैठा।

—किन्तु अव क्या होगा?

—कोई ऐसी युक्ति करो माँ कि मेरी इज्जत रह जाय।

माता का सबसे बड़ा बल उसका पुत्र होता है तो वही उसकी निर्बलता भी। पुत्र-मोह उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। वह अपने पुत्र को दुःखी नहीं देख सकती चाहे वह कुमार्गगामी ही क्यों न हो। पर्वत की माता भी पुत्र-मोह से ग्रसित हो गई। वह रात्रि को ही वसु के भवन में पहुँची। वसु ने गुरुमाता का यथोचित आदर किया और पूछा—

—मेरे योग्य कोई कार्य ?

—मुझे पुत्र की भिक्षा चाहिए, वसु !

'पुत्र-भिक्षा' शब्द सुनकर वसु क्षुब्ध हो उठा, कहने लगा—माता ! कौन दुष्ट है, जिसने मेरे गुरुभाई पर्वत को विपत्ति में डाल दिया। मैं उसका प्राणान्त कर दूँगा। तुम मुझे उसका नाम तो बताओ।

माता बोली—राजा वसु ! नाम तो क्या, मैं पूरी बात ही बता दूँगी। तुम मुझे पर्वत की रक्षा का वचन तो दो।

—वचन दिया ! पर्वत का बाल भी बाँका नहीं होगा। अब तो पूरी बात बता दो।

राजा वसु को वचनबद्ध करके गुरुमाता ने पूरी बात बता दी। वसु सिर पकड़कर बैठ गया। उसके मुख से निकला—

—मातेश्वरी ! किस धर्म-संकट में डाल दिया। पक्ष तो नारद का ही सत्य है। मैं झूठ कैसे बोलूँ ?

—झूठ और सत्य मैं नहीं जानती। मुझे तो इतनी सी बात से मतलब है कि तुमने पर्वत की रक्षा का वचन दिया है और क्षत्रिय अपने वचन का पालन प्राण देकर भी करते हैं।

—प्राण तो देने को तत्पर हूँ माँ ! अभी ले लो। किन्तु मेरे विपरीत

निर्णय से हिंसक यज्ञों का मार्ग खुल जायगा। मुझे अनेक जन्मों तक नरक के दुःख भोगने पड़ेंगे और असंख्य प्राणियों की हत्या होगी। न जाने यह पाप की प्रणाली कब तक चलेगी? मातेश्वरी! मुझे वचन से मुक्त कर दो। मैं अभी चलकर उन दोनों में समझौता कराये देता हूँ। पर्वत को समझा-बुझाकर सत्य मार्ग पर ले आऊँगा।

—नहीं निर्णय तो राज्य-सभा में सभी के समक्ष होगा और वह भी मेरे पुत्र के पक्ष में और करने वाले होगे तुम!—माता के स्वर में दृढ़ता थी।

—ऐसी कठिन परीक्षा मत लो मातेश्वरी! एक पुत्र के मोह में पड़कर असंख्य प्राणियों की हत्या का मार्ग मत खोलो। इस घोर पाप से डरो!—वसु ने निरीहतापूर्वक कहा।

—मुझे नहीं मालूम था कि शुक्तिमती नगरी का स्वामी ऐसा डरपोक और कायर है कि अपने वचन का पालन भी न कर सकेगा। —गुरुमाता के व्यंग्य भरे शब्द निकले।

'डरपोक' और 'कायर' ये दो शब्द ऐसे हैं जिन्हें कोई साधारण मनुष्य भी नहीं सुन सकता तो क्षत्रिय राजा वसु इस आरोप को कैसे सह जाता वह उत्तेजित होकर बोला—

—तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। निर्णय तुम्हारे पुत्र के ही पक्ष में करूँगा। संसार को दिखा दूँगा कि क्षत्रिय अपने वचन का पालन प्राण देकर भी करते हैं। तुम निश्चिन्त होकर जाओ। वसु न कायर है न डरपोक!

माता आश्वस्त होकर चली आई। राज्य सभा में पर्वत और नारद के विवाद का निर्णय हुआ। निर्णय तो वसु रात को ही कर चुका था। केवल सार्वजनिक रूप से भरी सभा में उसको शब्दों में परिणत कर दिया गया।

निर्णय होते ही नारद के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई और राजा वसु के सिंहासन के नीचे से स्फटिक शिला सिंहासन सहित वसु धड़ाम से जमीन पर आ गिरा।[1] तत्काल वहीं उसके प्राण-पखेरू निकले तथा और भी नीचे जाकर उसकी आत्मा घोर नरक में जा पड़ी—मिथ्या बोलने, धर्म का अपलाप करने के दण्ड स्वरूप चिरकाल तक घोर कष्ट भोगने के लिए।

उसके सिंहासन के नीचे से स्फटिक शिला निकाल दी थी—देवताओं ने। उन्हें उसका अक्षम्य अपराध सह्य नहीं हो सका था।

वसु के पश्चात् एक-एक करके उसके आठ पुत्र—पृथुवसु, चित्रवसु, वासव, शुक्र, विभावसु, विश्वावसु, सुर और महासुर—सिंहासन पर बैठे किन्तु देवताओं ने उनका भी प्राणान्त कर दिया। भयभीत होकर नवाँ पुत्र सुवसु नागपुर भाग गया और दशवाँ पुत्र बृहद्ध्वज मथुरा आ गया।[2]

---

१ यहाँ राजा वसु का सिंहासन पृथ्वी में समा जाने की घटना का उल्लेख राजा सगर, सुलसा आदि की मृत्यु के बाद हुआ है। अयोध्या में अपने हिंसक यज्ञों का प्रचार करके पर्वत पुनः अपने नगर में लौटा। उस समय नारद और पर्वत का विवाद हुआ और राजा वसु अपने मिथ्या वचनों के कारण पृथ्वी में सिंहासन सहित धँस गया।

—उत्तर पुराण ६७।३१५-४३६

इसके पश्चात इतना और है कि महाकाल व्यन्तर ने राजा वसु को अपनी माया से यह कहता हुआ दिखा दिया—'केवल हिंसक यज्ञों पर श्रद्धा करने से ही हमको स्वर्ग प्राप्त हुआ है।'

२ यहाँ वसु के पुत्रों का कोई उल्लेख नहीं हैं।

—उत्तर पुराण ७६।४४०

लोगों में वसु का बहुत अपयश फैला। उसके जीवन भर की सत्य-वादिता इस एक झूठ के कारण मिट्टी में मिल गई। पर्वत को तो प्रजा ने नगरी से बाहर निकालकर ही दम लिया।

अपमान और तिरस्कार की ज्वाला से दग्ध पर्वत ने महाकाल असुर को ग्रहण कर लिया।

—उत्तर पुराण पर्व ६७।२५६-४४०
त्रिषष्टि शलाका ७।२

※ ※ ※

: ११ :

हिंसक यज्ञों के प्रचार की कहानी

रावण और मरुतराजा दोनों ही नारद का वृत्तान्त सुन रहे थे। दशमुख ने पूछा—

—मुनिवर ! यह महाकाल असुर कौन था ?

नारदजी ने कहना प्रारम्भ किया—

चारणयुगल नगर के राजा अयोधन[1] की रानी दिति[2] से सुलसा नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। सुलसा ने जैसे ही युवावस्था में प्रवेश किया, पिता को उसके विवाह की चिन्ता लगी।

राजा अयोधन ने पुत्री का स्वयंवर आयोजित किया। देश-देश के राजा बुलाये गये। राजागण पहले ही आ गये थे और स्वयंवर तिथि आने में अभी देर थी। अत: चारणयुगल नगर उनकी सरगर्मियों का केन्द्र बन गया। राजमार्गों, उपवनों वीथिकाओं सभी में आगन्तुक राजाओं और राजपुत्रों की चहल-पहल रहती।

---

१ चारणयुगल नगर के राजा का नाम सुयोधन है।

—उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २१३

२ सुलसा की माता का नाम अतिथि है।

—उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २१४

उन राजाओं में सगर[1] सबसे अधिक प्रतापी था। यद्यपि सभी राजाओं की इच्छा सुलसा को प्राप्त करने की थी किन्तु सगर की अभिलाषा कुछ अधिक ही तीव्र थी। उसका दबदबा भी ज्यादा था। उसकी दासी मन्दोदरी[2] बेरोक-टोक महल के किसी भी भाग में चाहे जब पहुँच जाती। बलवान स्वामी के सेवक को रोक कर कौन प्राण संकट में डाले। सगर की दासी मन्दोदरी भी स्वामी के समान ही निर्द्वन्द्व थी।

एक समय रानी दिति अपनी पुत्री सुलसाकुमारी के साथ गृहोद्यान के कदलीकुंज[3] में बैठी बात-चीत कर रही थी। मन्दोदरी वहाँ जा पहुँची और जब उसने कदलीकुंज के अन्दर से रानी दिति की आवाज सुनी तो चुपचाप कान लगा कर खड़ी हो गई।

माता अपनी पुत्री से कह रही थी—

—तुम्हारे इस स्वयंवर के बारे में मेरे मन में एक काँटा है और उसे निकालना तुम्हारे ही वश में है।

---

१ राजा सगर को अयोध्या का राजा बताया गया है। (श्लोक २१५) साथ ही इसकी उत्पत्ति हरिषेण चक्रवर्ती की मृत्यु के एक हजार वर्ष बाद बताई गई है। —**उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २५४**

२ (क) मन्दोदरी राजा सगर की धाय थी। (श्लोक २१६)
(ख) राजा को अपने सिर मे एक सफेद बाल दिखाई दिया तो वह सुलसा के स्वयंवर में जाने से विरत हो गया किन्तु धात्री मन्दोदरी ने आकर कहा—'यह नया सफेद बाल आपको किसी उत्तम वस्तु के प्राप्त होने की सूचना करता है।' यह कहकर राजा सगर को अच्छी तरह समझा दिया। —**उत्तर पुराण पर्व ६७, श्लोक २१६-१७**

३ केले के वृक्षों से बना हुआ सघन झुरमुट, जिसके अन्दर बैठा व्यक्ति बाहर के व्यक्ति को न देख सके और बाहर वाला व्यक्ति अन्दर वाले व्यक्ति को भी नहीं देख पाता।

—बताओ माँ ! क्या काँटा है तुम्हारे हृदय में और मैं किस प्रकार उसे निकाल सकती हूँ । —पुत्री का स्वर था ।

माता कहने लगी—तुम मेरी बात ध्यान से सुन लो—

—आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के प्रमुख पुत्र दो थे—भरत और बाहुबली । भरत के पुत्र सूर्य हुए और बाहुबली के सोम । सूर्य के वंश में तुम्हारे पिता अयोधन उत्पन्न हुए और सोम के वंश में मेरा भाई तृणबिन्दु । तृणबिन्दु की पत्नी सत्ययशा तुम्हारे पिता की बहन है और उसका पुत्र है मधुपिंग । इस प्रकार मधुपिंग मेरा भतीजा है ।[1]

—बेटी ! स्वयंवर में किस भाग्यशाली के कण्ठ में तुम वरमाला डालोगी, यह तो मुझे नहीं मालूम; किन्तु मेरी इच्छा है कि तुम्हारा विवाह मधुपिंग से हो ।

पुत्री ने माता की इच्छा स्वीकार करते हुए कहा—

—माँ ! तुम्हारी बेटी के लिए यह इच्छा नहीं आज्ञा है । मैं इसे स्वीकार करती हूँ । स्वयंवर में सम्मिलित राजाओं में यदि मधुपिंग भी उपस्थित हुए तो वरमाला उन्हीं के गले में पड़ेगी ।

मन्दोदरी माता-पुत्री की बातचीत सुनकर वहाँ से चुपचाप खिसक आई और अपने स्वामी सगर को सब कुछ बता दिया । राजा सगर येन-केन-प्रकारेण सुलसा को प्राप्त करना ही चाहता था । अतः उसने सोच-विचार कर एक ऐसा उपाय खोज निकाला कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे । उसने अपने पुरोहित[2] से कहा—

---

१ सुलसा की माता ने अपने भाई का नाम तृणपिंगल और तृणपिंगल की स्त्री का राम सर्वयशा तथा उनके पुत्र का नाम मधुपिंगल बताया ।

—उत्तर पुराण ६७।२२३-२२४

२ यहाँ पुरोहित न मानकर मन्त्री माना है और उसका नाम है विश्वभू । उसने आश्वासन दिया कि मैं अपनी कुशलता से सब काम ठीक कर दूँगा ।

—उत्तर पुराण ६७।२१८-१९

—पुरोहितजी ! आज आपकी कवित्वशक्ति की परीक्षा का समय है।

—आज्ञा, राजन् !

—एक ऐसी 'राजलक्षणसंहिता' की रचना करो जिसके अनुसार समस्त शुभ लक्षण मेरे शरीर में हों और मधुपिंग उन लक्षणों से हीन। साथ ही शर्त यह भी है कि वह पुरानी भी दिखाई पड़े—रचना, शब्द-कौशल, शैली, दृष्टान्त आदि सभी दृष्टियों से।

—जैसी आपकी इच्छा, श्रीमान् !

और पुरोहितजी ने कुशलतापूर्वक राजा की इच्छानुसार 'राज-लक्षण-संहिता'[1] लिखी तथा पुराने से बक्स (पेटी) में बन्दी कर दी।

बातों ही बातों में सगर राजा ने चतुराईपूर्वक राजा अयोधन की सभा में राजलक्षणों की चर्चा चला दी। विषय रोचक था। सभी अपनी-अपनी सम्मतियाँ प्रगट करने लगे।

एक राजा ने कह दिया—

—सभी के अपने-अपने अलग-अलग विचार हैं। इस विषय पर कोई प्रामाणिक पुराना ग्रन्थ हो तभी तो निर्णय हो सकता है।

दूसरे ने उत्तर दिया—

—शास्त्रों की रक्षा और पठन-पाठन तो पुरोहित वर्ग ही करता है। ऐसा ग्रन्थ उन्हीं के पास मिल सकता है।

---

१ ग्रन्थ का नाम राज-लक्षण-संहिता के स्थान पर 'स्वयंवर विधान' बताया है। उस ग्रन्थ को लिखकर मन्त्री ने पेटी में रखकर वन में किसी वृक्ष के नीचे गाड़ दिया तथा यह बात किसी को नहीं मालूम होने दी।

—उत्तर पुराण ६७।२२८-२३१

सगर के पुरोहित वैठे ही थे। सभी की दृष्टि उनकी ओर उठ गई।

समवेत स्वर गूँजा—

—कहिए पुरोहित जी ! है कोई ग्रन्थ आपके पास ?

पुरोहितजी इसी अवसर की ताक में तो थे। वोले—

—है तो सही। किन्तु उसके अनुसार कार्य न किया गया तो वताने से क्या लाभ ?

—क्यों ? कार्य क्यों नहीं होगा ?

—मेरा आशय है उपस्थित राजाओं में से जिसमें भी वे राजलक्षण नहीं होंगे तो क्या उसे स्वयंवर में भाग लेने से रोक दिया जायगा।

—अवश्य ! ऐसा पुरुष राज-पुत्र हो ही नहीं सकता फिर हम लोगों के वीच वैठने का उसको क्या अधिकार ?

—आप सभी लोग गम्भीरतापूर्वक विचार करके बताएँ। हो सकता है आप लोगों में से ही कोई ऐसा निकल आये।

—हम सव इसके लिए तैयार हैं जो भी उस कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा। वह स्वेच्छा से स्वयंवर छोड़कर चला जायगा और स्वयंवर ही क्या राज्य का भी त्याग कर देगा। —सभी राजाओं ने समवेत स्वर में स्वीकृति दे दी।

सेवकों द्वारा पुरोहितजी ने पुस्तक मँगवाई। सभी को दिखाकर उसके पुराने होने की प्रामाणिकता करा ली।

पुरोहितजी उसे पढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों वे पुस्तक पढ़ते जाते मधुपिंग का मुख पीला पड़ता जाता और पुस्तक समाप्ति पर मधुपिंग

लज्जा से पीला ही पड़ गया। वह चुपचाप उठा और राजसभा छोड़कर चल दिया।[1]

सगर का षड्यन्त्र सफल हुआ। सुलसा उसे प्राप्त हो गई।

मधुपिंग अपमान से दुःखी होकर बाल तप करने लगा और काल-धर्म प्राप्त करके साठ हजार असुरों का स्वामी महाकाल नाम का

---

१ स्वयंवर से निराश लौटकर कुमार मधुपिंगल ने हरिषेण गुरु देव के पास जाकर दीक्षा ली। —उत्तर पुराण ६७।२३६

इसके बाद की एक अन्य छोटी सी घटना का उल्लेख भी आया है—

साधुवृत्ति ग्रहण कर लेने के बाद एक बार मधुपिंगल किसी नगर में भोजन के निमित्त गया। उसे देखकर किसी नैमित्तिक (सामुद्रिक विद्या के ज्ञाता) ने दूसरे नैमित्तिक से कहा—'इस युवक साधु के शारीरिक लक्षण तो यह बताते हैं कि इसे पृथ्वी का राज्य भोगना चाहिए, किन्तु यह तो भिक्षा माँग रहा है। अतः सामुद्रिक शास्त्र और उसमें कहे हुए शारीरिक लक्षण बिल्कुल मिथ्या हैं, किसी काम के नहीं।'

दूसरे नैमित्तिक ने उत्तर दिया—'पहले यह राज्य लक्ष्मी का ही भोग करता था। किन्तु अयोध्या के राजा सगर और उसके मन्त्री ने झूठा और विपरीत सामुद्रिक शास्त्र रच कर इसे दूषित ठहराया। इस बात से लज्जित होकर इसने साधुवृत्ति स्वीकार कर ली है। इसके चले आने पर सुलसा राजा सगर को प्राप्त हो गई।'

दोनों नैमित्तिकों के वचन सुनकर मधुपिंगल ने निदान किया कि 'इस तपश्चरण के फलस्वरूप मैं अगले जन्म में सगर का वंश नाश करूँगा।'

मर कर वह असुरेन्द्र की प्रथम- महिष जाति की सेना के कक्षा भेद में चौंसठ हजार असुरों का नायक महाकाल नाम का देव हुआ।

— उत्तर पुराण ६७।२४५-२५२

असुर हुआ। अवधिज्ञान से उसने सगर के षड्यन्त्र को जान लिया। राजा अयोधन की राजसभा में हुए अपमान ने उसे क्रोधित कर दिया। उसने निश्चय कर लिया कि 'सगर तथा अन्य राजाओं को किसी-न-किसी प्रकार नष्ट कर ही दूंगा।' अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छा से वह राजाओं के दोषों को खोजता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। उसे अब किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश थी जो स्वयं भी लोगों द्वारा अपमानित और तिरस्कृत होकर बदले की आग में जल रहा हो। ईर्ष्या के वश में होकर वह लोगों को पाप-मार्ग की ओर अधिक से अधिक धकेलने में तनिक भी संकोच न करे वरन् ऐसी परिपाटी चलाये कि धर्म समझकर लोग इसका पालन करें और नरक कुण्ड में जा गिरें।

ऐसा व्यक्ति मिला उसे पर्वत।

पर्वत उस समय अपमानित होकर शुक्तिमती नदी के किनारे पर्वत की तलहटी में अपमानित जीवन विता रहा था। बदले की आग ने उसे विवेकान्ध कर दिया था। असुर महाकाल ब्राह्मण का रूप बनाकर उसके समक्ष आकर बोला—

—वत्स पर्वत ! मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। हम दोनों बाल्यावस्था में गौतम नाम के उपाध्याय के पास विद्या प्राप्त करते थे। नारद तथा नगरवासियों द्वारा तुम्हारे अपमान को सुनकर मुझसे रहा नहीं गया और यहाँ चला आया।

कुछ देर तक तो पर्वत उस ब्राह्मण को देखता रहा। फिर निराश स्वर में कहने लगा—

—तात ! मैंने आपको पहिचाना नहीं।

—पहचानोगे भी कैसे ? पहले कभी मैं आया ही नहीं। यदि तुम्हारे अपमान की बात न सुनी होती तो अब भी न आता। मुझे बहुत दुःख है।

—कोरी सहानुभूति से क्या लाभ ?—पर्वत के स्वर में संताप स्पष्ट उभर आया था।

ब्राह्मण कहने लगा—

—लाभ ? लाभ क्यों नहीं ? वत्स मैं कोरी सहानुभूति प्रदर्शित करने नहीं आया हूँ। अपने मन्त्रवल द्वारा मैं लोगों को मोहित करके तुम्हारे मत का प्रचार कर सकता हूँ।

पर्वत के मुख पर चमक आ गई। अंधा क्या चाहे, दो आँखें। प्रसन्न होकर वोला—

—क्या ? क्या सचमुच आप ऐसा कर सकते हैं ? क्या आप मेरे लिए अपने मन्त्रवल का प्रयोग करेंगे ? इतना कष्ट उठायेंगे मेरे कारण ?

—अवश्य ! तुम नहीं जानते मुझे अपने गुरुभाई के पुत्र के तिरस्कार से कितना दुःख हुआ है। तुम्हारी प्रसिद्धि से मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।

—वड़ा उपकार होगा आपका मुझ पर ! क्या मैं अपने उपकारी का नाम भी जान सकता हूँ ?

—भद्र ! मेरा नाम शांडिल्य है। मुझे भी तो आत्म-सन्तोष मिलेगा, इस कार्य से।

दोनों धूर्त साथ-साथ रहने लगे। असुर महाकाल ने अपने अधीनस्थ असुरों के द्वारा नगरी में भाँति-भाँति के रोग फैला दिये। रोग देवकृत थे अतः वैद्यगण चिकित्सा न कर सके, वैद्यक शास्त्र व्यर्थ हो गया। रोगियों का जीवनदाता वना पर्वत। पर्वत के कर-स्पर्श से ही रोग शान्त हो जाता।

साधारण मनुष्य का स्वभाव है कि वह भूत को भूलकर वर्तमान में जीता है। जो पर्वत कल तक घृणा और तिरस्कार का पात्र

था आज वह जनता का जीवन प्राण हो गया। उसकी कीर्ति फैलने लगी।

रोगों के उपशमन के साथ-साथ पर्वत अपने मत का प्रचार करता और सहायक वनता शांडिल्य। मत-प्रचारार्थ दोनों ने देश-भ्रमण की योजना बनाई।

देश भ्रमण करते-करते दोनों धूर्त सगर राजा के नगर में आये। वहाँ शांडिल्य ने अपना भरपूर चमत्कार दिखाया। नगर, राजा का अन्त:पुर, परिवार, आदि सभी रोगग्रस्त हो गये। कोई परिवार ऐसा न बचा जिसमें रोग-रूपी पिशाच ने घर न कर लिया हो।

जीवनदाता, रोग-त्राता पर्वत साथ था ही। वह सवका उपचार करने लगा।

नगर भर में पर्वत की प्रसिद्धि फैल गई। राजा सगर[1] सहित सभी नगरवासी पर्वत का ही नाम जपने लगे।

शाण्डिल्य की प्रेरणा से पर्वत ने अपने मत का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। वह लोगों को उपदेश देता—

"सौत्रामणि यज्ञ में विधिपूर्वक सुरापान करना चाहिए, गोसव यज्ञ में अगम्या स्त्री[2] के साथ भोग करना चाहिए, मातृमेध यज्ञ में

---

१ सुलसा के स्वयंवर में अपमानित होने पर मधुपिंगल तप करने लगा और महाकाल नाम का व्यंतर हुआ। सगर से अपने अपमान का वदला लेने के लिए वह ब्राह्मण का वेश बनाकर उसके पास पहुँचा और कहने लगा—हे राजन्! यदि तुझे अपनी लक्ष्मी वढ़ानी है, तो वेद में कहे हुए हिंसक यज्ञ कर।' सगर ने वैसा ही किया और अन्त में वह पापियों की पृथ्वी नरक में जा उत्पन्न हुआ। —उत्तर पुराण ६७।१५९-६३

२ अगम्या स्त्री वह कहलाती है जिसके साथ भोग करना लोकनिंद्य हो—जैसे माता, पुत्री, वहन आदि।

माता का और पितृमेध यज्ञ में पिता का वध करना चाहिए। यज्ञ में किसी का भी वध हो, कितने ही प्राणियों का हनन हो, पाप नहीं लगता क्योंकि यह सब देवताओं की आज्ञा से होता है। फिर सम्पूर्ण जगत में एक ईश्वर ही व्याप्त है। उसी का रूप अन्य सभी में प्रतिबिम्बित हो रहा है। तब कौन किसको मारता है? सब ईश्वर की ही माया है। वह ईश्वर यज्ञ से प्रसन्न होता है और हवन किये हुए प्राणियों तथा हवन करने वालों को स्वर्ग के सुख देता है।"

इस प्रकार वह हिंसक यज्ञों का प्रचार करने लगा। सगर राजा को अपने मत में दीक्षित करके उसने अनेक यज्ञ कराये। पर्वत यज्ञ कराता और असुर महाकाल अपनी माया से उन होम किये हुए प्राणियों को सशरीर आकाश में जाते हुए दिखा देता।

जनता को उनके मत में विश्वास जमने लगा और उनके मत का कुरुक्षेत्र आदि अनेक देशों में खूब प्रचार हुआ। यहाँ तक कि द्विजाति के पुरुष (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) यज्ञ करना अपना परम कर्तव्य समझने लगे।

नारद ने आगे कहा कि इस घोर अन्याय को देखकर मैंने दिवाकर विद्याधर से सहायता की याचना की तो उसने कई बार यज्ञ-पशुओं का हरण कर लिया तब असुर महाकाल ने यज्ञवेदी में भगवान ऋषभ देव की प्रतिमा[1] रखना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप विद्याधर कुछ न कर सका और मैं असहाय अन्य स्थान को चला गया।

उसके पश्चात असुरराज ने सगर राजा को सुलसा रानी सहित यज्ञाग्नि में होम कर दिया और बदला चुकाकर अपने स्थान को चला गया।

---

१ यह वर्णन त्रिषष्टि के अनुसार है। लेखक की मान्यता इससे सहमत नहीं है।

हे राजाओ ! इस प्रकार पाप रूपी पर्वत के समान पर्वत ने हिंसक यज्ञों का प्रारम्भ और प्रचार किया ।

लंकापति रावण इस वृत्तान्त को सुनकर सव कुछ स्पष्ट समझ गया । उसने निर्णयात्मक स्वर में कहा—

—आज से इन हिंसक यज्ञों का विरोध मेरा प्रथम कर्तव्य होगा ।

इस निर्णय से नारद को शान्ति मिली । लंकेश ने उन्हें सम्मान पूर्वक विदा कर दिया और मरुतराज को क्षमा प्रदान की । मरुत्त राजा ने विनम्र शब्दों में पूछा—

—स्वामी, यह कृपालु साधु कौन था जिसने आपके माध्यम से मुझे इस घोर पाप से विरत किया ।

रावण नारद की उत्पत्ति वताने लगा—

वह्मरुचि नाम का एक व्राह्मण तापस हो गया था । उसकी स्त्री कुर्मी सगर्भा थी । एक वार उसके आश्रम में कुछ साधु आये । उनमें से एक साधु वोला—

—तापस ! तुमने संसार का त्याग किया यह तो उत्तम है किन्तु अव भी स्त्री भोग से विरत नहीं हुए तो तुममें और गृहस्थ में अन्तर ही क्या है ?

यह सुनकर तापस को वोध हुआ । उसने निर्मल जिन शासन को ग्रहण कर लिया । कुर्मी भी श्राविका हो गई । ब्रह्मरुचि तो दीक्षा लेकर उन साधुओं के साथ चला गया । किन्तु कुर्मी ने वहीं रहकर एक पुत्र प्रसव किया । वह पुत्र जन्म के समय रोया नहीं इसीलिए उसका नाम नारद पड़ा ।

एक वार पुत्र को अकेला छोड़कर कुर्मी कहीं दूसरी जगह गई थी । उसकी अनुपस्थिति में जम्भृक देवों ने उस पुत्र का हरण कर लिया । पुत्र शोक से दुःखी कुर्मी ने इन्दुमाला आर्या के पास दीक्षा ले ली ।

वही मैं आपको सुनाये देता हूँ। —मधु ने रावण को उत्तर दिया और कहने लगा—

धातकीखण्ड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र में शतद्वार नगर में राजपुत्र सुमित्र और कुलीन पुत्र प्रभव में गहरी मित्रता थी। वे साथ-साथ पढ़े और वड़े हुए थे। सुमित्र जव युवा होकर राजा हो गया तो उसने प्रभव को भी समृद्धिवान् वना दिया। दोनों की वाल्यावस्था की मैत्री युवावस्था में और भी दृढ़ हो गई।

एक वार सुमित्र को उसका घोड़ा वेकावू होकर किसी भयानक जंगल में ले गया। वहाँ एक पल्लीपति ने अपनी सुन्दर कन्या वनमाला का उसके साथ विवाह कर दिया। उसको साथ लेकर राजा सुमित्र वापिस आया तो उससे मिलने प्रभव भी पहुँचा। वनमाला को देखकर प्रभव काम-पीड़ित हो गया।

प्रभव की रातों की नींद उड़ गई और रात-दिन वनमाला की चिन्ता करने के कारण वह दुर्वल हो गया। सुमित्र को अपने मित्र का पीला दुर्वल शरीर देखकर वहुत दुःख होता। एक दिन उसने पूछा—

—मित्र प्रभव ! तुम्हें क्या दुःख है ?

—कुछ नहीं।

—तो किस चिन्ता में घुले जा रहे हो ?

—मेरे दिल का दुःख कहने योग्य नहीं है। —प्रभव के मुख से अनायास ही निकल गया।

सुमित्र मित्र की वात सुनकर वहुत चिन्तित हुआ। वह उससे वार-वार आग्रह करके पूछने लगा तो प्रभव ने कहा—

—मित्र ! मेरे दिल का दुःख तुम जानने को आतुर हो किन्तु यदि मैंने कह दिया तो कुल-कलंकित हो जायगा। मेरी पापाभिलाषा मुझे

ही जलाये यह ठीक है। प्रकट हो गई तो औरों को भी शल्य की भाँति दुःख देगी।

मगर सुमित्र आसानी से पीछा छोड़ने वाला नहीं था। उसने अपनी मित्रता की शपथ दिलाकर प्रभव को विवश कर दिया। आखिर उसे वताना ही पड़ा कि वनमाला ही इसके दुःख का कारण है।

प्रभव की इच्छा सुनकर सुमित्र बोला—

—मित्र ! इतनी सी वात के लिए इतना दुःख सहा। तुम्हारे लिए राज्य का त्याग भी कर सकता हूँ तो एक वनमाला की क्या गिनती ?

रात्रि के प्रथम पहर में ही वनमाला प्रभव के शयनकक्ष में जा पहुँची। उसने प्रभव से कहा—

—आपके मित्र ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है। क्रीत दासी के समान आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है। मुझे आज्ञा दीजिए।

सुमित्र के त्याग ने प्रभव की आँखें खोल दीं। वह मन-ही-मन स्वयं को धिक्कारने लगा। बोला—

—वनमाला ! सुमित्र मनुष्य नहीं देवता है। उसने प्राण-प्रिया का त्याग करके महादुष्कर कार्य किया है। कहाँ उसकी सदाशयता और कहाँ मेरी पामरता। चाण्डाल के समान मैं पापी किसी को अपना मुख भी दिखाने योग्य नहीं हूँ। देवी ! तुम मेरी माता समान हो। यहाँ से चली जाओ, सुन्दरी !

प्रभव ने नमस्कारपूर्वक वनमाला को विदा कर दिया। गुप्त रीति से आये हुए राजा सुमित्र ने अपने मित्र के यह शब्द सुने तो वहुत हर्षित हुआ।

जम्भृक देवों ने इसका लालन-पालन किया और आकाशगामिनी विद्या दी।[1]

यह नारद श्रावक के व्रतों को धारण करने वाला, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारी है। हाथ में अक्षमाला तथा कमण्डल रखता है, खड़ाऊँ पहनता है और देवों के समान इधर-उधर घूमता रहता है। बालब्रह्मचारी होने के कारण इसकी सभी स्थानों पर अबाध गति है। इसी कारण इसे देवर्षि भी कहा जाता है।

नारद की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनकर मरुतराजा सन्तुष्ट हुआ। उसने रावण से क्षमा माँगी और हिंसक यज्ञों को न करने का आश्वासन दिया।

मरुतराजा ने अपनी कन्या कनकप्रभा देकर राक्षसराज को सन्तुष्ट करके विदा कर दिया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।२

उत्तर पुराण ६७।१५५-१६३, २११-२५२

---

१ सम्भवतः क्षीरकदम्ब गुरु के पास विद्याध्ययन करने की घटना इसके बाद की होगी। अथवा इन दोनों घटनाओं का ताल-मेल बिठाने का प्रयास विद्वज्जनों से अपेक्षित है। —सम्पादक

: १२ :

मित्र का अनुपम त्याग

पवन के समान वेगवान महापराक्रमी दशमुख मरुतराजा के पास से चलकर मथुरा नगरी में आया। मथुरा नरेश हरिवाहन अपने पुत्र के साथ उसके स्वागतार्थ आये। उनके पुत्र मधु के हाथ में त्रिशूल था। आदर-सत्कार से सन्तुष्ट होकर रावण ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—

—राजन्! तुम्हारे पुत्र के हाथ में यह त्रिशूल आयुध कहाँ से आया?

पिता का आज्ञासूचक संकेत पाकर पुत्र मधु मधुर शब्दों में बोला—

—लंकापति! यह आयुध मुझे मेरे मित्र चमरेन्द्र ने दिया है।

—चमरेन्द्र और तुम्हारा मित्र!—लंकेश विस्मित था।

—इस जन्म का नहीं, पूर्वजन्म का। मधु ने दशानन का विस्मय शान्त करने का प्रयास किया किन्तु लंकेश का विस्मय शान्त नहीं हुआ वरन् और भी बढ़ गया। दशानन ने पूछा—

—भद्र! उचित समझो तो पूरा वृत्तान्त सुनाओ।

—यह त्रिशूल देते हुए जो कुछ चमरेन्द्र ने मुझसे कहा था,

वनमाला के चले जाने के पश्चात् प्रभव का हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगा। अपने आपको धिक्कारते हुए हाथ में तलवार लेकर अपने कण्ठच्छेद को तत्पर हुआ। उसी समय सुमित्र ने गुप्त स्थान से निकलकर मित्र का हाथ पकड़ लिया और वोला—

—अरे मित्र ! ऐसा दुस्साहस मत करो।

मित्र को सम्मुख देखकर प्रभव लज्जा से गड़ गया। उसके मन में विचार आया—'काश ! जमीन फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ।'

किन्तु न जमीन फटी और न वह उसमें समाया। कहीं मन के विचारों से जमीन फटती है ?

सुमित्र ने उसे बड़ी कठिनाई से समझाकर स्वस्थ-चित्त किया।

प्रभव ने भी हार्दिक पश्चात्ताप प्रकट किया। दोनों मित्रों के हृदय में किसी प्रकार का कलुष न पहले था और न इस घटना के उपरान्त ही आया। उनकी मित्रता पूर्ववत ही वनी रही। इस घटना की जानकारी भी इन तीनों के अतिरिक्त और किसी को न हो सकी।

कुछ काल वाद सुमित्र ने संयम धारण कर लिया। तपस्या के प्रभाव से मृत्यु के उपरान्त वह ईशान देवलोक में देव हुआ। वहाँ से अपना आयुष्यपूर्ण करके मथुरा नगरी के राजा हरिवाहन की रानी माधवी के गर्भ से मधु नाम का पूत्र हुआ।

चमरेन्द्र ने मुझको सम्वोधित करते हुए कहा—मधु ! तुम ही मेरे पिछले भव के मित्र सुमित्र के जीव हो और मैं प्रभव का जीव।

मैं चिरकाल तक भवभ्रमण करने के पश्चात विश्वावसु की स्त्री ज्योतिर्मती से श्रीकुमार नाम का पुत्र हुआ। उस जन्म में निदानपूर्वक तप करने के कारण चमरेन्द्र हुआ हूँ।

: १३ :

सदाचार की प्रेरणा

दिग्विजय हेतु लंका से निकले हुए रावण को अठारह वर्ष हो चुके थे। उसके हृदय में विचार आया कि मेरु पर्वत के अर्हन्तों—भगवन्तों की वंदना की जाय। दृढ़ निश्चयी व्यक्तियों के विचारों को कार्यरूप में परिणत होते देर नहीं लगती। वह वंदना करने चला गया।

उसकी अनुपस्थिति में कुम्भकर्ण और विभीषण क्या करें? कर्मशील पुरुष निठल्ले तो बैठ नहीं सकते। वे पूर्व दिशा में इन्द्रराजा के दिक्‌पाल नलकुबर को पकड़ने के लिए चल दिये। रावण की आज्ञा उन्होंने पहले ही ले ली थी।

नलकुवर[1] दुर्लंघ्यपुर का राजा था। उसने आशाणी विद्या के द्वारा नगर के चारों ओर सौ योजन पर्यन्त अग्निमय किला सा बना

१ नलकुवर को कैलास पर्वत के समीप के किसी नगर का राजा और वैश्रवण का पुत्र माना गया है। रम्भा को अप्सरा माना गया है और नलकुवर की पत्नी। इन्द्र को विजय करने हेतु जब रावण जा रहा था तो मार्ग में उसने कैलास के समीप डेरा डाला। उस समय उसे रम्भा अप्सरा जाती हुई दिखाई दी। कामाभिभूत रावण ने उसके साथ बलात्कार कर डाला। रम्भा कहती ही रह गई कि वह वैश्रवण की पुत्रवधू और नलकुवर की वधू है। रम्भा से समस्त वर्णन सुनकर वैश्रवण ने

रखा था। उसमें ऐसे यन्त्र लगा रखे थे कि जिनसे आकाश में अग्नि की फुलझड़ियाँ सी छूटती हुई दिखाई देती थीं। इस प्रकार रक्षा का पूरा प्रबन्ध करके नलकुबर अग्निकुमार देव के समान नगरी में सुख से रहता था।

विभीषण और कुम्भकर्ण ने यह प्रबन्ध देखा तो निराश हो गये। दुर्लंघ्यपुर को वास्तव में दुर्लंघ्य समझकर वे कुछ दूर पीछे हटकर रावण की प्रतीक्षा करने लगे।

जैसे ही रावण आया उन्होंने इस विकट परिस्थिति से उसे अवगत करा दिया। लंकेश विस्मित रह गया। क्या करना चाहिए? किस प्रकार नलकुबर बन्दी बनाया जाय? इन सब बातों पर तीनों भाई गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे।

उनका गम्भीर विचार-विमर्श चल ही रहा था कि एक दूती ने सैनिकों से आज्ञा लेकर उनके शिविर में प्रवेश किया। उसके आने का कारण और परिचय पूछने पर उसने बताया—

—राक्षसपति! मैं नलकुबर की पत्नी उपरम्भा की निजी दासी हूँ। उनके हृदय में आपके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है। इस किले की रक्षा करने वाली आशाणी देवी है। वह भी आप के अधीन हो जायगी और रानी उपरम्भा भी। इसके बाद आप सुदर्शन चक्र भी सिद्ध कर सकेंगे। आपको स्वीकार है।

रावण तो दासी के प्रस्ताव पर विचार कर ही रहा था किन्तु विभीषण ने कह दिया—ऐसा ही होगा।

दासी प्रसन्नमन चली गई।

रावण को शाप दिया—'यदि आज से रावण किसी स्त्री पर बलात्कार करेगा तो उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जायेंगे।'

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

दशमुख एकाएक विभीषण पर बरस पड़ा—

—अरे ! तुमने यह कुल विरुद्ध कार्य कैसे स्वीकार कर लिया। हमारे कुल में किसी ने परस्त्री का मन में भी ध्यान नहीं किया। तुमने आज राक्षसकुल को कलंकित कर दिया।

विभीषण ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—

—आर्य ! मेरी बात शांतचित्त होकर सुन तो लीजिए। शुद्धमन वालों के धर्म विरुद्ध वचन नीति होते हैं, अधर्म नहीं। राक्षस कुल को कलंक तो अधर्म सेवन से लगेगा। पहले आप अपने कार्य को सिद्ध कीजिए। तत्पश्चात उपरंभा को संबोध दीजिए और अधर्म सेवन से इन्कार ! यह तो आपके हाथ है, कोई बलात्कार थोड़े ही कर लेगी वह।

राक्षसेन्द्र का कोप शान्त हो गया। उसने विभीषण की नीतियुक्त बात मान ली।

तब तक कामान्ध रानी उपरम्भा स्वयं ही वहाँ आ पहुँची। उसने आशाणी विद्या रावण को दे दी और अनेक व्यन्तर देवों से रक्षित अन्य अमोघ अस्त्र भी दिये। कामाभिभूत नारी कुछ भी कर सकती है।

दशानन ने अग्नि शान्त की और विभीषण ने नलकुबर को युद्ध करके सहज ही पकड़ लिया। वहाँ से रावण को सुर और असुरों से भी अजेय सुदर्शन चक्र भी प्राप्त हो गया।

अब उपरम्भा ने दशानन से अपनी इच्छा पूर्ति की अभिलाषा प्रकट की।

रावण ने नीतिपूर्ण गम्भीर शब्दों में समझाया—

—देवी ! यह कैसा अनर्थ ? तुम तो मेरी गुरु हो, माता हो !

—दशानन शक्ति पाकर अब चाल चल गये, अपने वचन से मुकर गये। —उपरम्भा ने उपालम्भ दिया।

—नहीं देवी ! राक्षसवंशी अपने वचन का पालन प्राण देकर भी करते हैं।

—कहाँ, मेरे साथ तो तुम छल कर रहे हो। तुम्हारे लिए मैंने पति से विश्वासघात किया और फिर भी मेरी इच्छा पूरी न हुई। —उपरम्भा के स्वर में विवशताजन्य निराशा थी।

दशानन ने मीठे शब्दों में कहा—

—देवी ! जिस समय तुम्हारी दासी को मैंने वचन दिया था तब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था किन्तु तुमने जब से मुझे विद्या सिखाई, मेरा तुम्हारा गुरु-शिष्य सम्बन्ध हो गया और गुरु के साथ काम सम्बन्ध यह धर्म और नीति दोनों ही दृष्टियों से घोर अधर्म है। अधर्म का सेवन न मुझे करना चाहिए और न तुम्हें।

उपरम्भा इन युक्तिपूर्ण वचनों का प्रतिकार न कर सकी और हाथ मलती रह गयी।

राक्षसपति ने नलकुबर को भी बन्धनमुक्त कर दिया और उसे पुनः दुर्लंघ्यपुर के सिंहासन पर बिठा कर समझाया—

—भद्र ! मेरा उद्देश्य किसी का राज्य छीनना नहीं है। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि तुम नम्र बने रहो। यह व्यर्थ के कौतुक करके जन-साधारण को भयभीत मत करो। धर्मपूर्वक प्रजा का पालन ही राजा का कर्तव्य है।

रानी उपरम्भा के अपराध को क्षमा करने की प्रेरणा देते हुए लंकेश बोला—

—राजन् ! गलती सबसे हो जाती है। पूर्वजन्म के तीव्र पापों का उदय विवेकी जनों की भी बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। तुम उपरम्भा

को क्षमा करो। वह कासध्वज और सुन्दरी के उत्तम और निष्कलंक कुल में उत्पन्न हुई है। उसकी पाप भावना पूर्वकृत कर्मों के उदय द्वारा प्रेरित थी। हृदय से वह सच्ची और पतिव्रता है और फिर राजन् !

'है बड़ी अन्त में क्षमा दण्ड से न्यायी।'

राजा नलकुवर ने रावण के प्रति विनम्र होकर कहा—'मैं आज से आपको स्वामी मानता हूँ। जैसी आपकी इच्छा वैसा ही मैं करूँगा। मुझे अब उपरम्भा पर तनिक भी क्षोभ नहीं है।

रानी उपरम्भा तीव्र हार्दिक पश्चात्ताप करके शुद्ध हो ही चुकी थी। पति-पत्नी दोनों ने राक्षस भाइयों का खूब सत्कार किया और उन्हें भरे नयनों तथा गद्गद हृदय से विदा किया।

नलकुवर रावण को स्वामी मानते हुए पूर्ववत् राज्य कार्य करने लगा। अब उसकी प्रजा में भयजनित नहीं वरन् प्रेमजनित शान्ति थी। रावण की सद्प्रेरणा से प्रजा को सुख-शान्ति मिली और पति-पत्नी में अपूर्व प्रेम जगा।

—त्रिषष्टि शलाका ७।२

❊❊

: १४ :

इन्द्र का पराभव

दुर्लंघ्यपुर से रावण की सेना ने रथनूपुर की ओर प्रयाण किया। उसका लक्ष्य था इन्द्र-विजय।

गुप्तचरों ने आकर यह वात राज्यसभा में इन्द्र को वताई। किन्तु, उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। कर्ण परम्परा से यह समाचार धर्मपरायण राजा सहस्रार (इन्द्र के पिता जो उसे राज्य देकर धर्म-पालन में लग गये थे) को भी ज्ञात हुए। उन्होंने पुत्र को वुलाकर समझाया—

—वत्स ! मैं जानता हूँ कि तुम महापराक्रमी हो। तुमने अपने वंश की कीर्ति को दिग्‌दिगन्तव्यापिनी वना दिया है किन्तु अब समय वदल चुका है। रावण उठती हुई शक्ति है। उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। तुम अपनी पुत्री रूपवती का विवाह उसके साथ कर दो। वह सन्तुष्ट हो जायगा और तुम्हारी विपत्ति भी टल जायगी।

—पिताजी ! यह आप क्या कहते हैं ? कहाँ वह छोटी सी नगरी का अधिपति रावण और कहाँ मैं ? उसकी और मेरी समानता ही क्या है ? च्यूँटी की तरह मसल दूँगा उसे। —अभिमानी इन्द्र ने पिता को प्रत्युत्तर दिया।

पिता सहस्रार समझ गये—विनाश काले, विपरीत बुद्धिः। परन्तु पुत्र-मोह के वशीभूत होकर बोले—

—पुत्र ! कभी-कभी च्यूँटी भी हाथी जैसे विशालकाय पशु का प्राणान्त कर देती है। जिसका पुण्य-प्रबल होता है उसके समक्ष सभी को झुकना पड़ता है। इस समय रावण का प्रबल पुण्ययोग है। दक्षिण भरतार्द्ध के समस्त राजा उसके वशीभूत हो चुके हैं।

इन्द्र को पिता के शब्द बहुत बुरे लगे। वह वहाँ से उठकर चला आया। सभा में बैठकर वह रावण का सामना करने का विचार करने लगा।

रावण की सेना ने रथनूपुर के चारों ओर घेरा डाल दिया। चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती, राक्षस कटक ही दिखाई पड़ता। इन्द्र रावण से युद्ध करने की योजना बना ही रहा था कि दूत ने आकर कहा—

—राजा इन्द्र ! मैं महाबली रावण का दूत हूँ। मेरे स्वामी की आज्ञा है कि यदि आप कुशलता चाहते हैं तो उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित कीजिए अन्यथा शक्ति। अब आपकी इच्छा है जो चाहे सो करें। आपके सम्मुख दो ही मार्ग हैं—भक्ति का प्रदर्शन अथवा शक्ति का !

गर्वयुक्त स्वर में इन्द्र ने उत्तर दिया—

—दूत ! उस राक्षस से जाकर स्पष्ट कह दो—हमें उसकी चुनौती स्वीकार है। वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करे और हमारी शक्ति देखे।

स्पष्ट निर्णयात्मक उत्तर सुनकर दूत चला गया।

दूसरे दिन के बालरवि ने दोनों ओर की सेनाओं को युद्ध के लिए सन्नद्ध देखा। सूर्योदय ही मानो युद्ध का संकेत था। रवि की

किरणों के साथ ही रणभूमि में रक्त बहने लगा। योद्धा अपनी युद्ध-कुशलता दिखाने लगे।

राक्षसेन्द्र रावण अपने गज भुवनालंकार पर आरूढ़ होकर इन्द्र के सम्मुख आया। इन्द्र भी अपने हाथी ऐरावण पर सवार था।

दोनों परस्पर अनेक प्रकार के आयुधों से युद्ध करने लगे। स्वामिभक्त पशु भी दन्त प्रहार, शुण्ड प्रहार करके अपने बल का प्रदर्शन कर रहे थे।

रणकुशल और अति छली रावण अचानक इन्द्र के हाथी ऐरावण पर उछलकर जा कूदा। बिजली की-सी तेजी से उसने महावत को, मार दिया और इन्द्र को पकड़ लिया। इन्द्र इस अचानक वार के लिए तैयार नहीं था। वह भौचक्का सा रह गया। उसकी विस्मित दशा का लाभ उठाकर रावण ने उसे बन्दी बना लिया।

इन्द्र के बन्दी होते ही रावण की विजय हो गई और उसकी सेना ने अस्त्र डाल दिये।

विजय-दुन्दुभी बजाता हुआ लंकेश बन्दी इन्द्र को लेकर लंका में आया और उसे बन्दीगृह में डाल दिया।[1]

---

१ (क) रावण के साथ सुमाली राक्षस (रावण का नाना) भी गया था और उसकी मृत्यु सवित्र नाम के वसु के हाथों हुई।

(ख) इन्द्र के पुत्र जयन्त को दैत्य राजा पुलोमा दूर हटा ले गया। दैत्य राजा पुलोमा शची का पिता और जयन्त का नाना था। वह अपने दौहित्र (धेवते) को लेकर समुद्र में छिप गया।

(ग) शंकरजी से प्राप्त हुई माया से इन्द्रजीत ने अदृश्य होकर इन्द्र को बाँध लिया। इस प्रकार उनकी विजय हुई और पिता-पुत्र दोनों ही इन्द्र को लंका ले आये। [वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

पुत्रमोह से विवश राजा सहस्रार दिक्पालों सहित लंका में आया[1] और राक्षसेन्द्र रावण से विनय करने लगा—

—महाबली लंकेश ! मेरे पुत्र इन्द्र को मुक्त कर दो। मैं तुमसे पुत्र की भिक्षा माँगता हूँ।

राजा सहस्रार के दीन वचनों से रावण प्रभावित हो गया। उसने कहा—

—राजन् ! आप धर्मनिष्ठ हैं। मैं आपकी इच्छा की अवहेलना नहीं कर सकता किन्तु इन्द्र को उसके दम्भ का दण्ड अवश्य भुगतना पड़ेगा। उसने मानव होते हुए भी स्वर्गपति इन्द्र की नकल की। उसी के समान वह स्वयं को समझने लगा। उसने दिक्पाल आदि नियुक्त किये। यह उसका घोर अपराध है। यदि वह दण्ड भुगतने को तैयार हो तो मैं मुक्त कर सकता हूँ।

—क्या दण्ड देंगे आप ? —दुःखी पिता ने पूछा।

—अपने निवासगृह के समान लंकापुरी की स्वच्छता, प्रतिदिन सुगन्धित जल से सिंचन और माली के समान प्रातःकाल देवालयों में विकसित और सुरभित पुष्प पहुँचाना आदि—इन कार्यों के उत्तरदायित्व को आपका पुत्र भली-भाँति पूरा करे तो मैं उसे छोड़ दूँगा। मेरी कृपा से वह अपना राज्य ले और सुखपूर्वक रहे।

---

१ इन्द्र को छुड़ाने के लिए ब्रह्माजी स्वयं लंका पहुँचे। इन्द्रजीत ने 'यदि कभी मैं युद्ध के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ होम को पूर्ण न करके युद्ध में प्रवृत्त हो जाऊँ तभी मेरी मृत्यु हो अन्यथा नहीं' यह वर लेकर इन्द्र को छोड़ा।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

राजा सहस्रार ने स्वीकृति दी और रावण ने इन्द्र को मुक्त कर दिया।

तभी से यह प्रसिद्ध है कि इन्द्र रावण की लंका में झाड़ लगाता था।

× × ×

मुक्त होकर इन्द्र रथनूपुर लौट आया। अपने पराभव से वह वहुत दुःखी था। क्योंकि तेजस्वी पुरुष अपमान को मृत्यु से भी दुःसह समझते हैं। कहाँ तो इन्द्र के अनुचर लंका पर राज्य करते थे और कहाँ अव वह स्वयं लंका का सफाई जमादार था।

रथनूपुर के वाहर उद्यान में एक वार निर्वाणसंगम केवली का समोसरण आया। इन्द्र भी उनकी धर्म-देशना सुनने गया। भक्तिपूर्वक नमन वन्दन करके उसने देशना सुनी और उसके बाद अंजलि बाँधकर पूछने लगा—

—सर्वज्ञदेव ! रावण के हाथों मेरा पराभव किस कर्म के कारण हुआ ?

अनन्तज्ञानी केवली ने वताया—

—अरिंजय नगर में वहुत काल पहले ज्वलनसिंह नाम का विद्याधर राजा था। उसकी रानी वेगवती ने अहिल्या नाम की अति रूपवती कन्या को जन्म दिया। कन्या युवती हुई तो ज्वलनसिंह ने उसका स्वयंवर किया। उस स्वयंवर में चन्द्रावर्त नगर का राजा आनन्दमाली और सूर्यावर्त नगर का राजा तडित्प्रभ भी आये। अहिल्या ने स्वेच्छा से आनन्दमाली का वरण किया। तडित्प्रभ ने इसे अपना अपमान समझा और आनन्दमाली से ईर्ष्या रखने लगा।

कुछ काल पश्चात् आनन्दमाली प्रव्रजित हो गये और श्रीसंघ

के साथ विहार करने लगे। एक बार मुनिसंघ विहार करता हुआ रथावर्त पर्वत पर आया। मुनि आनन्दमाली एकान्त स्थान में ध्यानावस्थित हो गये। तडित्प्रभ की मुनि पर दृष्टि पड़ी तो वह ईर्ष्या से जल उठा और उन्हें बाँधकर अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा।

श्रमण परीसहों से घबड़ाते नहीं, वरन् और भी आत्मलीन हो जाते हैं। मुनि आनन्दमाली भी परीसहों में अडोल-अकम्प हो गये। किन्तु संघाचार्य कल्याण गणधर से मुनि का अकल्याण नहीं देखा गया। वे तेजोलेश्या का प्रयोग तडित्प्रभ पर करने ही वाले थे कि उसकी पत्नी सत्यश्री कहीं से आ गई। उसने भक्तिभाव से संघाचार्य की विनय की और उसे बचा लिया।

अनेक जन्मों से भव परिभ्रमण करता हुआ तडित्प्रभ का जीव तुम्हारे रूप में उत्पन्न हुआ।

केवली भगवान ने इन्द्र को सम्बोधित करके कहा—

—इन्द्र ! तुम्ही तडित्प्रभ के जीव हो और मुनि के तिरस्कार एवं प्रहार रूपी घोर पापकर्म के कारण ही तुम्हें यह अपमान सहना पड़ा है।[1]

---

१ यहाँ इन्द्र के पराभव का कारण अहिल्या के साथ बलात्कार बताया है। अहिल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी। इन्द्र ने महर्षि गौतम का रूप रखकर उसे दूषित कर दिया था। उसी पाप के फलस्वरूप इन्द्र को पराजित होना पड़ा था।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

विशेष—यहाँ इन्द्र असली है और वह अलकापुरी का स्वामी, देवराज इन्द्र है।

—सम्पादक

केवली से अपने पूर्वभव का पापकर्म सुनकर इन्द्र को वैराग्य हो आया। उसने अपने पुत्र दत्तवीर्य को राज्य भार सौंपा और स्वयं प्रव्रजित हो गया।

मुनि पर्याय धारण करके इन्द्र ने घोर तपश्चरण किया और मुक्ति पाई।

× × ×

एक बार रावण केवली अनन्तवीर्य की वन्दना करने गया। मुनिश्री को स्वर्णतुंग गिरि पर केवलज्ञान हुआ था और उनका समवसरण भी वहीं रचा गया।

केवली भगवान अनन्तवीर्य ने परम कल्याणकारी देशना दी। रावण ने भी वह कर्णप्रिय देशना सुनी और आनन्द विभोर हो गया।

मानव का स्वभाव है कि वह भविष्य के प्रति सदैव सशंकित रहता है। 'कल क्या होगा' यह जानने की इच्छा उसे सदैव लगी रहती है। रावण भी इस भावना का अपवाद नहीं था। देशना समाप्त होने के पश्चात् अंजलि बाँधकर उसने जिज्ञासा प्रकट की—

—प्रभो ! मेरा मरण किसके हाथों होगा ?

—दशमुख ! तुम प्रतिवासुदेव हो और तुम्हारी मृत्यु वासुदेव के हाथों होगी।

—भगवन् ! मृत्यु का कारण ?

—परस्त्री दोष।

भगवान के इस संक्षिप्त से उत्तर को रावण ने हृदय की गहराइयों में उतार लिया। उसने तत्काल अभिग्रह लिया—

—'जो परस्त्री मुझे न चाहेगी उसका मैं कभी भोग नहीं करूंगा।'

ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा[1] करके रावण केवली भगवान की वन्दना करके चला आया और लंका में आकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

—त्रिषष्टि शलाका ७/२

❊ ❊

---

१ वाल्मीकि रामायण के अनुसार वलात्कार त्याग की घटनाएँ निम्न प्रकार हैं। इनमें रावण त्याग नहीं करता, वरन् भय के कारण सम्भोग में प्रवृत्त नहीं हो पाता।

(क) लंकादहन के पश्चात जब रावण अपनी राज्यसभा में मन्त्रियों, भाइयों, पुत्रों और सभासदों के बीच बैठा विचार-विमर्श कर रहा था तब महापार्श्व नामक सभासद ने उसे सीता के साथ वलात् भोग करने की सलाह दी। इस पर रावण ने कहा :—

—महापार्श्व ! बहुत दिन हुए एक बार मैंने पुंजिकस्थला नाम की अप्सरा को पितामह (ब्रह्माजी) के आश्रम में जाते देखा। वह मेरे भय से लुकती-छिपती जा रही थी। मैंने उसके साथ वलात् भोग कर लिया। इसके बाद जब वह ब्रह्माजी के आश्रम में पहुँची तो उन्हें सब बातें मालूम हो गईं। इस पर उन्होंने रुष्ट होकर मुझे शाप दिया कि 'आज से यदि तुम किसी दूसरी स्त्री के साथ वलात्कारपूर्वक समागम करोगे तो अवश्य ही तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।' इस शाप के भय से ही मैं सीता को जबर्दस्ती अपनी शय्या पर नहीं ले जाता।

[वाल्मीकि रामायण, युद्ध काण्ड]

(ख) दूसरा शाप रावण को तब मिला जब उसने इन्द्र से युद्ध हेतु जाते समय अप्सरा रम्भा के साथ वलात्कार किया था। तब रम्भा के मुख से उसकी करुण कथा सुनकर वैश्रवण (रम्भा के पति नल-कूबर का पिता और ऋषि विश्रवा का पुत्र) ने शाप दिया 'कि आज से रावण किसी न चाहती स्त्री से जबर्दस्ती संभोग करेगा तो उसके सिर के सात टुकड़े हो जायेंगे।'

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

: १५ :

सती अंजना

महेन्द्रपुर नगर के राजा महेन्द्र की रानी हृदयसुन्दरी से अरिंदम आदि सौ पुत्रों के बाद अंजनासुन्दरी नाम की एक पुत्री का जन्म हुआ। उसके युवावस्था में प्रवेश करने पर राजा महेन्द्र ने पुत्री के लिए वर की खोज प्रारम्भ की। अनुचर अनेक कुमारों के चित्र लाकर देने लगे। एक दिन राजा के पास दो एक-से चित्र आये। दोनों ही कुमार एक-से कुल-शील वाले और समान पराक्रमी थे।

—मन्त्रिवर ! ये दो कुमारों के चित्र हैं। एक है विद्याधरपति हिरण्याभ तथा उसकी रानी सुमना का पुत्र—विद्युत्प्रभ और दूसरा आदित्यपुर के विद्याधर राजा प्रह्लाद तथा उसकी रानी केतुमति का पुत्र पवनंजय। इनमें से किसे अपनी पुत्री देनी चाहिए।

—स्वामी ! पवनंजय ही उचित वर है, क्योंकि वह दीर्घायु वाला है और विद्युत्प्रभ की आयु केवल अठारह वर्ष ही शेष है। अतः मेरी सम्मति में तो कन्या पवनंजय को ही देना चाहिए। —मन्त्री ने स्पष्ट और निर्भीक सम्मति दी।

राजा महेन्द्र ने मन्त्री की सम्मति स्वीकार कर ली।

उस समय अनेक विद्याधर राजा अरिहन्त भगवन्तों की वन्दना के निमित्त जा रहे थे। उनमें विद्याधर प्रह्लाद भी था। राजा महेन्द्र ने

उसे देखा तो अपनी पुत्री के विवाह का निवेदन किया। प्रह्लाद ने तुरन्त स्वीकृति दे दी और तीन दिन बाद मानसरोवर पर लग्न करना निश्चित हो गया।

लग्न के निमित्त राजा महेन्द्र अपने परिवार सहित मानसरोवर जा पहुँचा।

युवा हृदय अधीर होता है। भावी पत्नी कैसी है, जिसके साथ जीवन गुज़ारना है, उसकी एक झलक देखने की उत्कण्ठा, तीव्र लालसा होती ही है। पवनंजय के हृदय में भी ऐसे ही विचार उठ रहे थे। उसने अपने मित्र प्रहसित को अपनी अधीरता से अवगत कराया। प्रहसित ने हँसकर कहा—

—अभी से इतने अधीर मत बनो। जी भरकर देख लेना, देखते ही रहना—तीन दिन की ही तो बात है।

—ये तीन दिन तो तीन युग हैं। मित्र बस एक झलक मिल जाय।

प्रहसित ने समझ लिया कि कुमार भावी पत्नी को देखे बिना नहीं मानेगा। उसने धैर्य बँधाया—

—तुम्हारी यही इच्छा है तो अर्धरात्रि को हम लोग अदृश्य रूप से चलेंगे तब तुम अपनी प्रिया को देख लेना।

कुमार आश्वस्त हुआ। अर्धरात्रि हुई। दोनों मित्र विद्याबल से अदृश्य होकर अंजनासुन्दरी के महल में आये। अंजना के भवन में दीपक जल रहा था और उसकी दो सखियाँ बैठी चुहल कर रही थीं।

वसंततिलका नाम की सखी ने कहा—सखी ! तेरे धन्य भाग्य हैं, जो पवनंजय जैसा पति मिल रहा है।

तुरन्त दूसरी सखी मिश्रका ने प्रतिवाद किया—अरे सखी ! विद्युत्प्रभ के समान दूसरा कौन है ?

—तू कुछ भी नहीं जानती ! विद्युत्प्रभ तो अल्प आयु वाला है। —वसन्ततिलका ने स्पष्ट किया।

—वसन्ततिलका ! तू तो मन्दबुद्धि है। अरे अमृत थोड़ा भी हो तो अच्छा और विष वहुत-सा भी हो तो किस काम का ? —मिश्रका ने वसन्ततिलका की वात काटी।

दोनों सखियाँ इस प्रकार वाद-विवाद कर रही थीं और अंजना लज्जावश अपना मुख नीचा किये बैठी रही। उसने न समर्थन किया और न प्रतिवाद।

पवनंजय अपने लिए विष और विद्युत्प्रभ के लिए अमृत की उपमा सुनकर कुपित हो गया। उसके मुख से अनायास ही निकल पड़ा—अंजना विद्युत्प्रभ के प्रति आकर्पित है।

प्रहसित ने पूछा—तुमने कैसे जाना ?

—वह प्रतिवाद नहीं कर रही है, यह उसके प्रति अनुरागवती होने का स्पष्ट प्रमाण है।

—तुम भूलते हो मित्र ! लज्जा ने अंजना के मुख पर ताला लगा रखा है। कुलीन कन्याएँ मुँहफट नहीं होतीं।

मित्र की वात पवनंजय के गले नहीं उतरी। उसे अंजना से घृणा हो गई। दोनों मित्र वहाँ से चुपचाप अदृश्य रूप में ही लौट आये।

मानसरोवर पहुँचकर पवनंजय वापिस अपने नगर को जाने लगा तो प्रहसित ने पूछा—यह क्या कर रहे हो, मित्र !

—नगर वापिस जा रहा हूँ। जो कन्या किसी दूसरे के प्रति अनुरक्त हो उसके साथ विवाह करने से क्या लाभ ?

—भ्रम हो गया है, तुम्हें ! अंजना विल्कुल निर्दोष है।

—मैं नहीं मानता।

प्रहसित समझ गया कि पवनंजय की बुद्धि पर भ्रम का काला परदा पड़ गया है। उसे किसी दूसरे ढंग से समझाकर विवाह के लिए तैयार करना चाहिए। जब पति-पत्नी मिलन होगा तो भ्रम की दीवार स्वयं ही ढह जायेगी। सोच-विचार कर बोला—

—मित्र! वचन भंग करोगे। तुम्हारे पिता का दिया हुआ वचन टूट जायगा तो उनकी क्या दशा होगी? कुछ सोचा है, तुमने।

पवनंजय इस बात का कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सका और मित्र के मुख की ओर देखने लगा।

प्रहसित ही पुनः बोला—

—कुमार! क्षत्रिय को वचन भंग होने का दुःख मृत्यु से भी बढ़कर होता है। तुम्हारे पिता की आज्ञा है विवाह करने की और तुम्हारा कर्तव्य है उनकी आज्ञा का पालन। पिता की आज्ञा समझ कर ही विवाह करो।

कुमार मौन हो गया किन्तु उसके हृदय की शल्य नहीं निकली।

तीसरे दिन पवनंजय और अंजना का विवाह हो गया। राजा महेन्द्र ने स्वागत-सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया और प्रह्लाद सपरिवार अपने नगर को चला आया।

नवदम्पत्ति को महल की सातवीं मंजिल पर भवन दिया गया। बड़े प्यार और स्नेह से सासू केतुमती ने अंजना को वहाँ पहुँचा दिया।

पति की प्रतीक्षा करती हुई अंजना अपनी सुहाग सेज पर उत्कंठित हृदय लिए बैठी रही किन्तु पति-मिलन न हुआ। रात्रि आती, सुहागिनी प्रतीक्षा करती और दिन निकल आता। पति-मिलन की तो बात ही क्या अंजना को तो पति-दर्शन भी दुर्लभ हो गये। एक ही महल में रहते हुए तात्रपति पति की एक झलक पाने को भी तरस-तरस जाती।

दिन बीते, मास गुजरे और वर्ष निकल गये। महल के दास-दासी भी अंजना के दुःख से दुःखी थे। वह रात-दिन मछली की भाँति तड़पती किन्तु पवनंजय का हृदय न पसीजा।

प्रतीक्षा करते-करते अंजना को कई वर्ष गुजर गये। धन्य था उसका धैर्य कि पति-स्मरण एक क्षण को भी नहीं भूली।

× × ×

आदित्यपुर की राज्य सभा में लंकापति रावण का दूत आया और कहने लगा—

—राजन् ! दुर्मति वरुण ने लंकापति से शत्रुता मोल ले ली है। उसको निर्मद करने हेतु खर-दूषण राक्षस सेना के साथ गये तो उसने अपने वीरपुत्रों राजीव और पुण्डरीक आदि के साथ युद्ध में पराजित करके उनको बन्दी बना लिया। अब वह और भी गर्वोक्ति करने लगा है। इसलिए लंकापति स्वयं उसका मान मर्दन करने जा रहे हैं। उनकी इच्छा है आप भी उनकी सहायता करें।

लंकापति की इच्छा प्रह्लाद के लिए आदेश थी। वे सैन्य सजाकर चलने को उद्यत हुए तो पवनंजय ने कहा—

—पिताजी ! मेरे रहते हुए आपको जाने की आवश्यकता नहीं। आप मुझे आज्ञा दीजिए।

पिता ने पुत्र की बात मान ली। पवनंजय ने प्रयाण आरम्भ किया। उस समय अंजना सातवीं मंजिल से उतरकर महल के मुख्य द्वार के खम्भे से टिक कर खड़ी हो गई। परित्यक्ता का तन सूखी लकड़ी के समान हो गया था—सौंदर्य विहीन उलझे बाल वाली अंजना पति के समीप आते ही उनके चरणों में गिरकर बोली—

—नाथ ! आप सबकी खबर रखते हैं किन्तु आज तक मुझे भूले

—नाथ ! आज ही मैंने ऋतु-स्नान किया है। यदि गर्भवती हो गई तो मेरा कौन विश्वास करेगा ? पिता और पति दोनों ही कुल कलंकित हो जायेंगे।

पवनंजय ने अपनी मुद्रिका उतारकर देते हुए कहा—

—ऐसा नहीं होगा। मेरी मुद्रिका तुम्हारे सतीत्व की साक्षी है। मैं शीघ्रातिशीघ्र लौटूंगा।

पत्नी को आश्वासन देकर कुमार चले गये और रावण के साथ वरुण को विजित करने को प्रस्थित हुए।

× × ×

अंजना की आशंका सत्य प्रमाणित हुई। कुछ मास पश्चात ही गर्भ के लक्षण स्पष्ट हो गये। सास केतुमती ने उसे कलंकिनी मान लिया। अंजना ने मुद्रिका दिखाई, सतीत्व का वास्ता दिया, अपने पिछले निर्दोष आचरण की स्मृति दिलाई परन्तु केतुमती नहीं पसीजी। उसने सेवकों द्वारा अंजना और वसन्ततिलका को महेन्द्रपुर नगर के वाहर वन में छुड़वा दिया।

उस समय संध्या काल था। कुछ समय वाद सूर्य डूव गया, मानो सती पर लगे कलंक से दुःखी होकर उसने भी अपना मुख अस्ताचल की ओट में छिपा लिया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।३

**

: १६ :

हनुमान का जन्म

उस भयानक और निर्जन वन में दोनों सखियों—अंजना और वसन्ततिलका ने रात्रि व्यतीत की और प्रातः होते ही पिता की नगरी महेन्द्रपुर को प्रस्थान किया। दीन हीन मलिन बाला राजमहल के द्वार पर पहुँची तो पिता महेन्द्र ने सारी हकीकत जान उसे कलंकिनी ही समझा। माता ने भी दुत्कार दिया—'कलंकिनी ! तू होते ही क्यों न मर गई ? मेरी कोख लजा कर जीवित खड़ी है, किसी कुए-तालाब में डूब मर !'

भाई अरिंदम ने व्यंग वाण मारे—कुलटा ! अब यहाँ क्या हम सबके मुँह पर भी कालिख पोतने आई है। जिसके साथ मुँह काला किया उसी के पास जा।

पिता के तीक्ष्ण शब्द थे—मेरी उज्ज्वल कीर्ति को कलंकित करने वाली तू मेरी पुत्री नहीं शत्रु है। अरे ऐसा तो निकृष्ट शत्रु भी नहीं करता जैसा तूने किया।

माता-पिता-भाइयों ने ही जब दुत्कारा तो उसे संसार में चारों ओर अँधेरा ही नजर आने लगा। अँधेरे में चमक की एक लकीर दिखाई दी, मन्त्री के सहानुभूतिपूर्ण वचन। उसने महाराज से कहा—

—राजन् ! विवेक से काम लीजिए। यह कलंकिनी है या नहीं

ही रहे। मैं आपको कैसे भूल जाती ! मेरी कामना है आपका मार्ग सुखकारी हो।

अहो, अंजना का कैसा दुर्भाग्य ! पति ने उसकी ओर देखा तक नहीं, घृणा से मुख फेर कर चले गये।

पति द्वारा सार्वजनिक अवहेलना सती न सह सकी। वह अपने भवन में आकर कटे वृक्ष के समान गिर पड़ी।

× × ×

पवनंजय वहाँ से चलकर मानसरोवर पहुँचे। रात्रि विश्राम के लिए सेना ने पड़ाव डाल दिया। सेना विश्राम में निमग्न थी और रात्रि की नीरवता एक चकवी के आक्रन्दन से भंग हो रही थी। कुमार पवनंजय की विचारधारा एकदम पलटी—जब यह चकवी दिन भर पति के साथ रमते हुए मात्र रात्रि-वियोग के कारण ऐसा घोर विलाप कर रही है तो इतने वर्ष के लगातार वियोग ने अंजना की क्या दशा कर दी होगी ?

अधीर होकर पवनंजय ने मित्र प्रहसित को अपना विचार बताया। प्रहसित सन्तुष्ट हुआ। दोनों मित्र तत्काल वहाँ से चले और अंजना के भवन के बाहर जा पहुँचे।

उस समय सखी वसन्ततिलका अंजना को धैर्य बँधा रही थी—सखी ! धीरज रख। कुमार को अवश्य तुझ पर दया आयेगी।

—कैसे धीरज रखूँ, सखी ! इतने वर्ष हो गये। आज सारी लोक लज्जा छोड़कर उनके समक्ष गई तो भी वे मेरी उपेक्षा कर गये। एक दिन लज्जावश मिश्रका को नहीं रोका तो भी मेरा भाग्य फूट गया और आज लज्जा छोड़ी तो भी उनका अनुराग न मिला। अब तो यह पापी प्राण निकल जायँ तभी इस विरह से पीछा छूटे। —अंजना ने दुःखी स्वर में कहा।

उसी समय भवन के द्वार पर प्रहसित दिखाई दिया। अंजना पर-पुरुष को देखकर कुपित हो गई। उसने कड़ककर पूछा—कौन ?

—प्रहसित !

—यहाँ आने का साहस कैसे हुआ ?

—मैं गैर नहीं, आपका हितैषी ही हूँ।

—पति ही जिसका हितैषी नहीं है, पर-पुरुष क्यों होगा ? तुरन्त निकल जाओ यहाँ से अन्यथा मैं यहीं से कूद कर प्राण त्याग दूँगी।

—यह प्राण त्यागने का समय नहीं, प्राणपति से मिलने का है। मेरे पीछे देखिए कौन खड़ा है ?

अंजना ने देखा तो सामने कुमार पवनंजय प्रेम विह्वल खड़े थे। सती विस्मित सी रह गई। उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। लड़खड़ा कर गिरने लगी तो कुमार ने आगे बढ़कर सम्भाल लिया। पति का स्पर्श पाकर सती की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। चिर वियोग आँसुओं के रूप में बहा जा रहा था।

कुमार ने अंजना से क्षमा माँगते हुए कहा—

—देवी ! मेरा अपराध अक्षम्य है फिर भी मुझे क्षमा करो।

अंजना का गला रुँध गया था। बड़ी कठिनाई से बोल सकी—

—नाथ ! मैं तो जनम-जनम की दासी हूँ। मेरे पाप कर्मों का ही दोष है। आप क्षमा माँगकर मुझे और भी लज्जित न करें।

पवनंजय ने प्रिया के गालों पर बहते हुए आँसू पोंछ डाले।

पति-पत्नी को अनुरक्त जानकर प्रहसित और वसन्ततिलका पहले ही बाहर निकल गये थे।

एकान्त में पति-पत्नी का मिलन हुआ। रात्रि के अन्तिम पहर में कुमार जाने लगे तो अंजना ने विनय की—

—नाथ ! आज ही मैंने ऋतु-स्नान किया है। यदि गर्भवती हो गई तो मेरा कौन विश्वास करेगा ? पिता और पति दोनों ही कुल कलंकित हो जायेंगे।

पवनंजय ने अपनी मुद्रिका उतारकर देते हुए कहा—

—ऐसा नहीं होगा। मेरी मुद्रिका तुम्हारे सतीत्व की साक्षी है। मैं शीघ्रातिशीघ्र लौटूंगा।

पत्नी को आश्वासन देकर कुमार चले गये और रावण के साथ वरुण को विजित करने को प्रस्थित हुए।

× × ×

अंजना की आशंका सत्य प्रमाणित हुई। कुछ मास पश्चात ही गर्भ के लक्षण स्पष्ट हो गये। सास केतुमती ने उसे कलंकिनी मान लिया। अंजना ने मुद्रिका दिखाई, सतीत्व का वास्ता दिया, अपने पिछले निर्दोष आचरण की स्मृति दिलाई परन्तु केतुमती नहीं पसीजी। उसने सेवकों द्वारा अंजना और वसन्ततिलका को महेन्द्रपुर नगर के वाहर वन में छुड़वा दिया।

उस समय संध्या काल था। कुछ समय वाद सूर्य डूब गया, मानो सती पर लगे कलंक से दुःखी होकर उसने भी अपना मुख अस्ताचल की ओट में छिपा लिया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।३

❋ ❋

: १६ :

हनुमान का जन्म

उस भयानक और निर्जन वन में दोनों सखियों—अंजना और वसन्ततिलका ने रात्रि व्यतीत की और प्रातः होते ही पिता की नगरी महेन्द्रपुर को प्रस्थान किया। दीन हीन मलिन बाला राजमहल के द्वार पर पहुँची तो पिता महेन्द्र ने सारी हकीकत जान उसे कलंकिनी ही समझा। माता ने भी दुत्कार दिया—'कलंकिनी ! तू होते ही क्यों न मर गई ? मेरी कोख लजा कर जीवित खड़ी है, किसी कुए-तालाव में डूब मर !'

भाई अरिंदम ने व्यंग बाण मारे—कुलटा ! अव यहाँ क्या हम सबके मुँह पर भी कालिख पोतने आई है। जिसके साथ मुँह काला किया उसी के पास जा।

पिता के तीक्ष्ण शब्द थे—मेरी उज्ज्वल कीर्ति को कलंकित करने वाली तू मेरी पुत्री नहीं शत्रु है। अरे ऐसा तो निकृष्ट शत्रु भी नहीं करता जैसा तूने किया।

माता-पिता-भाइयों ने ही जव दुत्कारा तो उसे संसार में चारों ओर अंधेरा ही नजर आने लगा। अँधेरे में चमक की एक लकीर दिखाई दी, मन्त्री के सहानुभूतिपूर्ण वचन। उसने महाराज से कहा—

—राजन् ! विवेक से काम लीजिए। यह कलंकिनी है या नहीं

इसका निर्णय इसके पति पवनकुमार पर छोड़ दिया जाय। पवनकुमार को बुलाकर सच्चाई का पता लगवाइये और तब तक पुत्री को घर में आश्रय दे दीजिए। यही इस समय उचित है।

—नहीं मन्त्री ! मैं इसे आश्रय नहीं दे सकता।

—पुत्री नहीं, दासी समझकर ही इस पर दया कीजिए। यह अभागिनी इस दशा में कहाँ जायेगी ?

—कहीं भी जाय ? पहाड़ से गिर कर मर जाय। मुझे इसकी सूरत से नफरत है। मन्त्रीजी ! आप चुप हो जाइये। मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। —राजा ने अन्तिम निर्णय कर दिया।

तीव्र पाप का उदय था अंजना का। जिन हाथों ने उसे फूल की तरह प्यार-दुलार में पाल-पोसकर वड़ा किया था, आज उन्हीं हाथों ने उसे धक्के मार कर निकाल दिया।

पति और पितृगृह से तिरस्कृत अंजना निराश वहाँ से चल दी। जब माता-पिता ने ही उसे दुत्कारा तो प्रजा ही क्यों पीछे रहती ? जहाँ भी वे दोनों सखियाँ गईं अपमानित ही हुई। नगर से ग्राम और ग्रामों से वन की ओर वढ़ती गई वे दोनों। अंजना चलती जाती और विलाप करते हुए कहती जाती—'मुझ अभागिनी को निरपराध ही गुरुजनों ने दण्ड दिया।'

वसन्ततिलका उसे वार-वार धैर्य वँधाती—सखी ! हमारे पाप का ही उदय है। शोक मत कर, साहस रख। सव ठीक हो जायेगा। इतने वड़े संसार में कहीं तो कोई आसरा मिलेगा। जिसका संसार में कोई सहाई नहीं होता उसका रखवाला धर्म ही होता है।

भटकते-भटकते दोनों सखियाँ एक पर्वत गुफा के सामने आईं। वसन्ततिलका ने कहा—सखी ! लगातार कई दिनों से हम भटक रही हैं। इस गुफा में कुछ देर विश्राम कर लें तव आगे चलेंगे।

अंजना ने स्वीकृति दी। दोनों सखियों ने एक दूसरी के सहारे से गुफा में प्रवेश किया—सामने ही मुनि अमितगति ध्यानमग्न खड़े थे। तन-मन को विश्रान्ति सी मिली और दोनों सखियाँ वहाँ मौन होकर बैठ गईं। मुनिश्री का ध्यान पूर्ण हुआ तो दोनों ने भक्तिपूर्वक वन्दना की और वसन्ततिलका ने कहा—

—गुरुदेव ! मेरी सखी ने ऐसा क्या घोर पाप किया है जिसके कारण यह ऐसा हृदयद्रावी कष्ट भोग रही है ?

मुनिश्री ने उसके पूर्वजन्म की घटना सुनाकर बताया—पूर्वजन्म में कृत दुष्कर्मों के कारण ही इस पर यह आपत्ति आई है।

—प्रभो ! इसके गर्भ में कौन है ? वसन्ततिलका ने पूछा।

मुनिराज बताने लगे—

—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मन्दर नाम के नगर में प्रियनन्दी नाम का एक वणिक रहता था। उसकी जया नाम की पत्नी से दमयन्त नाम का पुत्र हुआ।

दमयन्त एक दिन उद्यान क्रीड़ा के लिए गया तो वहाँ उसे एक मुनि के दर्शन हुए। उनसे धर्म श्रवण करके सम्यक्त्व सहित कई व्रत ग्रहण किये। निष्ठापूर्वक व्रतों का पालन करता हुआ मरकर वह दूसरे देवलोक में परमर्द्धिक देव हुआ। वहाँ से च्यवकर मृगांकपुर के राजा वीरचन्द और रानी प्रियंगुलक्ष्मी का पुत्र सिंहचन्द्र बना। इस जन्म में भीधर्म का पालन करके देवलोक को गया। पुनः वैताढ्यगिरि पर अवस्थित वारुण नगर के राजा सुकण्ठ की रानी कनकोदरी के गर्भ से सिंहवाहन नाम का पुत्र हुआ। चिरकाल तक राज्य भोगकर तीर्थंकर विमलप्रभु के तीर्थ में लक्ष्मीधर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दुस्तर तप करके कालधर्म प्राप्त किया और लांतक स्वर्ग में देव बना। वहाँ से आयुष्य पूर्ण करके वह देव तुम्हारी सखी की कुक्षि में अवतरित हुआ है।

तुम्हारी सखी अंजना का वह पुत्र गुणों का भण्डार, महापराक्रमी, विवेकी, विद्याधरों का राजा और चरमदेही[1] होगा।

साधुजी के वचन सुनकर दोनों सखियों के शोक संतप्त हृदय को बड़ी शान्ति मिली। वसन्ततिलका ने पुनः जिज्ञासा प्रकट की—

—भगवन् ! ऐसा पुण्यशाली जीव इसी कंदरा में जन्म लेगा ? क्या इसी निर्जन गुफा में वृद्धि पायेगा ?

—भद्रे ! पुत्र का जन्म तो इसी कंदरा में होगा किन्तु पालन पोषण होगा मामा के घर। —मुनिराज ने बताया और आकाश में पक्षी की भाँति उड़ गये। क्योंकि जैन साधु अधिक बातें किसी से नहीं करते और अधिक समय तक एक स्थान पर रुकते भी नहीं।

दोनों सखियाँ उन चारण ऋद्धिधारी मुनि को जाते हुए आकाश में टकटकी लगाकर देख रही थीं। उपकारी मुनि के प्रति उनके हृदय में अत्यधिक श्रद्धाभाव था।

दृष्टि से मुनि के ओझल हो जाने पर उन्होंने आँखें नीची कीं तो सामने एक विपत्ति खड़ी दिखाई दी। एक केशरी सिंह उनकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा था। अचानक आपत्ति से दोनों सखियाँ स्तम्भित रह गईं। उसी समय उनके और अंजना के गर्भस्थ शिशु के पुण्य-योग से आकर्षित होकर गुफा का अधिपति मणिचूल गन्धर्व उनकी रक्षा को उद्यत हुआ और अष्टापद का रूप बनाकर उस सिंह का प्राणान्त कर दिया।

विपत्ति टलने से दोनों सखियों की जान में जान आई। तभी गन्धर्व मणिचूल अपने असली स्वरूप में प्रगट हुआ और अर्हन्त भगवान की स्तुति गाने लगा।

---

१ चरमदेही का अभिप्राय है—उसी भव से मोक्ष जाने वाला। यह शरीर किसी शस्त्र आदि से छिद-भिद और नष्ट नहीं हो सकता।

उसने उनका साथ नहीं छोड़ा और उनकी रक्षा करता रहा। अंजना और वसन्ततिलका दोनों तीर्थंकर भगवान की नित्य भक्ति करने लगीं।

गर्भकाल पूरा हुआ। अंजना ने परम तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वसन्ततिलका ने उसके प्रसूति कार्य किये।

पुत्र का मुख देखकर अंजना विलाप करने लगी—

—अरे वत्स! इस निर्जन वन में दीन हीन मैं तेरा जन्मोत्सव कैसे मनाऊँ?

उसी समय आकाश मार्ग से विद्याधर प्रतिसूर्य जा रहा था। निर्जन वन की गिरिकन्दरा से स्त्री रुदन का स्वर सुनकर वह नीचे आया और उनसे दुःख का कारण पूछा। वसन्ततिलका ने पूरी कहानी आँखों में आँसू भरकर सुना दी।

विद्याधर कहने लगा—

—पुत्री! अब तेरे दुःख के दिन वीत गये। मैं पिता विद्याधर चित्रभानु और माता सुन्दरीमाला का पुत्र प्रतिसूर्य विद्याधर हूँ। हृदयसुन्दरी नाम की तेरी माता का भाई हूँ। मुझे अपना मामा समझ।

मामा के आश्वासन से अंजना की रुलाई फूट पड़ी। उसके हृदय का बाँध टूट गया। प्रियजनों से मिलाप होने पर आँखों से गंगा-जमुना बहने लगती ही है। बड़ी देर तक विद्याधर उसे धैर्य बँधाता रहा। जब अंजना के आँसू सूख गये और हिचकियाँ बन्द हो गईं तो मामा प्रतिसूर्य ने कहा—

—चलो बेटी! अपने राज्य हनुपुर चलते हैं। वहीं पुत्र का लालन-पालन करेंगे।

विद्याधर अपने विमान में विठाकर अंजना, उसके पुत्र और सखी वसन्ततिलका को ले चला। विमान तीव्र गति से उड़ा जा रहा था और अंजना अपने पुत्र को अंक में लेकर खिला रही थी। शिशु

भी किलक-किलककर हाथ-पाँव चलाता-उछलता और माता का मन मोद से भर जाता। आज दीर्घकाल के पश्चात वसन्ततिलका ने सखी को प्रसन्न देखा तो वह भी हर्ष विभोर हो गई।

अचानक ही शिशु जोर से उछला और भूमि की ओर जाने लगा। अंजना 'हाय लाल ! हाय लाल !!' कहकर छाती कूटकर विलाप करने लगी। जव तक विद्याधर समझे कि मामला क्या है शिशु वहुत नीचे गिर चुका था और तीव्र वेग से गिरता ही चला जा रहा था। मामा भी भानजे के पीछे-पीछे कूद पड़ा। नीचे पर्वत शैल पर आया तो आश्चर्यचकित रह गया।

जिस शिला पर शिशु गिरा था वह तो चूर-चूर हो गई और वालक अक्षतवदन उस पर पड़ा किलकारियाँ भर रहा था—मानो शिला पर वालक नहीं वज्र गिरा हो। प्रसन्न होकर मामा ने शिशु को उठाया और आकाश में उड़कर विमान में रोती हुई अंजना के अंक में ले जाकर डाल दिया।

रोती हुई माता ने शिशु को अक्षत शरीर देखा तो प्रसन्न हो गई। तत्काल उसे मुनिराज के वे वचन याद आ गये—'वालक महा-पराक्रमी और चरमशरीरी होगा'। मुनिराज के स्मरण मात्र से अंजना का हृदय गद्गद हो गया। उसने अंक में खेलते बालक को छाती से चिपका लिया।

विमान से उतरकर अंजना ने राजमहल में प्रवेश किया तो सभी ने उसका स्वागत कुलदेवी के समान किया।

मामा ने भानजे का नाम अपनी नगरी के नाम पर हनुमान[1] रखा

---

१ हनुमान की माता का नाम तो अंजना ही है किन्तु पिता का नाम केसरी है और उन्हें सुमेरुगिरि का राजा वताया गया है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि हनुमान को अंजना से वायुदेव ने ही उत्पन्न किया था।

वहीं इनकी वर-प्राप्ति का भी वर्णन है। एक वार हनुमान

और शिला चूर-चूर होने की स्मृतिस्वरूप उसका दूसरा नाम श्रीशैल पड़ा।

वाल-रवि को फल समझकर खाने के लिए दौड़ पड़े। वे आकाश-मार्ग से चलते हुए सूर्य के पास पहुँच भी गये। उसी समय इन्द्र वीच में अवरोध वनकर आये। हनुमान को भूख तो लगी ही थी वे ऐरावत हाथी को वड़ा फल समझकर उसको खाने के लिए लपके। तभी इन्द्र ने वज्र का प्रहार कर दिया। हनुमानजी की बायीं ठुड्डी टूट गई और चोट खाकर पर्वत पर गिर पड़े। इनके पिता वायुदेव इन्हें उठाकर एक गुफा में ले गये और कुपित होकर उन्होंने अपना संचरण वन्द कर दिया। वायु का संचरण बन्द हो जाने से समस्त सृष्टि काठ के समान स्थिर हो गई।

सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की तो वे सबको साथ लेकर वायु के पास पहुँचे। ब्रह्मा के स्पर्श से हनुमान जीवित हो उठे। प्रसन्न होकर वायु ने संचरण किया तो समस्त सृष्टि के कार्य पूर्ववत् चलने लगे।

उस समय ब्रह्माजी की प्रेरणा से उपस्थित देवताओं ने हनुमान को विभिन्न प्रकार के वरदान दिये।

इन्द्र ने उनकी ठुड्डी जुड़ने और अपने वज्र से भी न मरने का वरदान दिया।

सूर्य ने अपने तेज का सौवाँ भाग और समस्त विद्या प्राप्ति तथा कुशल वक्ता और बुद्धिमान होने का वर दिया।

वरुण ने लाखों वर्षों की आयु और जल तथा अपने पाश से अवध्यता; यम ने नीरोगता और कालदण्ड से अवध्यता; कुबेर ने युद्ध में अविजेयता; विश्वकर्मा और महादेव दोनों ने भी अपने दिव्य शस्त्रों से न मरने का वरदान दिया और ब्रह्माजी ने दीर्घायु, धर्मबुद्धि और ब्रह्मास्त्र से अभय प्रदान किया।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

कुमार हनुपुर के राजमहल में क्रीड़ा करता हुआ वढ़ने लगा।

माता अंजना पुत्र को देखकर तो सुखी थी—निश्चिन्त थी परन्तु अपने माथे पर लगा हुआ कलंक उसके हृदय में रात-दिन शल्य की भाँति खटकता रहता। निर्दोष व्यक्तियों पर जव झूठा कलंक लगाया जाता है तो वे उसे सरलता से नहीं भूल पाते। यही दशा अंजना की थी। वह भी शल्य को हृदय में दवाये हुए समय व्यतीत करने लगी।

—त्रिषष्टि शलाका ७।३

***

: १७ :

वरुण-विजय

पवनंजय ने अपने वाक्चातुर्य से वरुणराजा के साथ सन्धि करके खर-दूषण को मुक्त करा लिया। रावण का उद्देश्य पूरा हो चुका था अतः वह सन्तुष्ट हो गया। रावण अपने शिविर सहित लंका लौट आया और पवनंजय उसकी अनुमति लेकर अपनी नगरी को चल दिये।

राजमहल में आकर पवनंजय ने माता-पिता को प्रणाम किया और सातवीं मंजिल पर अंजना के भवन में पहुँचे। वहाँ अंजना को न देख उन्होंने एक दासी से पूछा—

—अमृतांजन के समान मेरी प्राण-प्रिया अंजना कहाँ है ?

कुमार के बदले रूप को देखकर दासी चकित रह गई। वह कुछ बोल ही न सकी।

पवनंजय ने ही पुनः पूछा—

—बोलती क्यों नहीं ? कहाँ है अंजना ?

दासी विनम्र स्वर में बोली—

—स्वामी ! आपके जाने के कुछ मास बाद ही उसके गर्भ दोष के कारण आपकी माता ने उसे निकाल दिया। सेवक उसे महेन्द्रपुर नगर के बाहर वन में छोड़ आये।

—और उसकी सखी वसन्ततिलका ?

—वह भी उनके साथ थी।

यह सुनकर पवनंजय पवनवेग के समान महेन्द्रनगर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने किसी स्त्री से पूछा—

—यहाँ राजकुमारी अंजना आई थी ?

—हाँ अपनी सखी वसन्ततिलका के साथ आई तो थी किन्तु व्यभिचार दोष के कारण राजा ने उसे रखा नहीं, निकाल दिया।

वज्रपात हो गया पवनंजय पर ! उसे आशा थी कि अंजना यहाँ तो मिल ही जायेगी। अव वह वनों में, पर्वतों में प्रिया को खोजने लगा पर कहीं पता न लगा। सदा साथ रहने वाला मित्र प्रहसित भी संग-संग लगा हुआ था। मित्र के दुःख से वह भी अति दुःखी था। एक दिन कुमार ने मित्र से कहा—

—मित्र ! तुम जाओ और माता-पिता से कह देना कि मैं तो सती अंजना को ढूँढ़ने जाता हूँ। यदि वह मिल गई तो वापिस आ जाऊँगा अन्यथा चिता में जलकर प्राण दे दूँगा।

प्रहसित ने कुमार को समझाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह माना नहीं। विवश होकर प्रहसित ने यह समाचार राजा प्रह्लाद और रानी केतुमती को सुना दिया। रानी केतुमती तो सुनते ही अचेत हो गई। शीतल और सुगन्धित जल आदि के उपचार से चेतना लौटी तो प्रहसित से कहने लगी—

—अरे वज्रहृदय ! तू कुमार का कैसा मित्र है ? उसका ऐसा निर्णय जानकर भी अकेला छोड़ आया। मैं तो मूर्खा हूँ ही कि अपनी सती वधू को कलंक लगाकर निकाल दिया। इस पाप का फल मुझे तो भुगतना ही पड़ेगा किन्तु कोई कुमार के प्राणों की रक्षा तो करो।

राजा प्रह्लाद ने अपने कर्तव्य का पालन किया। इन्होंने अपने हजारों अनुचर विद्याधरों को अंजना को खोजने भेज दिया। आदेश था–एक-एक नगर, ग्राम, वन, पर्वत—पूरी पृथ्वी को छान डालो कहीं से भी पवनंजय और अंजना की खबर लाओ। वे स्वयं भी उन दोनों की खोज में चल दिये। साथ में प्रहसित भी था।

माता ने संतोष धारण किया और पुत्र तथा पुत्रवधू से मिलने की आशा में समय व्यतीत करने लगी।

कुमार पवनंजय भटकता-भटकता भूतवन में पहुँचा। वह निराश हो चुका था। बुझे हृदय से उसने चिता बनाई और ऊँचे स्वर से कहने लगा—

—हे वन के देवी-देवताओ ! मुझ पापी ने अपनी सती साध्वी पत्नी को घोर दुःख दिया। रणयात्रा के बीच से ही मैं रात्रि को लौटा और मेरे ही कारण वह गर्भवती हुई। लज्जावश माता-पिता से बिना मिले ही वापिस चला गया। सारा दोष उस निर्दोष पर पड़ा और मेरी माता ने उसे घर से निकाल दिया। उसके दुःखों का कारण मैं ही हूँ। उसका विरह अब मुझसे सहा नहीं जाता।

देवताओ ! उससे सिर्फ इतना ही कह देना कि 'पवनंजय ने तेरे विरह में आत्मदाह कर लिया।'

राजा प्रह्लाद भी दैवयोग से वहाँ पहुँच गये और उन्होंने पुत्र के सम्पूर्ण शब्द सुन लिए। जैसे ही पवनंजय ने उछलकर चिता-प्रवेश करना चाहा प्रह्लाद ने फुर्ती से दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया। कुमार ने मुड़कर देखा तो सामने पिता खड़े हैं। पुत्र की आँखें भर आईं।

पिता ने समझाया—

—वत्स ! दुःख हमें भी बहुत है। जब से मालूम हुआ है कि

अंजना निर्दोष थी—अपनी भूल पर हम बहुत पछता रहे हैं किन्तु यह तरीका नहीं है उसे खोजने का।

—और मैं करता भी क्या? सब जगह ढूंढ़ लिया कहीं न मिली तो अपने जीवन का अन्त कर देना ही एकमात्र उपाय मुझे दिखाई दिया।

—नहीं कुमार! यही एकमात्र उपाय नहीं है। उसे खोजने के उपाय मैंने कर दिये हैं। हजारों विद्याधर उसको खोज रहे हैं। वह अवश्य मिलेगी। तुम धैर्य रखो।

पिता के अनेक प्रकार से समझाने पर पुत्र को सान्त्वना मिली। वे दोनों उसी वन में बैठकर अंजना को खोजने के अन्य उपायों पर विचार करने लगे।

× × ×

खोज में लगे हुए विद्याधरों में से कुछ हनुपुर आ पहुँचे। उन्होंने राजा प्रतिसूर्य और उसके राजमहल में समाचार दिया कि 'अंजना के विरह में पवनंजय ने चिता-प्रवेश की प्रतिज्ञा की है।'

सुनते ही अंजना के मुख से निकला—'अरे मैं मारी गई' और अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी। शीतोपचार से सचेत होने पर विलाप करने लगी—

—अरे! यह कैसी विपरीत बात? पति के साथ पत्नी तो इसलिए सती होती है कि उसे घोर कष्ट उठाने पड़ते हैं। संसारी और परिवारी उसका तिरस्कार करते हैं, उसके शील भंग का सदैव ही भय रहता है; किन्तु उन्हें यह क्या सूझी? वे तो अनेक पत्नियाँ कर सकते थे। लेकिन इससे यह मालूम पड़ता है कि उनका मेरे प्रति अनन्य प्रेम है।

राजा प्रतिसूर्य ने अंजना को आश्वासन देते हुए कहा—

—पुत्री विलाप छोड़ और पति के पास चलने की तैयारी कर।

राजा ने विद्याधरों से पूछा—कहाँ मिलेंगे कुमार पवनंजय ? अपने नगर में ही न ?

—नहीं राजन् ! वे तो अंजना की खोज में न जाने कहाँ-कहाँ भटक रहे होंगे। वनों में, पर्वतों में—कुछ कहा नहीं जा सकता ! —विद्याधरों ने बताया।

अब खोज प्रारम्भ हुई कुमार पवनंजय की और खोजने वाले थे अंजना और उसके पुत्र को साथ लेकर राजा प्रतिसूर्य ! एक उत्तम विमान में बैठकर तीनों वनों और पर्वतों में कुमार को खोजने लगे।

भूतवन के ऊपर जैसे ही विमान पहुँचा तो अंजना की दृष्टि सर्व-प्रथम प्रहसित पर पड़ी। उसने प्रसन्नता से चिल्लाकर कहा—

—वे रहे कुमार और उनका मित्र प्रहसित तथा मेरे श्वसुर।

विद्याधर प्रतिसूर्य ने देखा तो उसे नीचे कुछ व्यक्ति दिखाई दिये। विमान नीचे भूमि पर उतरा और अंजना ने भूमि पर पाँव रखते ही श्वसुर को प्रणाम किया। आगे बढ़कर राजा प्रह्लाद ने अपने पौत्र को अंक में भर लिया।

पति ने पत्नी को देखा और पत्नी ने पति को। दोनों के मुख खिल गये। गुरुजनों की उपस्थिति लज्जा की दीवार बनी हुई थी अन्यथा तन भी मिल गये होते।

राजा प्रह्लाद ने प्रतिसूर्य से कहा—

—राजन् ! आपने मेरी पुत्रवधू को आश्रय देकर मुझ पर बड़ा उपकार किया है।

—नहीं, राजन् ! मैंने कोई उपकार नहीं किया। अंजना मेरी भानजी है तो इसे रखने में आश्रय कैसा और उपकार क्या ? पुत्री तो अपने मातुल के घर रहती ही है, उसका तो अधिकार होता है। अब आप सब लोग यहाँ क्या कर रहे हैं ? मेरे साथ नगर को चलिए।

प्रतिसूर्य के विमान में बैठकर सभी हनुपुर आ गये। अंजना के पिता राजा महेन्द्र और माता हृदयसुन्दरी भी आ गये। आदित्यपुर से पवनंजय की माता केतुमती भी आ पहुँची। सभी सम्बन्धियों के मिलन से हर्ष अनेक गुना बढ़ गया। सबने मिलकर बालक का जन्मोत्सव पुनः मनाया और वह भी पहले उत्सव की अपेक्षा बहुत अधिक उत्साह के साथ।

उत्सवोपरान्त सभी जन अपने-अपने नगरों को चले गये किन्तु पवनंजय अपनी पत्नी अंजना और पुत्र हनुमान के साथ हनुपुर में ही ठहर गये।

हनुमान धीरे-धीरे युवक हो गये। युवावस्था के साथ ही उन्होंने अनेक कलाओं और विद्याओं में निपुणता भी प्राप्त कर ली।

× × ×

वरुण के किसी अपराध के कारण रावण उसे विजय करने की योजना बनाने लगा। उसने अपने सभी अधीनस्थ राजाओं के पास सहायतार्थ दूत भेजे। एक दूत हनुपुर भी आया और लंकापति की इच्छा बताई। सुनकर राजा प्रतिसूर्य और पवनंजय जाने की तैयारी करने लगे। हनुमान ने विनयपूर्वक निवेदन किया—

—युवा पुत्र के होते हुए गुरुजन कष्ट उठायें, यह उचित नहीं है। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिए।

हनुमान के अति आग्रह पर उसे आज्ञा प्राप्त हो गई। वह हनुपुर से चला और लंका की राज्य सभा में जा पहुँचा। हनुमान की बलिष्ठ देहयष्टि, तेजस्वी मुखमण्डल, भव्य ललाट देखकर लंकापति रावण बहुत प्रभावित हुआ और उसने उन्हें अपनी बगल में सिंहासन पर ही बिठा लिया।

लंकेश अपने अन्य अधीनस्थ राजाओं सुग्रीव आदि के आ पहुँचने के बाद वरुण से साथ युद्ध करने के लिए निकला।

वरुण राजा के नगर के सम्मुख रावण ने अपनी सेना लगा दी। वरुण भी शत्रु को समक्ष देखकर वाहर निकला और राजीव तथा पुण्डरीक आदि सौ पुत्रों को साथ लेकर युद्ध करने लगा।

युद्ध में लंकेश हनुमान का पराक्रम देखकर प्रसन्न हो रहा था—उसे लगा कि यह युवक आगे चलकर वहुत ही पराक्रमी योद्धा होगा।

वीर हनुमान ने वात की वात में वरुण के सौ पुत्रों को वाँध लिया। पुत्रों के वन्दी होते ही वरुण कोपायमान होकर हनुमान की ओर दौड़ा। उसकी आँखों में अंगारे दहक रहे थे और चिनगारियाँ छूट रही थीं।

अपने अतिवली सहयोगी की ओर वरुण को जाता देख लंकेश चुप न रह सका। उसने घनघोर वाणवर्षा करके वरुणराज को ढक ही दिया और जिस प्रकार पर्वत नदी के वेग को रोक देता है वैसे ही उसने वरुण को रोक दिया।

महावली लंकेश की तीव्र बाणवर्षा से वरुण व्याकुल हो गया। अवसर का लाभ उठाने में चतुर रावण उसके हाथी पर जा कूदा तथा इन्द्र की ही भाँति उसे भी वाँध लिया।

राक्षसपति रावण विजयी हुआ।[1] वरुणराज और उसके सभी पुत्रों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। वचनवद्ध हो जाने पर लंका-

---

१ वाल्मीकि रामायण के अनुसार वरुण की हार नहीं हुई क्योंकि वह उस समय अपनी नगरी में था ही नहीं। घटना इस प्रकार है—

रावण दिग्विजय की इच्छा से रसातल को गया। वहाँ निवात-कवच नाम के दैत्यों ने उसका मार्ग रोका। निवातकवचों पर विजय प्राप्त करके आगे वढ़ा तो अश्म नाम के नगर में पहुँचा। इस नगर में कालकेय नाम के दानव निवास करते थे। वहाँ उसने युद्ध में विद्युज्जिह्व (यह रावण की वहन शूर्पणखा का पति था) के तलवार से टुकड़े कर डाले।

पति ने उसे पुनः सिंहासन पर बिठाया और वापिस लंका चला आया।

लंकापति की सम्पूर्ण सेना में हनुमान के बल और पराक्रम की चर्चा थी। सभी एक स्वर से उसे अतिबली कह रहे थे। रावण ने भी उसका विशेष सम्मान किया।

वरुण ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह उसके साथ कर दिया। इससे अच्छा वर उसे और मिलता भी कहाँ ? रावण ने भी चन्द्रनखा (सूर्पणखा) की पुत्री अनंगकुसुमा का लग्न उसके साथ करके अपना सत्कार प्रकट किया। सुग्रीव ने अपनी पुत्री पद्मरागा, नल ने अपनी कन्या हरिमालिनी तथा अन्य दूसरे राजाओं ने अपनी हजारों कन्याओं देकर वीर हनुमान का सम्मान बढ़ाया।

दशमुख ने हर्षपूर्वक दृढ़ आलिंगन करके वीर हनुमान को विदा किया तथा अन्य सभी राजा अपने-अपने स्थानों को चले गये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।३

* *

वहाँ से आगे चलकर उसे वरुण का राजमहल दिखाई दिया। उसने वरुण के योद्धाओं से कहा कि 'तुम लोग अपने राजा से कहो कि या तो युद्ध करे अथवा पराजय माने।'

यह सुनकर वरुण के पुत्र निकल आये और उनसे युद्ध होने लगा। वरुण-पुत्र रावण की विकट मार से घबड़ाकर युद्ध से परांगमुख हो गये।

तब रावण ने पुनः कहा—योद्धाओ ! अब युद्ध के लिए स्वयं वरुण राज को बुलाओ।

योद्धाओं ने उत्तर दिया—राक्षसराज ! वरुणराज तो ब्रह्मलोक में संगीत सुनने गये हैं। वे तो यहाँ हैं नहीं और उनके पुत्रों को आपने परास्त कर ही दिया है। अब व्यर्थ परिश्रम से क्या लाभ ?

रावण ने अपने हृदय में समझ लिया कि उसने वरुण को परास्त कर दिया है। वह हर्ष से गर्जना करने लगा और लंका की ओर चल दिया।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

राम-कथा

२ : अयोध्या का वैभव

: १ :

साले-बहनोई की दीक्षा

अयोध्या के सम्राटों ने चक्रवर्ती भरत के पुत्र सूर्य के नाम पर अपने को 'सूर्यवंशी' के नाम से प्रख्यापित कर लिया था।

आदि तीर्थ प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव के पश्चात अनेक राजाओं ने अयोध्या का राज्य भार सम्भाला। उनमें से कुछ तो मोक्ष गये और कुछ स्वर्ग।

वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में अयोध्या का शासक था राजा विजय। उसकी रानी हिमचूला से दो पुत्र हुए—वज्रबाहु और पुरन्दर।

उस समय नागपुर में राजा ईभवाहन राज्य करता था। उसकी रानी चूड़ामणि से एक पुत्री उत्पन्न हुई मनोरमा। मनोरमा युवती हुई तो उसका विवाह हुआ अयोध्या के राजकुमार वज्रवाहु के साथ।

मनोरमा को साथ लेकर वज्रवाहु अपने नगर की ओर जाने लगा तो उसका साला (मनोरमा का भाई) उदयसुन्दर भी सम्मान प्रदर्शित करते हुए उसके साथ-साथ चला।

साले (उदयसुन्दर) और वहनोई (वज्रवाहु) दोनों हास-परिहास करते चले जा रहे थे। मार्ग में गुणसुन्दर नाम के मुनि दिखाई पड़े। मुनि आकाश की ओर मुख करके आतापन योग लगा रहे थे।

वज्रबाहु ने हर्षित होकर कहा—

—अहा ! ये धीर-गम्भीर घोर तपस्वी साधु वन्दन करने योग्य हैं। चिंतामणि रत्न के समान ऐसे साधुओं के दर्शन बड़े भाग्य से होते हैं।

और वह अपना वाहन (रथ) रोककर भक्तिपूर्वक मुनि की ओर देखने लगा।

वज्रबाहु का रथ रुकते ही उदयसुन्दर ने भी रथ रोक लिया। कुमार की भक्ति भावना देखकर उसे उपहास सूझा; क्योंकि नव-विवाहिता अंक में हो तो वैराग्य भरे वचन उपहासास्पद ही लगते हैं। उदयसुन्दर ने कहा—

—कुमार ! क्या प्रव्रजित होने की इच्छा है ?

—हाँ हृदय में भावना तो ऐसी ही उठ रही है।

उदयसुन्दर ने वज्रबाहु के शब्दों को परिहास ही समझा। उसने पुनः परिहास किया—

—फिर देर क्या है ? मैं भी आपके साथ ही प्रव्रजित हो जाऊँगा।

—अपने वचन से पीछे तो न हट जाओगे ?

—बिल्कुल नहीं। —उदयसुन्दर ने हँसते हुए कह दिया।

—बहुत अच्छा। —वज्रबाहु ने कहा और रथ से उतर पड़ा—मानो वह मोहरूपी हाथी से ही नीचे उतरा हो।

दृढ़ कदमों से वज्रबाहु मुनिश्री की ओर जाने लगा। उसकी दृढ़ता को देखकर उदयसुन्दर को स्थिति की गम्भीरता का आभास हुआ। वह दौड़कर वज्रबाहु के पास पहुँचा और कहने लगा—

—जीजाजी ! आप तो मेरे परिहास का बुरा मान गये।

वज्रबाहु ने गम्भीरता से उत्तर दिया—

—नहीं भद्र ! तुम्हारे परिहास का बुरा क्यों मानूँ ? तुमने तो

मेरे हृदय में उठती हुई वैराग्य भावना को और भी दृढ़ किया है। तुम तो मेरे उपकारी हो।

—आप इस तरह मेरी वहन को अनाथ जोड़कर मत जाइयें। —उदयसुन्दर ने उसे रोकने की चेष्टा की।

—कौन अनाथ और कौन सनाथ ? उदयसुन्दर आत्मा स्वयं अपने ही कर्मों का भल भोगता है। तुम भ्रम में हो। अपनी आत्म-शक्ति से सभी सनाथ हैं।

—नहीं ! नहीं !! आपके चले जाने के वाद मेरी वहन का क्या होगा ? अभी तो इसके हाथों से मेंहदी का रंग भी नहीं छूटा। श्वसुर का द्वार भी नहीं देखा कि पति वियोग का महा कष्ट। आप मेरी विनय मानिये। हठ छोड़कर वापिस चलिए। —उदयसुन्दर के स्वर में कातरता आ गई।

वज्रवाहु ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—

—भद्र ! वैराग्य की ओर उठे हुए कदम वापिस संसार की ओर नहीं मुड़ते। मुझे तो आश्चर्य हो रहा है तुम्हारी कातरता पर ! क्षत्रिय होकर ऐसे शब्द तुम्हारे मुख से निकल रहे हैं।

—कुमार ! मैं क्षत्रिय तो हूँ किन्तु साथ ही एक वहन का भाई भी। एक भाई अपनी वहन के सुख को लुटते हुए देखकर अति दीन हो ही जाता है।

—सुख ! अरे इन सांसारिक भोगों में सुख कहाँ ? सुख तो आत्मा में ही है। उसी आत्मिक सुख को प्राप्त करने के लिए ही तो मैं प्रयत्नशील हुआ हूँ। तुम अपने वचन का निर्वाह स्वयं भी नहीं कर रहे हो और मेरे मार्ग में भी वाधक वन गये हो। क्षत्रिय-पुत्र हो, अपने वचन का पालन करो। मेरे साथ तुम भी दीक्षा लो।

उदयसुन्दर ने अधिक तर्क करना उचित नहीं समझा। वह

वज्रबाहु के दृढ़ निश्चय से प्रभावित हो गया। वह भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

पति और भाई दोनों को जाते देख मनोरमा का हृदय धक-धक करने लगा। वह रथ से उतर कर दौड़ी आई और पति से पूछने लगी—

—स्वामी ! मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

वज्रबाहु ने उसको ऊपर से नीचे तक देखा और दृढ़ स्वर में कहा—

—देवी ! मैं तुम्हें क्या आजा दूँ ? जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो।

—मेरी इच्छा तो वही है जो आपकी है। पति के अनुसार ही पत्नी का आचरण होता है।

—तब तो तुम्हारा कर्तव्य स्पष्ट है। यदि तुम चाहो तो संयम ग्रहण करो अन्यथा तुम्हारा मार्ग कल्याणप्रद हो।

मनोरमा भी उनके पीछे-पीछे चल दी।

सभी ने जाकर मुनिश्री से संयम लेने की प्रार्थना की। मुनिश्री ने देखा कि राजकुमार नवविवाहित है तो उन्होंने समझाने का प्रयास किया—

—भद्र ! संयम का मार्ग काँटों की सेज है। भली-भाँति विचार कर लो। कहीं पाँव लड़खड़ा न जाय !

कुमार ने उत्तर दिया—

—नहीं प्रभु ! ऐसा नहीं होगा।

वज्रबाहु की दृढ़ता देखकर मुनिराज ने उसे प्रव्रजित कर लिया। उसके साथ ही उदयसुन्दर, मनोरमा और अन्य पच्चीस राजकुमारों ने संयम धारण किया।

कुमार वज्रबाहु के संयम का समाचार सुनकर राजा विजय का विवेक जाग्रत हुआ। उनके हृदय में विचार आया—'मुझ से तो ये बालक ही उत्तम हैं जो कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो गये।' और छोटे पुत्र पुरन्दर को राज्य का भार देकर मुनि निर्वाणमोह के पास जाकर दीक्षित हो गये।

अयोध्या का शासन पुरन्दर चलाने लगे। उनकी रानी पृथ्वी से कीर्तिधर नाम का पुत्र हुआ। पुत्र युवा हो गया तो उसे राज्य भार देकर क्षेमंकर मुनि के पास पुरन्दर ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

—त्रिषष्टि शलाका ७।४

❊❊

: २ :

क्षमावीर सुकोशल

पिता पुरन्दर के दीक्षित हो जाने के उपरान्त कीर्तिधर ने अयोध्या का शासन भार सँभाला। सहदेवी उसकी रानी थी। दोनों पति-पत्नी निराबाध सुख भोगने लगे। अतिशय सुख-भोग का परिणाम होता है अरुचि। कीर्तिधर को भी सांसारिक भोगों से अरुचि हो गई। उसने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की तो मन्त्रियों ने समझाया—'स्वामी! पुत्र उत्पन्न होने तक रुक जाइए। यदि आप अपुत्री ही संयम ले लेंगे तो राज्य अनाथ हो जायगा और स्वामिविहीन राज्य पर शत्रु आक्रमण करेंगे। ऐसी दशा में जो प्रजा का उत्पीड़न होगा उसका उत्तरदायित्व भी आप पर ही आयेगा। अतः राज्य को अरक्षित छोड़ जाना सर्वथा अनुचित है।'

मन्त्रियों की सम्मति महत्वपूर्ण थी। अतः राजा कीर्तिधर गृहवास में ही धर्मनिष्ठापूर्वक रहने लगा।

वहुत समय उपरान्त रानी सहदेवी ने एक पुत्र को जन्म तो दिया किन्तु उसे गुप्त रखा। रानी को विश्वास था कि जैसे ही राजा को पुत्र होने का समाचार मिला वे उसे बालवय में ही सिंहासन सौंपकर प्रव्रजित हो जायेंगे।

रानी के अनेक प्रयासों के वावजूद भी राजा को कुमार का पता लग ही गया। रानी का विश्वास सत्य सिद्ध हुआ। राजा ने उस पुत्र

का नाम सुकोशल रखा और उसे बाल्यावस्था में सिंहासन पर बिठाकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

दीक्षित होने से पहले रानी ने राजा की बहुत मिन्नत खुशामद की। अनेक प्रयास किये कि राजा घर में ही धर्मध्यान करें, दीक्षा न लें किन्तु कीर्तिधर ने एक न सुनी और वे घर छोड़कर प्रव्रजित हो ही गये।

किसी भी प्राणी की मिन्नत-खुशामद, प्रार्थना-विनय ठुकरा दी जाय तो उसके हृदय में कोप और घृणा का संचार हो जाना स्वाभाविक है। यही दशा रानी सहदेवी की भी हुई। उसके हृदय में भी राजा के प्रति अरुचि के भाव उत्पन्न हो गये।

राजा कीर्तिधर विजयसेन मुनि के चरणों में प्रव्रजित होकर मुनि कीर्तिधर हो गये। वे घोर अभिग्रह धारण करते और कठिन से कठिन परीसह को भी समता भाव से सह जाते। उनके निरतिचार और निर्दोष संयम पालन से सन्तुष्ट होकर गुरुदेव ने उन्हें एकलविहार की आज्ञा दे दी। अब मुनि कीर्तिधर मास-मास का उपवास करते और श्रमणधर्म का निर्दोष आचरण करते हुए एकलविहारी हो गये।

अनेक स्थलों पर विहार करते हुए एक बार वे मासोपवास के पारणे हेतु अयोध्यानगरी में पधारे। मध्याह्न के समय वे भिक्षा हेतु राजमार्ग पर चले आ रहे थे कि रानी सहदेवी ने महल में से उन्हें देखा। रानी अपने पति को तुरन्त पहचान गई। उसके हृदय में कुविचारों का तूफान खड़ा हो गया—'ये मेरे पति हैं। पहले इन्होंने दीक्षा ली तो मुझे पति वियोग सहना पड़ा। आज तक मैं इनके विरह में तड़पती हूँ। यदि कहीं इनके सम्पर्क से मेरा पुत्र भी गृह छोड़कर विरक्त हो गया तो मुझे पुत्र वियोग भी सहना पड़ेगा। स्त्री के लिए संसार में [illegible]त्र दो ही अवलम्बन हैं। पति का

सहारा तो छूट ही चुका है यदि पुत्र का भी छूट गया तो……' रानी की विचारधारा इसी प्रकार चलती रही—'किसी न किसी उपाय से पिता-पुत्र के मिलन को रोकना ही होगा। पिता पुत्र की दृष्टि में ही न पड़े।'

मुनि कीर्तिधर मन्द गति से चले आ रहे थे। उन्हें रानी के मनोभावों का क्या पता? रानी के मस्तिष्क में एक उपाय चमका—'इन्हें नगर के वाहर निकलवा दिया जाय?' विचारधारा ने पुनः पलटा खाया—'किन्तु मुनि तो निर्दोष हैं। उन्होंने कोई अपराध तो किया नहीं तव नगर से वाहर निकालने का कारण?' स्वार्थ भावना ने वल पकड़ा—'पुत्र वियोग की सम्भावना यथेष्ट कारण है। इन्हें निकलवा देने में ही मेरी भलाई है।'

रानी ने निर्णय कर लिया और तुरन्त उस पर अमल भी। अपने अनुचरों द्वारा उसने मुनिश्री को नगर से वाहर करा दिया। स्वार्थी लोग विवेकान्ध होते हैं, उन्हें भला-वुरा कुछ नहीं दिखाई देता।

मुनिश्री को नगर से वाहर निकालने की वात सुनकर राजा सुकोशल की धात्री माता रोने लगी। राजा ने उससे पूछा—

—तुम क्यों रो रही हो?

—आपकी माता ने अभी-अभी संयमी मुनि को नगर के वाहर निकलवा दिया है।

सुकोशल विस्मित हो गया। उसके मुख से निकला—

—कारण?

—हृदय की शंका।

—किसके हृदय में शंका थी?

—आपकी माता के हृदय में।

राजा सुकोशल ने धात्री माता से कहा—मुझे पूरी वात वताओ, वे मुनि कौन थे और माता के हृदय में क्या शंका थी ?

धात्री ने वताया—

—महाराज ! जब आप बालक ही थे तो आपके पिता राज्यभार आपके कंधों पर डालकर प्रव्रजित हो गये थे। आज वे ही विचरते हुए इस नगरी में भिक्षार्थ आ निकले। आपकी माता को शंका हुई कि कहीं उनके सम्पर्क से आप भी दीक्षित न हो जायँ। इसीलिए उन्होंने मुनिश्री को नगर से वाहर निकलवा दिया।

धात्री माता की वात सुनकर सुकोशल का मन भी संसार से उदासीन हो गया। स्वार्थ की इस विकट लीला को देखकर वैराग्य जाग गया और वह पिता मुनिश्री के चरणों में पहुँचा। अंजलि जोड़कर वोला—

—गुरुदेव ! मुझे प्रव्रजित कर लीजिए।

मुनि कीर्तिधर ने सुकोशल की दृढ़ भावना को देखा और उन्हें श्रमणधर्म का उपदेश देने लगे। तव तक राज्य के मन्त्री आदि अधिकारी भी वहाँ आ गये और गुरुदेव को नमन-वन्दन करके राजा सुकोशल से विनय करने लगे—

—स्वामी ! आपके प्रव्रजित होने से अयोध्या का सिंहासन रिक्त हो जायगा। राज्य को एक उत्तराधिकारी प्राप्त होने के पश्चात् ही आपका संयम ग्रहण करना उचित है।

सुकोशल ने उत्तर दिया—

—मन्त्रिवर ! रानी चित्रमाला गर्भवती है। उसका पुत्र सिंहासन का अधिकारी हो जायगा। मैं अभी से इसका राज्याभिषेक करता हूँ।

मन्त्रियों ने वहुत आग्रह किया किन्तु राजा सुकोशल नहीं माने

और प्रव्रजित हो गये। सांसारिक नाते से पिता-पुत्र और श्रमण नाते से गुरु-शिष्य मुनि कीर्तिधर और सुकोशल कठोर तपस्या करते हुए ममता-रहित और कषायवर्जित भाव से पृथ्वी तल पर विचरण करने लगे।

रानी सहदेवी की शंका सत्य सिद्ध हुई। पिता के दर्शन करते ही पुत्र प्रव्रजित हो गया। वह पति और पुत्र वियोग से वहुत दुःखी हुई। रात-दिन इष्ट वियोग रूप आर्तध्यान करने लगी। आर्तध्यानपूर्वक मरण करके वह किसी गिरि-गुफा में बाघिन बनी।

मुनि कीर्तिधर और सुकोशल ने एक पर्वत की कन्दरा में चातुर्मास किया। कार्तिक मास समाप्त होने पर (कार्तिक मास में बरसात का समय समाप्त हो जाता है और मुनियों का चातुर्मास भी) दोनों जितेन्द्रिय और शरीर से अनासक्त मुनि पारणे के निमित्त वहाँ से चले। मार्ग में यमदूती के समान भयंकर बाघिन दिखाई पड़ी। मुनियों ने बाघिन को और बाघिन ने मुनियों को नजर भरकर देखा। बाघिन के हृदय में पूर्व-भव के वैर के तीव्र संस्कार जाग्रत हुए। उसकी आँखें लाल हो गईं। क्रोध की प्रबल अग्नि समूचे शरीर में व्याप्त हो गई। उसने भयंकर गर्जना की और कुपित होकर छलांग लगा दी।

बाघिन की क्रूर चेष्टाएँ देखकर दोनों मुनियों ने समझ लिया कि घोर उपसर्ग आ गया है। वे शरीर से निस्पृह तो थे ही तुरन्त कायोत्सर्ग लगाकर ध्यानलीन हो गये। अडोल अकंप दशा में स्थिर मुनि देह में अनासक्त हुए परम उच्च समता भावों में लीन थे। उन्हें पता ही न लगा कि कब बाघिन ने उन पर आक्रमण किया।

छलांग लगाकर बाघिन ने पहले तो सुकोशल मुनि को दबोच लिया। क्रूरतापूर्वक अपने नखों से उनके शरीर को विदीर्ण करने

लगीं। उनका रुधिर पीकर उसे अजीब-से सुख की अनुभूति हुई। सुकोशल मुनि का आत्मा कुछ क्षणों में सम्पूर्ण कर्म क्षयकर सिद्ध शिला में जा विराजमान हुआ।

अब बारी आई मुनि कीर्तिधर की। बाघिन के नख-प्रहारों से उनका शरीर भी क्षत-विक्षत हो गया। साथ ही आत्मा पर लगा हुआ कर्ममल भी बिखर गया। मुनिश्री की देह तो बाघिन के सामने पड़ी थी और आत्मा मोक्ष में पहुँच गई। बाघिन[1] उनके रक्त-मांस का भक्षण करके सुख का अनुभव कर रही थी और मुनि कीर्तिधर का आत्मा अतीन्द्रिय, निराबाध और शाश्वत सुख में रमण करने लगा।

-त्रिषष्टि शलाका ७।४

❋❋

---

१ यह बाघिन पूर्वभव में सुकोशल की माता सहदेवी का जीव थी। पति कीर्तिधर और पुत्र सुकोशल के प्रव्रजित हो जाने पर दुःखी होकर उसने वैर बाँध लिया था। उसी वैर का बदला उसने दोनों मुनियों का हनन करके लिया।

—सम्पादक

: ३ :

रानी सिंहिका का पराक्रम

सुकोशल राजा की रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम हिरण्यगर्भ रखा गया क्योंकि गर्भ में ही वह राजा बन गया था। विवाह योग्य होने पर उसका विवाह मृगलोचनी मृगावती से हुआ।

हिरण्यगर्भ के पुत्र का नाम था—नघुष। नघुष युवा हो गया और हिरण्यगर्भ वृद्ध। नघुष का विवाह सिंहिका नाम की राजकुमारी से कर दिया गया।

एक दिन अपने शिर पर एक सफेद बाल को देखकर हिरण्यगर्भ को संसार से विरक्ति हो गई। उसने राज्य का भार नघुष को सौंपा और स्वयं विमल मुनि के पास जाकर दीक्षित हो गया।

नघुष अयोध्या का राजा बना। वह सिंह के समान प्रतापी और महत्वाकांक्षी था। उसे अयोध्या के राज्य से सन्तोष नहीं हुआ। राज्य का शासन सूत्र मन्त्रियों को देकर वह उत्तरापथ के राजाओं को विजय करने चल दिया। अयोध्या में रह गये—मन्त्री और रानी सिंहिका।

दक्षिणापथ के अन्य राजाओं ने अयोध्या के राज्य को हड़पने का यह उचित अवसर देखा। उन्होंने सोचा—'नघुष तो है नहीं, अतः सरलता से अयोध्या पर अधिकार हो जायगा।'

ऐसा विचार कर उन राजाओं ने अयोध्या को चारों ओर से घेर लिया। मन्त्रियों को और कुछ उपाय तो सूझा नहीं—आकस्मिक विपत्ति से रक्षा हेतु उन्होंने नगर के द्वार बन्द कर लिए।

सम्पूर्ण नगर पर उदासीन की काली घटाएँ छा गईं। प्रजा अपने को अरक्षित समझने लगी। मन्त्रियों ने कूटनीति का सहारा लिया। दूतों का आदान-प्रदान हुआ। प्रयास किया गया कि किसी प्रकार साम-दाम-भेद से विपत्ति टल जाय। राजा लोग वापिस चले जायँ और प्रजा अपने को सुरक्षित समझने लगे।

सबल राजा निर्बल से सन्धि नहीं करते और चतुर व्यक्ति अवसर से लाभ उठाये विना नहीं मानते—इस नीति को ध्यान में रखकर राजाओं ने कोई सन्धि नहीं की। वे तो अयोध्या को अपने अधिकार में लेने का संकल्प कर चुके थे। उनकी दृष्टि में अहर्निश अयोध्या का राज्य सिंहासन और वैभव घूमता रहता। अपनी सफलता का उन्हें पूर्ण विश्वास था।

अयोध्या के मन्त्रियों के मुख निराशा से पीले पड़ गये थे। रानी सिंहिका को भी दास-दासियों द्वारा राज्य सभा में होने वाली बातों का पता लग जाता था। उसे विश्वास हो गया कि यह विपत्ति सहज टलने वाली नहीं है। उसने प्रधान को बुलवाया और उचित आदर प्रदर्शित करते हुए बोली—

—प्रधानजी ! शत्रु किसी भी शर्त पर सन्धि करने को तैयार हुए ?

—नहीं महारानीजी ! ये तो अयोध्या पर अधिकार करने को कटिबद्ध हैं।

—आपने क्या उपाय सोचा ?

—क्या सोचूँ ? सभी उपाय विफल हो गये हैं। अव तो दो ही मार्ग शेष हैं या युद्ध अथवा समर्पण।

—समर्पण ! समर्पण का अर्थ है अपमान, तिरस्कार ! प्रधानजी, अयोध्या की प्रजा को यह लोग पद-दलित कर देंगे। घोर उत्पीड़न होगा मनुष्यों का। नहीं, यह उपाय विल्कुल ही गलत है। —रानी के स्वर में दृढ़ता थी।

—किन्तु दूसरा उपाय—युद्ध ! वह तो सम्भव ही नहीं।

—क्यों ?

—महारानीजी ! महाराज तो हैं नहीं। सेना का नेतृत्व कौन करेगा ? और विना राजा के सेना अनाथ होती है।

—आप सेना तैयार कराइये। मैं नेतृत्व करूँगी।

—आप ? —विस्मित रह गया मन्त्री।

—हाँ, मन्त्रीजी। मैं ! क्या हाथियों का मद-मर्दन करने के लिए सिहनी सिंह की प्रतीक्षा करती है। आज देश पर संकट आ गया है और सिंहिका खामोश बैठी रहे। यह नहीं हो सकेगा। —सिंहिका का क्षात्र तेज उभर आया था।

मन्त्री ने समझाने का प्रयास किया—

—महारानीजी ! संसार क्या कहेगा ? लोक मर्यादा भंग हो जायगी ?

—यदि लोक मर्यादा का विचार किया गया तो अपनी मर्यादा ही भंग हो जायगी। अपमानित और तिरस्कृत होकर काल का ग्रास वनने से अच्छा है रण-क्षेत्र में जूझ कर देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राण झौंक देना। आप आगा-पीछा मत सोचिए। युद्ध की तैयारियाँ कीजिए।

मन्त्री ने रानी की वात स्वीकार की। वह अपने सभी कूटनीतिक उपायों में विफल हो ही चुका था। रानी का यह कथन भी सत्य था

कि समर्पण का परिणाम होगा घोर तिरस्कार। तिरस्कृत जीवन से सम्मानित मृत्यु हजारों गुनी श्रेष्ठ है।

अयोध्या में युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। नगर का वच्चा-वच्चा वीर-रस से ओत-प्रोत हो गया। नगर के फाटक खुले। शत्रु राजा तो समझ रहे थे कि उन्हें नगर-प्रवेश का आमन्त्रण मिलेगा किन्तु मिला युद्ध का निमन्त्रण। अयोध्या की सेना युद्ध के लिए उतावली थी और नेतृत्व कर रही थी—रानी सिंहिका।

राजा लोग विस्मित रह गये किन्तु युद्ध तो करना ही था। वे भी सम्मुख आ डटे।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओर की सेनाओं में महान अन्तर था—भावनाओं का। शत्रु पक्ष के सैनिक सोच रहे थे—जीवन वचा तो सुख भोगों की प्राप्ति होगी और अयोध्या के सैनिकों की भावना थी—रणभूमि में मृत्यु का अर्थ है सम्मान और प्राण वचाने का अर्थ है तिरस्कार। वे जीवन की चिन्ता छोड़कर जी-जान से लड़े। सिंहिका ने भी अपना नाम सार्थक कर दिया। कुशल सैन्य संचालन, अद्भुत पराक्रम, दुर्दमनीय साहस और अद्वितीय वीरता के साथ-साथ अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुणता ने शत्रुओं को पस्त कर दिया। वे रण छोड़-कर भागने लगे।

सिंहिका के मुख से निकला—

—मैं तो समझती थी कि हाथियों की तरह कुछ समय तक तो मुकावला करेंगे। ये तो गीदड़ों की भाँति ही कायर निकले।

अयोध्या की सेना विजय-पताका फहराती हुई वापिस नगर में लौट आई।

रानी के साहस की प्रशंसा सभी करने लगे। सभी के मुख पर

एक ही वाक्य था—सिंहिका यथानाम तथागुण है। वह यथार्थ में सिंहनी ही है।

× × ×

राजा नघुष के लौटने पर उसे सिंहिका की प्रशंसा सर्वत्र सुनाई पड़ी। रानी की प्रशंसा और अनेक शत्रुओं पर उसकी अद्‌भुत सफलता ने नघुष के मस्तिष्क में सन्देह उत्पन्न कर दिया। उसकी विचारधारा विपरीत दिशा को मुड़ गई—रानी सती नहीं है। सती तो केवल पति-सेवा में ही निपुण होती है। किन्तु सिंहिका ! यह तो शत्रुओं में पुरुषों के समान गई और ऐसा विकट युद्ध किया जैसा बड़े-बड़े योद्धा भी न कर सकें। अनेक शत्रुओं से जूझ कर उन्हें मार भगाना—क्या साधारण कार्य है। अन्य पुरुषों के सम्मुख निर्लज्ज होकर जाना—असतीपना ही है।

इस दुर्भावना से ग्रसित होकर नघुष ने सती सिंहिका को त्याग दिया।

अच्छा फल मिला सिंहिका को प्रजा रक्षण का !

कुछ दिन पश्चात राजा नघुष को दाह ज्वर हो गया। अनेक उपाय किये गये किन्तु सब विफल। आयुर्वेद की सीमा समाप्त हो गई। वैद्य निराश हो गये। पण्डित, पुरोहित, निमित्तज्ञ, तांत्रिक सभी हार गये। दवा और दुआ कुछ काम न आई।

पतिव्रता रानी सिंहिका से पति का दुःख न देखा गया। वह पति के सम्मुख आकर बोली—

—हे नाथ ! यदि मैंने मन-वचन-काय से आपके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष की इच्छा न की हो तो इस जल के सिंचन से आपका दाह ज्वर शान्त हो जाय।

इस प्रकार कहकर उसने अपने साथ लाये हुए जल से राजा का

सिञ्चन किया। सतीत्व का चमत्कार हुआ, तत्काल राजा का दाह ज्वर शान्त हो गया। देवताओं ने आकाश से पुष्पवृष्टि की। सिंहिका के सतीत्व की प्रतिष्ठा हुई। परित्यक्ता सिंहिका राजा की प्राणप्रिया बन गई।

कुछ समय पश्चात सिंहिका के गर्भ से सोदास नाम के पुत्र का जन्म हुआ। योग्यवय होने पर नघुष ने सोदास को राज्य पर आरूढ़ किया और सिद्धि के उपायस्वरूप स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

—त्रिषष्टि शलाका ७।४

: ४ :

सोदास और सिंहरथ

सोदास राजा अयोध्या का शासन करने लगा। अठाई उत्सव आने पर मन्त्रियों ने कहा—

—हे राजन् ! आपके पूर्वजों के समय से यह परम्परा चली आ रही है कि अठाई के दिनों में मांस के विक्रय, किसी जीव की हिंसा और मांस-भक्षण का निषेध कर दिया जाता था। इसी परम्परा के अनुसार हमने राज्य भर में मांस-भक्षण की मनाही करा दी है। हमारी प्रार्थना है कि आप भी इस उत्सव के दिनों में मांस-भक्षण का त्याग कर दें।

मन्त्रियों की सम्मति राजा ने स्वीकार कर ली। किन्तु वह मांस का अत्यन्त लोलुपी था। मांस के बिना उसको एक दिन भी चैन नहीं पड़ता था। उसने एकान्त में रसोइये को बुलाकर आज्ञा दी—

—तुम गुप्त रूप से मांस लाकर मुझे खिला दिया करो।

रसोइये ने स्वामी की आज्ञा स्वीकार की। वह नगर भर में मारा-मारा घूमता रहा किन्तु कहीं उसे मांस मिला नहीं। बिना मांस लिए राजमहल में पहुँचना खतरे से खाली नहीं था। कुपित होकर राजा न जाने क्या दण्ड देगा ? वह राजा की मांस-लोलुपता से भली-भाँति परिचित था।

निराश और चिन्ताग्रस्त रसोइया श्मशान की ओर जा निकला। वहाँ उसे एक मृत-शिशु दिखाई दे गया। उसकी जान में जान आई। उसने मृत शिशु को उठाया और भली-भाँति पकाकर राजा को परोस दिया।

राजा ने खाया तो उसे आज के मांस का स्वाद निराला ही लगा। ऐसा स्वादिष्ट मांस उसने पहले कभी नहीं खाया था। रसोइये से पूछा—

—आज का मांस अन्य दिनों की अपेक्षा अलग मालूम पड़ता है। इसका स्वाद अलग है।

—अन्नदाता! क्या आज का भोजन रुचिकर नहीं है?

—बहुत स्वादिष्ट! किस प्राणी का मांस है यह?

रसोइया कहने लगा—

—स्वामी राजाज्ञा के कारण मुझे नगर में कहीं भी मांस न मिला। मैं परेशान घूम रहा था कि एक मानव-शिशु दिखाई दे गया। यह उसी का मांस है।

जिह्वालोलुप राजा ने आज्ञा दी—

—आज से हमको मानव-मांस ही खिलाया करो। यह मांस बहुत स्वादिष्ट है। अच्छी तरह समझ गये।

रसोइये ने स्वीकृति दी और मानव-मांस की खोज में रहने लगा। मानव-मांस किसी मांस-विक्रेता की दुकान पर तो बिकता नहीं और न ही प्रतिदिन मानव-शिशु मरते ही हैं। अतः एक दिन उसने एक जीवित बालक को ही पकड़ लिया और उसे पकाकर राजा को खिला दिया।

आज का मांस और भी स्वादिष्ट था। चटकारा लेते हुए सोदास ने पूछा—

—आज के भोजन में वहुत लज्जत है ।

—हाँ महाराज ! आज जीवित शिशु का मांस पकाया है ।

—आगे सदा जीवित शिशु का ही मांस पकाना—मांस लोलुपी सोदास ने रसोइये को आज्ञा दी ।

राजा की आज्ञा से रसोइया निडर हो गया था । अव वह भाँति-भाँति के लालच देकर भोले-भाले वच्चों को पकड़ने लगा ।

दिनों-दिन वच्चों के गायव होने से माता-पिता सतर्क हो गये । रसोइये का यह पाप भी कव तक छिपता ? एक-न-दिन तो प्रगट होना ही था ।

एक वालक को फुसलाते हुए नगरवासियों ने उसे देख लिया । ज्योंही वह वच्चे को साथ लेकर चला, लोगों ने उसे पकड़कर पीटना प्रारम्भ कर दिया । रसोइया चीख-चीखकर राजा की दुहाई देने लगा किन्तु प्रजा के विरुद्ध कोई भी राज-कर्मचारी उसे वचाने नहीं आया ।

जव वह पिटते-पिटते वेहाल हो गया तो किसी समझदार व्यक्ति ने लोगों को रोका और रसोइये से पूछा—

—इन वच्चों का तुम करते क्या हो ?

रसोइये ने सव वात स्पष्ट वता दी । मरता क्या न करता—सच नहीं वोलता तो जनता उसी के प्राण ले लेती ।

'राजा मानव-शिशु-भक्षी है' जानकर प्रजा को वहुत दुःख हुआ । माता-पिता को पुत्र अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे होते हैं । राजा से फरियाद करने से तो लाभ ही क्या था ? जो स्वयं उस पाप का प्रेरक हो, उससे न्याय की क्या आशा ? लोगों ने जाकर मन्त्रियों से सव हाल कह सुनाया । साक्षी रूप में राजा का प्रिय रसोइया था ही ।

प्रजा और मन्त्री ने मिलकर राजा को सिंहासन से उतारकर नगर से वाहर निकाल दिया और सोदास के पुत्र सिंहरथ को सिंहासन पर विठाया।

यह थी प्रजा के नैतिक वल तथा एकता की शक्ति।

राजा सोदास राक्षस की भाँति वन-वन भटकने लगा। वनों में उसे भयंकर कष्ट भोगने पड़े। मानव मांस का वहाँ प्रश्न ही नहीं था, पशु मांस भी उसे कभी-कभी नहीं मिल पाता था। कई-कई दिन भूखे ही रह जाना पड़ता। कभी-कभी तो दिन-दिन भर पानी भी नसीव नहीं होता था। भूख-प्यास से पीड़ित सोदास अपने जीवन को निस्सार समझने लगता।

एक वार भटकता-भटकता सोदास दक्षिणापथ में आया। वहाँ उसे कोई मुनि दिखाई पड़े। वह दुःखी तो था ही मुनि को वन्दन करके उसने सुख का उपाय पूछा। मुनि ने सुख के उपायभूत मद्य मांस त्यागरूप जिनधर्म का उपदेश दिया।

राजा को मांस-भक्षण के दुःख का स्पष्ट अनुभव था। न वह मांस-लोलुपी होता और न उसे राज्य से निकाला जाता। मांस-भक्षण के कारण ही तो उसे वन-वन भटकना पड़ा था। उसने मांस-भक्षण त्यागकर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए।

श्रावकधर्म धारण करके राजा महापुरनगर में पहुँचा। वहाँ का राजा विना पुत्र के ही मर गया था। सोदास का पुण्य प्रगट हुआ और मन्त्रियों ने उसका राज्याभिषेक कर दिया। सोदास महापुर का राजा हो गया।

महापुर के सिंहासन पर वैठते ही सोदास ने एक दूत अपने पुत्र सिंहरथ के पास भेजा। दूत ने अयोध्या की राजसभा में उपस्थित होकर कहा—

—राजन्! मैं महापुर के राजा का विशेष दूत हूँ।

सिंहरथ ने दूत का उचित स्वागत करते हुए पूछा—

—किस कारण आना हुआ ?

—मेरे स्वामी का आदेश है कि आप उनकी आज्ञा मानें। —दूत ने अपने स्वामी की इच्छा बताई।

सिंहरथ की भृकुटी टेढ़ी हो गई। उसने कर्कश स्वर में कहा—

—तुम्हारा स्वामी पागल है, क्या ? व्यर्थ ही युद्ध को निमन्त्रण दे रहा है। मैं उसकी आज्ञा क्यों मानूं ?

— युद्ध को निमन्त्रण तो आप दे रहे हैं। उनकी आज्ञा न मानने का परिणाम युद्ध ही होगा।

—तो हम भी तैयार हैं।

दूत ने सिंहरथ को प्रणाम किया और 'जैसी आपकी इच्छा, राजन्' कहकर चला गया।

उसने सोदास से जाकर यथार्थ वात कह दी। सोदास सिंहरथ पर और सिंहरथ सोदास पर आक्रमण करने चल दिये। मार्ग में दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ गईं। वहीं युद्ध हुआ और सिंहरथ हार गया।

पिता सोदास ने पुत्र सिंहरथ का हाथ पकड़ा और महापुर तथा अयोध्या दोनों का स्वामी वनाकर स्वयं प्रव्रजित हो गया।

सिंहरथ का पुत्र ब्रह्मरथ हुआ। उसके पश्चात् चतुर्मुख, हेमरथ, शतरथ, उदयपृथु, वारिरथ, इन्दुरथ, आदित्यरथ, मांधाता, वीरसेन, प्रतिमन्यु, पद्मवन्धु, रविमन्यु, वसन्ततिलक, कुवेरदत्त, कुंथु, शरभ, द्विरद, सिंहदशन, हिरण्यकशिपु, पुंजस्थल, काकुस्थल और रघु इत्यादि अनेक राजा हुए। इनमें से कुछ तो स्वर्ग गये और कुछ मोक्ष।

वहुत काल वीतने पर इसी वंश में अनेक गुणों से युक्त राजा अनरण्य अयोध्या का स्वामी हुआ। उसके दो पुत्र हुए अनन्तरथ और दशरथ।

त्रिषष्टि शलाका ७।४

***

: ५ :

राम-लक्ष्मण का जन्म

अयोध्या नरेश राजा अनरण्य तो अपने मित्र माहिष्मती नरेश सहस्रांशु के साथ दीक्षित हो हीं चुके थे[1] और उन्हीं के साथ उनका बड़ा पुत्र अनन्तरथ भी प्रव्रजित हो गया। परिणामतः अयोध्या के राजा का पद छोटे पुत्र दशरथ को एक मास की आयु में ही प्राप्त हुआ और बाल्यावस्था में ही उन पर शासन का भार आ पड़ा। मुनि अनरण्य तो केवली होकर सिद्धशिला में जा विराजे और अनन्तरथ मुनि घोर तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे।

यद्यपि राजा दशरथ क्षीरकण्ठ[2] को बाल्यावस्था में ही शासन का उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा किन्तु इससे उनकी कुशलता और कर्तव्यनिष्ठा में निखार ही आया। वे निष्ठापूर्वक सद्धर्म का पालन करते और प्रजा के हित में संलग्न रहते।

युवावस्था में प्रवेश करने पर राजा दशरथ के पराक्रम की कीर्ति चारों ओर फैल गई। लोग उनके सुशासन की प्रशंसा करने लगे। उनके गुणों से आकर्षित होकर दर्भस्थल (कुशस्थल) के राजा सुकोशल

---

१ देखिए पिछले पृष्ठों में 'सहस्रांशु की दीक्षा'।

२ यह राजा दशरथ का दूसरा नाम था।

ने अपनी रानी अमृतप्रभा से उत्पन्न पुत्री अपराजिता का विवाह उनके साथ कर दिया। राजा सुकोशल की पुत्री होने के कारण अपराजिता का दूसरा नाम कौशल्या भी था। कौशल्या रूप और लावण्य में अग्रगण्य राजकुमारी मानी जाती थी।

राजा दशरथ का दूसरा विवाह कमलसंकुल नगर के राजा सुबन्धु-तिलक की पुत्री से हुआ। राजा सुबन्धुतिलक की पुत्री का नाम था कैकेयी[1] और वह रानी मित्रादेवी की कुक्षि से उत्पन्न हुई। इसका लोक प्रचलित नाम सुमित्रा था। इसके पश्चात राजा दशरथ ने सुप्रभा नाम की उत्तम सुन्दरी राजकन्या से विवाह किया। अपनी तीनों रानियों के साथ दशरथ उत्तम सुख भोगते और न्यायनीति पूर्वक राज्य-संचालन करते थे।

एक दिन राजा दशरथ अपनी राज्य सभा में बैठे थे कि देवर्षि नारद वहाँ आये। दशरथ ने सिंहासन से उठकर उन्हें नमस्कार किया और सम्मानपूर्वक उचित आसन पर बिठाया। दशरथ ने देवर्षि से मधुर शब्दों में पूछा—

—देवर्षि ! कहाँ से आ रहे हैं ?

—कहाँ से बताऊँ राजन् ! मैं तो पृथ्वी पर भ्रमण करता ही रहता हूँ।

—फिर भी नारदजी, कुछ तो बताइये।

—तो सुनो नरेश ! विदेह क्षेत्र की पुष्करिणी नगरी में सुर-असुर-

---

१ कैकेयी के मित्राभु, सुशीला और सुमित्रा आदि कई नाम थे। यह सुमित्रा के नाम से प्रसिद्ध हुई और यही वासुदेव लक्ष्मण की जननी थी।

—त्रिषष्टि शलाका ७।४

यह भरत जननी कैकेयी नहीं थी। —सम्पादक

मानवों आदि सभी ने तीर्थंकर भगवान सीमन्धर स्वामी का महाभिनिष्क्रमण महोत्सव[1] मनाया था, सर्वप्रथम तो में उसमें सम्मिलित हुआ।

—धन्य हैं, धन्य हैं, देवर्षि आप जो तीर्थंकर भगवान के महाभिनिष्क्रमण में सम्मिलित हो सके—राजा दशरथ ने गद्गद स्वर से कहा और वहीं से भगवान को भाव-वन्दन किया। समस्त सभा तीर्थंकर देव के प्रति श्रद्धावनत हो गई। नारद ने भी रोमांचित होकर प्रभु स्मरण किया।

कुछ क्षण पश्चात दशरथ ने पुनः पूछा—

—उसके पश्चात कहाँ गमन हुआ, देवर्षि का।

—घूमता-घामता लंका नगरी जा पहुँचा।

—क्या हाल है लंकापति के ?

—अच्छे ही हैं, राज्य सभा में चिन्तामग्न बैठा होगा।

—अर्द्धचक्री को क्या चिन्ता लग गई ?

—राजन् ! इस संसार में चिन्ता किसको नहीं है, सभी को है। किसी को धन की तो किसी को स्त्री की, कोई पुत्र के लिए चिन्तित है तो कोई कुपुत्र के कारण। सभी तो चिन्तित हैं, लंकेश चिन्तित है तो क्या नई बात है ?

---

१ महाभिनिष्क्रमणोत्सव—दीक्षा लेने के समय मनाया जाने वाला उत्सव। जिस समय यहाँ भरतक्षेत्र में भगवान मुनिसुव्रत नाथ का तीर्थ प्रवर्तमान था उस समय तीर्थंकर भगवान सीमन्धर स्वामी ने विदेह क्षेत्र में दीक्षा ग्रहण की थी।

—(त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, ७।४ पृष्ठ ६०—गुजराती अनुवाद)

राजा दशरथ की जिज्ञासा जाग्रत हो चुकी थी। इन्होंने आग्रह-पूर्वक कहा—

—बात को उड़ाइये मत, ऋषिवर !

—न सुनो तो ही अच्छा है, अन्यथा तुम भी चिन्तित हो जाओगे।

—तव तो आपको वताना ही पड़ेगा। अव मैं सुने विना न रहूँगा। —दशरथ के स्वर में विशेप आग्रह था।

नारद जी वोले—

—लोग स्वयं तो पीछे पड़ जाते हैं और बदनाम होता हूँ मैं। पहले तो मुझसे वात कहलवा लेते हैं फिर वदनाम करते हैं कि नारद इधर-की-उधर लगा देते हैं। अव मैं क्या करूँ झूठ वोल नहीं सकता और सत्य कहे विना पीछा नहीं छूटता।

—तो कौन वाध्य करता है आपको मिथ्या भाषण के जिए, सच ही कहिए। मैं भी सत्य ही सुनना चाहता हूँ।

देवर्षि कहने लगे—राजा दशरथ ! तुम मानोगे तो हो नहीं। सुनो—

—लंकेश की राज्यसभा में भूत-भविष्य को जानने वाला एक निमित्तज्ञानी आया। रावण ने उससे पूछा—'मेरी मृत्यु स्वाभाविक रूप से होगी अथवा अन्य किसी के हाथों ?' निमित्तज्ञ निर्भीक था। उसने स्पष्ट शब्दों में वताया—'मिथिलापति राजा जनक की पुत्री के कारण अयोध्यापति राजा दशरथ का पुत्र तुम्हारा प्राणान्त कर देगा।'

दशरथ और उसके सभासदों के मुखों पर चिन्ता की लकीरें खिच गई। राजा ने पुनः प्रश्न किया—

—फिर क्या हुआ ?

—'हुआ क्या !' नारदजी वताने लगे—विभीषण एकदम आसन

से उठ खड़ा हुआ और वोला—'यद्यपि निमित्तज्ञों की वातें सत्य होती हैं किन्तु मैं इसका भविष्य-कथन मिथ्या प्रमाणित कर दूँगा।' रावण ने पूछा—'कैसे ? क्या करोगे, तुम ?' विभीषण का प्रत्युत्तर था—'क्या करूँगा ? अभी राजा दशरथ के न तो कोई पुत्र हुआ है और न ही उसकी कोई रानी ही गर्भवती है। मैं दशरथ को ही मार डालूँगा तो उसका पुत्र कैसे उत्पन्न होगा और जव पुत्र ही न होगा तो आपको कौन मारेगा ? न रहेगा वाँस, न वजेगी वाँसुरी।' रावण को विभीषण की वात पसन्द आई। उसने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा—'विभीषण ! जैसा तुम ठीक समझो वैसा करो। चाहो तो दशरथ और जनक दोनों का ही प्राणान्त कर दो और चाहो तो एक का ही किन्तु मेरी इच्छा है कि कम से कम हिंसा से मेरी प्राण-रक्षा हो जाय।' विभीपण ने भी बड़े भाई की इच्छा को प्रमाण माना और सिर झुका दिया।

नारदजी के इस रहस्योद्घाटन से सम्पूर्ण राज्यसभा शोकमग्न हो गई। स्वामिभक्त मन्त्री ने पूछा—

—देवर्षि ! महाराज की प्राणरक्षा का कोई उपाय ?

—मैं क्या जानूँ ? अब आप लोग अपनी वुद्धि का प्रयोग करिये और उपाय खोजिए। —कहकर नारदजी उठ कर चलने लगे किन्तु स्वामिभक्त मन्त्री ने उन्हें रोक लिया। नारदजी कृत्रिम रोष दिखाते हुए बोले—

—मन्त्री ! तुम तो पीछे ही पड़ गये।

—किसी प्राणी की रक्षा में सहायक होना वुरा तो नहीं है। यदि आपकी वुद्धि से महाराज की प्राण-रक्षा हो जाय तो यह वुद्धि का सदुपयोग ही होगा।

नारदजी और मन्त्री दोनों ने मिलकर वुद्धि का सदुपयोग किया

और एक उपाय खोज ही निकाला। उपाय से सन्तुष्ट होकर दशरथ ने देवर्षि से निवेदन किया—

—मुनिवर ! एक कष्ट और कीजिए। मिथिलापति राजा जनक को भी यह उपाय वता दीजिए। उनकी भी प्राणरक्षा हो जायगी। दूत को भेजने का समय नहीं हैं अन्यथा मैं आपसे यह धृष्टता न करता।

देवर्पि ने दशरथ की भावना को समझा और स्वीकृति देते हुए कहा—

—आपका कथन सत्य है राजन् ! राक्षस जाति अनेक विद्या सम्पन्न है। वे पक्षी की भाँति उड़कर तीव्र वेग से कहीं भी जा सकते हैं जवकि सामान्य-मानव नहीं। तुम्हारी यह उपकार वृत्ति तुम्हारे लिए ही कल्याणप्रद होगी।

मुनि नारद वहाँ से चले और राजा जनक को सम्पूर्ण समाचार सुनाकर उसे प्राण रक्षा का उपाय वता दिया। उन्होंने अन्त में कहा—

—मिथिलापति ! राजा दशरथ तुम्हारे सच्चे शुभचिन्तक हैं। उन्होंने भी मुझे यहाँ आने की प्रेरणा दी।

नारदजी तो अपना कर्तव्य पूरा करके चले गये किन्तु मन्त्री ने भी अपना कर्तव्य सुचारु रूप से पालन किया। राजा दशरथ का एक लेप्यमय पुतला वनवा कर राज्य गृह में रख दिया। अयोध्या-पति दशरथ रात्रि अन्धकार में चुपचाप नगरी से निकले और वन की ओर चले गये। यही उपाय राजा जनक ने भी किया और वे भी वन में निकल गये।

रात्रि के अन्धकार में विभीषण अयोध्या आया और दशरथ के निजी कक्ष में पहुँचा। अंधेरे में पुतले को देखकर उसने उसे दशरथ समझा। तलवार के तीव्र प्रहार से पुतले का सिर धड़ से दूर जा पड़ा।

विभीषण का कार्य पूरा हो चुका था किन्तु इसकी प्रतिक्रिया जानने की इच्छा उसके हृदय में शेष थी। वह अपने कार्य में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने देना चाहता था। अदृश्य रहकर वह अन्तःपुर की निगरानी करने लगा।

रात्रि के तीसरे पहर में तो उसने हत्या की ही थी और अन्तिम प्रहर में ही अन्तःपुर से करुण क्रन्दन का स्वर फूट पड़ा। रानियों के के रुदन से दिशाएँ गूँजने लगी। समस्त अयोध्या शोकसागर में डूब गई। राजा का अन्तिम संस्कार विभीषण ने अपनी आँखों से देख लिया तो सन्तुष्ट होकर विचार करने लगा—

'दशरथ तो यमलोक पहुँच ही गया। अब जनक को मारने से क्या लाभ ? राक्षसराज की मृत्यु तो दशरथ-पुत्र के द्वारा ही होनी थी। व्यर्थ का रक्तपात नहीं करना चाहिए।' यह निश्चय करके वह लंका वापिस लौट गया। उसे विश्वास था कि रावण के प्राणों की रक्षा उसने अपने इस कुकर्म से करली और निमित्तज्ञ के कथन को मिथ्या सिद्ध कर दिया।

× × ×

मिथिलापति जनक और अयोध्यापति दशरथ दोनों ही वनों में भटकते-भटकते आपस में मिल गये। समानधर्मी मित्रता होती है। अतः दोनों में शीघ्र ही मित्रता हो गई। दोनों मित्र साथ-साथ रहने लगे।

घूमते-घामते वे उत्तरापथ की ओर जा निकले। वहाँ कौतुक-मंगल नगर में कैकेयी का स्वयंवर हो रहा था। कैकेयी नगराधिपति राजा शुभमति और रानी पृथ्वीश्री की पुत्री तथा कुमार द्रोणमेघ की बहन थी। स्वयंवर में हरिवाहन आदि बड़े-बड़े पराक्रमी राजा सम्मिलित हुए थे।

अनिंद्य सुन्दरी कैकेयी के स्वयंवर में दशरथ और जनक दोनों मित्र भी पहुँचे और आसनों पर जा बैठे।

वरमाला हाथ में लिए हुए राजकुमारी कैकेयी ने स्वयंवर मण्डप में प्रवेश किया और एक-एक करके सभी राजाओं का उल्लंघन कर गई। अन्त में उसने दशरथ के गले में वरमाला डाल दी।

सभी की दृष्टियाँ दशरथ की ओर उठ गईं। सभी राजा स्वयं को कैकेयी का स्वामी मानते थे, उस जैसे स्त्री-रत्न की प्राप्ति के लिए लालायित थे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। हरिवाहन ने तो स्पष्ट शब्दों में कह दिया—कैकेयी ने हमको अपमानित किया है। इस दुर्बल से व्यक्ति से मैं इसे छीन लूँगा। देखें मेरा कोई क्या कर लेगा ?

सभी राजा और राजपुत्र कुपित होकर स्वयंवर मण्डप से चले गये और हरिवाहन के नेतृत्व में युद्ध की तैयारियाँ करने लगे।

यद्यपि राजा शुभमति दशरथ के पक्ष में था किन्तु सभी राजाओं की सम्मिलित शक्ति के समक्ष वह भी निरुत्साहित हो रहा था। उसके मुख से निकला—

—अब क्या होगा ? अकेला मैं कैसे इतने राजाओं पर विजय प्राप्त कर सकूँगा ?

दशरथ ने आश्वासन दिया—

—नरेश ! आप चिन्ता न करें। यदि मुझे कुशल और साहसी सारथी मिल जाय तो इन सबके लिए मैं अकेला ही काफी हूँ।

शुभमति ने ऊपर से नीचे तक दशरथ को देखा और बोला—

—भद्र ! यह दर्पोक्ति है। इतने राजाओं के समक्ष टिक पाना भी असम्भव है। विजय की बात तो आकाश कुसुम ही समझो।

—राजन् ! हाथ कंगन को आरसी क्या ? आप सारथी का प्रबन्ध कर दीजिए, बस। और स्वयं महल में बैठे-बैठे तमाशा देखिए।

कैकेयी भी वैठी पिता और पति की वातें सुन रही थी। वीच में ही वोल पड़ी—

—आर्य ! यदि आपको अपनी रण-चातुरी पर इतना ही विश्वास है तो रथ-संचालन में मेरी समता करने वाला कोई दूसरा सारथी नहीं मिलेगा।

प्रसन्न होकर दशरथ वोले—

—तो कहना ही क्या ? कल का सूर्यास्त सभी शत्रुओं के मस्तक झुके हुए देखेगा।

× × ×

प्रातःकाल की उपा ने देखा एक ओर हजारों राजा रथारूढ़ और दूसरी ओर नगर-द्वार से निकलता हुआ एक रथ जिसमें एक योद्धा खड़ा हुआ और सारथी वेश में एक वीर वाला—मानो उषा और सूर्य समवेत रूप से चले आ रहे हों। राजाओं ने अकेले दशरथ को देखा तो व्यंग्यपूर्वक खिलखिलाकर हँस पड़े। हरिवाहन ने सबको सावधान करते हुए कहा—अवसर अच्छा है। मार गिराओ इसे और राजकुमारी को छीन लो।

विना रणभेरी बजे ही एक साथ हजारों तीर छूटे और दशरथ की ओर लपके किन्तु वाहरे सारथी ! एकाएक घोड़े उछले, वाण नीचे से निकल गये और रथ पुनः अपने स्थान पर। रथ इतना सधा हुआ ऊपर को उठा और भूमि पर आया कि रथी और सारथी के शरीरों में कम्पन भी न हुआ। पलक झपकते ही यह सब हो गया। अवाक् रह गये सव ! बहत्तर कला निपुण रानी ने अपनी रथ-संचालन विद्या कमाल दिखा दिया। दशरथ को अपनी विजय का पूर्ण विश्वास हो गया और उन्होंने धनुष टंकार की। पुनः हजारों वाण दशरथ के कण्ठच्छेद के लिए धनुषों से छूटे किन्तु इस वार दशरथ गाफिल नहीं थे। उनके अनेक लक्षी वाण ने मार्ग में ही सब तीरों को काट

गिराया। इसके पश्चात् जो दशरथ ने वाण-वर्षा प्रारम्भ की तो सभी राजा हतप्रभ रह गये।

कुशल रथी और सारथी की युगल जोड़ी ने शत्रुओं को रथहीन कर दिया। सभी के रथ भी भंग हो गये और मनोरथ भी। सिंह के समान गर्जना करने वाले शत्रु कायरों की तरह रण-भूमि से भाग भड़े हुए। विजय पताका फहराते हुए पति-पत्नी नगर की ओर लौटने लगे।

मार्ग में ही प्रसन्न वदन दशरथ ने कहा—देवी! युद्धभूमि में तुमने जो अपूर्व साहस और कुशलता दिखाई उससे मैं अतिप्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई वर माँग लो।

रानी ने उत्तर दिया—आर्य! आप में और मुझ में भेद ही क्या है? जो आपका है सो मेरा और जो कुछ मेरा है वह सब आपका। फिर क्या माँगूँ?

दशरथ रानी की वाक् चातुरी पर मुग्ध हो गये, बोले—

—प्रिये तुम रणकुशल ही नहीं नीतिकुशल भी हो। तुम्हारी बुद्धिमत्ता ने मेरी जबान ही वन्द कर दी। मैं तुम पर और भी अधिक प्रसन्न हूँ। अब तो तुम्हें वर माँगना ही पड़ेगा।

—फिर वही वात!—कैकेयी ने प्यार भरी चितवन से पति की ओर देखते हुए कहा।

पतिदेव निहाल हो गये। कहने लगे—

—रानी वर तो माँगो ही। मेरे मुख से निकले शब्द व्यर्थ नहीं हो सकते।

—यदि ऐसा ही है। स्वामी मुझ पर इतने ही कृपालु हैं तो मेरी एक विनय स्वीकार करें।

—वह भी कहो।

—इस वरदान को मेरी धरोहर समझकर अपने पास ही रख लें। जव भी आवश्यकता पड़ेगी माँग लूँगी।[1]

राजा दशरथ ने स्वीकार कर लिया।

दोनों पति-पत्नी राजा शुभमति के सम्मुख पहुँचे तो उन्होंने जँवाई (दामाद) को कण्ठ से लगा लिया। सफलता का सर्वत्र सम्मान होता है।

धूमधाम से कैकेयी और दशरथ का विवाह हो गया। जनक सहित वे दोनों कुछ दिन बाद कौतुकमंगल नगर से चल दिये। राजा जनक तो अपनी नगरी मिथिलापुरी पहुँच गये किन्तु दशरथ अयोध्या न लौटे। उनके हृदय में लंकापति रावण का भय अव भी समाया हुआ था। अपनी कुशलता से उन्होंने राजगृही नगरी को विजय किया और वहीं रहने लगे। कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपना अन्तःपुर भी वहीं वुला लिया। अव राजा दशरथ अपनी चारों रानियों के साथ सुख-भोग में लीन हो गये।

सर्वप्रथम गर्भवती हुई पटरानी अपराजिता (कौशल्या)। उसने वलभद्र की माता को दिखाई देने वाले चार स्वप्न देखे—हाथी, सिंह, चन्द्र और सूर्य। ब्रह्म देवलोक से च्यवकर कोई महर्द्धिक देव उसकी कुक्षि में अवतरित हुआ। अनुक्रम से गर्भकाल पूरा हुआ और

---

१ कोप भवन में बैठी हुई कैकयी ने राजा दशरथ को याद दिलाते हुए कहा—

'महाराज ! उस पुरानी वात को याद कीजिए जव देवासुर संग्राम में शत्रु ने आपको घायल करके गिरा दिया था। आप मरणासन्न थे। तव रात भर मैंने आपकी सेवा की और स्वस्थ होने पर आपने मुझे प्रसन्न होकर दो वर दिये थे।'

इस प्रकार राजा दशरथ ने एक नहीं दो वर रानी कैकयी को दिये और वह भी देवासुर संग्राम में। [वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड]

अपराजिता रानी ने पुण्डरीक कमल के समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। राजा ने प्यार से उसका नाम रखा – पद्म किन्तु वह बालक 'राम' के नाम से जग-विख्यात हुआ।

रानी सुमित्रा ने भी रात्रि के अन्तिम प्रहर में वासुदेव के जन्म को सूचित करने वाले सात स्वप्न देखे—हाथी, सिंह, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, लक्ष्मी और समुद्र। उस समय देवलोक से एक परमर्द्धिक देव अपना आयुष्य पूर्ण करके रानी के गर्भ में अवतरित हुआ। रानी गर्भवती हुई और गर्भकाल पूरा होने पर उसने श्यामवर्णी, मेघ के समान जगत को सुखी करने वाला पुत्र उत्पन्न किया।

जैसा उत्सव दशरथ ने बड़े पुत्र के जन्म पर किया उससे कहीं अधिक इस पुत्र के जन्म पर। पुत्र का नाम रखा गया नारायण किन्तु संसार में लक्ष्मण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दोनों पुत्र धीरे-धीरे बढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों उनकी आयु बढ़ती गई वे सभी कलाओं और विद्याओं में पारंगत होते गये। दशरथ उन दोनों के बल-पराक्रम को देखकर स्वयं को अजेय समझने लगे। बलवान और नीतिवान दोनों पुत्रों के कारण उनका भय पलायन कर गया और वे अन्तःपुर सहित पुनः अयोध्या लौट आये।[1] राम-लक्ष्मण जैसे जिसके पुत्र हों उसे अब रावण का क्या भय ? जिस

---

१ इस बात को (सगर की मृत्यु को) सुनकर राजा दशरथ ने सोचा कि हमारा कुल परम्परागत राज्य अयोध्या में चला आता है। इसलिए वे पुत्रों सहित अयोध्या आये वहाँ राज्य करने लगे। वहीं पर किसी रानी से भरत नाम का पुत्र हुआ और किसी दूसरी रानी से शत्रुघ्न नाम का पुत्र का हुआ। [उत्तर पुराण ६७।१६३-६४]

यहाँ भरत तथा शत्रुघ्न की माताओं के नाम का कोई उल्लेख नहीं है।

—सम्पादक

लंकेश के भय से वे वन-वन भटके थे वही राक्षसराज उन्हें अब मच्छर सा प्रतीत होता था। सत्य है—सुपुत्र पिता की सबसे बड़ी शक्ति होता है।

एक बार रानी कैकेयी ने भी शुभ स्वप्नपूर्वक गर्भ धारण किया और भरत क्षेत्र के मुकुट के समान भरत नाम का धर्म धुरन्धर और बलवान पुत्र प्रसव किया।

जब तीनों रानियाँ मातृत्व के गौरव से विभूषित हो चुकी थीं तो सुप्रभा ही क्यों पीछे रहती? उसने शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले शत्रुघ्न नाम के पुत्र को जन्म दिया।

अब राजा दशरथ के राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न चार विनीत पुत्र थे।[1]

---

१ (क) वाल्मीकि रामायण में दशरथ को केवल कोसल देश का राजा ही माना गया है; इनका राजगृह पर अधिकार नहीं बताया गया। कोसल देश की राजधानी थी अयोध्या और उसके राजा थे महाराज दशरथ।

राम-लक्ष्मण भरत-शत्रुघ्न—चारों भाइयों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्न घटना है—

(१) राजा दशरथ पुत्र न होने से दुःखी थे। उनके मन्त्री सुमन्त्र ने ऋष्यश्रृङ्ग ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराने की सलाह दी। पुत्रेष्टि यज्ञ राजा ने किया। तब यज्ञाग्नि ने एक तेजस्वी पुरुष खीर का पात्र लेकर निकला। वह खीर राजा ने अपनी रानियों—कौशल्या को आधी, बची हुई में से आधी सुमित्रा को दी। दोनों को देने के बाद बची हुई में से आधी कैकयी को और आधी पुनः सुमित्रा को ही दे दी। तीनों रानियों (कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी) ने वह खीर प्रसन्नतापूर्वक उदरस्थ कर ली।

भरत और शत्रुघ्न भी समय पाकर युवक हो गये। चारों भाइयों में घनिष्ठ स्नेह था।

इसके बारह महीने बाद चैत्र मास की शुक्ला नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र और कर्क लग्न में कौशल्या ने राम को जन्म दिया। उस समय सूर्य, मंगल, शनि, गुरु और शुक्र ये पाँचों ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानों में थे तथा लग्न में चन्द्रमा के साथ गुरु भी विराजमान थे। कैकयी के गर्भ से भरत का जन्म हुआ। तदनन्तर सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया। भरत का जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में हुआ। लक्ष्मण और शत्रुघ्न के जन्म के समय आश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न थी। उस समय सूर्य अपने उच्च स्थान पर था।

उस समय देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और नाच-गाकर आनन्द मनाया। [वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड]

(२) विष्णुजी के पास जाकर देवता, गंधर्व, यक्ष, महर्षि गणों ने रावण के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की। इस पर विष्णुजी ने उन्हें अभय दिया और अपने को चार स्वरूपों में प्रगट करने तथा राजा दशरथ को पिता बनाने का निश्चय किया।

इस प्रकार राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न चारों भाई विष्णु के ही अवतार थे। [वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड]

(ख) तुलसीदासकृत रामचरितमानस में राम के जन्म के तीन कारण बताये गये हैं :—

(१) मुनि नारद का विष्णु में अधिक प्रेम देखकर देवराज इन्द्र को भय हुआ कि कहीं नारद स्वर्ग पर अधिकार न कर लें। इसलिए उसने उन्हें मोहित करने के लिए कामदेव को भेजा, किन्तु कामदेव का नारद पर कुछ वश न चला। वह निराश होकर इन्द्र के पास वापस चला गया।

अपने चारों सुयोग्य पुत्रों—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के साथ राजा दशरथ सुखपूर्वक राज्य-संचालन करने लगे। पुत्रों

कामदेव को जीत लेने के कारण नारदजी को गर्व हो गया। उन्होंने विष्णुजी के सामने भी गर्वोक्ति की। तब उनका गर्व हरने के लिए विष्णुजी ने अपनी माया फैलाई।

विष्णु की माया ने एक सुन्दर सगरी की रचना की। वहाँ का राजा शीलनिधि था और स्वयं विष्णुमाया ने विश्वमोहिनी नाम से वहाँ शरीर धारण किया। एक वार नारदजी घूमते-घामते उस नगरी में जा पहुँचे तो आदरपूर्वक राजा ने अपनी कन्या दिखाकर उनसे उसके गुण-दोष जानने चाहे। विश्वमोहिनी का रूप देखकर नारद कामाभिभूत हो गये।

वे तुरन्त अपने आराध्य विष्णुजी के पास पहुँचे और विश्वमोहिनी को ब्याहने की इच्छा से सुन्दर रूप की याचना की। विष्णु ने यह कहकर कि 'जिसमें तुम्हारा भला होगा वही करेंगे' उनका रूप वानर का सा वना दिया।

नारदजी विश्वमोहिनी के स्वयंवर में अकड़ते हुए जा पहुँचे। स्वयं विष्णुजी भी एक राजा का रूप वनाकर वहाँ पहुँच गये। वहीं शिवजी के दो गण भी ब्राह्मणों का वेश बनाकर वैठे थे। विष्णु की इस माया को वे जानते थे। विश्वमोहिनी ने जव विष्णु के गले में वरमाला डाल दी और वे उसे साथ लेकर चल दिये तो नारद खेदखिन्न हो गये। तव उन ब्राह्मणों ने कहा—'मुनिवर! अपना रूप तो दर्पण में देखिए। राजकुमारी आपके कण्ठ में माला कैसे डाल देगी?'

नारद ने जल में अपना मुँह देखा तो वह वन्दर का सा था। शिवजी के गण उनका मजाक उड़ाने लगे। नारद को उन पर वहुत क्रोध आया और उन्हें राक्षस होने का शाप दिया। उन्हें विष्णु का व्यवहार भी वहुत वुरा लगा। अतः उन्होंने शाप दिया कि जिस तरह मैं आज

के सहयोग से समस्त देश में सुख और शान्ति का साम्राज्य छा गया था।

—त्रिषष्टि शलाका ७।४
—उत्तर पुराण ६७।१६३-१६४

※ ※

स्त्री के लिए तड़प रहा हूँ वैसे ही तुम भी तड़पोगे और आज तुमने मेरा वानर का रूप बनाया तो तुम भी वानरों की सहायता से ही अपनी पत्नी को प्राप्त कर पाओगे।

शिव के गणों ने नारद से क्षमा-याचना की और हँसी उड़ाने पर पश्चात्ताप प्रगट किया तो नारद ने उनसे कहा—'तुम राक्षस तो होंगे किन्तु महाबली और बड़े समृद्धिशाली। विष्णुजी के हाथों मरकर तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जायगी।

इसी कारण विष्णु को राम के रूप में जन्म लेना पड़ा, सीता वियोग हुआ और शिवजी के गण रावण और कुम्भकरण के रूप जन्मे तथा राम के हाथों मरकर मुक्त हुए। [बालकाण्ड : दोहा १२४-१४०]

(२) स्वायंभुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा ने दस हजार वर्ष तक तपस्या करके विष्णु को अपने पुत्र में रूप में पाने का वर माँगा था। इसी कारण विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया।

[बालकाण्ड : दोहा १४१-१५२]

(३) कैकय देश के राजा का नाम सत्यकेतु था। उसके दो पुत्र थे—बड़ा प्रतापभानु और छोटा अरिमर्दन। राजा ने बड़े पुत्र प्रतापभानु को राज्य दिया और स्वयं भगवान का भजन करने लगा। उसका मन्त्री धर्मरुचि था। प्रतापभानु ने अपने पराक्रम से अनेक राजाओं को जीत लिया था।

एक बार राजा किसी जंगली सूअर का शिकार करने की धुन में एक घने जंगल में भटक गया। वहाँ उसे एक मुनि की कुटिया दिखाई

दी। (वह मुनि एक पराजित राजा था जिसका राज्य प्रतापभानु ने छीन लिया था और अब वह एक कुटिया बनाकर जंगल में रहने लगा था। सूअर कालकेतु नाम का राक्षस था जो उसने राजा को भटकाने के लिए भेजा था।)

उस कपट मुनि ने राजा को आश्रय दिया। राजा ने उससे यह वर माँगा कि 'मेरा शरीर रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित हो जाय तथा सौ कल्प अकंटक मेरा राज्य चले।'

मुनि ने इसके लिए ब्रह्मभोज का आयोजन करने का उपाय बताया। भोजन परोसने का दायित्व राजा को दिया और बनाने का स्वयं ग्रहण किया।

राजा निश्चिन्त होकर सो गया तो कपट मुनि ने कालकेतु राक्षस की सहायता से उसे उसके राजमहल में पहुँचवा दिया।

चौथे दिन राक्षस कालकेतु ने उसके मन्त्री को वहाँ गायब करके एक गुफा में रख दिया और स्वयं वहाँ जा पहुँचा।

मन्त्री ने भोजन बनाया तो उसमें पशुओं के मांस के साथ ब्राह्मणों का मांस भी मिला दिया। राजा ने अनभिज्ञता में वह भोजन परोस दिया। ब्राह्मण खाने को तत्पर हुए तभी कालकेतु ने अदृश्य रहकर आकाशवाणी की—'इस भोजन को मत खाओ। इसमें ब्राह्मणों का मांस मिला है।'

यह सुनकर ब्राह्मण उठ गये और उन्होंने राजा को राक्षस होने का शाप दे दिया।

राजा प्रतापभानु रावण बना, अरिमर्दन कुम्भकर्ण और मन्त्री धर्मरुचि विभीषण। [बालकाण्ड : दोहा १५२-१७६]

विशेष—श्रीराम का जन्म अभिजित नक्षत्र में हुआ।

[बालकाण्ड, दोहा १९१ प्रथम चौपाई]

: ६ :

सीता जन्म : भामण्डल-हरण

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में दारु नाम का एक ग्राम था। उस ग्राम में निवास करता था वसुभूति नाम का एक श्रेष्ठ ब्राह्मण। उसकी पत्नी अनुकोशा से एक पुत्र हुआ अतिभूति। अतिभूति का विवाह हुआ सरसा नाम की सुन्दरी से।

सुन्दरता ही लोगों को आकर्षित कर लेती है और यदि सुन्दरी सरस भी हो तो लोभी भँवरे उसके चारों ओर मँडराने लगते हैं। सरसा भी सरस थी। एक बार कयान नाम का ब्राह्मण उसे हर ले गया।

अतिभूति भूत के समान पत्नी को खोजने लगा। वसुभूति और अनुकोशा ने भी पुत्रवधू को बहुत ढूँढ़ा किन्तु सरसा न मिलनी थी, न मिली।

अनुकोशा और वसुभूति को दैवयोग से एक मुनि दिखाई दे गये। दोनों ने भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना की। मुनिश्री से धर्मश्रवण करके दोनों ने व्रत स्वीकार कर लिए। गुरु-आज्ञा धारण करके अनुकोशा कमलश्री आर्या के पास रहने लगी। व्रत-पालन करते हुए दोनों ने कालधर्म प्राप्त किया और सौधर्म देवलोक में देव पर्याय पाई।

सरसा ने भी किसी साध्वी के पास दीक्षा ग्रहण की और संयम पूर्वक मरण करके ईशान देवलोक में देव हुई। किन्तु अतिभूति सरसा

के विरह में विक्षिप्त सा घूमता रहा। उसने धर्माराधन नहीं किया। परिणामस्वरूप वहुत समय तक भवाटवी में भटकता रहा और एक वार हंस-शावक वना। किसी वाज ने उस पर झपट्टा मारा और वह घायल होकर आकाश से जमीन पर आ गिरा। वहीं एक मुनि विराजमान थे। मरणासन्न हंस-शावक को देखकर उनके हृदय में दया उमड़ आई और उन्होंने पंचनमस्कार मन्त्र उसे सुनाया। उस मन्त्र के प्रभाव से वह किन्नर जाति का दस हजार वर्ष की आयु वाला व्यंतर देव हुआ।

वसुभूति का जीव सौधर्म देवलोक से च्यवकर वैताढ्य पर्वत पर रथनूपुर नगर का राजा चन्द्रगति हुआ और अनुकोशा का जीव पवित्र चरित्र वाली उसकी पत्नी पुष्पवंती।

अतिभूति का जीव कालधर्म पाकर विदग्ध नगर के राजा प्रकाश सिंह की रानी प्रवरावली के गर्भ से कुलमण्डित नाम का पुत्र हुआ।

कयान ब्राह्मण का जीव भी भोगासक्त हुआ। भव वन में भटकता रहा और चक्रपुर नगर के राजा चक्रध्वज के पुरोहित धूमकेश की स्त्री स्वाहा के गर्भ से पिंगल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

पिंगल ने अनुक्रम से पौगंडावस्था में प्रवेश किया और गुरु आश्रम में विद्याभ्यास के लिए रहने लगा। वहीं राजा चक्रध्वज की पुत्री अतिसुन्दरी भी विद्यार्जन करती थी। दोनों साथ-साथ पढ़ने लगे। कितने ही काल तक परस्पर साथ रहने से दोनों में प्रेम का अंकुर फूट निकला। वाल्यावस्था का सहज प्रेम युवावस्था तक आते-आते कामभाव में परिणत हो गया।

युवावस्था उच्छृंखल होती ही है। पिंगल भी अतिसुन्दरी को ले भागा और विदग्धनगर जा पहुँचा। दोनों प्रेमी युगल भाग तो आये किन्तु प्रेम से पेट नहीं भरता और क्षुधा की वेदना कामेच्छा से अधिक तीव्र होती है। कला विज्ञान विहीन पिंगल ईंधन आदि वेचकर गुजर-वसर करने लगा।

एक बार राजकुमार कुलमण्डित की दृष्टि अतिसुन्दरी पर पड़ी। राजकुमारी का रूप मलिन वस्त्रों में भी छिप नहीं रहा था। कुमार उसकी ओर आकर्षित हो गया। राजकन्या भी कुमार पर रीझ गई और कुलमण्डित अतिसुन्दरी को साथ लेकर चल दिया।

प्रेमी हृदय अविवेकपूर्ण कार्य तो कर डालता है परन्तु संसार से भयभीत ही रहता है। राजकुमार के हृदय में भी विचार आया—'यदि पिताजी ने इस कन्या को स्वीकार नहीं किया तो....'

और वह राजमहल न जाकर जंगल की ओर चल दिया तथा किसी दुर्ग देश में पल्ली बनाकर रहने लगा।

पिंगल ने घर आकर जब अतिसुन्दरी को न देखा तो वह बहुत दुखी हुआ और उसे ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भटकने लगा। भटकते-भटकते उसे एक बार आचार्य आर्यगुप्त के दर्शन हो गये। उनके श्रीमुख से उसने धर्म श्रवण किया और दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा तो उसने ले ली और तप संयम भी पालन करता था किन्तु उसके हृदय से अतिसुन्दरी की स्मृति निकली नहीं। लेकिन तप का का फल स्वर्ग प्राप्ति ही है अतः वह मरकर सौधर्म देवलोक में देव हुआ।

कुलमण्डित ने जीविका निर्वाह के लिए लूट मार करना प्रारम्भ कर दिया और वह राजा दशरथ के प्रान्त भाग में यदा-कदा प्रजा का धन छीन ले जाता।

दशरथ जैसे प्रतापी नरेश के लिए यह असह्य था कि कोई उनकी प्रजा को पीड़ित करे। उन्होंने बालचन्द्र सामन्त को कुलमण्डित के पराभव हेतु नियुक्त किया। सामन्त ने उसे बन्धनों में जकड़ा और राजा के समक्ष उपस्थित कर दिया। बहुत काल तक बन्दीगृह में रख-कर राजा दशरथ ने उसे छोड़ दिया और वह उद्देश्यहीन इधर-उधर भटकने लगा।

मुनिचन्द्र नाम के मुनि से उसने धर्म श्रवण किया और श्रावक धर्म स्वीकार कर लिया। कुलमण्डित राजकुमार होकर भी राज्य न पा सका इसलिए उसके हृदय में राज्य प्राप्ति की लालसा वनी रही। मृत्यु पाकर वह जनक राजा की रानी विदेहा[1] के गर्भ में अवतरित हुआ।

उसी समय सरसा का जीव भी ब्रह्मदेव लोक से च्यवकर विदेहा की कुक्षि में अवस्थित हुआ। इससे पहले सरसा का जीव ईशान देव लोक में था और वहाँ से कालधर्म प्राप्त कर एक पुरोहित की पुत्री वेगवती के रूप में उत्पन्न हुआ। उसी जन्म में उसने पुनः दीक्षा ली और तप के प्रभाव से ब्रह्मदेव लोक में उत्पन्न हुई थी।

दोनों जीव रानी विदेहा के गर्भ में वढ़ने लगे।

गर्भकाल पूरा होने पर रानी ने एक पुत्र और एक पुत्री को युगल रूप से जन्म दिया। जनक के राजमहल में खुशियाँ छा गई। मंगल-वाद्य वजने लगे। माता-पिता पुत्र-पुत्री का मुख देख कर विभोर हो गये। सम्पूर्ण नगर जन्मोत्सव मनाने के लिए सज गया। लोग आनन्द मग्न थे।

अचानक रानी विदेहा के प्रसूतिगृह से एक चीख सुनाई दी और करुण-क्रन्दन गूँजने लगा। दासियों में भगदड़ मच गई। अन्दर जाकर देखा तो पुत्र गायब! घबड़ाई हुई दासियों ने राजा जनक को सूचना दी। महाराज शोक विह्वल हो गये।

रंग में भंग पड़ गया। मंगलवाद्य शान्त हो गये और मंगलाचार करने वाली स्त्रियों के मुख बन्द। दुःख और शोक की लहर सभी और व्याप्त हो गई।

---

१ जनक की रानी का नाम विदेहा के स्थान पर वसुधा है।

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक २८

प्रसूतिगृह के चारों ओर दास-दासियों के जमघट में से नवजात शिशु का हरण कौन कर ले गया—आश्चर्य की वात थी। महल का कौना-कौना छान डाला गया, दिशा विदिशाओं में अनुचर भेजे गये किन्तु कुमार का कहीं पता न लगा। निराश राजा जनक हृदय थाम कर रह गये। रानी ने भी यह सोचकर सन्तोष कर लिया—उसके एक पुत्री[1] ही हुई थी, पुत्र हुआ ही नहीं।

---

१ उत्तर पुराण में सीता के जन्म की एक अन्य ही कथा दी गई हैं—

एक दिन लंका का राजा दशानन अपनी रानी के साथ वन-क्रीड़ा को गया। वहाँ विजयार्द्ध पर्वत के अचलक नगर के स्वामी राजा अमित-वेग की पुत्री मणिमती विद्या सिद्ध कर रही थी। उसे देखकर दशानन काम के वशीभूत हो गया। उस कन्या को वश में करने के लिए उसने उसकी सिद्ध की हुई विद्या हरण कर ली। वह कन्या विद्या सिद्धि के हेतु वारह वर्ष तक उपवास करके वहुत क्षीण हो गई थी। उसे रावण पर क्रोध आ गया और उसने निदान किया कि 'अगले जन्म में मैं इसकी पुत्री होकर इसके सर्वनाश का कारण वनूँगी।'

इस निदान के कारण वह कन्या मरकर मन्दोदरी के गर्भ में आई। उसका जन्म होते ही लंका में भूकम्प आदि विभिन्न प्रकार के उपद्रव होने लगे। नैमित्तिकों ने स्पष्ट कह दिया कि यह कन्या लंकापति रावण के नाश का कारण होगी।

भयभीत होकर दशानन ने मारीच को आज्ञा दी कि इस कन्या को कहीं दूसरी जगह छोड़ आओ। रावण की आज्ञानुसार मारीच मन्दोदरी के पास गया और उसे सम्पूर्ण वात वता दी।

मन्दोदरी भी रावण की आज्ञा के उल्लंघन का साहस न कर सकी। उसने पुत्री को एक सन्दूक में वहुत सा द्रव्य और एक पत्र लिख-कर रख दिया।

जनक का पुत्र आस-पास होता तो मिलता वह तो वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी के रथनूपुर नगर के विद्याधर राजा चन्द्रगति की रानी पुष्पवती के अंक में किलकारियाँ भर रहा था।

हुआ यह था कि पिंगल मुनि का जीव जो सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ था उसने अपने पूर्वभव के शत्रु कुलमण्डित के सम्वन्ध में अवधिज्ञान से विचार किया। शत्रु को राजा जनक के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ जान वह क्रोधावेश में भर गया और नवजात शिशु को को माता की वगल से उठाकर उसे मारने के अभिप्राय से ले गया।

आकाश में चलते-चलते उसकी विचारधारा पलटी। सोचा—'मैंने पूर्वजन्मों में पाप कर्म किये थे उनका फल तो चिरकाल तक भोगा। अब इस जीव हिंसा के फलस्वरूप मुझे और भी कष्ट उठाने पड़ेंगे। दैवयोग से मुनिव्रत धारण किये तव तो यह देव गति पाई और इसमें भी पाप कर्म उपार्जन करूँ तो मुझ जैसा मूर्ख कौन होगा।'

उसके हृदय से वैर-भाव उड़ गया। शिशु को दिव्यवस्त्रालंकारों से विभूषित करके रथनूपुर के नन्दनोद्यान में हलके से छोड़ दिया। वालक के दिव्य वस्त्र अंधेरी रात में चमकने लगे।

मारीच उस कन्या को लेकर मिथिला देश के निकट एक वन में गाड़ आया।

दैवयोग से उसी दिन वहुत से लोग घर वनाने के लिए भूमि खोद रहे थे। वहाँ हल की नोंक से वह सन्दूक कुछ वाहर आई और दिखाई दे गई। लोगों ने वह सन्दूक राजा जनक को सौंप दी। सन्दूक में सुन्दर कन्या और पत्र देखकर जनक सव कुछ समझ गये।

उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से उस कन्या का नाम सीता रखा और अपनी रानी वसुधा को सौंपकर उसे पालने को कहा।

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक ११-२७

राजा चन्द्रगति उस समय गवाक्ष में बैठा था। उसके मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ—उद्यान में यह कांति कैसी ? उत्सुकता शान्ति हेतु वह उद्यान में गया और तेजस्वी बालक को उठा लाया। अपनी रानी को देते हुए बोला—

—लो प्रिये ! तुम पुत्र-प्राप्ति के लिए तरस रही थी।

रानी ने आश्चर्यचकित होकर देखा—एक बालक पति के अंक में हाथ पैर चला रहा है। प्रसन्न होकर उसने बालक ले लिया और प्यार करने लगी।

नारी हृदय शंकालु होता है। पुष्पवती के हृदय में भी अचानक सन्देह की लकीर खिंच गई। उसने पति से पूछा—

—कौन है, यह ?

—बालक है और कौन है।

—कहाँ से ले आए आप इसे ?

—बाहर नन्दन उद्यान में पड़ा था। मैं उठा लाया ?

—इसका कुलशील क्या है ?

—मुझे कुछ नहीं मालूम।

पति की आँखों में आँखें डालते हुए अन्तिम प्रश्न किया—

—किसका पुत्र है, यह ?

—अपना पुत्र ही समझो। —पति के मुख से अनायास ही निकल गया।

—तो आप ही इसके पिता है ? इसकी माता का क्या किया आपने ? —पत्नी ने पति को घूरा।

चन्द्रगति सहम गया। कहने लगा—

—देवि ! मुझ पर आरोप मत लगाओ। विश्वास करो, यह शिशु मेरा पुत्र नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त किसी भी स्त्री से मेरा

सम्बन्ध नहीं, तो पुत्र कहाँ से होता ? मैं तो इसे उद्यान में अरक्षित पड़ा देखकर उठा लाया। यह किसका पुत्र है ? इसका कुल-शील क्या है ? मुझे कुछ नहीं मालूम।

—सच कह रहे हैं, आप ?

—बिल्कुल सच !

पति के आश्वासन से पत्नी आश्वस्त हुई। राजा ने शिशु का जन्मोत्सव कराया और नगर में घोषणा करा दी—'आज गूढ़गर्भा रानी पुष्पवती ने पुत्र को जन्म दिया है।' दिव्य वस्त्रालंकारों की कान्ति के कारण राजा ने उसका नाम रखा भामण्डल।

भामण्डलकुमार विद्याधरियों के प्यार में झूलता हुआ बड़ा होने लगा।

—त्रिषष्टि शलाका, ७।४

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक १३-२७

❊ ❊

: ७ :

सीता-स्वयंवर

जनक पुत्री सीता युवती हो गई। उसके लिए योग्य वर के हेतु पिता ने अनेक राजकुमारों की ओर दृष्टि दौड़ाई किन्तु उन्हें कोई उपयुक्त वर जँचा नहीं। राजा जनक पुत्री के विवाह की चिन्ता में पड़े ही थे कि एक और विपत्ति आ गई। अर्धबर्बर देश के आतरंगतम आदि म्लेच्छ राजा उनकी भूमि पर उपद्रव करने लगे। राजा जनक ने अनेक उपाय किये, सामन्त भेजे; किन्तु कोई भी उन म्लेच्छों से पार न पा सका। अन्त में उन्हें अपने परम मित्र राजा दशरथ की याद आई। विपत्ति में मित्र ही काम आते हैं। जनक ने अपने विश्वासी और बुद्धिमान दूत को अपना आशय समझाकर राजा दशरथ के पास भेजा।

अयोध्या की राज्यसभा में आकर दूत ने अपना परिचय दिया—

—अयोध्यापति को मिथिलापति राजा जनक का विशेष दूत प्रणाम करता है।

मित्र के दूत को राजा दशरथ ने आदर से आसन पर विठाया और पूछा—

—दूत राजा जनक तो कुशल हैं, न!

—जी हाँ, महाराज!

—तो प्रजा भी उन जैसे विवेकी और प्रजावत्सल राजा के शासन में सुखी हो होगी ?

—सुखी कहाँ राजन्, दुःखी कहिए।

चौंक पड़े अयोध्यापति। वोले—क्या दुःख है प्रजा को? दूत साफ-साफ बताओ। —प्रजादुःखकातर दशरथ के शब्द काँप रहे थे।

दूत कहने लगा—

—महाराज ! मेरे स्वामी तो प्रजावत्सल हैं किन्तु आतरंगतम आदि अर्धवर्बर म्लेच्छ राजाओं का जाल शुक, मंकन, काम्बोज आदि देशों तक फैला हुआ है। वे वहुत ही शक्तिशाली और दुर्दमनीय हैं। हमारे राज्य में आकर उपद्रव करते हैं। हमने अपनी पूरी शक्ति झोंक दी किन्तु उनका कुछ नहीं विगाड़ सके। वे लोग प्रजा को लूटते, प्रताड़ित करते और धर्मस्थानों को नष्ट-भ्रष्ट कर जाते हैं। आप हमारे स्वामी के मित्र हैं। प्रजा और धर्म की रक्षा के लिए कुछ कीजिए। अपने महाराज की ओर से यही विनय करने आया हूँ।

प्रजावत्सल महाराज दशरथ की भृकुटी टेढ़ी हो गई। उन्होंने तुरन्त सेना तैयार करने का आदेश दिया और दूत को आश्वस्त करते हुए वोले—

—दूत ! जनक हमारे परम मित्र हैं और मित्र से विनय नहीं की जाती। मित्र का मित्र पर अधिकार होता है। उनका संकट हमारा संकट है और धर्मद्रोहियों को दण्ड देना तो पुनीत कर्तव्य। तुम जाकर उन्हें आश्वस्त कर देना कि अव उन म्लेच्छों का समूल उन्मूलन ही हो जायगा।

राम सहित चारों भाई राजसभा में बैठे पिताश्री के वचनों को सुन रहे थे। आदरपूर्वक राम उठे और कहने लगे—

—तात ! आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता ? मुझे आज्ञा दीजिए। कुछ ही समय में आपकी इच्छा पूरी हो जायेगी।

दशरथ ने चारों पुत्रों को जाने की आज्ञा दे दी।[1] राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न बड़ी सेना के साथ मिथिलापुरी जा पहुँचे।

---

१ (क) उत्तर पुराण में राम-लक्ष्मण को बुलाने का एक अन्य कारण बताया है—

राजा जनक किसी एक दिन विद्वज्जनों से सुशोभित अपनी राज-सभा में बैठा था। वहीं कुशलमति विद्याधर भी बैठा था। राजा ने उससे पहले कुछ कथाएँ पूछीं और फिर प्रश्न किया कि 'पहले राजा सगर, रानी सुलसा और घोड़े आदि जीव यज्ञ में होमे गये थे और सब सशरीर स्वर्ग को गये ऐसा सुना जाता है तो यथायोग्य रीति से हमको भी यज्ञ करना चाहिए।'

सेनापति ने उत्तर दिया—'सदैव क्रोधातुर नागासुर आपस की शत्रुता के कारण एक-दूसरे के काम में विघ्न डाला करते हैं। इसके सिवाय महाकाल व्यन्तर ने यह यज्ञ की नई विधि बताई है। इसलिए बहुत से लोगों (शत्रुओं) द्वारा इसमें विघ्न डाले जाने की आशंका है। इसके अतिरिक्त नागराज धरणेन्द्र ने नमि और विनमि का बहुत उपकार किया था। इसलिए उसके पक्षपाती विद्याधर अवश्य ही इसमें विघ्न करेंगे। यदि उन विद्याधरों को यज्ञ की बात ज्ञात न भी हो सके तो रावण बड़ा प्रतापी है। वही आकर कदाचित कोई विघ्न उपस्थित कर दे। हाँ, दशरथनन्दन राम बहुत शक्तिशाली हैं। अतः यदि उनको बुलाकर अपनी कन्या दे दी जाय तो यज्ञ निर्विघ्न पूरा हो सकता है।

सभी सभासद सेनापति की युक्ति से प्रसन्न हुए और जनक ने इसी आशय का एक पत्र लिखकर राजा दशरथ के पास अयोध्या भेज दिया।

चारों भाइयों के साथ जनक भी उपद्रवग्रस्त क्षेत्र में सेना के साथ गये। म्लेच्छ लोग भी लड़ने को तत्पर हुए। उन्होंने अब भी

राजा जनक की प्रार्थना पर दशरथ ने अपने मन्त्रियों और नैमित्तिकों से विचार किया।

मन्त्री आगमसार ने कहा—यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने पर इन दोनों भाइयों का महोदय होगा। —पर्व ६७, श्लोक १८४

पुरोहित ने भी कहा—'जनक अवश्य ही राम के लिए कन्या समर्पण कर देंगे। इसलिए दोनों कुमारों को वहाँ भेज देना चाहिए।'

इस तरह सेना के साथ राम-लक्ष्मण को मिथिलापुरी भेज दिया गया।

इस प्रकार राम और लक्ष्मण दो राजकुमार ही मिथिला गये थे।

—पर्व ६८, श्लोक ३०

राजा जनक ने दोनों कुमारों का स्वागत किया। राम-लक्ष्मण के संरक्षण मे कुछ ही दिनों में जनक की इच्छानुसार यज्ञ विधिपूर्वक पूर्ण हुआ।

जनक ने बड़ी विभूति के साथ सीता का विवाह राम के साथ कर किया।

कुछ दिन तक तो राम-लक्ष्मण जनकपुरी (मिथिलानगरी) में ही रहे। बाद में राजा दशरथ के यहाँ से उनको बुलाने के लिए मन्त्री आया।

राजा जनक की अनुज्ञा प्राप्त करके राम अपने अनुज लक्ष्मण और रानी सीता के साथ मिथिला से मन्त्री के साथ चल दिये।

अयोध्या नगरी में दोनों भाइयों ने बड़ी विभूति के साथ प्रवेश किया।

पुत्र और पुत्र-वधू सीता को देखकर अयोध्या नरेश राजा दशरथ और सभी रानियाँ हर्ष विभोर हो गईं। —पर्व ६८, श्लोक ३१-३९

जनक को वैसा ही दुर्बल समझा जैसे कि वे पहले थे। म्लेच्छों ने हथियार लेकर सेना पर आक्रमण कर दिया और राम को मारने के

इसके पश्चात वसन्तऋतु में राजा दशरथ ने अन्य राजाओं की सात कन्याओं के साथ राम का और पृथिवीदेवी आदि सोलह राज-कन्याओं से लक्ष्मण का विवाह कर दिया। —पर्व ६८, श्लोक ४७-४८

(ख) वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

(१) सोलह वर्ष के राम और लक्ष्मण को मुनि विश्वामित्र अपने यज्ञ की मारीच और सुवाहु से रक्षार्थ ले जाते हैं। मार्ग में ही सरयू किनारे विश्वामित्र ऋषि ने राम को वला और अतिवला विद्याएँ सिद्ध कराईं। इन विद्याओं के प्रभाव से राम अविजेय हो गये। —वालकाण्ड

(२) मार्ग में ताटका (ताड़का) वध की प्रेरणा देते हुए विश्वा-मित्र राम से कहते हैं—

यहाँ मलद और करूप नामक दो देश हैं। ताटका नाम की यक्षिणी ने यहाँ उत्पात मचा रखा है। वह सुन्द राक्षस की पत्नी है और मारीच राक्षस की माता। इसको तुरन्त मार डालो। यह विचार मत करो कि वह स्त्री है और स्त्री पर क्षत्रिय शस्त्र नहीं उठाते। क्योंकि पूर्व में विरोचन की पुत्री मंथरा को भी इन्द्र ने मार डाला था।

यह सुनकर राम ने धनुष्टंकार की और सामने आने पर ताटका को मार डाला।

—वालकाण्ड

मुनि विश्वामित्र ने राम को अनेक दिव्यास्त्र दिये। उनमें से राम ने मानवास्त्र की सहायता से मारीच को सौ योजन दूर जल में फेंक दिया और आग्नेयास्त्र से सुवाहु को मार डाला तथा शेष राक्षसों का वध कर दिया।

यज्ञ सम्पन्न होने पर विश्वामित्र मार्ग में अहल्या को शाप मुक्त कराते हुए राम-लक्ष्मण को मिथिलापुरी ले पहुँचे। वहाँ धनुष भंग करके राम ने सीता के साथ विवाह किया। (यह धनुष शिवजी का था जो

लिए उनके सामने स्वयं आतरंगतम आया। म्लेच्छों की सेना राम की सेना पर भारी पड़ रही थी। म्लेच्छराज के पुत्रों ने अकेले राम को घेर लिया। वे समझ रहे थे कि राम को मार लेंगे।

राम ने शर-संधान किया और उनकी प्रथम बाण-वर्षा ने ही कोटि-कोटि म्लेच्छों को वींध दिया। कापुरुषों की भाँति म्लेच्छ प्राण वचाने के लिए इधर-उधर भाग गये। मम्पूर्ण उपद्रवग्रस्त क्षेत्र शान्ति क्षेत्र वन गया। जनक राम के शरलाघव को देखकर मुग्ध हो गये। राजमहल में आकर उन्होंने अपनी रानी विदेहा को राम का पराक्रम सुनाया और रानी की सहमति से सीता का वाक्‌दान (सगाई) राम के साथ कर दिया।

× × ×

देवर्षि नारद का एक ही काम है—जगत का परिभ्रमण करते रहना। एक वार वे सीता के निजी कक्ष में जा पहुँचे। सामने एक कोपीनधारी, पीतमुख और नेत्र, खड़ी शिखा वाले एवं हाथ में दण्ड-

---

उन्होंने दक्ष प्रजापति के यज्ञ-विध्वंस के समय प्रयोग किया था तथा इसी से त्रिपुरासुर का वध किया था और सीता जनक को यज्ञ के लिए भूमि शोधन करते समय हल की नोक लगने से पृथ्वी से प्राप्त हुई थी। इसी कारण सीता को अयोनिजा भी कहा गया है।)

परशुराम का पुण्यहरण करते हुए राम अपने अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ राजा दशरथ तथा अन्य भाइयों सहित अयोध्या लौट आये। —वालकाण्ड

यही सव तुलसी के रामचरितमानस में है।

केवल इतना ही अन्तर है कि वाल्मीकि रामायण में परशुराम से भेंट अयोध्या लौटते हुए वन में होती है और तुलसीकृत में धनुर्भंग होते ही स्वयंवर मण्डप में।

—तुलसी रचित मानस, वालकाण्ड, दोहा २०६-३६०

धारी साधु को देखकर वह भयभीत होकर 'अरी मैया री' कहकर अन्दर के कक्ष में भाग गई।

राजकुमारी का भयभीत स्वर सुनकर दासियाँ दौड़ी आईं और नारदजी को पकड़ लिया। बड़ी कठिनाई से देवर्षि ने उनसे पीछा छुड़ाया और पक्षी के समान आकाश में उड़कर वैताढ्यगिरि जा पहुँचे।

नारदजी का अपमान तो हो ही चुका था, अब वे उसका बदला लेने का उपाय सोचने लगे। उन्होंने कल्पना से ही सीता का एक चित्र बनाया और रथनूपुर के राजकुमार भामण्डल को जा दिखाया। सीता के चित्रपट को देखकर भामण्डल मोहित हो गया। अनंगपीड़ा के कारण वह खाना, पीना, सोना सब भूल गया।

पिता चन्द्रगति ने पुत्र की यह दशा देखी तो चिन्तित होकर पूछने लगा—

—वत्स ! तुम्हें क्या कष्ट है ?

लज्जाशील कुमार भामण्डल मुख नीचा किये बैठा रहा। अधिक आग्रह पर उसने कहा—गुरुजनों के सम्मुख मैं अपने कष्ट का कारण प्रकट नहीं कर सकता।

विवेकी पिता को दुःख का आभास हो गया। उसने कुमार के मित्रों के माध्यम से पता लगवाया तो उन्होंने चित्रपट चन्द्रगति के समक्ष-रखकर बताया—

—यही है कुमार का कष्ट।

—किस सुन्दरी का चित्र है यह ?

—ज्ञात नहीं।

—कौन लाया ?

—देवर्षि नारद।

विद्याधर चन्द्रगति ने देवर्षि की खोज कराई तो वे वहीं रथनूपुर में डटे हुए मिले। विद्याधर राजा ने पूछा—

—देवर्षि ! यह किस सुन्दरी का चित्र है ?

नारदजी कहने लगे—

—राजन् ! यह मिथिलापति राजा जनक की सुता सीता है। मैंने इसे कुमार भामण्डल के सर्वथा योग्य समझा, इसीलिए यह चित्र कुमार को दिखाया।

सम्मानपूर्वक नारदजी को विदा करके चन्द्रगति ने चपलगति नाम के विद्याधर को आज्ञा दी—

—आज रात्रि को ही मिथिलानरेश का अपहरण कर लाओ।

आदेश का पालन हुआ और निद्रावस्था में ही जनक रथनूपुर पहुँच गये। चन्द्रगति ने बड़े स्नेह से उन्हें गले से लिपटा लिया और बोला—

—मिथिलापति ! अपनी पुत्री सीता का विवाह मेरे पुत्र भामण्डल-कुमार से कर दीजिए।

जनक इस नई परिस्थिति से विस्मित तो थे ही वे अचकचाकर बोले—

—पहले तो यह बताइए कि मैं कहाँ हूँ और आप कौन हैं ?

—जनकराज ! इस समय आप वैताढ्यगिरि पर अवस्थित रथनूपुर नगर के स्वामी चन्द्रगति के समक्ष बैठे हैं। मैं आपसे आपकी पुत्री की याचना अपने पुत्र भामण्डल के लिए कर रहा हूँ। आप चाहें तो स्वयं मेरे पुत्र को देखकर निर्णय कर लें। वैसे वह आपकी पुत्री के सर्वथा योग्य है।

कुमार को देखने की आवश्यकता नहीं, मुझे आप पर विश्वास है, किन्तु........

—किन्तु क्या ?

—पुत्री का विवाह आपके पुत्र से नहीं कर सकता। मैं विवश हूँ।

—आप तो विवश हैं या नहीं राजन् ! मैं अवश्य विवश हूँ धर्म और नीति के हाथों—अन्यथा आपके स्थान पर यहाँ आपकी पुत्री सीता होती। मैं धर्म का मार्ग नहीं छोड़ना चाहता।

—यही विवशता तो मेरी है विद्याधरपति। मैं सीता का वाक्‌दान दशरथनन्दन राम के साथ कर चुका हूँ।

—आप सत्य कह रहे हैं, नरेश ?

—आर्हतधर्मानुयायी मिथ्यावादी नहीं होते, खेचरपति।

विद्याधर चन्द्रगति अब विचार में पड़ गया। एक ओर पुत्र-मोह था तो दूसरी ओर धर्म-मोह। धर्म का दामन वह छोड़ना नहीं चाहता था और पुत्र को प्रसन्न देखने की भी इच्छा थी। उसने मध्यम मार्ग खोज निकला। राजा जनक से उसने कहा—

—राजन् ! यदि राम पराक्रमी है तो वह हमें पराजित करे। इसके लिए मैं हिंसात्मक युद्ध नहीं चाहता। हमारे घर में कुल-परम्परा से पूज्य वज्रावर्त और अर्णवावर्त दो धनुष हैं। एक सहस्र यक्ष इनकी रक्षा करते हैं। इनका तेज दुःसह है। इनका उपयोग भावी बलभद्र और वासुदेव ही कर सकेंगे। यदि राम इनमें से एक को भी चढ़ा दे तो हम स्वयं को पराजित मान लेंगे और राम सुख-पूर्वक सीता से विवाह करले। आपको स्वीकार है ?

मस्तिष्क में देर तक ऊहापोह करके जनक बोले—

—बड़ी कठिन शर्त है, खेचरपति !

—इसमें आपका सम्मान भी रह जायगा और हमारा भी। यदि राम धनुप को न चढ़ा सका तो आप अपने वचन से मुक्त हो जायेंगे और सीता भामण्डल को प्राप्त हो जायगी।

राजा जनक ने विवशतापूर्वक यह शर्त स्वीकार कर ली। रात्रि को ही जनक विद्याधर द्वारा अपने महल में पहुँचा दिये गये। प्रातः ही जनक ने धनुष चढ़ाने और सीता स्वयंवर की घोषणा कर दी।

रानी विदेहा इस आकस्मिक घोषणा से हतप्रभ रह गई। उसने पति से पूछा—नाथ! यह नई बात कैसे हुई? क्या रहस्य है यह?

सज्जन पुरुष अपनी अर्द्धांगिनी से कुछ छिपाते नहीं। जनक ने भी सब कुछ बता दिया। विदेहा बोली—स्वामी! यह तो अधर्म हो जायगा। वाक्‌दान किसी को और कन्या का परिणय किसी दूसरे के साथ!

जनक ने समझाया—

—प्रिये! पहली बात तो यह है कि जो भी इस कन्या का पति होने वाला होगा वही तो होगा। हम लोग कर भी क्या सकते हैं? दूसरी बात यह है कि म्लेच्छराज के साथ युद्ध में मैं स्वयं अपनी आँखों से राम का पराक्रम देख चुका हूँ। इस अकेले ने ही कोटि-कोटि दुर्दमनीय म्लेच्छों को धराशायी कर दिया था। मुझे विश्वास है राम इस परीक्षा में भी सफल होगा।

विदेहा ने भी परिस्थिति से विवश होकर मौन स्वीकृति दे दी।

सीता का स्वयंवर हुआ। विद्याधरों ने दोनों धनुष लाकर स्वयंवर मण्डप में रख दिये। अनेक राजा स्वयंवर में सम्मिलित हुए। एक-एक करके राजा उठते और धनुष के पास जाते, सर्पों और अग्नि-ज्वालाओं से धनुष आरक्षित हो जाते, निराश राजा अपना-सा मुँह लिए लौट आते। चढ़ाने की तो बात ही क्या—कोई राजा उन धनुषों को स्पर्श भी न कर सका।

अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए विद्याधरपति चन्द्रगति और कुमार भामण्डल राजाओं की ओर देखकर व्यंगपूर्वक मुस्करा रहे थे। उन्हें विश्वास हो चला था कि अब सीता विद्याधर नगरी में ही आयेगी।

अन्त में श्रीराम उठे। उनके पुण्य प्रभाव से सर्प और अग्नि-ज्वालाएँ अदृश्य हो गईं। उन्होंने सहज रूप से वज्रावर्त धनुष को उठाया, प्रत्यंचा चढ़ाई और धनुष्टंकार कर दिया। छोटे भाई लक्ष्मण ने भी इसी प्रकार अर्णवावर्त धनुप चढ़ाकर टंकार की।

दोनों भाइयों की धनुषटंकार से चन्द्रगति का दिल बैठ गया। पुत्र-विवाह के उसके स्वप्न बिखर गये। वह समझ गया कि भावी बलभद्र और वासुदेव अवतरित हो चुके हैं।

सन्तापित हृदय लेकर चन्द्रगति विद्याधर और कुमार भामण्डल रथनूपुर लौट गये।

जनक ने प्रसन्न होकर दशरथ राजा को बुलवाया और धूमधाम से सीता का विवाह राम के साथ सम्पन्न हो गया। भरत के साथ राजा जनक के अनुज कनक की पुत्री भद्रा का लग्न हो गया। भद्रा कनक की रानी सुप्रभा की पुत्री थी।

कुछ समय मिथिला में रुककर राजा दशरथ अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओं के साथ अयोध्या लौट आये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।४

—उत्तर पुराण, पर्व, ६७।१६६-१८२ तथा

पर्व ६८।३०-३६, ६८।४७-४८

***

: ८ :

दशरथ को वैराग्य

चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यव) के धारी महामुनि सत्यभूति संघ सहित अयोध्या के वाहर उद्यान में पधारे। वनपालक से श्रीसंघ के आगमन की सूचना पाकर राजा दशरथ हर्ष-विभोर हो गये। दीक्षा ग्रहण करने की ललसा तो उनके हृदय में अन्त:पुर के वृद्ध अधिकारी[1] के कारण वहुत समय पूर्व ही जाग्रत हो चुकी थी केवल

---

१ अन्त:पुर के वृद्ध अधिकारी घटना निम्न प्रकार है—

एक वार राजा दशरथ की रानियों ने जिन विम्ब के अभिषेक का निश्चय किया। स्नात्र जल पहुँचवाने का उत्तरदायित्व स्वयं महाराज ने ग्रहण किया। अन्य रानियों का अभिषेक जल तो राजा ने दासियों के हाथ भिजवा दिया किन्तु पटरानी का अभिषेक जल ले जाने की आज्ञा अन्त:पुर के अधिकारी को दी। दासियाँ युवती थीं और अधिकारी वृद्ध। जवानी और वुढ़ापे की गति में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। दासियाँ तो शीघ्रता से पहुँच गई और वृद्ध अधिकारी मन्द-मन्द गति से चलता हुआ मार्ग में पिछड़ गया। अन्य रानियाँ तो भक्तिपूर्वक चैत्य-महोत्सव में भाग लेकर शान्तिस्नात्र करा रही थीं और पटरानी कुढ़ रही थी। उसे विचार उत्पन्न हुआ—'सम्भवत: अव मैं महाराज को खटकने लगी हूँ। इसीलिए उन्होंने सार्वजनिक रूप से मेरा अपमान किया है। अव जीवित रहने से क्या लाभ ?'

सुयोग नहीं मिल रहा था। मुनिराज के आगमन से वह सुन्दर सुयोग भी मिल गया। अब हर्षित होकर राजा दशरथ परिवार और परिकर सहित श्रीसंघ की वन्दना को चल दिये।

यह विचार करके रानी चुपचाप उठी और सबकी नजर बचाकर भीतर के खण्ड (भवन-कमरा) में चली गयी। उसने अपने ही वस्त्र को फाँसी का फन्दा बना लिया तथा आत्महत्या को उद्यत हो गई।

उसी समय राजा दशरथ भी वहाँ आ गये। अन्य रानियों में पटरानी को न देखकर वे चिन्तित हुए और उसकी खोज करने लगे। खोजते-खोजते भीतर खण्ड में पहुँचे तो रानी को इस दशा में पाया। तुरन्त ही राजा ने रानी के गले से फन्दा निकाला और स्नेहपूर्वक बगल में बिठाकर मधुर स्वर में पूछा—

—प्रिये! ऐसा तीव्र क्रोध? मेरे किस अपराध का दण्ड दे रही हो?

—नाथ! अब मैं आपकी आँखों में खटकने लगी हूँ। मुझे मर जाने दीजिए।

दशरथ अवाक् रह गये। पटरानी ने भयंकर आरोप लगाया था। तिलमिलाकर बोले—

—ऐसा न कहो देवी! मेरा अपराध तो बताओ।

—सभी को स्नात्रजल भेजकर आपने कृपा की और मैं मन्दभागिनी उपेक्षित ही रही।

—नहीं, नहीं, रानी! तुम्हारे लिए स्नात्रजल तो अन्तःपुर का अधिकारी स्वयं लेकर सबसे पहले चला था। अन्य रानियों की दासियाँ तो उसके बहुत देर बाद चली थीं। फिर वह क्यों नहीं आया?

तब तक वृद्धावस्था से जर्जरित शरीर को लिए हुए वृद्ध अधिकारी आ गया। राजा ने कर्कश स्वर में पूछा—

—तुम्हें देर क्यों हुई? इतने विलम्ब का कारण?

राजा ने श्रीसंघ को भक्तिपूर्वक नमन-वन्दन किया और गुरुदेव की देशना सुनने हेतु उचित स्थान पर बैठ गया।

उसी समय विद्याधर चन्द्रगति भी पुत्र भामण्डल तथा अन्य अनेक विद्याधरों के साथ रथावर्त पर्वत के भगवन्तों की वन्दना करके आकाश-मार्ग से जा रहा था। उसने जो भूमि पर श्रीसंघ को विराजमान देखा तो नीचे उतरकर उनकी वन्दना करके देशना सुनने हेतु आ बैठा। उसके साथ ही भामण्डलकुमार तथा अन्य विद्याधर राजा भी बैठ गये।

चतुर्ज्ञानी मुनि ने समयोपयोगी देशना दी और ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा तथा अब्रह्म के दोष बताये। सीता के न मिलने से विद्याधर

अधिकारी विनम्र स्वर में बोला—

—मेरी वृद्धावस्था, महाराज ! देखिए बाल सफेद हो गये, दाँत टूट गये, हाथ-पैर काँपते है, मुख पर झुर्रियाँ पड़ गईं। शरीर-बल क्षीण हो गया। नाथ ! अब मैं तीव्र गति से नहीं चल सकता। मेरी विवशता को देखते हुए अपराध क्षमा हो, अन्नदाता !

रानी तो अधिकारी की विवशता से सन्तुष्ट हो गई किन्तु धर्मात्मा राजा दशरथ के हृदय में चिन्ता की लहर दौड़ गई। उनकी विचारधारा दूसरी ओर मुड़ी—'एक दिन यही दशा मेरी भी होनी है। हाय ! मैं सुख-भोगों मे ही लगा रहा। सर्वविरति रूप धर्म का आराधन नहीं किया। मुझे शीघ्रातिशीघ्र प्रव्रजित होकर आत्म-कल्याण में लग जाना चाहिए। क्या रखा है रानियों मे ?' राजा ने इधर-उधर देखा तो रानी और अधिकारी दोनों ही जा चुके थे।

राजा के हृदय में वैराग्य भाव जाग्रत हो चुका था। वे उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

(त्रिषष्टि शलाका ७।४ — गुजराती अनुवाद पृष्ठ ७०-७१)

चन्द्रगति और कुमार भामण्डल के हृदय संतप्त तो थे ही; उन्होंने सीता के प्रति भामण्डल के स्नेह का कारण पूछा। उत्तर में गुरुदेव ने भामण्डल और सीता के पूर्वभवों का वर्णन तो किया ही साथ ही यह भी वता दिया कि इस जन्म में भी ये दोनों युगल रूप से मिथिला-नरेश की रानी विदेहा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये दोनों भाई-वहन हैं। भामण्डल का हरण भी पूर्वभव के शत्रु देव ने किया और इसे रथनूपुर के नन्दनोद्यान में छोड़ आया था।

यह पूरा वृत्तान्त सुनते ही चन्द्रगति की आँखों के सामने वह दृश्य नाच गया जवकि वह नन्दन उद्यान से एक नवजात शिशु को उठाकर लाया था।

सीता को भामण्डल के रूप में भाई मिला और भाई को वहन ! भामण्डल के हृदय का संताप हर्ष में वदल गया। उसने मस्तक झुकाकर राम को प्रणाम किया और सीता से अपने मोह की क्षमा माँगी।

राजा जनक को भी वुलवाया गया। वे भी सपरिवार आये। विदेहा अपने विछड़े पुत्र से मिलकर वहुत प्रसन्न हुई। जनक ने पुत्र को कण्ठ से लगा लिया। सर्वत्र आनन्द की लहर व्याप्त हो गई।

चन्द्रगति विद्याधर को उसी समय वैराग्य हो आया। वह विचारने लगा—अनजाने में कैसा अधर्म हो जाता ? भाई के साथ वहन का विवाह—कितना लोकनिंद्य कर्म है !

उसने वहीं कुमार भामण्डल को राज्य का भार दिया और स्वयं प्रव्रजित हो गया।

सीता एवं भामण्डल के पूर्वभवों को सुनकर राजा दशरथ के हृदय में भी जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अंजलि जोड़कर उन्होंने पूछा—

—प्रभो ! मैं पूर्वभव में कौन था ?

मुनिश्री ने दशरथ के पूर्वजन्म बताये—

सोनापुर में भावन नाम के भद्र परिणामी वणिक की दीपिका नाम की पत्नी थी। दम्पति के उपास्ति नाम की एक कन्या थी। उस जन्म में साधुओं के प्रति घृणा के कारण उपास्ति ने अनेक जन्मों तक तिर्यंच आदि योनियों में परिभ्रमण किया। अनेक कष्टप्रद योनियों में दुःख पाने के बाद उपास्ति का जीव वंशपुर में धन्य वणिक की पत्नी सुन्दरी के गर्भ से वरुण नाम का पुत्र हुआ। इस जन्म में वह उदारवृत्ति वाला था। साधुओं को दान देने में उसे हर्ष होता। इस उदारवृत्ति के कारण अपना आयुष्य पूर्ण करके वह उत्तरकुरु भोग-भूमि में युगलिया हुआ। वहाँ से मरण किया तो देव बना। देव पर्याय से च्यवन करके पुष्कलावती विजय में पुष्कलानगरी के राजा नन्दिघोष और उसकी रानी पृथ्वीदेवी का पुत्र नन्दिवर्धन हुआ। राजा नन्दिघोष अपने पुत्र नन्दिवर्धन को राज्यभार सौंपकर यशोधर मुनि के चरणों में प्रव्रजित हो गया और कालधर्म प्राप्त कर ग्रैवेयक में देव हुआ। नन्दिवर्धन ने भी श्रावकधर्म स्वीकार कर लिया और मर ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ। वहाँ से च्यवकर वैताढ्य गिरि की उत्तर श्रेणी के शिशुपुर नगर के राजा रत्नमाली की रानी विद्युल्लता के गर्भ से सूर्यजय नाम का महापराक्रमी राजकुमार हुआ।

एक बार राजा रत्नमाली सिंहपुर के राजा वज्रनयन को जीतने की इच्छा से वहाँ गया। वहाँ रत्नमाली ने उपवन सहित समस्त नगर को ही जला डालने का विचार किया। इस भयंकर अग्निदाह से बाल, वृद्ध, पुरुष, स्त्री, पशु आदि सभी प्राणी जीवित ही भस्म हो जाते और रत्नमाली को तीव्र पाप का बन्ध होता। उस समय सहस्रार देवलोक से एक देव अनुकम्पावश आया और उसे सम्बोधने लगा—

—हे राजन् ! ऐसा घोर पापकर्म मत करो।

रत्नमाली ने पूछा—तुम कौन हो ? और मुझे क्यों वर्जना दे रहे हो ?

उस देव ने बताया—

रत्नमाली ! मैं तुम्हारे पूर्वजन्म के पुरोहित उपमन्यु का जीव हूँ। उस समय तुम भूरिनन्दन नाम के राजा थे। विवेकवश तुमने मांस-भक्षण न करने की प्रतिज्ञा ली थी किन्तु अपने पुरोहित उपमन्यु की प्रेरणा से छोड़ दी। उपमन्यु को स्कन्द नाम के एक व्यक्ति ने मार डाला और वह मरकर हाथी हुआ। उस हाथी को भूरिनन्दन राजा ने पकड़ लिया और उसे युद्ध में ले जाने लगा। एक युद्ध में हाथी की मृत्यु हो गई और वह भूरिनन्दन राजा की ही रानी गान्धारी के गर्भ से अरिसूदन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अरिसूदन को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया और उसने प्रव्रज्या ले ली। कालधर्म प्राप्त कर वह सहस्रार[1] देवलोक में उत्पन्न हुआ। राजा भूरिनन्दन मरकर एक वन में अजगर हुआ। वहाँ दावानल से दग्ध होकर मरा तो दूसरी नरकभूमि में नारकी बना और घोर कष्ट पाने लगा। पूर्वजन्म के सम्बन्ध क कारण अरिसूदन के जीव ने उसे वहाँ जाकर सम्बोधा। नरकभूमि से निकलकर भूरिनन्दन का जीव तू रत्नमाली हुआ है।

राजा रत्नमाली को सम्बोधित करते हुए देव कहने लगा—

मांस भक्षण के पाप से तो तुमने इतने कष्ट पाये हैं और अब इस नगरदाह के घोर पाप से तुम्हारी कितनी दुर्दशा होगी ? इसलिए हे राजन् ! इस दुष्ट विचार को हृदय से निकालकर धर्म का आराधन करो।

देव की प्रेरणा से राजा रत्नमाली को वैराग्य हो गया। उसने अपने पौत्र सूर्यनन्दन (सूर्यजय का पुत्र) को राज्य भार सौंपा और

---

१ आठवाँ देवलोक (स्वर्ग)

पुत्र सहित तिलकसुन्दर नाम के आचार्य के पास जाकर दीक्षित हो गया। दोनों पिता पुत्र दीर्घकाल तक तपस्या करते रहे और कालधर्म प्राप्त करके महाशुक्र[1] देवलोक में देव बने।

महामुनि सत्यभूति राजा दशरथ को सम्बोधित करके कहने लगे—

—हे राजन् ! देवलोक से च्यवकर सूर्यजय का जीव तो तुम अयोध्यापति दशरथ हुए और रत्नमाली का जीव मिथिलापति जनक ! पुरोहित उपमन्यु का जीव आठवें देवलोक से च्यवकर मैं सत्यभूति हुआ हूँ।

अपने पूर्वभव सुनकर राजा दशरथ की वैराग्य भावना और भी दृढ़ हो गई। उसी समय प्रव्रज्या लेने हेतु वे राम को राजतिलक करने के विचार से राजमहल में आये। उन्होंने अपना निर्णय सबको सुना दिया।

राजकुमार भरत ने नम्रतापूर्वक पिता से निवेदन किया—

—तात ! आप अपने साथ मुझे भी प्रव्रजित होने की आज्ञा दीजिए।

—तुम्हारी अभी कुमारावस्था है, यहीं रहो।

—नहीं पिताश्री ! आपके चले जाने के बाद तो मुझे दो सन्ताप सतायेंगे—एक आपका वियोग और दूसरा संसार ताप। मैं नहीं सह सकूँगा। आप अपने साथ ही मुझे भी ले चलिए।

राजा दशरथ ने पुत्र को बहुत समझाया। संसार की ऊँच-नीच दिखाई किन्तु भरत अपने निर्णय पर अटल-अडिग रहे।

पिता-पुत्र दोनों साथ ही दीक्षित हो जायेंगे—अन्तःपुर में यह समाचार फैल गया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।४

* *

---

१ सातवाँ देवलोक (स्वर्ग)

: ९ :

राम वन-गमन

पिता और पुत्र दोनों के एक साथ प्रव्रजित होने के समाचार से कैकेयी (भरत की माता) चिन्तातुर हो गई। वह पति और पुत्र दोनों का वियोग सहने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी। नारी-सहज भीरुता ने उसे ग्रस लिया। हजारों राजाओं के घटाटोप, अनगिनत शस्त्रों की झंकार और लाशों से पटे रणस्थल में दुर्दमनीय साहस से रथ संचालन करने वाली कैकेयी पुत्र-मोह के कारण विह्वल हो गयी।

पहले तो नीतिवान कैकेयी ने पति और पुत्र को बहुत समझाया किन्तु जब उसकी बातों का कोई प्रभाव न हुआ तो उसने अपना अन्तिम शस्त्र निकाला। पति के निजी कक्ष में जाकर बोली—

—नाथ! आपको याद होगा मेरा एक वर आपके पास धरोहर रूप में रखा है।

—मुझे भली-भाँति याद है। —दशरथ ने उत्तर दिया।

—आज उसके माँगने का समय आ गया है।

—माँगो, जो माँगोगी, वही मिलेगा।

—यदि आप प्रव्रजित होना ही चाहते हैं तो भरत का राज-तिलक कर दीजिए।

कैकेयी की भावना थी कि राज्य-भार सिर पर आ पड़ेगा तो भरत प्रव्रजित नहीं होगा।

राजा दशरथ को क्या आपत्ति थी ? उनके लिए जैसे राम वैसे भरत दोनों ही समान रूप से प्रिय। केवल छोटे-वड़े का प्रश्न था। लोक परम्परा ही वाधक थी। लेकिन वचनबद्ध राजा ने भरत का राजतिलक स्वीकार कर लिया।[1] जैसे ही यह वात भरत को ज्ञात हुई तो वे दृढ़तापूर्वक विरोध करने लगे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—अग्रज राम के रहते हुए मैं राज्यसिंहासन पर कदापि नहीं बैठूँगा।

समस्या टेढ़ी हो गई। दशरथ की प्रव्रज्या में विघ्न आ पड़ा। उनकी इच्छा तो राज्य का भार राम को सौंपने की थी किन्तु कैकेयी को दिये हुए वचन के कारण भरत के राज्यतिलक बात आई। यहाँ तक भी ठीक था। दशरथ को चारों पुत्र ही समान प्रिय थे। राम न सही भरत सही—किसी को भी राज्य-भार देकर उन्हें प्रव्रजित होना था किन्तु विघ्न पड गया भरत के निर्णय से। वह किसी भी दशा में राज्य सिंहासन पर वैठना ही नहीं चाहते थे। उनकी बात ठीक भी थी—अग्रज के होते हुए अनुज का सिंहासन पर वैठना आर्य संस्कृति में अच्छा नहीं माना जाता।

---

१ (क) वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ के दीक्षा लेने का प्रसंग नहीं है। उसमें प्रसंग है राम को युवराज पद देने का। भरत उस समय मामा के यहाँ गये हुए थे।

दासी मंथरा (कुब्जा) ने रानी कैकेयी को भड़काया और कैकेयी ने अपने दोनों वरों के फलस्वरूप भरत को राज्यतिलक और राम को चौदह वर्ष का वनवास माँगा।

(अयोध्याकाण्ड)

यही घटना समस्त वैदिक परम्परा में प्रचलित है।

(ख) वसिष्ठ ऋषि ने सिद्धार्थ, नन्दन, जयन्त, अशोक आदि दूतों द्वारा भरत को उनकी ननसाल केकय देश से वुलवाया। (अयोध्याकाण्ड)

अतः दशरथ की मृत्यु, राम के युवराज पद का उत्सव और राम का वन-गमन भरत की अनुपस्थिति में हुआ।

अग्रज राम ने समस्या का निदान किया अपनी बुद्धि से। उन्होंने निर्णय किया वन-गमन का। उनकी विचारधारा थी कि जब मैं रहूँगा ही नहीं तो भरत अपने-आप राज्य सँभाल लेगा।

उन्होंने अपना निर्णय पिता को सुनाया तो वे विचार-मग्न हो गये किन्तु हृदय पर वज्र रखकर आज्ञा दे दी। राम ने वनवासी का भेष धारण किया और कन्धे पर धनुष लटकाकर माता अपराजिता को अपना निर्णय सुनाकर आशीर्वाद पाने का प्रयास किया तो माता पर वज्रपात ही हो गया। वह कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर अचेत होकर गिर पड़ी। दासियों ने चन्दनादि के लेप और शीतल सुगन्धित जल से सिंचन किया। उसकी मूर्छा टूटी तो वह करुण-क्रन्दन करने लगी।

राम ने समझाया—

—माता! वीरप्रसवा होकर निर्बल हरिणी के समान विलाप क्यों कर रही हो? पिता के वचन-पालन का ध्यान करो और मुझे वन जाने दो। यदि तुम बाधक बनोगी तो भरत राज्य नहीं लेगा और पिताश्री का वचन मिथ्या हो जायगा।

अनेक युक्तियों से माता अपराजिता (कौशल्या) को समझाकर उन्होंने वन-गमन की आज्ञा प्राप्त कर ली। अन्य माताओं से भी इसी तर्क के सहारे उन्हें आज्ञा मिल गई।

श्रीराम वन को जा रहे हैं यह खबर सुनकर जानकी ने भी तपस्विनी का वेश धारण किया और माता कौशल्या से आज्ञा लेने पहुँची। कौशल्या उसके वेश को देखकर फूट-फूटकर रो पड़ी, बोली—

—राम तो पिता के वचन की मर्यादा रक्षा हेतु वन जा रहा है और तुम किसका वचन निभा रही हो?

सीता ने विनीत स्वर में उत्तर दिया—

—माताजी! पत्नी का धर्म ही पति का अनुगमन करना है।

कौन पत्नी पति का साथ छोड़ सकती है ? जहाँ वे, वहाँ मैं। उनके विना मेरा अस्तित्व ही क्या है ?

जव कौशल्या ने रुकने का वहुत आग्रह किया तो सीता ने गम्भीर स्वर में पूछ ही लिया—

—मातेश्वरी ! आप इस परिस्थिति में पति का साथ देतीं या राजमहल में सुख भोगतीं ?

इस प्रश्न ने कौशल्या की जवान पर ताला लगा दिया और विवशतापूर्वक उसने उसे भी वनगमन की आज्ञा दे दी।

यही तर्क देकर उसने अन्य माताओं (सासुओं) से आज्ञा प्राप्त कर ली। पिताश्री (श्वसुर) दशरथ को उसने नमस्कार किया तो विवेकी राजा सव कुछ समझ गये। उन्होंने भी आज्ञा दे दी।

राम के महल से निकलने ही उनके पीछे-पीछे जनकदुलारी भी चल दी। राम ने उसे वनों के कष्टों के भय दिखाकर वापिस भेजने की वहुत चेष्टा की किन्तु सीताजी का निर्णय अडिग था। उन्होंने एक ही बात कहकर राम का मुँह बन्द कर दिया—नाथ ! न तो आपका यह कर्तव्य है कि मुझे छोड़ दें और न मैं आपका साथ छोड़ सकती हूँ। जीवन भर साथ निभाने का वचन दिया है तो उसे वीच में कैसे तोड़ा जा सकता है ?

आगे-आगे राम और पीछे-पीछे सीता तपस्वी वेश में राजपथ पर निकले तो नगर निवासी उनके त्याग को देखकर जय-जयकार करने लगे। सभी के मुख पर एक ही वात थी—धन्य हैं राम जिन्होंने इतना वड़ा त्याग किया और सीता यह तो नारी जाति में शिरोमणि है जिसने विना कारण ही केवल पति का साथ निभाने के लिए राज-महल के सुखों को छोड़कर वन के भयानक कष्टों को अपनाया है।

सम्पूर्ण जनता की सहानुभूति और सद्भावना उन दोनों के लिए उमड़ी पड़ रही थी।

उनके इस अनुपम त्याग की यशःपताका आज तक गाई जा रही है और भविष्य में भी गाई जायगी। भारत की नारियाँ अपना आदर्श सती सीता को ही मानती चली आ रही हैं और भविष्य में भी मानेंगी।

राम-सीता के वन-गमन के समाचार ने एकबारगी तो लक्ष्मण की क्रोधाग्नि भड़का दी। किन्तु दूसरे ही क्षण वे अग्रज के शील स्वभाव का विचार कर शान्त हो गये। वे भली-भाँति जानते थे कि श्रीराम दृढ़ प्रतिज्ञ और त्यागी पुरुष हैं। राज्य का, वैभव का मोह उन्हें छू भी नहीं गया है। भरत और कैकेयी पर आया हुआ उनका कोप भी शान्त हो गया। वे अपनी माता सुमित्रा के पास पहुँचे और उससे राम के साथ वन जाने की आज्ञा माँगी।

सुमित्रा ने पुत्र को आज्ञा देते हुए कहा—

—शाबाश पुत्र ! तुमने मेरी कोख उज्ज्वल कर दी। अग्रज के प्रति ऐसा ही अनन्य प्रेम अनुज का होना चाहिए।

माता के उत्साहजनक वचनों से लक्ष्मण का मुख खिल गया। वे प्रसन्नवदन अन्य माताओं और पिता दशरथ से भी आज्ञा लेकर तपस्वी वेश में चल पड़े। श्रीराम कुछ आगे निकल गये थे अतः लक्ष्मण तीव्रगति से चलकर उनके पास पहुँचे और उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

राम-लक्ष्मण और सीता के त्याग ने रानी कैकेयी का अपवाद फैला दिया। सभी कैकेयी को बुरा-भला कहने लगे। भरत को भी अपनी माता पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने राज्य तो क्या अपने शरीर से भी मोह छोड़ दिया और अग्रज के वियोग में मछली की तरह तड़पने लगे। सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न की दशा भी अच्छी न थी। वे भी वियोगकातर बने एकान्त में रुदन करते रहे।

कैकेयी के एक वाक्य ने सम्पूर्ण अयोध्या को अंगारों पर ला विठाया। धिक्कार है ऐसे पुत्रमोह को। राजमहल और अयोध्या की इस शोकपूर्ण स्थिति से वह भी अछूती न रह सकी। वारम्बार स्वयं को धिक्कारती किन्तु उसके प्रायश्चित्त का अव मूल्य ही क्या था ? युग-युगों के लिए उसके मस्तक पर कलंक का टीका लग चुका था। वात इतनी विगड़ चुकी थी कि बनाई न जा सकी।

विगड़ी वात को वनाने का प्रयास किया राजा दशरथ ने। उन्होंने सामन्त आदि को राम को लौटाने के लिए भेजा। राम अपने निर्णय पर अटल रहे किन्तु सामन्तों ने भी उनका पीछा न छोड़ा वे उनसे लौट चलने की प्रार्थना करते ही रहे।

राम, लक्ष्मण और सीता आगे वढ़े तो सामन्त उनके पीछे चले। पश्चिम दिशा की ओर चलते हुए श्रीराम विंध्याटवी में जा पहुँचे। वहाँ बहने वाली गम्भीरा नदी के किनारे पर खड़े होकर श्रीराम ने सामन्तों को सम्वोधित करके कहा—

—सामन्तो ! आप सव लोग यहाँ से वापिस लौट जाओ क्योंकि आगे का मार्ग बहुत भयानक और कष्टप्रद है। नगर वापिस जाकर माता-पिता को हमारा कुशल-समाचार दे देना और अनुज भरत को पिताजी के स्थान पर मानकर उनकी आज्ञा का पालन करना।

सभी ने भली-भाँति समझ लिया था कि राम नहीं लौटेंगे। वे निराश सिर धुनते हुए वहीं खड़े रह गये। राम अपने अनुज लक्ष्मण और सीता के साथ नदी पार करके दूसरे किनारे पर पहुँच कर दृष्टि से ओझल हो गये तो सामन्त आदि अयोध्या लौट आये।[1]

---

१ श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी अयोध्या से चलकर तमसा नदी के किनारे पहुँचे और रात्रि के अन्धकार में जव समस्त पुरवासी (जो उनको लौटा लाने की इच्छा से उनके साथ आये थे) निद्रामग्न थे तो राम ने मन्त्री

भरत को पास बुलाकर राजा दशरथ ने कहा—

—वत्स ! राम, लक्ष्मण तो वापिस आये नहीं। अब तो राज्य सँभालो।

भरत ने उत्तर दिया—पिताजी ! मैं किसी भी दशा में सिंहासन पर नहीं बैठूँगा।

—पुत्र ! तुम मेरे संयम ग्रहण करने में विघ्न बन गये हो।

सुमन्त्र को रथ तैयार करने का आदेश दिया। मन्त्री सुमन्त्र ने उनकी आज्ञा पालन की। वे तीनों रथ पर सवार होकर पहले तो उत्तर दिशा की ओर गये और फिर मुड़कर दक्षिण की ओर चले गये।

राम समस्त पुरवासियों को छोड़कर रात्रि के अन्धकार में ही चले गये थे।

श्रीराम ने शृंगवेरपुर पहुँचकर सुमन्त्र को लौटा दिया। वहाँ के राजा निषादराज गुह से मिलकर उन्होंने नाव द्वारा गंगा नदी पार की और चित्रकूट की ओर चले गये।

[वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड]

नोट—यहाँ नाविक केवट का कोई उल्लेख नहीं है। —**सम्पादक**

इसके पश्चात आगे वर्णन है कि राम वन-गमन की छठी रात्रि को पुत्र शोक से विह्वल राजा दशरथ के प्राण-पखेरू उड़ गये।

यहाँ राजा दशरथ की युवावस्था की एक घटना दी गई है। मृगया के प्रेमी राजा दशरथ ने रात्रि के अन्धकार में सरयू नदी के तट पर घड़े में जल भरते हुए एक मुनि कुमार का शब्दवेधी बाण से बध कर दिया था। जब वे मरते हुए मुनिकुमार से पूछकर उसके अन्धे और अपाहिज माता-पिता के पास पहुँचे तो उन्होंने उसे भी पुत्र-शोक से मरने का शाप दिया था। वे वृद्ध-युगल वैश्य थे और वन में वानप्रस्थी

—पिताजी ! मैं स्वयं जाकर अग्रज को वापिस लाने का प्रयास करूँगा। तब तक आप धैर्य रखिए।

उसी समय कैकेयी भी वहाँ आ गई। उसने पति से विनीत शब्दों में कहा—

—स्वामी ! आपने तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर ही दिया किन्तु भरत ने राज्य नहीं लिया तो आपका क्या दोष। दोष तो मेरा है। मेरे ही कारण सभी लोगों को दुःख हुआ। राम-लक्ष्मण-सीता वन के कष्ट उठा रहे हैं, सपत्नियों की आँखों से आँसुओं की अजस्र धारा बह रही है। सम्पूर्ण अयोध्या शोक-मग्न हो गई है। न मैं वर माँगती और न यह दावानल सुलगता। मैं पश्चात्ताप की अग्नि में जल रही हूँ। नाथ ! मैं अपने पाप का प्रतिकार स्वयं करना चाहती हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं स्वयं आऊँ और राम को मनाकर वापिस लौटा लाऊँ।

पति से आज्ञा प्राप्त करके कैकेयी भरत और मन्त्रियों के साथ चल पड़ी। छह दिन की यात्रा के पश्चात सब वनवासी राम के पास

जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन वृद्ध तपस्वियों का शाप ही इस समय फलीभूत हुआ और राजा दशरथ ने राम के वियोग में प्राण छोड़ दिये।

(वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड)

यहां उस मुनिकुमार का नाम नहीं दिया गया और न ही यह बताया गया है कि वह अपने माता-पिता को काँवर में बिठाकर तीर्थयात्रा कर रहा था।

—सम्पादक

तुलसीकृत रामचरित मानस में भी श्रवणकुमार नाम से घटना का वर्णन नहीं है।

राम के वन जाने के बाद शोक विह्वल राजा को अन्धे तापस के शाप की स्मृति हो आई और उन्होंने वह सम्पूर्ण कथा कौशल्या को कह सुनाई। (अयोध्याकाण्ड दोहा १५५ के अन्तर्गत चौपाई संख्या २)

पहुँचे।[1] भरत राम के चरणों में गिर गये और कैकेयी ने उन्हें गले लगा लिया। कैकेयी का अश्रुजल राम का सिंचन करने लगा।

रानी कैकेयी ने राम को बहुत मनाया, तर्क-वितर्क दिये, पिता के धर्माराधन में पड़ा हुआ विघ्न बताया। किन्तु दृढ़व्रती राम अकम्प थे। वे अपने निर्णय से तनिक भी न हिले।

भरत भी भाई के पाँव पकड़कर बैठे थे। बड़ी विचित्र स्थिति थी—भरत भाई के चरणों को छोड़ नहीं रहे थे; कैकेयी उन्हें वापिस ले जाने के लिए कटिबद्ध थीं और राम—वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे। एक बार जो बात मुख से निकल गई प्राण देकर भी पालन करना उनका स्वभाव था।

समस्या का निदान किया सती सीता ने। वे जल का भरा घड़ा लेकर आईं और बोलीं—

—नाथ! इस प्रकार इस विवाद का निपटारा तो कभी नहीं होगा। आप वापिस जायेंगे नहीं और अनुज भरत पिता का दिया राज्य लेंगे नहीं। मेरी सम्मति में तो पहले आपका यहीं राज्याभिषेक

---

१ राम और भरत का मिलन चित्रकूट नामक स्थान पर हुआ और राम ने अपनी पादुका देकर उन्हें विदा किया। भरत ने अयोध्या लौटकर पादुका सिंहासन पर विराजमान कीं और स्वयं रक्षक के रूप में अयोध्या का शासन चलाने लगे। **(वाल्मीकि रामायण : अयोध्याकाण्ड)**

वाल्मीकि के अनुसार ही तुलसीकृत में भी यह सब वर्णन ज्यों की त्यों है।

चित्रकूट में राम-भरत मिलाप के समय राजा जनक भी सपरिवार आते हैं और 'पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ' कहकर सीताजी के पति के साथ वन-गमन की सराहना करते हैं।

(तुलसीकृत रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड, दोहा २६९-३०१)

हो जाय फिर आप भरत का राज्यतिलक करके उन्हें शासन-संचालन का आदेश दे दें।

राम को सीता की यह युक्ति पसन्द आई। उन्होंने इसी प्रकार भरत का जल से अभिषेक करके शासन-संचालन का आदेश दे दिया।

सीता की इस युक्ति से सभी निरुत्तर हो गये। सामन्तों की साक्षी में भरत का अभिषेक हो चुका था और उन्हें शासन-संचालन का आदेश मिल चुका था।

अनुज भरत ने अग्रज राम का आदेश शिरोधार्य तो किया किन्तु साथ ही साथ उन्होंने निर्णयात्मक स्वर में कह दिया—

—तात ! यह अनुज भरत अपने बड़े भाई राम की आज्ञा का पालन मात्र कर रहा है। यदि आप अपने वचन का पालन करने को कटिबद्ध हैं तो मैं भी राज्य-सिंहासन पर न बैठने का अपना वचन पालन करूँगा। मैं अयोध्या के राज्य का रक्षकमात्र हूँ, स्वामी नहीं। इस अभिषेक का मेरे हृदय में कोई मूल्य नहीं है, मूल्य है तो आपकी आज्ञा का।

राम ने अनुज को आश्वस्त किया—

—वन्धु ! तुम अपना कर्तव्य पालन करो। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय में राजा वनने की लेशमात्र भी अभिलाषा नहीं है। अयोध्या के रक्षक वनकर ही सही, तुम शासन का संचालन तो करो। यदि तुम्हारे हृदय में इस राज्याभिषेक का कोई मूल्य नहीं तो मैं कव स्वयं को राजा मानता हूँ। भरत ! राजा होता ही कौन है ? सच्चा राजा तो प्रजा का सेवक होता है। दूसरे भले ही उसे राजा, महाराजा, सम्राट आदि कुछ भी उपाधियाँ दें, वह तो स्वयं को प्रजा सेवक ही समझता है। हमारी कुल-परम्परा से चली आई इसी मर्यादा का पालन तुम भी करो।

राम-लक्ष्मण-सीता से विदा लेकर कैकेयी, भरत और सामन्त आदि अयोध्या वापिस लौट आये। भरतजी स्वयं को रक्षक मानते हुए अयोध्या का शासन चलाने को तत्पर हो गये।

राजा दशरथ इस व्यवस्था से सन्तुष्ट होकर अन्य अनेक पुरुषों के साथ महामुनि सत्यभूति के पास जाकर दीक्षित हो गये और उग्र तपस्या करने लगे।

सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम चित्रकूट पर्वत को पार करके अवन्ती देश के एक भाग में जा पहुँचे।[1]

—उत्तर पुराण पर्व ६८।५०-८३

—त्रिषष्टि शलाका ७।४

●●

---

१ उत्तर पुराण में राम-लक्ष्मण-जानकी के वन-गमन का उल्लेख नहीं है। वहाँ बनारस नगर जाने की बात कही गई है—

एक दिन अवसर देखकर दोनों भाई राजा दशरथ से कहने लगे कि हमारे पूर्वजों की परम्परा से बनारस नगर हमारे अधीन ही चला आ रहा है। यदि आप आज्ञा दें तो हम दोनों वहाँ जाकर उसे पुनः सुशोभित कर दें। (६८।५१-५२)

आशीर्वाद देकर राजा दशरथ ने उन दोनों को वहाँ भेज दिया। (श्लोक ८०)

उन दोनों भाइयों का बनारस में समय प्रजा को सुख देने में व्यतीत होने लगा। (श्लोक ८३)

: १० :

सिंहोदर का गर्वहरण

मार्ग की थकान मिटाने के लिए श्रीराम अनुज लक्ष्मण और पत्नी जानकी के साथ एक सघन छायादार वृक्ष के नीचे बैठे। श्रीराम ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और अनुज से कहने लगे—

—लक्ष्मण! यह प्रदेश किसी के भय के कारण उजड़ गया है। देखो, अन्न-जल, फल-फूल आदि से तो यह देश भरपूर है, परन्तु मनुष्य कोई नहीं दिखाई देता।

अनुज लक्ष्मण कुछ उत्तर देते इससे पहले ही एक दरिद्र पुरुष आता हुआ दिखाई दिया। राम ने उससे पूछा—

—भद्र! तुम किधर जा रहे हो? यह देश क्यों उजड़ गया है?

वह पुरुष बताने लगा—

—यह अवन्ती नाम का देश है और जहाँ आप लोग बैठे हैं वह है दशांगपुर नगर का बाह्य भाग! दशांगपुर नगर अवन्ती नरेश सिंहोदर के अधीन है, जो राजधानी अवन्ती में रहता है। दशांगपुर का शासक अवन्ती नरेश के अधीन सामन्त वज्रकर्ण है।

एक बार वज्रकर्ण मृगया के लिए वन में गया। वहाँ उसे प्रीति-वर्धन नामक मुनि दिखाई दिये। वज्रकर्ण के हृदय में जिज्ञासा जाग्रत हुई। उसने मुनि के पास जाकर पूछा—

—मुनिवर ! आप इस घोर वन में किसलिए वृक्ष की भाँति अडोल-अकम्प रहते हैं ?

—आत्म-कल्याण के लिए। —मुनिराज का संक्षिप्त सा उत्तर था।

—खान-पान वर्जित इस विकट वन में आपका आत्म-हित किस प्रकार होता है ?

यह प्रश्न सुनकर मुनिश्री ने उसकी जिज्ञासा को समझा और धर्म का मर्म हृदयंगम कराया। राजा वज्रकर्ण को सुबुद्धि जागी। उसने गुरुदेव से श्रावक व्रतों के साथ-साथ कठोर अभिग्रह भी ग्रहण कर लिया—'पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त किसी अन्य को नमन नहीं करूँगा, सिर नहीं झुकाऊँगा ?'

वज्रकर्ण गुरुदेव को नमन करके राजमहल वापिस लौट आया। उस समय भावावेश में उसने अभिग्रह तो ले लिया किन्तु निभाने में कठिनाई आ गई। स्वामी सिंहोदर को सिर झुकाये विना काम नहीं चल सकता था। राजा ने नई युक्ति निकाली। मुद्रिका में मुनिसुव्रत स्वामी का मणिमय विम्ब[1] वनवाया और उसे देखकर सिर झुका दिया। सिंहोदर समझता कि सिर मुझे झुकाया जा रहा है। वज्रकर्ण ने अपनी इस चतुराई से नियम का भंग भी नहीं होने दिया और स्वामी सिंहोदर को भी प्रसन्न रखा।

'चुगलखोर, चाटुकार और ईर्ष्यालु संसार में सदैव से ही रहे हैं। किसी ने यह रहस्य सिंहोदर को वता दिया। अभिमानी सिंहोदर ने इसे अपना अपमान समझा। कुपित होकर उसने दशांगपुर पर आक्रमण करके वज्रकर्ण को मारने का निश्चय कर लिया।

---

१ जिन विम्व का वर्णन त्रिषष्टि के अनुसार है किन्तु लेखक इस मान्यता से सहमत नहीं है।

राजा सिंहोदर की यह सम्पूर्ण योजना किसी व्यक्ति ने आकर वज्रकर्ण को वता दी।

राजा वज्रकर्ण ने उस पुरुष की बात ध्यान से सुनी और पूछा—

—भद्र ! तुम्हें इस योजना का ज्ञान कैसे हुआ ?

उस पुरुष ने अपना वृत्तान्त सुनाया—

मैं कुन्दनपुर नगर के समुद्रसंगम वणिक् की पत्नी यमुना का विद्युदंग नाम का पुत्र हूँ। युवावस्था प्राप्त कर लेने के पश्चात् मैं व्यापार के निमित्त माल लेकर उज्जयिनी पहुँचा। वहाँ मेरी दृष्टि कामलता वेश्या पर पड़ी। उसके साथ एक रात्रि ही समागम करूँगा—यह सोचकर मैं उसके पास चला गया। किन्तु कामलता मुझसे लता की भाँति लिपट गई और मैं हो गया कामाभिभूत। उसके वश में पड़कर मेरा सम्पूर्ण धन छह मास में समाप्त हो गया।

एक दिन उस गणिका ने कहा—'सिंहोदर राजा की पटरानी श्रीधरा के पास जैसा कुण्डल है वैसा ही मुझे भी ला दो।' मेरे पास धन तो था ही नहीं, जो बनवा देता। मुझ कामान्ध को एक ही मार्ग दिखाई दिया—चोरी।

'रानी श्रीधरा का कुण्डल चुरा लाऊँ और कामलता की कामना पूरी करूँ' यह कुविचार मेरे मस्तिष्क में जम गया। मैं रात्रि के समय किसी प्रकार लुकता-छिपता रानी के शयनकक्ष तक जा पहुँचा। उस समय शैया पर सिंहोदर व्यग्रचित्त बैठा था। रानी उसकी व्यग्रता का कारण पूछ रही थी।

राजा-रानी जाग रहे थे अतः चोरी का तो विचार ही मेरे मस्तिष्क से गायव हो गया। दीवार से कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगा। रानी श्रीधरा कह रही थी—

—नाथ ! आज आप चिन्तित क्यों हैं ? आपको नींद क्यों नहीं आती ?

सिंहोदर का उत्तर था—

—नींद कहाँ से आये, प्रिये ! यह वज्रकर्ण वड़ा कपटी है। अँगुली में स्थित मणिमय मुनिसुव्रत नाथ के विम्ब को तो नमस्कार करता है और मुझे धोखा देता है। वह वज्रकर्ण निरा वज्रमूर्ख ही है। स्वामी के साथ दगावाजी का फल उसे चखाना है। प्रातः ही सैन्य सहित दशांगपुर जाकर उसे मार डालूँगा। उस धोखेवाज को तभी ज्ञात होगा कि सिंहोदर के अपमान का क्या परिणाम होता है।

उस पुरुष ने यह आपवीती सुनाकर वज्रकर्ण से कहा—

—इतना सुनते ही मैं वहाँ से चल दिया और शीघ्र गति से आकर आपको चेतावनी दे दी। आगे आपकी इच्छा है जो उचित समझें वही कीजिए।

राजा वज्रकर्ण ने उस पुरुष की चेतावनी पर अमल किया। नगर को अन्न आदि से पूर्णकर द्वार वन्द करा दिये।

कुछ ही समय वाद सिंहोदर सेना सहित नगर द्वार तक आ पहुँचा। एक दूत के द्वारा उसने कहलवाया—

—या तो वज्रकर्ण मुद्रिका उतारकर मुझे प्रणाम करे अन्यथा परिवार सहित यमपुरी जाने को तैयार रहे।

वज्रकर्ण ने भी दृढ़ स्वर में उत्तर दे दिया—

—मैं पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त किसी दूसरे को सिर नहीं झुकाऊँगा। यह मेरा अभिग्रह है, अभिमान नहीं। स्वामी को चाहिए कि मेरी धर्म-भावना को समझें और व्यर्थ की हिंसा का विचार त्याग दें। अन्यथा जैसी उनकी इच्छा।

दरिद्र पुरुष ने श्रीराम को सम्वोधित करके कहा—

—नाथ ! अभिमानी सिंहोदर और भी कुपित हो गया। उसकी क्रोधाग्नि से बचने के लिए लोग इधर-उधर भाग गये और यह प्रदेश उजड़ गया। अब स्थिति यह है कि वज्रकर्ण अपनी ही नगरी में बन्दी होकर रह गया है और सिंहोदर सिंह के समान जबड़ा खोलकर नगर के बाहर खड़ा है, कि कब वज्रकर्ण आवे और कब उसे मैं चबा जाऊँ।

—इसी कारण स्वामिन् ! मैं भी परिवार सहित यह स्थान छोड़कर जा रहा हूँ। भाग्य से ही आप जैसे देव-पुरुषों के दर्शन हो गये।

श्रीराम को दरिद्र पुरुष पर दया आई। उन्होंने मणिजटित स्वर्ण-सूत्र दे दिया। उसे विदा करके वे दशांगपुर के समीप आये। नगर के बाहर भगवान का ध्यान करके उन्होंने अनुज लक्ष्मण को संकेत कर दिया।

लक्ष्मण राम के दूसरे हृदय ही थे। राम के भाव उनके चित्त में प्रतिबिम्ब की भाँति झलकते थे। उन्होंने संकेत समझा और राजा वज्रकर्ण के पास पहुँचे। उनके तेजस्वी रूप को देखकर वज्रकर्ण उठ खड़ा हुआ और बोला—'आप हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।' लक्ष्मण ने उत्तर दिया—'मेरे अग्रज श्रीराम अपनी पत्नी सीता सहित नगर के बाहर बैठे हैं। पहले उनका सत्कार कीजिए।'

दशांगपुर अधिपति ने राम-सीता के लिए भोजन आदि तुरन्त लक्ष्मण के साथ भेज दिया।

भोजन आदि से निवृत्त होकर राम ने लक्ष्मण से कहा—

—तात ! सिंहोदर को शिक्षा देना हमारा कर्तव्य है।

राम के इतने शब्द ही लक्ष्मण के लिए यथेष्ट थे। वे उठे और सिंहोदर के समक्ष जाकर अधिकारपूर्ण शब्दों में बोले—

—राजा दशरथ का पुत्र तुम्हें वज्रकर्ण का विरोध न करने की आज्ञा देता है।

लक्ष्मण के शब्द सिंहोदर को बुरे लगे। वह सिंह के समान गर्ज कर बोला—

—कौन होता है दशरथ का पुत्र मुझे आज्ञा देने वाला ? वज्रकर्ण मेरे अधीन सामन्त है और मुझे ही नमस्कार नहीं करता। मैं उसे उसके छल का फल चखाकर ही रहूँगा।

—यह उसका छल नहीं, धर्म-पालन है और धर्म का विरोध करना अपना ही नाश करना है। —लक्ष्मण ने समझाने का प्रयास किया।

—नाश तो मेरे हाथ से वज्रकर्ण का होगा। परन्तु तुम क्यों बीच में टाँग अड़ा रहे हो ? चुपचाप चले जाओ वरना मक्खी की तरह मसल दिये जाओगे।

सिंहोदर के इन शब्दों ने लक्ष्मण का कोप भड़का दिया। भ्रकुटी पर वल पड़ गये। क्रोधित स्वर में उन्होंने ललकारा—

—वहुत घमण्ड है, अपने वल का ? सिंहोदर ! अपनी सेवा सहित युद्ध के लिए तैयार हो।

क्षत्रिय तो सिंहोदर भी था। ललकार सुनकर चुप कैसे रह जाता। सेना को तैयार करके युद्ध में प्रवृत्त हो गया।

लक्ष्मण निहत्थे थे। उन्होंने हाथी को वाँधने का कीला कमलनाल की भाँति उखाड़ लिया और उसी से प्रहार करने लगे। पराक्रमी पुरुषों की संगति से व्यर्थ भी समर्थ हो जाते हैं। लक्ष्मण के हाथ में आते ही कीला भी भयंकर अस्त्र वन गया। पराक्रमी लक्ष्मण की विकट मार से सेना विह्वल हो गई। महाभुज लक्ष्मण उछलकर हाथी पर जा चढ़े और सिंहोदर को उसी के वस्त्र से वाँध लिया।

राजा के वन्धन में पड़ते ही सेना शान्त हो गई। दशांगपुर के निवासी लक्ष्मण के पराक्रम को देखकर आश्चर्यचकित रह गये।

गाय की भाँति सिंहोदर को खींचते हुए लक्ष्मण अग्रज राम के पास ले गये और उनके चरणों में डाल दिया। श्रीराम के चरणों में नत होकर सिंहोदर बोला—

—हे राम ! आप स्वयं यहाँ उपस्थित हैं, मुझे मालूम नहीं था। अब आपकी कृपा हो तो प्राण बचें, अन्यथा जीवन की कोई आशा नहीं। मेरा अपराध क्षमा करें।

राम ने मधुर शब्दों में कहा—

—सिंहोदर ! तुमको वज्रकर्ण का विरोध नहीं करना चाहिए।

—मैं उसका विरोध न करने का वचन देता हूँ।

राम ने वज्रकर्ण को बुलवाया। उसने आकर देखा कि स्वामी सिंहोदर बन्धनग्रस्त पड़ा है तो दयाधर्म का अनुयायी दयार्द्र हो उठा। श्रीराम से विनय करने लगा—

—प्रभो ! स्वामी को बन्धनमुक्त कर दीजिए।

श्रीराम ने सिंहोदर को सम्बोधित किया—

—देखा सिंहोदर ! कितना अन्तर है तुममें और वज्रकर्ण में। तुम उसके नाश पर तुले हुए हो और यह तुम्हारी मुक्ति की प्रार्थना कर रहा है। अपकारी के साथ भी उपकार करना—यही तो है धार्मिक व्यक्ति की विशेषता।

सिंहोदर के मुख पर पश्चात्ताप झलकने लगा।

रामचन्द्र के संकेत पर लक्ष्मण ने सिंहोदर को बन्धनमुक्त कर दिया। अवन्ती नरेश सिंहोदर ने वज्रकर्ण को छोटे भाई के समान गले से लगाया और दशांगपुर का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। उसने घोषणा की—

—आज से मैं किसी भी अर्हन्त धर्म के अनुयायी को प्रणाम करने के लिए विवश नहीं करूँगा।

वज्रकर्ण से सन्धि करके उसने अपना आधा राज्य श्रीराम की साक्षी में उसे दे दिया।

सभी के मुख पर प्रसन्नता चमक उठी। वज्रकर्ण का अभिग्रह पूरा हुआ। अव उसे किसी को प्रणाम करने की आवश्यकता न रही। वह स्वतन्त्र शासक वन चुका था।

उसने लक्ष्मण से प्रार्थना की—

—आप मेरी आठ कन्याओं का परिणय कीजिए।

तव तक सिंहोदर ने भी कहा—

—प्रभो ! मेरी और मेरे सामन्तों की तीन सौ कन्याओं को स्वीकार करने की कृपा करें।

लक्ष्मण अग्रज की आज्ञा विना कुछ भी वोलने में असमर्थ थे। उनके मुख पर क्षीण सी मुस्कराहट फैल गई। राम ने उनके हार्दिक भावों को समझा और वोलने का संकेत कर दिया।

अग्रज का संकेत पाकर लक्ष्मण वोले—

—आप लोग अपनी कन्याएँ अभी तो अपने पास ही रखें। अव तो हम लोग मलयाचल पर्वत पर जा रहे हैं। वापिस लौटते समय उनको साथ ले लेंगे।

सिंहोदर और वज्रकर्ण दोनों सन्तुष्ट हुए और राम से विदा माँग कर अपने-अपने स्थानों को चले गये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

❋❋❋

: ११ :

रामपुरी में चार मास

राम, लक्ष्मण और सीता दशांगपुर से चलकर एक निर्जन वन में पहुँचे। कोमलांगी सीता के अधर सूख गये। तृषा की तीव्रता से उसके कण्ठ में काँटे से चुभने लगे। मार्ग की थकान भी थी। एक सघन वृक्ष के नीचे बैठकर राम ने कहा—

—लक्ष्मण ! देवी सीता तृषातुर हैं।

अनुज तुरन्त जल की खोज में चल दिया। कुछ दूर आगे चलकर उन्हें कमलों से परिपूर्ण निर्मल जल से भरा सरोवर दिखाई दिया। सरोवर तट पर कुबेरपुर के शासक कल्याणमाला के शिविर पड़े हुए थे। लक्ष्मण को देखते ही कल्याणमाला के अंग में अनंग समा गया। उसने नमस्कार करके लक्ष्मण से विनय की—

—आर्य ! हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।

लक्ष्मण ने देखा कि सामने वाला युवक कामविह्वल है। उन्होंने विचार किया—'पुरुप के प्रति पुरुप का आकर्षण इस प्रकार का नहीं होता। अवश्य ही यह युवक नहीं, युवती है। किसी कारणवश इसने पुरुष-वेप धारण किया है।' प्रकट में बोले—

—मेरे अग्रज श्रीराम देवी सीता के साथ समीप ही बैठे हैं। उनके विना मैं आपका आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकता।

कल्याणमाला ने अपने प्रधान पुरुषों द्वारा राम और सीता को बुलवाया तथा उनके लिए एक पर्णकुटी निर्मित करा दी। राम सीता सहित उसमें ठहरे और स्नान भोजन आदि से निवृत्त हुए।

कुछ समय पश्चात कल्याणमाला स्पष्ट स्त्री रूप में अपने एक विश्वस्त मन्त्री के साथ पर्णकुटी में राम के सम्मुख आई। लज्जा से नम्र मुख कल्याणमाला को देखकर श्रीराम ने पूछा—

—भद्रे ! तुमने अपना असली रूप छोड़कर पुरुषवेश क्यों धारण किया ?

कल्याणमाला ने अपनी रामकहानी सुनाई—

कुबेरपुर में राजा वालिखिल्य राज्य करता था। एक बार म्लेच्छ लोग उसे पकड़ ले गये। उस समय उसकी रानी पृथ्वी गर्भवती थी। रानी ने पुत्री प्रसव की किन्तु मन्त्री सुबुद्धि ने घोषणा करा दी 'रानी ने पुत्र को जन्म दिया है।' इसका कारण यह था कि राज्य का उत्तराधिकारी न होने पर राजा सिंहोदर कुबेरपुर को अपने अधीन कर लेता। पुत्र जन्म का समाचार पाकर उसने कहलवा दिया—'जब तक राजा वालिखिल्य न लौटे पुत्र को ही राजा बना दिया जाय।' इस प्रकार राज्य की रक्षा हो गई। मैं पुरुषवेश धारण करके राज्य करने लगी। इस रहस्य को मेरी माता और विश्वस्त मन्त्री के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मैं अपने पिता को छोड़ने के लिए धन देती हूँ किन्तु वे म्लेच्छ धन तो ले जाते हैं और पिता को नहीं छोड़ते।

हे कृपालु ! अब मुझ पर दया करो और जिस तरह आपने राजा वज्रकर्ण की रक्षा की थी उसी प्रकार मेरे पिता को भी बन्धनमुक्त करा दो।

करुणासागर राम कल्याणमाला की करुण कथा सुनकर दयार्द्र हो गये। उसे आश्वासन दिया—

—सुन्दरी ! हम तुम्हारे पिता को बन्धनमुक्त कराने का वचन देते हैं किन्तु जब तक तुम्हारे पिता वापिस न लौटें तुम पुरुषवेश में ही राज्य-संचालन करो।

—बड़ी कृपा ! —कहकर कल्याणमाला ने पुनः पुरुषवेश धारण कर लिया।

सुबुद्धि मन्त्री ने राम से निवेदन किया—

—दशरथनन्दन ! कल्याणमाला का सम्बन्ध अनुज लक्ष्मण के साथ स्वीकार कर लीजिए।

—अभी तो हम लोग देशान्तर जा रहे हैं। वापिस लौटते समय लक्ष्मण इसके साथ विवाह कर लेगा। — राम ने वचन दे दिया।

सन्तुष्ट होकर कल्याणमाला और सुबुद्धि मन्त्री वापिस चले गये।

× × ×

राम तीन दिन तक तो वहाँ रहे और उसके बाद आगे चल दिये। नर्मदा नदी को पार करके विन्ध्याटवी में प्रवेश करने लगे। उस समय अनेक लोगों ने उनसे मना किया किन्तु उनकी बातों पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

विन्ध्याटवी में प्रवेश करते समय अनेक शुभ और अशुभ शकुन हुए किन्तु राम के हृदय में न हर्ष हुआ, न खेद। शुभाशुभ शकुन की मान्यता दुर्बल हृदय व्यक्ति करते हैं, पराक्रमी नहीं। आगे चलकर उन्हें म्लेच्छ देश का अधिपति काक मिला। काक सीता को देखकर काम विह्वल हो गया और अपने सैनिकों से बोला—

—इन दोनों पथिकों को मारकर इस सुन्दरी को मेरी सेवा में पेश करो।

महाभुज लक्ष्मण इन शब्दों को कैसे सुन सकते थे ? उन्होंने अग्रज से कहा—

—तात ! आप देवी के साथ यहीं ठहरें तब तक मैं इन कामी कुत्तों की खवर लेता हूँ।

लक्ष्मण की भ्रकुटी तन चुकी थी। उन्होंने राम के आदेश की भी प्रतीक्षा नहीं की। आगे वढ़कर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और धनुष्टं-कार कर दी।

धनुष्टंकार की कठोर ध्वनि दिशाओं में गूंज गई। म्लेच्छ सैनिक उस शब्द को सह न सके और मूर्च्छित होकर गिर पड़े जो खड़े रह भी गये उनके दिल धड़कने लगे। काक ने सोचा—'जिसका धनुष्टंकार ही इतना भयानक है उसके वाणों की तीव्रता का क्या ठिकाना ?' वह तुरन्त श्रीराम के चरणों में जा गिरा और पुकार करने लगा—रक्षा ! रक्षा करो, स्वामी।

राम ने उसे क्षमा करके अपनी शरण में ले लिया और पूछा—

—तुम कौन हो ? और इस निंद्य कर्म में क्यों प्रवृत्त हुए ?

काक कहने लगा—

स्वामी ! मैं कौशाम्वीपुर के ब्राह्मण वैश्वानर और उसकी पत्नी सावित्री का पुत्र हूँ। मेरा नाम इन्द्रदेव है। वचपन से ही क्रूर कर्म में प्रवृत्त रहा। ऐसा कोई पाप नहीं जो मैंने न किया हो। चोरी, पर-स्त्रीगमन आदि सभी पापों का मुझे व्यसन हो गया।

एक वार सैनिकों ने मुझे पकड़ लिया और शूली पर ले जाकर खड़ा कर दिया। उसी समय कोई दयालु श्रावक वहाँ से निकला। उसे मेरी दीन दशा पर दया आ गई। उसने मुझे दण्ड का धन देकर छुड़ा दिया और कहा—अव कभी चोरी मत करना।

मैं वहाँ से वचकर भटकता-भटकता यहाँ आ गया। अव मैंने चोरी तो छोड़ दी और लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। कभी-कभी राजाओं को पकड़ लाता हूँ और धन लेकर उन्हें छोड़ देता हूँ।

अब में आपकी शरण हूँ। आप आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ।

राम ने कहा—

तुम राजा वालिखिल्य को वापिस उनके नगर कुबेरपुर पहुँचा दो।

काक ने तुरन्त राजा को उसकी नगरी भेज दिया। कल्याणमाला को पिता मिल गये और पिता को पुत्री। कुबेरपुर को अपना पुराना राजा।

राम का वचन पूरा हो चुका था। वे आगे चल दिये और पल्ली-पति काक अपनी पल्ली की ओर।

× × ×

विन्ध्याटवी को पार कर अनुज और सीता सहित श्रीराम तापी नदी के तट पर पहुँचे। नदी पार करके प्रान्त भाग में अरुण नाम के ग्राम में आये।

अरुण ग्राम में कपिल नाम का अग्निहोत्री ब्राह्मण रहता था। वह जितना क्रोधी था उसकी पत्नी सुशर्मा उतनी ही शान्त स्वभाव वाली। सीता को तृषातुर जानकर वे तीनों उसके घर पहुँचे। सुशर्मा ने तीनों को अलग-अलग आसन पर बिठाया और शीतल एवं स्वादिष्ट जल से सन्तुष्ट किया।

उसी समय पिशाच के समान कपिल बाहर से आ गया और क्रोधित होकर अपनी स्त्री से बोला—

—अरे मूर्खा! इन मलिन लोगों को मेरे घर में क्यों बिठा लिया। इन्होंने मेरा अग्निहोत्र अपवित्र कर दिया।

लक्ष्मण इन शब्दों को सुनकर एकदम उठ खड़े हुए और ब्राह्मण का हाथ पकड़कर उसे घुमाने लगे।

राम ने देखा कि ब्राह्मण के प्राण ही निकल जायेंगे तो उन्होंने अनुज को समझाया—

—लक्ष्मण ! कीड़े के समान इस ब्राह्मण पर क्या क्रोध करना ? इसे छोड़ दो।

अग्रज की आज्ञा शिरोधार्य करके लक्ष्मण ने धीमे से ब्राह्मण को जमीन पर रख दिया।

तीनों उस ब्राह्मण के घर से बाहर निकले और आगे चल दिये।

चलते-चलते एक घने वन में आ पहुँचे। वर्षा ऋतु का आगमन भी हो चुका था। एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर श्रीराम अनुज लक्ष्मण से बोले—

—भाई ! इस वृक्ष के नीचे ही वर्षाकाल बिताया जाय।

अनुज को क्या ऐतराज था ? जो राम की इच्छा वही लक्ष्मण की। रही सीता वह तो पति की अनुगामिनी थी ही। वृक्ष के नीचे वर्षावास का निश्चय हो गया।

तीनों के इस निर्णय से वृक्ष पर रहने वाला ईभकर्ण यक्ष भयभीत हो गया। साधारण पथिक होते तो वह अपना बल भी प्रदर्शित करता किन्तु उनकी तेजस्विता और सदाचरण के समक्ष वह स्वयं को तुच्छ समझने लगा।

भयाक्रान्त होकर अपने स्वामी गोकर्ण यक्ष के पास पहुँचा और कहने लगा—

—हे स्वामी ! मेरे निवास स्थान वटवृक्ष के नीचे दुःसह तेज वाले व्यक्तियों ने वर्षावास का निश्चय किया है। प्रभु ! मेरा निवास स्थान छिन जायगा। मेरी रक्षा कीजिए।

विचक्षण गोकर्ण ने अवधिज्ञान से उपयोग लगाया तो चमत्कृत होकर बोला—

—मूर्ख ! मैं तेरी क्या रक्षा करूँ ? तेरे निवास पर तो स्वयं

करुणासिन्धु राम आ गये हैं। उनसे भयभीत मत हो। वे तो पूज्यनीय हैं।

—स्वामी ! वे क्यों पूज्यनीय हैं ?

—ईभकर्ण ! श्रीराम और लक्ष्मण इस भरतक्षेत्र के आठवें वलभद्र और वासुदेव हैं।

यह कहकर यक्ष गोकर्ण वटवृक्ष के पास आया और श्रीराम को प्रणाम करके बोला—

—हे स्वामी ! आप मेरे अतिथि हैं। मैंने आपके स्वागत में इस नगरी की रचना की है। इसमें पधारिये और मुझे सेवा का अवसर दीजिए।

राम ने दृष्टि उठाई तो बारह योजन लम्बी और नौ योजन विस्तार वाली समृद्ध नगरी दृष्टिगोचर हुई। उन्होंने पूछा—

—भद्र आप कौन हैं ?

यक्ष ने बताया—

—स्वामी ! मैं गोकर्ण नाम का यक्ष हूँ। यह नगरी मैंने ही आपके निमित्त बसाई है। आप इसमें चलकर रहिए। मैं सपरिवार आपकी सेवा करूँगा।

यक्ष के आग्रह को स्वीकार कर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों सुखपूर्वक राज-प्रासाद में रहने लगे।

× × ×

एक बार कपिल ब्राह्मण अपने यज्ञ के लिए समिधा (यज्ञ में जलाने की लकड़ी, ईंधन) लेने के लिए वन में आया तो इस समृद्ध नगरी को देखकर आश्चर्यचकित रह गया। वह सोचने लगा—'यह इन्द्रजाल है अथवा देवमाया।'

वह इन्हीं विचारों में निमग्न खड़ा था कि सामने एक स्त्री रूप धारिणा यक्षिणी दिखाई दी। कपिल ने उससे पूछा—

—भद्रे ! यह नवीन नगरी किसकी है ?

—ब्राह्मण ! गोकर्ण यक्ष ने यह नवीन नगरी श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के निवास हेतु निर्मित की है। यहीं रहकर दयानिधि राम याचकों को यथेच्छ दान देते हैं। जो भी दीन-दुःखी यहाँ आता है उसके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। —यक्षिणी ने बताया।

मनोरथ पूर्ण होने की बात सुनकर कपिल के मुँह में पानी भर आया। उसने समिधा का बोझा जमीन पर फैंका और विनम्र स्वर में पूछने लगा—

—श्रीराम के दर्शन मुझे किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ?

—इस नगर के चारों दिशाओं में चार द्वार हैं और प्रत्येक पर एक यक्ष पहरा देता है। अतः नगरी में प्रवेश करना दुर्लभ है।

—कोई उपाय बताओ। —कपिल के स्वर में याचना थी।

—हाँ, एक उपाय है। महामन्त्र नवकार का जाप करते हुए यदि श्रावक के रूप में पूर्व द्वार से प्रवेश कर सको तो तुम्हें कोई भी नहीं रोकेगा। —यक्षिणी ने उपाय बता दिया।

कपिल जैन साधुओं के पास गया और धर्मोपदेश सुनने लगा। यद्यपि उसका उद्देश्य धन-प्राप्ति था किन्तु सत्य धर्म ने उसको बहुत प्रभावित किया। उसने जिनधर्म स्वीकार कर लिया। स्वयं भी श्रावक बना और पत्नी को भी श्राविका बनने की प्रेरणा दी। सुशर्मा (कपिल की पत्नी) पहले ही शान्त स्वभाव की थी, उसे परम शान्तिप्रदाता जैनधर्म बहुत पसन्द आया। वह शुद्ध श्राविका बन गई।

दम्पति (कपिल और सुशर्मा) धन-प्राप्ति की इच्छा से नगरी के

पूर्वी द्वार पर गये और नवकार मन्त्र का उच्च स्वर से जाप करते हुए सहजता से रामपुरी[1] में प्रवेश कर गये।

राजमहल में प्रवेश करते ही कपिल की दृष्टि लक्ष्मण पर पड़ी। वह भयभीत होकर लौटने का विचार करने लगा। कपिल का भय लक्ष्मण से छिपा न रहा। उन्होंने मधुर स्वर में कहा—

—ब्राह्मण ! भय मत करो। यदि तुम धन की इच्छा से आये हो तो निस्संकोच अन्दर जाकर प्रभु राम से माँग लो।

लक्ष्मण के मधुर वचनों से आश्वस्त होकर कपिल श्रीराम के पास पहुँचा और ब्राह्मण होने के नाते उन्हें आशीर्वाद दिया। राम उसकी ओर निहारते रहे फिर बोले—

—द्विजोत्तम ! आप कहाँ से पधार रहे हैं ?

कपिल ने उत्तर दिया—

—मैं अरुण ग्राम का निवासी कपिल ब्राह्मण हूँ। एक बार आप तीनों मेरे अतिथि बने थे। इस समय मैंने आप लोगों के प्रति दुर्वचन भी कहे थे। तब आप ही ने तो मुझे अपने अनुज से छुड़ाया था।

श्रीराम को उस घटना की स्मृति थी किन्तु महान पुरुष अपने उपकारों और दूसरे के अपकारों को हृदय में स्थान नहीं देते हैं। उन्होंने बड़े प्रेम से कपिल को आदरपूर्वक उचित स्थान पर बिठाया।

ब्राह्मणी सुशर्मा ने भी सीताजी को आशीष दी।

---

१ गोकर्ण यक्ष ने क्योंकि नगरी की रचना राम, लक्ष्मण, सीता के निमित्त की थी। इसलिए उसने नगरी का नाम रामपुरी रखा था।

दोनों पति-पत्नी श्रीराम से यथेच्छ धन लेकर वापिस लौट आये। कुछ समय पश्चात् ब्राह्मण कपिल ने नन्दावतंस सूरि के पास दीक्षा ग्रहण कर ली।

वरसात समाप्त हो चुकी थी। श्रीराम ने वहाँ से जाने की इच्छा प्रकट की तो गोकर्ण यक्ष ने श्रीराम को स्वयंप्रभ नाम का एक हार, लक्ष्मण को दिव्य रत्नमय दो कुण्डल और सीताजी को चूड़ामणि तथा इच्छा-प्रमाण वजने वाली एक वीणा भेंट की।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण आगे चल दिये और यक्ष ने अपनी माया समेट ली। नगरी गायब हो गई।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

※ ※

: १२ :

वनमाला का उद्धार

—इस जन्म में तो दशरथपुत्र लक्ष्मण मुझे पति रूप में प्राप्त हुए नहीं। यदि मेरा प्रेम सच्चा है तो अगले जन्म में वही मेरे पति हों। —यह कहकर एक नवयौवना अपने उत्तरीय का ही कण्ठपाश बनाकर वटवृक्ष की एक शाखा से लटक गई।

वटवृक्ष की दूसरी ओर राम-सीता रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में निद्रामग्न थे और लक्ष्मण उनकी रखवाली में सजग तथा सचेत।

रात्रि की नीरवता में अपना नाम सुनकर लक्ष्मण चौंक पड़े और वृक्ष की दूसरी ओर आये। सामनें ही दिखाई पड़ी एक सुन्दरी वाला शाखा से लटकी प्राण देनें को तत्पर। सौमित्र ने दौड़कर कण्ठ से पाश निकाला और उसे पृथ्वी पर खड़ा किया तो युवती बिलखकर कहने लगी—

—कैसी आपत्ति है? इस भयानक वन में अकेली मृत्यु का आलिंगन करने आई तो आप बाधक बनकर आ खड़े हुए।

—किन्तु तुम मरना क्यों चाहती हो?

—मनवांछित पति न मिला तो जीवित रहकर तिल-तिल जलने से क्या लाभ?

—कौन है तुम्हारा मनवांछित पति और क्यों नहीं मिला?

सुन्दरी तुनक गई—

—पथिक ! आप अपनी राह जाइए। एक तो वाधा वनकर खड़े हो गये और दूसरे व्यर्थ के प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

मधुर स्वर में लक्ष्मण ने आश्वस्त किया—

—देवि ! मुझे अपना पूरा वृत्तान्त वताओ। तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि भरसक तुम्हारी सहायता करूँगा।

नवयौवना कहने लगी—

—महाभाग ! मेरा नाम वनमाला है। मैं विजयपुर नरेश महीधर और रानी इन्द्राणी की पुत्री हूँ। मैंने वाल्यावस्था में ही दशरथनन्दन लक्ष्मण के रूप और गुण की प्रशंसा सुनी तो प्रतिज्ञा कर ली कि उन्हें ही पति रूप में प्राप्त करूँगी। माता-पिता भी मेरी इच्छा से सहमत थे।

दैवयोग से राम-लक्ष्मण सीता वन को निकल पड़े तो पिता ने अपना विचार वदल दिया और चन्द्रनगर नरेश वृषभ के पुत्र सुरेन्द्र-रूप के साथ मेरा विवाह करने का निश्चय कर लिया।

लक्ष्मण को सम्वोधित करके उसने कहा—

—अव आप ही कहिए और उपाय भी क्या है। आर्य-ललना जिसे एक वार तन-मन-वचन से पति मान लेती है उसके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुप का स्वप्न में भी विचार नहीं करती। इस जन्म में लक्ष्मण न मिले तो अगले जन्म में ही सही। अव तो आपने मेरी पूरी कथा सुन ली। मेरे कार्य में वाधक मत वनिये। मुझे मर जाने दीजिए।

लक्ष्मण के मुख पर प्रसन्नता भरी मुस्कराहट खेल गई। वोले—

—अव तो तुम्हारी मृत्यु का कोई कारण ही न रहा।

—क्यों ?

—क्योंकि लक्ष्मण तुम्हारे सामने ही खड़ा है।

वनमाला आश्चर्यचकित हो उनकी ओर देखती ही रह गई। वह कुछ बोल ही न सकी। लक्ष्मण ने ही पुनः कहा—

—आश्चर्यचकित मत हो, वनमाला ! अग्रज राम और सीता वृक्ष की दूसरी ओर निद्रामग्न हैं। मैं तुम्हारी आवाज ही सुनकर इधर आया हूँ। चलो, उनके पास चलें।

और लक्ष्मण के पीछे-पीछे वनमाला चल दी। दोनों राम-सीता के पास चुपचाप जाकर बैठ गये।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में श्रीराम और सीता की निद्रा टूटी तो सामने एक लज्जाभिमुख नवयौवना को देखकर उत्सुकता जाग्रत हुई। लक्ष्मण ने अग्रज की उत्सुकता समझी और वनमाला का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया। वनमाला ने सलज्ज राम और सीता को प्रणाम किया और एक ओर सीताजी के पार्श्व में बैठ गई।

× × ×

प्रातःकाल राजकुमारी वनमाला अपने शयनकक्ष में न मिली तो महल में पुकार मच गई। राजा महीधर स्वयं पुत्री की खोज में सेना सहित वन की ओर आ निकले। दूर से ही पुत्री को देखकर कुपित स्वर में सैनिकों से बोले—

—इन चारों को पकड़ लो।

सैनिक शस्त्र ऊँचे करके दौड़ पड़े। लक्ष्मण भी उठे और प्रत्यंचा चढ़ाकर धनुष्टंकार किया। सैनिक स्तम्भित से खड़े रह गये। अकेला राजा महीधर ही उनके पास तक पहुँच सका। वनमाला ने पिता से कहा—

—पिताजी ! ये महाराज दशरथ के वनवासी पुत्र हैं।

महीधर का कोप शान्त हो गया। विनम्र स्वर में बोले—

—सौमित्र ! धनुष पर से प्रत्यंचा उतार दो। मेरे और पुत्री के सौभाग्य से आप लोग यहीं आ गये।

लक्ष्मण ने प्रत्यंचा उतारकर धनुष एक ओर रख दिया। विजयपुर नरेश महीधर ने श्रीराम को नमस्कार किया और सबका सत्कार करते हुए बोले—

—आप लोग मेरे साथ चलिए। यह पुत्री मैंने पहले ही लक्ष्मण को देने का विचार किया था। वह मनोरथ अब पूरा हो गया।

आग्रहपूर्वक राजा महीधर राम, लक्ष्मण और जानकी को अपने साथ राजमहल में लिवा ले गये।

× × ×

एक दिन राजा महीधर की राजसभा में नंद्यावर्तपुर के राजा अतिवीर्य का दूत आया और अभिवादन करके कहने लगा—

—मेरे स्वामी, नंद्यावर्तपुर के अधिपति अतिवीर्य का अयोध्या के राजा भरत के साथ विग्रह हो गया है।

श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाई वहाँ बैठे थे। राम ने पूछा—

—दूत ! विग्रह का कारण क्या है ?

—मेरे स्वामी की इच्छा है कि भरत उनको नमन करे, अधीनता स्वीकार कर ले, किन्तु भरत राजा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया है।

—अच्छा ! तो फिर, अब क्या चाहता है तुम्हारा स्वामी ? —राम ने मुस्कराकर पूछा।

—विजयपुर नरेश सैन्य सहित उसकी सहायता करें। —दूत ने अपने स्वामी की इच्छा बता दी।

—क्यों ? क्या वह अकेला ही अयोध्यापति को विजय नहीं कर सकता ? इतना निर्बल है ? —राम के स्वर में व्यंग्य स्पष्ट झलक आया।

दूत उस व्यंग्य को समझ तो गया किन्तु उसने मुख पर क्रोध के

चिह्न नहीं आने दिये। क्रोध से काम विगड़ जाने का भय था इसलिए सहज स्वर में वोला—

—नहीं ! निर्वल तो नहीं हैं, मेरे स्वामी ! किन्तु भरत राजा की सहायता अनेक नरेश करने को तत्पर हैं, इसीलिए आपकी मदद की आवश्यकता अनुभव हुई।

राम ने दूत के स्वर में तल्खी स्पष्ट अनुभव की। वात आगे न वढ़े इसलिए उन्होंने कहा—

—दूत ! हम सैन्य सहित तुम्हारे स्वामी की सहायता के लिए यथासमय पहुँच जायेंगे।

अभिवादन करके दूत चला गया तो राजा महीधर कहने लगे—

—राजा अतिवीर्य मन्दवुद्धि है जो मुझे भरत के विरुद्ध युद्ध में बुला रहा है। आपके वचन के अनुसार मैं सेना सहित जाकर उसका प्राणान्त कर दूँगा।

—आप क्यों कष्ट करते हैं ? पुत्र तथा सेना आदि मेरे साथ कर दीजिए। मैं ही उसे योग्य शिक्षा दे दूँगा। —राम ने प्रत्युत्तर दिया।

नहीं ! नहीं !! आप मेरे अतिथि हैं। मैं आपको युद्ध की ज्वाला में कैसे जाने दूँ ?

—आप भूलते हैं, राजन् ! विग्रह मेरे भाई के साथ हो रहा है। मेरा जाना ही उचित है।

राम के शब्द सारगर्भित थे। भाई की विपत्ति की वात सुनकर दूसरा भाई शान्त नहीं रह सकता। राजा महीधर मौन हो गये।

महीधर के पुत्र और सेना सहित श्री राम-लक्ष्मण और जानकी नंद्यावर्तपुर के समीप पहुँचे। सेना का शिविर नगर के वाहर उद्यान

में लग गया। उसी समय क्षेत्र के अधिष्ठायक देव श्रीराम के समक्ष प्रगट होकर कहा—

—महाभाग ! आपकी क्या इच्छा है ? जो आप कहें वही मैं करूँ।

—तुम क्या करना चाहते हो ? —राम ने प्रतिप्रश्न कर दिया।

—यदि आप आज्ञा दें तो मैं आप सबका रूप स्त्री का सा बना दूँ। —देव ने अपनी इच्छा प्रगट कर दी।

—इससे लाभ ?

—'स्त्रियों से हार गया' इस प्रकार अतिवीर्य की अत्यधिक अपकीर्ति होगी।

यह कहकर क्षणमात्र में देव ने सम्पूर्ण सेना को स्त्री रूप दिया और अदृश्य हो गया। राम-लक्ष्मण भी सुन्दर स्त्री बन गये।

श्रीराम और लक्ष्मण विवश से देखते रह गये। देव अदृश्य हो चुका था। अब चारा भी क्या था ? सेना सहित राजमहल के समीप पहुँचे और द्वारपाल से कहा—

—राजा महीधर ने आपकी सहायता के लिए सेना भेजी है।

द्वारपाल ने सूचना अतिवीर्य को दी तो वह कुपित होकर बोला—

—महीधर स्वयं तो आया नहीं, सेना ही भेज दी। मैं अकेला ही भरत को विजय कर लूँगा। कोई आवश्यकता नहीं सहायता की। सेना को बाहर निकाल दो।

उसी समय किसी दूसरे व्यक्ति ने कह दिया—

—देव ! सेना भी कैसी ? स्त्रियों की।

सुनते ही अतिवीर्य आग-बबूला हो गया। उसने स्वयं बाहर

आकर देखा तो स्त्रियों का समूह खड़ा था। माथे पर त्यौरी चढ़ाकर गरजा—

—इन स्त्रियों के वाल पकड़कर घसीटते हुए नगर के बाहर छोड़ आओ।

आज्ञाकारी सामन्त स्वामी की आज्ञा पाते ही आगे वढ़े। स्वागत किया वीर लक्ष्मण ने हाथी बाँधने का कीला उखाड़कर ! उस अकेले ने ही सभी सामन्तों को विह्वल करके भगा दिया।

सामन्तों के भंग होते ही अतिवीर्य तलवार निकालकर भयंकर गर्जना करता हुआ लक्ष्मण को मारने आया। लक्ष्मण ने उसकी तलवार तो एक हाथ से छीन ली और दूसरे हाथ से उसके बाल पकड़कर खींच लिया। अतिवीर्य वीर्यविहीन सा चकित रह गया। उसी के वस्त्र से अतिवीर्य को वाँधा और घसीटने लगे।

अतिवीर्य दया की भीख माँगने लगा। दयालु सीता को दया आ गई। उसने आग्रह करके उसे बन्धनमुक्त कराया। अतिवीर्य ने भी भरत की सेवा करना स्वीकार कर लिया। उसी समय क्षेत्र देवता ने सवका स्त्री रूप हरण कर लिया। सभी अपने असली रूप में आ गये।

इस चमत्कार को अतिवीर्य पलकें झपकाकर देखने लगा। उसकी वुद्धि भ्रमित हो गई। राम ने ही उसे आश्वस्त किया।

—उठो अतिवीर्य ! विस्मय छोड़ो।

तन्द्रा सी टूटी अतिवीर्य की। सामने राम-लक्ष्मण को देखकर उसने विनय करके उन्हें सन्तुष्ट किया।

मानभंग हो चुका था उसका। स्त्रियों से हार जाने का अपयश प्राणनाश से भी बुरा था। अतिवीर्य के हृदय में वैराग्य जागा। अपने पुत्र विजयरथ को राज्य का भार दिया और स्वयं प्रव्रजित हो गया।

विजयरथ ने अपनी वहिन रतिमाला लक्ष्मण को दी और भरत राजा की अधीनता स्वीकार करने अयोध्या चला गया।

राजा भरत ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। उसका अपराध क्षमा कर दिया क्योंकि सत्पुरुष भक्तवत्सल होते ही हैं। विजयरथ ने भी अपनी छोटी वहिन विजयसुन्दरी का विवाह भरत के साथ करके अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित की।

उसी समय मुनि अतिवीर्य भी विहार करते हुए अयोध्या आये। सभी उनके वन्दन को गये। भरत ने भी भक्तिपूर्वक वन्दना की। कितना अन्तर हो गया था राजा अतिवीर्य और मुनि अतिवीर्य में। यह था श्रामणी दीक्षा का प्रत्यक्ष प्रभाव। जो भरत सिर झुकाने के वजाय युद्ध को तत्पर था वही आज मुनि-चरणों में सिर रखकर स्वयं को धन्य मान रहा था।

नमन-वन्दन के पश्चात विजयरथ नंद्यावर्तपुर को लौट आया राम-लक्ष्मण-जानकी नंद्यावर्तपुर से विजयपुर आ पहुँचे।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

: १३ :

रात्रिभोजन-त्याग की शपथ

विजयपुर नरेश महीधर से श्रीराम ने जाने की इच्छा व्यक्त की। राजा के वहुत आग्रह पर भी राम वहाँ रुकने को तैयार न हुए तो उसने स्वीकृति दे दी।

लक्ष्मणजी ने भी जाकर वनमाला को अपनी इच्छा वताई तो उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। रोते-रोते वोली—

—मुझे आपने मरने से वचाया ही क्यों ?

—यह तो मेरा कर्तव्य था और आत्महत्या पाप भी तो है ?

—पाप है या पुण्य, मैं नहीं जानती। मुझे तो इतना मालूम है कि आपके विना मैं नहीं रह सकती। आपका वियोग मेरे लिए असह्य है।

—वियोग है कहाँ ? वनवास से लौटते समय तो मैं तुम्हें साथ ले ही जाऊँगा।

—और इससे पहले ही यमराज मुझे ले जायेगा। —वनमाला ने कहा।

इन शब्दों से लक्ष्मण विह्वल हो गये। एक ओर भ्रातृसेवा का का पवित्र व्रत का और दूसरी ओर वनमाला का हठ। यदि वनमाला की वात मानते हैं तो पवित्र व्रत भंग होता है और भाई के साथ जाते

हैं तो वनमाला मरने को तैयार है। उन्होंने युक्ति द्वारा उसे समझाने की चेष्टा की—

—वनमाला ! तुम मुझे सुखी देखना चाहती हो ?

—यह भी कोई पूछने की वात है।

—तो मेरे भातृसेवा के व्रत में वाधक मत वनो।

—मैं वाधक कव वन रही हूँ ?

विस्मित से लक्ष्मण उसे देखने लगे और वोले—

—तुम्हारा यह हठ ?

वनमाला ने अपनी इच्छा स्पष्ट की—

—आर्य ! आप मुझे भी साथ ले चलिए। मेरी इच्छा भी पूर्ण हो जायगी और आपका व्रत भी भंग न होगा।

इस अप्रत्याशित सुझाव के लिए लक्ष्मण तैयार नहीं थे। कुछ देर तक सोचते रहे। उनकी युक्ति निरर्थक हो चुकी थी। उन्होंने भावपूर्ण स्वर में कहा—

—सुन्दरी ! तुम्हें साथ ले जाने से मेरी भातृ-सेवा में व्यवधान पड़ जायेगा।

—तो क्या नारी पुरुष के कर्तव्य पालन में बाधक ही है ?

—नहीं, नारी से तो पुरुप को पूर्णता ही प्राप्त होती है, किन्तु इस समय स्थिति भिन्न है।

—वह क्या ?

—तुम साथ चलोगी तो मेरा तुम्हारे प्रति भी कुछ कर्तव्य हो जायगा और मेरी एकनिष्ठ भातृ-सेवा में विघ्न पड़ेगा। —लक्ष्मण ने समझाया।

लक्ष्मणजी की इस वात पर वनमाला मनन करने लगी। उसे मौन देखकर लक्ष्मण ही आगे वोले—

—प्रिये ! विश्वास करो। मैं अवश्य लौटूँगा और तुम्हें साथ लेकर ही अयोध्या जाऊँगा।

वनमाला मौन ही रही। उसने कुछ भी उत्तर न दिया। लक्ष्मण ही पुनः बोले—

—क्या मेरे वचनों पर विश्वास नहीं है ?

—आप पर तो विश्वास है, पूर्ण विश्वास ! किन्तु अपने भाग्य पर नहीं। बडी कठिनाई से तो आपके दर्शन हुए और अब आप छोड़कर जा रहे हैं.......। —वनमाला के स्वर में निराशा थी।

—नहीं ! नहीं !! निराश मत हो। मेरा वचन पत्थर की लकीर है। यदि मैं लौटकर तुम्हें साथ न लूँ तो 'मुझे रात्रिभोजन का पाप लगे।'

—ऐसी कठिन शपथ मत लीजिए। आपके वियोग का दुःख सह लूँगी। आप जाइये और भ्रातृ-सेवा व्रत का पालन कीजिए। —वन-माला का स्वर कातर हो गया था।

वनमाला की स्वीकृति मिल गई।

× × ×

राम-लक्ष्मण और जानकी वहाँ से चलकर अनेक वनों को पार करते हुए क्षेमांजलि नगरी के समीप आ पहुँचे। वहाँ वन के फल-फूलों का सबने आहार किया और राम की आज्ञा से लक्ष्मण नगर में गये। वहाँ उन्हें एक घोषणा सुनाई पड़ी—'जो पुरुष राजा का शक्ति-प्रहार सहन कर लेगा, उसके साथ राजकुमारी का विवाह कर दिया जायेगा।'

लक्ष्मण को इस घोषणा में राजा के घमण्ड का आभास हुआ। पराक्रमी पुरुषों का स्वभाव होता है कि वे किसी का गर्व नहीं सह सकते। लक्ष्मण ने भी राजा का गर्व तोड़ने का विचार किया। उन्होंने एक व्यक्ति से पूछा—

—भद्र ! इस घोषणा का रहस्य क्या है ?

उस पुरुष ने वताया—

यहाँ का राजा शत्रुदमन वहुत पराक्रमी है। उसकी रानी कन्यकादेवी से जितपद्मा नाम की एक कन्या हुई। वह कन्या रूप और गुण में पद्मा (लक्ष्मी) से भी वढ़कर है। उसी के योग्य वर की खोज के लिए यह घोपणा प्रति दिन की जाती है।

—तो क्या अभी तक कोई योग्य वर ही नहीं मिला ? —लक्ष्मण ने पूछा।

—आये तो वहुत किन्तु प्रहार न सह सके। —उस व्यक्ति ने वताया और एक चल दिया।

लक्ष्मण भी वहाँ से चले तो सीधे राज्यसभा में पहुँचे। राजा ने पूछा—

—किसलिए आये हो ?

—आपकी घोषणा नगर में सुनी थी, इसीलिए।

राजकुमारी के इच्छुक हो ? पहले तो परिचय वताओ। तुम हो कौन ? —राजा ने व्यंग से पूछा।

—पुरुष का परिचय उसका पराक्रम है, नरेश। —लक्ष्मण के उत्तर में क्षात्रतेज का पुट था।

राजा ने लक्ष्मण को ऊपर से नीचे तक गौर से देखा और वोला—

—वहुत पराक्रमी समझते हो स्वयं को। मेरा एक प्रहार भी न झेल सकोगे।

—एक की तो वात ही क्या पाँच प्रहार कर लेना। यह काया-वज्र से भी कठोर है।

उसी समय राजपुत्री जितपद्मा सभा में आई। लक्ष्मण पर दृष्टि

पड़ते ही वह कामातुर हो गई। उसने पिता से अपनी हठ छोड़ने का आग्रह किया किन्तु पिता अपनी प्रतिज्ञा से टस से मस न हुए।

तत्काल वरमाला मँगाकर राजकुमारी को दे दी गई।

राजा प्रहार करने को तत्पर हुआ। सम्पूर्ण सभा अपलक दृष्टि से देखने लगी। 'परिणाम क्या होगा ?' यह उत्सुकता सभी के हृदय में व्याप्त थी।

शत्रुदमन को प्रहार हेतु तत्पर देखकर लक्ष्मण ने कहा—

—राजन् ! सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग कर लेना। कहीं मन की मन में न रह जाय।

एक के वाद एक राजा शत्रुदमन ने पाँच प्रहार किये। दो प्रहार तो दोनों हाथों पर, दो दोनों काँखों (वगल का भाग) में और एक दाँत पर। शत्रुदमन ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी किन्तु लक्ष्मण की मुस्कराहट भी फीकी नहीं पड़ी।

जितपद्मा के मुख पर पसन्नता चमक उठी। वह वरमाला लेकर वढ़ी और लक्ष्मण के कण्ठ में डाल दी। राजा शत्रुदमन ने भी प्रफुल्ल होकर कहा—

—इस कन्या को ग्रहण करो।

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

—अग्रज राम सती सीता के साथ बाहर उद्यान में ठहरे हैं। उनकी आज्ञा विना मैं कुछ नहीं कर सकता।

अव राजा शत्रुदमन को ज्ञात हुआ कि सामने खड़ा युवक साधारण नहीं अपितु अयोध्यानरेश दशरथ का प्रतापी पुत्र लक्ष्मण है। तुरन्त ही उसने उनका यथोचित सत्कार किया और राम के पास जाकर उन्हें प्रणाम।

आग्रहपूर्वक वह राम-जानकी को महल में ले आया। वड़ी धूम-

धाम से उनका स्वागत समारोह किया। सामान्य अतिथि ही सत्कार योग्य होता है तो राम जैसे पुरुषोत्तम की वात ही क्या थी ?

श्रीराम जब राजा से विदा माँग कर चलने लगे तो राजा ने पुत्री के विवाह का आग्रह किया। किन्तु 'वनवास से लौटने पर लक्ष्मण तुम्हारी पुत्री के साथ विवाह करेगा' कहकर राम ने वात समाप्त कर दी।

राम-लक्ष्मण-जानकी तीनों क्षेमांजलि नगरी से चल दिये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

❊ ❊

: १४ :

केवली कुलभूषण और देशभूषण

—आप सब लोग भयभीत क्यों दिखाई देते हैं ? —श्रीराम ने एक पुरुष से पूछा।

—तीन दिन से प्रत्येक रात्रि को पर्वत के ऊपर भयंकर आवाजें होती हैं। इस कारण सभी लोग भयाक्रान्त है ? —उस पुरुष ने बताया।

—आप लोगों ने इसका कारण जानने का प्रयास नहीं किया ?

—साहस ही नहीं होता।

—राजा भी जानने का प्रयास नहीं करता ?

—वह स्वयं ही भयाक्रान्त है।

—तो रात कैसे गुजरती है ?

—सभी लोग रात को अन्यत्र चले जाते हैं और प्रातःकाल फिर लौट आते हैं।

—यह तो बड़ा कष्टप्रद कार्य है।

—जीवन-रक्षा के लिए करना ही पड़ता है। क्या करें ? पर्वत पर न मालूम क्या रहस्य है ?

श्रीराम ने उत्सुकतापूर्वक पर्वत की ओर देखा। पर्वत का नाम था वंशशैल्य और जिस नगर के बाहर यह वार्तालाप हो रहा था उसका नाम था वंशस्थल।

वंशस्थल नगर वंशशैल्य पर्वत की तलहटी में बसा हुआ था। नगर-निवासी इन रहस्यपूर्ण भयंकर आवाजों से महाकष्टप्रद स्थिति में पड़े थे।

उनके कष्ट ने कृपालु राम को द्रवित कर दिया। वे पर्वत पर चढ़ गये। पीछे-पीछे पदानुगामिनी सीता और लक्ष्मण भी थे। वह पुरुष उन परोपकारियों को देखता ही रह गया। 'धन्य थे वे पराक्रमी वीर जो स्वेच्छा से ही अपने प्राणों को संकट में डालने चल दिये कि लोगों का कष्ट दूर हो जाय।'

पुरुष तो नगर की ओर चला गया और वे तीनों पर्वत शिखर पर जा पहुँचे।

परिश्रम सफल हो गया उनका। सामने ही दो श्रमण कायोत्सर्ग मुद्रा में लीन खड़े थे। भक्तिपूर्वक तीनों ने वन्दना की। गोकर्ण यक्ष द्वारा प्रदत्त वीणा के तार राम ने छेड़ दिये। लक्ष्मण ने मधुर स्वर में गान किया और सीता ने मनोहर नृत्य! भक्ति रस में आप्लावित तन थिरकने लगता है और मन-मयूर गायन में लीन। यही तो नृत्य-वादित्र और गायन की पूर्णता है। तीनों मग्न थे भक्ति में, समय का भान ही न रहा।

अनलप्रभ देव के भयंकर अट्टहास ने उनकी मग्नता भंग कर दी।

आँख खोली तो देखा—रात्रि के अन्धकार में भयंकर आकृति वाला एक देव दोनों मुनियों पर उपसर्ग करने हेतु आकाश-मार्ग से दौड़ा चला आ रहा है।

गुरुदेव पर उपसर्ग करने वाले को सह न सके राम-लक्ष्मण। सीता को वहीं छोड़ा और उसे मारने दौड़े। अनलप्रभ दोनों भाइयों का तेज न सह सका और वहाँ से भाग गया।

दोनों मुनियों को उसी समय केवलज्ञान हुआ। तत्काल देवों ने

महोत्सव किया। 'केवली कुलभूषण-देशभूषण की जय' के उद्घोषों से गगन गूँजने लगा।

केवलियों को वन्दना करके श्रीराम ने अंजलि बाँध कर पूछा—

—प्रभो! वह देव आप पर उपसर्ग क्यों कर रहा था?

केवली कुलभूषण राम की जिज्ञासा शान्ति हेतु बताने लगे—

—राम! इसके साथ हमारे पूर्व-जन्मों का सम्बन्ध है। पूरा वृतान्त सुनो। तुम्हारी जिज्ञासा शान्त हो जायेगी।

पद्मिनी नाम की नगरी में विजयपर्वत नाम का राजा राज्य करता था। उसका एक दूत था—अमृतस्वर। अमृतस्वर की पत्नी उपयोगा थी और थे दो पुत्र उदित और मुदित। उपयोगा अपने पति के मित्र ब्राह्मण वसुभूति की ओर आकर्षित थी। वसुभूति भी उसे प्राणप्रण से चाहता था। उनके प्रेम सम्बन्ध में काँटा था—अमृतस्वर। उपयोगा और वसुभूति दोनों ही उसे मारकर कामभोग में लीन होना चाहते थे।

एक दिन राजाज्ञा से अमृतस्वर को विदेश जाना पड़ा। साथ में मित्र वसुभूति भी चल दिया। मार्ग में छलपूर्वक उसने अमृतस्वर को ठिकाने लगाया और वापिस लौट आया। लोगों के पूछने पर कह दिया—'कार्यवश विदेश में रुक गया है।'

अमृतस्वर के घर आया वसुभूति तो उपयोगा ने आँखों के इशारे से पूछा—'क्या हुआ?'

वसुभूति ने बताया—काँटा सदा को निकल गया।

प्रसन्न हो गई उपयोगा। किन्तु दूसरे ही क्षण बोली—काँटा तो निकल गया, मच्छर अभी बाकी हैं।

—कौन मच्छर?

—इन दो मच्छरों को और मसल दो तभी तो निश्शंक भोग कर सकेंगे।—उपयोगा का संकेत उदित-मुदित की ओर था।

धिक्कार है, ऐसी काम-लिप्सा को जो पर-पुरुष-गमन के लिए पति और पुत्र के वध में प्रवृत्त करा दे।

उपयोगा और वसुभूति ने उदित-मुदित को मारने की योजना तैयार कर ली।

प्रत्येक स्त्री अपने पति के चाल-चलन पर सूक्ष्म दृष्टि रखती है। उपयोगा के प्रति अपने पति की काम-भावना का ज्ञान तो वसुभूति की पत्नी को था ही। उसने अनुमान लगाया कि इस कामातुर ने ही अपने मित्र अमृतस्वर को मार डाला होगा। किसी प्रकार उसे यह खबर भी मिल गई कि अब इन दोनों की योजना उदित-मुदित को ठिकाने लगाने की है। उसने यह समाचार उन दोनों भाइयों के कान में डाल दिया। परिणामस्वरूप क्रोधित होकर उदित ने वसुभूति को ही मार डाला। वह मरकर नलपल्ली में म्लेच्छ बना।

एक बार मतिवर्द्धन मुनि की धर्मदेशना सुनकर राजा ने दीक्षा ले ली। उसके साथ ही उदित-मुदित भी प्रव्रजित हो गये।

मुनि उदित-मुदित सम्मेतशिखर की ओर गये तो मार्ग भूलकर नल-पल्ली में जा पहुँचे। पूर्वभव का शत्रु म्लेच्छ उन्हें देखते ही मारने को लपका किन्तु म्लेच्छ राजा ने उसे रोका और मुनियों को को सुरक्षापूर्वक वन के बाहर पहुँचवा दिया।[1]

---

१ म्लेच्छ राजा पूर्वभव में पक्षी था और उदित-मुदित हलवाहे। एक बार वह पक्षी किसी शिकारी (बहेलिये) के जाल में फँस गया। उन दोनों भाइयों ने उस पक्षी को छुड़वाकर उसकी जीवन रक्षा की थी। इसी कारण इस जन्म में म्लेच्छ राजा ने दोनों मुनियों की सुरक्षा की।

(त्रिषष्टि शलाका ७।५ गुजराती अनुवाद पृष्ठ ६२)

मुनि सम्मेतशिखर पर बहुत समय तक तपस्या करते रहे। आयु के अन्त में अनशनपूर्वक मरण करके दोनों मुनि महाशुक्र देवलोक में सुन्दर और सुकेश नाम के महर्द्धिक देव हुए।

म्लेच्छ (वसुभूति का जीव) अनेक योनियों में भ्रमण करता रहा। पुण्य योग से उसे मनुष्यभव मिला तो वह तापस हो गया। वाल-तप के फलस्वरूप वह ज्योतिष्क देवों में धूमकेतु नाम का मिथ्यादृष्टि देव हुआ।

उदिन और मुदित महाशुक्र देवलोक से च्यवकर रिष्टपुर नगर के राजा प्रियंवद की रानी पद्मावती के गर्भ से रत्नरथ और चित्ररथ नाम के पुत्र हुए। धूमकेतु का आयुष्य भी पूर्ण हुआ तो उसने भी उसी राजा की दूसरी रानी कनकाभा के उदर में जन्म लिया। उसका नाम पड़ा—अनुद्धर। अनुद्धर अपने सौतेले भाइयों से प्रच्छन्न शत्रुता रखता था।

राजा प्रियंवद ने बड़े पुत्र रत्नरथ को राजा वनाया और चित्ररथ तथा अनुद्धर को युवराज। उसने दीक्षा ग्रहण करली और छह दिन पश्चात ही मरण करके देव हो गया।

रत्नरथ प्रजापालन करने लगा। एक राजा ने अपनी पुत्री श्रीप्रभा का विवाह राजा रत्नरथ से कर दिया तो अनुद्धर क्रोध से पागल हो गया। वह श्रीप्रभा से स्वयं विवाह करने का इच्छुक था।

उसने युवराज पद छोड़ा और रिष्टपुर में ही उत्पात करने लगा। राजा रत्नरथ ने उसे युद्ध में पकड़ा और वहुत परेशान करने के बाद मुक्त किया।

दुखी होकर अनुद्धर तापस हो गया किन्तु स्त्री के संग के कारण उसका तप निष्फल हुआ। मृत्यु पाकर वह अनेक योनियों में भटकता रहा। अन्त में किसी पुण्य योग से उसे मनुष्य जन्म मिला तो तापस बनकर वाल तप करके अनलप्रभ नाम का ज्योतिषी देव हुआ।

रत्नरथ और चित्ररथ ने भी प्रव्रज्या ली और मानवदेह त्यागकर अच्युत कल्प में अतिवल-महावल नाम के महर्द्धिक देव हुए।

वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर सिद्धार्थपुर के राजा क्षेमंकर की रानी विमलादेवी के गर्भ में अवतरित हुए। गर्भकाल पूरा होने पर रानी ने कुलभूपण और देशभूषण दो पुत्र प्रसव किये।

वाल्यावस्था में ही वे घोप नाम के उपाध्याय के पास विद्याध्ययन के लिए भेज दिये गये। वारह वर्ष तक गुरु के पास रहकर अनेक कला और विद्याओं में निपुणता प्राप्त की और तेरहवें वर्ष में गुरु के साथ वापिस लौटे।

मार्ग में आते हुए राजमहल के गवाक्ष में एक कन्या दिखाई दी तो दोनों भाई उस पर मोहित हो गये।

गुरुजी को तो राजा ने उचित आदर-सत्कार करके विदा कर दिया और दोनों भाई माता को प्रणाम करने राजमहल में आये।

माता के पास वही कन्या वैठी थी। दोनों भाई उसकी ओर देखने लगे तो माता ने वताया—

—यह तुम्हारी वहन कनकप्रभा है। जब तुम घोष उपाध्याय के यहाँ रहते थे तभी इसका जन्म हुआ था। इसीलिए तुम इसे पहले नहीं देख सके।

दोनों भाइयों को अपने काम-विकार पर वहुत लज्जा आई। वे वारम्वार स्वयं को धिक्कारने लगे।

तुरन्त उठे और गुरु के पास जाकर प्रव्रजित हो गये।

पिता क्षेमंकर पुत्रों के वियोग को न सह सके। अनशनपूर्वक मरण करके महालोचन नाम के गरुड़पति देव हुए। पूर्वजन्म के स्नेह के कारण ही इनका आसन कंपायमान हुआ और हम पर उपसर्ग

जान कर ये यहाँ आये किन्तु तब तक तुम्हारे कारण हमारा उपसर्ग दूर होकर हमें केवलज्ञान की प्राप्ति हो चुकी थी।

राम को सम्बोधित करके केवली भगवान ने कहा—

—हे राम ! मैं कुलभूषण हूँ और ये देशभूषण। पूर्वभव की शत्रुता के कारण ही देव अनलप्रभ हम पर पिछली तीन रातों से उपसर्ग करता रहा था।[1]

धर्म सभा में महालोचन गरुड़पति देव भी उपस्थित था। उसने श्रीराम का उपकार मानते हुए कहा—

—तुमने यहाँ आकर बहुत अच्छा किया। मैं तुम्हारे इस उपकार का बदला किस प्रकार चुकाऊँ ?

श्रीराम ने विनम्रतापूर्वक कहा—

—मेरा कोई कार्य नहीं है। आप मेरे लिए कुछ भी मत करिए।

—मैं किसी न किसी तरह तुम्हारे इस उपकार का बदला अवश्य चुकाऊँगा। —महालोचन ने राम को अपना निश्चय बताया।

देव केवली के चरणों में नत हुआ और अन्तर्धान हो गया।

---

1 इस घटना से पहले एक बार अनलप्रभ देव कौतुक देखने के लिए केवली अनन्तवीर्य के केवलज्ञान महोत्सव में गया था। वहाँ किसी शिष्य ने उनसे पूछा—'प्रभु ! आपके पश्चात मुनिसुव्रत स्वामी के तीर्थ में केवली कौन होगा ?' तो केवली भगवान ने बताया—'मेरे निर्वाण के बाद कुल-भूषण-देशभूषण दो भाई केवली होंगे।' उनकी वाणी को मिथ्या सिद्ध करने के लिए इस घोर मिथ्यात्वी देव अनलप्रभ ने मुनि कुलभूषण-देश-भूषण पर घोर उपसर्ग किया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५ गुजराती अनुवाद, पृष्ठ ९३

केवली की धर्म-सभा का समाचार वंशस्थलनरेश सुरप्रभ को भी लगा। वह भी वहाँ आया और धर्मदेशना से लाभान्वित हुआ।

सुरप्रभ ने राम का वहुत उपकार माना। श्रीराम की स्मृति में वंशशैल्य पर्वत का नाम ही रामगिरि पड़ गया।

राजा सुरप्रभ की अनुमति लेकर राम-लक्ष्मण-सीता आगे चल दिये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

: १५ :

पाँच सौ श्रमणों की बलि

रामगिरि पर्वत से चलकर राम-लक्ष्मण-सीता ने महाभयंकर दण्डक वन में प्रवेश किया। वन में स्थित एक ऊँचे पर्वत की गुफा में तीनों सुखपूर्वक काल-यापन करने लगे।

एक बार शुभयोग से त्रिगुप्त और सुगुप्त नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनि वहाँ दो मास के अनशन के पश्चात पारणे हेतु आये। तीनों ने उनकी भक्तिपूर्वक वन्दना की और प्रासुक अन्नपान से प्रतिलाभित किया।

इस उत्तम दान को जम्बू द्वीप का विद्याधर राजा रत्नजटी और दो देव भी देख रहे थे। उन्होंने हर्षित होकर राम को अश्वसहित दिव्य रथ दिया।

मुनियों के दान ग्रहण करते ही आकाश से देवों ने रत्न और सुगन्धित जल की वर्षा की।

समीप के वृक्ष पर एक गन्ध नाम का गीध पक्षी बैठा यह सब देख रहा था। उसकी काया अनेक व्याधियों का आगार थी। वह वार-वार मुनियों को उत्सुकतापूर्वक देखता। उसके हृदय में विचार उठता—'देखा है, पहले भी कहीं देखा है, कब ? कहाँ ? कुछ याद नहीं।'

गन्ध वृक्ष से उतरा और मुनि चरणों के समीप आ बैठा। ध्यानपूर्वक अपलक दृष्टि से उन्हें देखने लगा। पक्षी के नेत्रों के समक्ष पूर्वभव की घटनाएँ चित्रपट की भाँति घूम गईं। वह अचेत होकर भूमि पर लुढ़क गया। सीता के जल-सिंचन से सचेत हुआ तो मुनिश्री के चरणों में विह्वल होकर लोटने लगा।

तत्काल चमत्कार सा हुआ। गन्ध के शरीर से रोगों की दुर्गन्ध निकल गई और काया कंचन के समान जगमगाने लगी। रूप ही बदल गया—कहाँ वह दुर्गन्धयुक्त, बेबस, लाचार, क्षीणकाय और कहाँ सुन्दर, बलिष्ठ और सुदृढ़ शरीर ! उसके मस्तक पर रत्नांकुर के समान सुन्दर जटाएँ लहराने लगीं।[1]

इस परिवर्तन को देखकर राम-सीता-लक्ष्मण तीनों चमत्कृत हो गये। विस्मित होकर राम ने पूछा—

—प्रभो ! अभी-अभी तो यह पक्षी इतना विरूप था और अब क्षण भर में सुवर्ण जैसी कान्ति वाला कैसे हो गया ?

—इसको अपने शुभयोग से स्पर्शोषधि ऋद्धि का निमित्त प्राप्त हो गया।

राम समझ गये कि मुनि स्पर्शोषधि ऋद्धि के धारी हैं। जैन श्रमण अपनी ऋद्धियों को न तो स्वयं कहते हैं और न ही उनका प्रयोग करते हैं। किसी दीन-दुःखी प्राणी के लाभान्वित होने पर

---

१ (क) जटाएँ लहराने के कारण ही उस पक्षी का नाम जटायु पड़ा।

—(त्रिषष्टि शलाका ७।५ गुजराती अनुवाद, पृष्ठ ९५)

(ख) वाल्मीकि रामायण में जटायु के मुख से कहलवाया गया है—

'रघुनन्दन ! महर्षि कश्यप की पत्नी विनता के गर्भ से दो पुत्र हुए—गरुड़ और अरुण। मैं अरुण का पुत्र हूँ। हम दो भाई हैं। सम्पाति मेरा बड़ा भाई है और मैं जटायु हूँ। (अरण्यकाण्ड)

ही लोग उनकी ऋद्धियों को जान पाते हैं। राम ने भक्तिपूर्वक पुनः प्रश्न किया—

—गुरुदेव ! गीध पक्षी तो मांस भक्षी और अल्प बुद्धि वाला होता है। यह आपके चरणों में आकर शान्त क्यों हो गया ?

—इसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया है, राम ! इसी कारण इसकी प्रवृत्ति शान्त हो गई है।

—पूज्य मुझे भी इसके पूर्व-जन्मों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो गई है।

—तो सुनो।—मुनिराज कहने लगे—

यहीं पहले कुम्भकारकट नाम का एक नगर था। उस नगर का राजा था यही पक्षी और इसका नाम था दण्डक।

उसका समकालीन नरेश था श्रावस्तीपति जितशत्रु। जितशत्रु राजा की धारणी नाम की रानी से स्कन्दक नाम का पुत्र और पुरन्दरयशा पुत्री हुई। पुरन्दरयशा का विवाह कुम्भकारकटनरेश दण्डक के साथ सम्पन्न हुआ था।

दण्डक ने एक बार किसी कार्य से अपने दूत पालक को राजा जितशत्रु के पास भेजा। पालक ब्राह्मण था और अपने मिथ्याज्ञान का बहुत अभिमानी।

जिस समय पालक श्रावस्ती में पहुँचा तो राजा जितशत्रु और स्कन्दक अन्य अनेक विद्वानों के साथ धर्म-चर्चा में लीन थे। पालक भी वहीं पहुँच गया। धर्मचर्चा में वाद-विवाद करने के लिए उसकी जिह्वा खुजलाने लगी। अपनी योग्यता और विद्वत्ता की धाक जमाने के लिए वह जिनधर्म में व्यर्थ के दूषण लगाने लगा। स्कन्दक ने सत्य हेतुओं द्वारा उसके तर्कों का उचित उत्तर दे दिया। पालक स्वयं को अपमानित समझने लगा। वाद में पराजित होकर उसने अपने हृदय में शत्रुता की गाँठ बाँध ली।

धर्मचर्चा समाप्त होने के पश्चात राजा जितशत्रु ने दूत पालक का अभिप्राय जानकर उसे सम्मान सहित विदा कर दिया। पालक लौटकर अपने नगर आ गया।

स्कन्दक ने संसार से विरक्त होकर भगवान मुनिसुव्रत नाथ के पास दीक्षा ली और तपस्यारत हुआ। एक वार उन्होंने पुरन्दरयशा को प्रतिवोध देने के निमित्त कुम्भकारकट नगर जाने की इच्छा तीर्थंकर प्रभु के समक्ष प्रकट की तो प्रभु का उत्तर था—

—वहाँ जाने पर तुमको शिष्य परिवार सहित मरणांतक उपसर्ग होगा।

स्कन्दकाचार्य ने पुनः पूछा—

—प्रभु मैं धर्म का आराधक रहूँगा या विराधक हो जाऊँगा ?

—तुम्हारे अतिरिक्त सभी आराधक रहेंगे। —प्रभु का सारगर्भित संक्षिप्त उत्तर था।

—तो मैं समझ लूँगा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया।—स्कन्दकाचार्य ने कहा।

तीर्थंकर प्रभु मौन हो गये। स्कन्दकाचार्य ने प्रभु को नमन किया और शिष्य परिवार सहित कुम्भकारकट नगर की ओर चल दिये।

मुनि संघ अभी कुम्भकारकट नगर के वाहर ही था कि पालक को सूचना मिल गई। उसने दूर से आचार्यश्री को देखा तो अपना वदला चुकाने के लिए कृत संकल्प हो गया।

पालक जानता था कि श्रीसंघ नगर के वाहर उद्यान में ही ठहरेगा। उसने तुरन्त अपने विश्वस्त सेवकों को वुलवाया और उद्यान में भाँति-भाँति के हजारों अस्त्र-शस्त्र गढ़वा दिये। इन सवसे वेखवर श्रीसंघ नगर के वाहर उद्यान में ही ठहर गया।

'श्रीसंघ उद्यान में विराजमान है' यह समाचार सम्पूर्ण नगर में फैल गया। नगर-निवासियों के झुण्ड के झुण्ड वहाँ आने लगे। राजा दण्डक भी सपरिवार आया। आचार्यश्री की कल्याणकारी देशना सुनकर सभी हर्षित हुए। इस अवसर पर पुरन्दरयशा ने रत्नकम्बल के तन्तुओं से निर्मित्त एक रजोहरण आचार्य देव को भेंट किया।

सभी लोग हर्षित मन नगर को लौट आये।

× × ×

—महाराज ! एक विशेष बात कहनी है। —पालक ने राजा दण्डक से एकान्त में जाकर कहा।

—कहो मन्त्री ! क्या बात है ? —राजा दण्डक ने उत्तर दिया।

—राजन् ! बात बिल्कुल सत्य है किन्तु आपको विश्वास नहीं होगा।

—अवश्य होगा, मन्त्रिवर ! सत्य पर कौन विश्वास नहीं करेगा। तुम निस्संकोच कहो।

—स्कन्दक वास्तविक श्रमण नहीं है। यह बगुला-भगत है। इसके साथी साधु न होकर योद्धा हैं जो वेश बदलकर यहाँ आये हैं।

—क्या ? —चीख सा पड़ा दण्डक।

—और भी सुनिये नरेश ! इनका इरादा आपको मारकर राज्य हड़पने का है।

—तुम्हारा कथन मिथ्या है, मन्त्री ! —दण्डक के नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे।

—मेरा एक-एक शब्द सत्य है। —पालक के शब्दों में दृढ़तापूर्ण विश्वास था।

—मैं नहीं मान सकता।

इस असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया पालक जैसे निकृष्टतम दुर्बुद्धि ने।

दुष्टबुद्धि ने साधुओं को घोरतम पीड़ा देने के लिए एक नई विधि का आविष्कार किया। एक यन्त्र बनवाया जिसमें मनुष्य पीले जा सकें।

यन्त्र उद्यान में लगा दिया गया। पालक के क्रूर सेवक एक श्रमण को उठाते और यन्त्र में डाल देते। मुनियों के हाड़-मांस पिस रहे थे। लहू उद्यान में बह रहा था। काल भी काँप जाय ऐसा भयानक और वीभत्स दृश्य। किन्तु दृढ़ संयमी जैन श्रमण शुद्ध आत्म-ध्यान में लीन।

एक के बाद एक ४९९ मुनि पिस गये जब पाँचसौवें अन्तिम बालमुनि को सेवक उठाने लगे तो आचार्य स्कन्दक ने कहा—

—पालक ! इस मुनि से पहले मुझे पीस डाल !

—क्यों ?

—यह बाल मुनि है, नव-प्रव्रजित !

क्रूर अट्टहास कर उठा पालक। बोला—

—ओह ! इसके प्रति मोह है तुम्हें ! तुम्हें पीड़ा हो यही तो मैं चाहता हूँ।

और उसने हठपूर्वक बालमुनि को ही पिसवा डाला। क्रूरता और शान्ति का अद्भुत दृश्य एक ही स्थान पर। मुनि परमात्म भाव का साधन कर सुख के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हो रहे थे और पालक घोर पाप का बन्ध करके निकृष्टतम दुर्गति की ओर अग्रसर।

ऐसे कठोरतम उपसर्गों को जैनश्रमण ही शान्तिपूर्वक सहन करके पंचम गति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

महासत्वशाली ५०० मुनि तो कालधर्म प्राप्त कर गये किन्तु

अन्तिम दृश्य स्कन्दक न देख सके। कषाय के ज्वार में उन्होंने निदान किया—'इस तपस्या के फलस्वरूप मुझमें इतनी शक्ति उत्पन्न हो कि मैं इस पालक और दण्डक का संहार कर सकूँ।'

क्रूरतम अट्टहासों के मध्य आचार्य स्कन्दक भी यन्त्र में पीस डाले गये। कालाग्नि के समान वे अग्निकायिक देव बने।

पालक अट्टहास करता हुआ अपने घर लौट आया। आज वह स्वयं को सफल मनोरथ समझ रहा था।

उद्यान में मांस आदि के कारण अनेक पक्षी मँडराने लगे। एक पक्षी आचार्य स्कन्दक का रक्त से लिप्त रजोहरण ले उड़ा। रक्त से भरा हुआ होने के कारण रजोहरण भारी हो गया था। पक्षी उसका बोझ अधिक दूर तक न सँभाल सका। वह उसके पंजों से छूटा और रानी पुरन्दरयशा के आगे आ गिरा।

रक्त से आप्लावित रजोहरण देखकर पुरन्दरयशा पहले तो विस्मित रह गई। ध्यानपूर्वक देखा—'यह तो वही रजोहरण है जो उसने स्वयं अपने महर्षि भाई स्कन्दक को दिया था।'

रानी ने अपनी दासियों द्वारा सम्पूर्ण घटना का पता लगवाया तो मालूम हुआ कि यह सब षड्यन्त्र दुष्टवुद्धि पालक का है। रानी को अपने पति पर वहुत क्रोध आया। उसने राजा को भी दोपी माना।

वह विचार करने लगी—

'ऐसे अविवेकी राजा से और क्या आशा की जा सकती है। जो स्वामी अपने सेवकों के हाथ में खेल जाय। अपने विवेक का प्रयोग न करे। उसके जीवित रहने से क्या लाभ ? उसे तो संसार से उठ ही जाना चाहिए।'

पुरन्दरयशा ज्यों-ज्यों इस दारुण घटना पर विचार करती उसे

—मेरे पास प्रमाण है ?

—क्या प्रमाण हैं तुम्हारे पास ? —राजा ने उत्तेजित होकर पूछा ।

—प्रत्येक साधु सशस्त्र योद्धा है ।

—झूठ ! यह मिथ्या दोषारोपण है। जैन श्रमण कोई अस्त्र नहीं रखते ।

—किन्तु स्कन्दक के पास शस्त्रों का भण्डार है ।

—मन्त्री ! तुम अपनी हठ किये जा रहे हो। जानते हो मिथ्या-दोषारोषण का क्या परिणाम भुगतना पड़ेगा । —दण्डक ने समझाने की चेष्टा की ।

पालक ने दृढ़तापूर्वक कहा—

—महाराज ! मैंने आपका नमक खाया है। आपका अहित कैसे देखूँ ? दण्ड की मुझे चिन्ता नहीं है । अधिक से अधिक आप प्राणदण्ड ही देंगे । आपके न रहने पर तो मुझे प्राणदण्ड से भी ज्यादा पीड़ा होगी ।

—क्या तुम्हें विश्वास है कि आचार्यश्री के पास शस्त्रों का भण्डार है । —राजा दण्डक कुछ नरम पड़ा ।

—हाँ महाराज ! पूर्ण विश्वास ।

—दिखाई तो देते नहीं, उनके अस्त्र-शस्त्र ।

—उद्यान में गाढ़ दिये हैं जब आवश्यकता होगी, निकाल लेंगे ।

राजा दण्डक को पालक के शब्दों पर अब भी विश्वास नहीं हो रहा था । आचार्यश्री के प्रति उसके हृदय में भक्ति थी । उसका मन मान ही नहीं रहा था कि परम अहिंसक जैन श्रमण कभी ऐसा कर सकते हैं । किन्तु पालक की दृढ़ता उसके चित्त को चंचल बना रही थी । वह गम्भीर विचार में डूब गया ।

राजा को मौन और विचारमग्न देखकर पालक ने कहा—

—उद्यान खुदवा लिया जाय, महाराज ! यदि मेरी बात मिथ्या प्रमाणित हो तो मैं प्राणदण्ड पाने के लिए प्रस्तुत हूँ।

अस्थिर चित्त से राजा ने उद्यान खुदवाने की आज्ञा देते हुए कहा—

—मेरे समक्ष ही उद्यान की खुदाई होगी।

प्रफुल्लित पालक ने कहा—

—मेरे अहोभाग्य ! महाराज स्वयं अपनी आँखों से देखकर सत्य का निर्णय करेंगे।

राजा दण्डक की उपस्थिति में उद्यान की भूमि खुदवाई गई तो वहाँ शस्त्रों का भण्डार निकल आया। चेहरा लटक गया नगर-नरेश का। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि यह अनहोनी घटित हो जायगी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। अस्त्र-शस्त्र उसे भयंकर विषधरों के समान दिखाई देने लगे। पीड़ित होकर स्तम्भित रह गया दण्डक—मानो हजारों विच्छुओं ने एक साथ डंक मार दिया हो।

पालक के मुख पर व्यंगपूर्ण मुस्कान खेल गई। उसने पूछा—

—अब क्या आज्ञा है, महाराज ? सेवक का सिर प्रस्तुत है।

—और लज्जित न करो, मन्त्री !

—क्या व्यवहार होना चाहिए इन ढोंगियों के साथ ?

—मुझसे कुछ मत पूछो। जो तुम्हारी इच्छा हो, करो।

राजा ने पालक से कहा और खेद-खिन्न होकर अपने महल में जा छिपा। उसका चित्त बहुत दुःखी था। ऐसी अनहोनी उसके नेत्रों ने देखी जो पहले कभी नहीं हुई थी।

श्रमण और शस्त्र त्रिकाल में भी असम्भव है यह साथ ! किन्तु

राजा दण्डक ही दोषी दिखाई देता। पति पर उसका क्रोध सीमा को पार करने लगा।

शासन देवी ने सहायता की उसकी और उसे वहाँ से उठाकर भगवान मुनिसुव्रत के समवसरण में पहुँचा दिया। पुरन्दरयशा की कषायें शान्त हो गईं और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

अग्निकुमार देवों में उत्पन्न आचार्य स्कन्दक ने अपने पूर्वभव का वृत्तान्त अवधिज्ञान से जाना तो दावानल की भाँति भड़क उठे। उनकी कोपाग्नि में पालक और दण्डक सहित सम्पूर्ण नगर-निवासी जलकर खाक हो गये।

तभी से इस स्थान का नाम दण्डक वन पड़ गया और यह समस्त भरतक्षेत्र में सर्वाधिक भयंकर और संकटास्पद स्थान माना जाने लगा।

दण्डक राजा अनेक पाप योनियों में भटकता हुआ यह गन्ध पक्षी बना।

मुनिश्री ने राम को सम्बोधित किया—

—हे राम! इस गीध को हमें देखकर जातिस्मरणज्ञान हुआ और इसी कारण इसकी चित्त वृत्ति शान्त हो गई है।

श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता सहित इस दारुण दुःखद घटना को सुनकर बहुत खेदखिन्न हुए। पक्षी भी अपने पापों का पश्चात्ताप करता हुआ बार-बार मुनि चरणों में लोटने लगा।

मुनिश्री ने कल्याणकारी धर्मदेशना दी जिससे सभी सन्तुष्ट हुए।

गीध आँखें खोले उनकी ओर टुकुर-टुकुर देख रहा था। वह मानवों की सी भाषा बोलने में असमर्थ था। हृदय के भाव आँखों द्वारा ही व्यक्त करने लगा।

रामचन्द्र गीध की इस अद्भुत चेष्टा को ध्यानपूर्वक देख रहे थे। उन्होंने पूछा—

—गुरुदेव ! अब इस पक्षी की और क्या इच्छा है ?

—राम ! यह जटायु पक्षी सम्यक्त्वी हो चुका है और व्रत ग्रहण करने की इच्छा कर रहा है।

यह कहकर मुनिदेव ने उसे जीवघात, मांसाहार और रात्रि भोजन का प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) कराया।

जटायु ने मुनिराज के वचन स्वीकार किये और और व्रत ले लिए।

मुनि ने राम से कहा—

—भद्र ! अब जटायु तुम्हारा साधर्मी बन्धु हो गया है। इसे साथ रखना ताकि यह दृढ़तापूर्वक अपने व्रतों का पालन कर सके।

श्रद्धावनत श्रीराम ने उत्तर दिया—

—पूज्य ! आज से जटायु मेरा छोटा भाई ही है।

दोनों मुनि आकाश में उड़ गये। चारों (राम-लक्ष्मण-सीता और जटायु) उनकी ओर तब तक श्रद्धाभक्तिपूर्वक देखते रहे जब तक कि दोनों मुनि आँखों से ओझल न हो गये।

राम अपने अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के सहित जटायु को साथ लिए हुए दिव्य रथ में बैठकर उस भयानक दण्डकारण्य में भटकने लगे।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

❋❋

राम-कथा

३ : लंका-विजय

: १ :

सूर्यहास खड्ग

लक्ष्मण वन के शांत नीरव वातावरण में घूम रहे थे। सामने वांसों का एक वीहड़ वन था। रात जैसा अँधेरा छाया था और वाँसों की सघनता के वीच कौन क्या कर रहा है कुछ भी पता नहीं चलता था। लक्ष्मण उस वाँस वन के भीतर घुसे तो सहसा ही एक अजीव चमक से उनकी आँखें चुंधिया गईं। देखा तो सूर्य की भाँति चमचमाता एक दिव्य खड्ग आकाश में लटक रहा था। उन्हें उत्सुकता हुई। समीप जाकर हाथ वढ़ाया तो खड्ग उनके हाथ में आ गया। मुग्ध हुए लक्ष्मण कुछ देर तक खड्ग को निहारते रहे।

शस्त्र हाथ में आते ही क्षत्रिय की उत्सुकता होती है, उसे प्रयोग करने की। लक्ष्मण ने भी सोचा—'खड्ग तो चमकदार है, पर देखूँ इसकी धार कैसी है?'

वे किसी निर्जीव वस्तु की खोज में इधर-उधर नजरें दौड़ाने लगे। दण्डकवन घना जंगल था। सभी ओर घने और हरे वृक्ष खड़े थे। कैसे घात करते एकेन्द्रिय वनस्पतिकाय के जीव का निष्प्रयोजन? व्यर्थ की हिंसा चाहे वह एकेन्द्रिय जीव की ही क्यों न हो, जैन श्रावक की रुचि के प्रतिकूल है।

लक्ष्मण की नजरें खोज रही थीं किसी निर्जीव वस्तु को। खड्ग की धार अजमाने की इच्छा वलवती होती जा रही थी। भुजाएँ

फड़क रहीं थीं एक प्रहार करने के लिए। आखिर सामने दिखाई दे ही गया—एक सूखे बाँसों का जाल। लक्ष्मण ने उसे निर्जीव जान-कर एक प्रहार कर ही तो दिया।

खच् की ध्वनि हुई। बाँस एक ओर गिर गये और लक्ष्मण के पैरों के पास आ गिरा एक युवक का कटा हुआ शिर खून से लथपथ। अभी तो कटा था उनकी तलवार से। ताजा रक्त बहकर जंगल की भूमि को लाल कर रहा था। तलवार पर दृष्टि डाली तो वह भी खून से सनी। सामने दृष्टि गई तो बिना शिर का एक धड़ लटक रहा था वटवृक्ष की डाली से।

अवाक् से खड़े रह गये वे। सोचने लगे—'कहाँ तो मैं एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा नहीं करना चाहता था और कहाँ यह पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव की हिंसा हो गई। अरे! बहुत बुरा किया मैंने!' विचार-धारा पलटी—'अनजाने में हुआ है, यह पाप।' पुनः विचार प्रवाह उठा—'नहीं प्रमाद था मेरा। मुझे भली-भाँति देख-भालकर खड्ग प्रयोग करना चाहिए था।'

इस प्रकार मन में पश्चात्ताप करते हुए उदास और चिन्तित से लक्ष्मण अग्रज राम के पास पहुँचे। उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर खड्ग दिखाया।

श्रीराम खड्ग को देखकर बोले—

—अनुज! तुमने यह क्या किया? यह सूर्यहास खड्ग है। इसकी साधना करने वाला कोई उत्तम साधक था जो तुम्हारे हाथ से अना-यास ही मारा गया। तुमने उसका घात करके अनर्थ कर डाला और कोई अनचाही बला मोल ले ली।

उत्तम साधक तो था ही सूर्यहास खड्ग का साधन करने वाला शंबूक। बारह वर्ष और सात दिन तक वृक्ष की डाली से उलटे मुँह लटक कर तपस्या करना क्या साधारण पुरुष का काम था?

शम्बूक पाताल लंका के शासक खर और उसकी रानी चन्द्रनखा का पुत्र था। माता-पिता ने वहुत समझाया कि इस दिव्य खड्ग की साधना मत करो। किन्तु वह माना नहीं और दण्डकारण्य जैसे भयानक वन में तपस्यारत हो गया।

बारह वर्ष व्यतीत होने के चार दिन वाद सूर्यहास खड्ग प्रकट हुआ उसकी कठोर तपस्या के फलस्वरूप और लग गया हाथ लक्ष्मण के।

लक्ष्मण को प्राप्त हुआ दिव्य खड्ग और शम्बूक को उसी खड्ग से मिली मृत्यु[1]—यह था भाग्य का विचित्र खेल। परिश्रम किसी का और फल मिला किसी और को।

---

१ शम्बूक वध श्रीराम के हाथों हुआ था। यह शूर्पणखा का पुत्र नहीं वरन् एक शूद्र तपस्वी था। श्रीराम के राज्याभिषेक और शत्रुघ्न के लवणासुर वध के वाद की घटना है। घटना इस प्रकार हुई—

एक वृद्ध ब्राह्मण अपने मृत पुत्र को लेकर राजद्वार पर आया और कहने लगा—'मैंने तो कोई पाप नहीं किया; परन्तु राजा राम के पाप के कारण ही मेरे पुत्र की मृत्यु हुई है।'

यह सुनकर राम ने महर्षियों को बुलवाया और ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्यु का कारण जानना चाहा।

वसिष्ठ, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जावालि, गौतम और नारद सभी महर्षियों ने एक स्वर में वताया—'कि आपके राज्य में कोई शूद्र तपस्या कर रहा है; उसकी साधना में फलस्वरूप इस ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्यु हुई है। क्योंकि सत्ययुग में ब्राह्मण, त्रेता में क्षत्रिय और ब्राह्मण, द्वापर में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को तप की अनुमति है किन्तु शूद्र को कभी नहीं। आप इस अधर्म को नष्ट कराइये। ब्राह्मण-पुत्र जीवित हो जायेगा।

शम्बूक की माता चन्द्रनखा अवधि समाप्त होने की प्रतीक्षा अधीरता से कर रही थी। उसने विचार किया कि—'आज साधना की अवधि समाप्त हो गई। वारह वर्ष सात दिन दिन पूरे हुए। मेरे पुत्र को खड्ग की प्राप्ति हो चुकी होगी। मैं दिव्य खड्ग की पूजा हेतु सामग्री तथा पुत्र के लिए अन्नपान आदि लेकर जाऊँ।'

सम्पूर्ण सामग्री लेकर चन्द्रनखा मुदित-मन पुत्र के पास आई। पुत्र की दशा देखकर माँ का हृदय चीत्कार कर उठा। पुत्र मिला किन्तु मृत--शिर धूल में पड़ा हुआ और धड़ वृक्ष से लटका हुआ।

चन्द्रनखा के हाथ से सामग्री छूट गई। वह 'हा पुत्र ! हा पुत्र' कहकर छाती पीट कर रुदन करने लगी। किन्तु कौन था उस वन में जो उसकी पुकार सुनता, उसे धीरज बँधाता ? आखिर रो-धो कर स्वयं ही चुप हो गई।

राम पुष्पक विमान में बैठकर उत्तर, पूर्व, पश्चिम तीनों दिशाओं में देखते हुए दक्षिण की ओर चले तो वहाँ शैवाल पर्वत के उत्तर की ओर एक सरोवर के किनारे नीचे की ओर मुँह किये एक तपस्वी को देखा। राम ने उससे पूछा—तुम कौन हो ? किस जाति के हो ? और यह कठोर तपस्या क्यों कर रहे हो ?

तपस्वी ने उत्तर दिया—मैं स्वर्ग प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहा हूँ, नाम मेरा शम्बूक है और मैं जाति से शूद्र····।

शूद्र शब्द सुनते ही राम ने तलवार से उसका सिर काट दिया। उसी समय ब्राह्मण-पुत्र जीवित हो उठा और अग्नि आदि देवताओं ने राम पर पुष्प वृष्टि की। [वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड]

तुलसी कृत में शूद्र तपस्वी का नाम नहीं दिया है। घटना यही है और राम ने वाण से उसका शिरच्छेद किया।

[तुलसीकृत रामचरितमानस, लवकुश काण्ड, दोहा ८]

शोक का वेग कम हुआ तो विवेक जागा। सोचने लगी—'आखिर इस निर्जन वन में मेरे पुत्र का हत्यारा कौन आ गया? कोई देव, विद्याधर या मानव? हाँ यदि मानव होगा तो पैरों के निशान अवश्य होंगे।' चन्द्रनखा ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा तो एक मानव से पग-चिह्न उसे स्पष्ट दिखाई दे गये। पुत्र की हत्या का बदला लेने हेतु उन्हीं पग-चिह्नों का अनुसरण करती हुई चलने लगी।

दूर से ही देखा तो दो अतिसुन्दर पुरुष बैठे थे। चन्द्रनखा पुत्र शोक भूलकर काम विह्वल हो गई। उसने नाग कन्या का-सा सुन्दर रूप बनाया और काँपती हुई दोनों भाइयों के समक्ष पहुँची।

राम ने देखा एक सुन्दरी भय से व्याकुल उनके समक्ष आ खड़ी हुई है तो उन्होंने पूछा—

—भद्रे! आप कौन हैं और इस भयानक अटवी में कैसे आ फँसी?

चन्द्रनखा कपट का सहारा लेकर बोली—

—मैं अवन्ती की राजकुमारी हूँ। रात्रि को महल की छत पर सो रही थी कि कोई विद्याधर मुझे उठा लाया। इस वन के ऊपर आकाश मार्ग में कोई दूसरा विद्याधर जा रहा था। मुझे रोती चिल्लाती देखकर नये विद्याधर ने कहा—'अरे दुष्ट तू इस सुन्दरी को कहाँ ले जा रहा है? इसे छोड़ दे।' पहला विद्याधर मुझे छोड़ना नहीं चाहता था और दूसरा मेरी रक्षा को सन्नद्ध। उन दोनों में युद्ध की नौबत आ गई। मुझे उस विद्याधर ने इस वन में छोड़ा और दोनों लड़ने लगे। युद्ध करते-करते दोनों विद्याधर मर गये और मैं अकेली रह गई।

क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे इस वन से निकलूँ यही सोचती हुई भटक रही थी कि अचानक आप लोग दिखाई दे गये। अब आप मेरे स्वामी बनकर मेरी रक्षा कीजिए।

—हम तुम्हारी रक्षा तो कर सकते हैं, किन्तु स्वामी बनकर नहीं—राम ने तुरन्त ही उत्तर दिया।

—क्यों मुझसे विवाह करने में क्या दोष है ? मैं भी कुलीन हूँ और आप भी राज-पुत्र !—चन्द्रनखा के शब्दों से उसकी इच्छा स्पष्ट हो गई।

दोनों भाइयों के हृदय में विचार आया—'यह स्त्री कोई मायाविनी है। कुलीन कन्याएँ अनायास ही विवाह-याचना नहीं करती फिरतीं।' किन्तु उसका दिल न दुखे इसलिए मुस्कराकर राम बोले—

—मेरी स्त्री तो साथ है। तुम स्त्री रहित लक्ष्मण के पास जाओ।

चन्द्रनखा ने लक्ष्मण से भी विवाह की प्रार्थना की। धिक्कार है ऐसी कामलिप्सा को जिसके कारण अपने पुत्र के हत्यारे के सम्मुख भी दीन याचना करनी पड़े। लक्ष्मणजी ने उसे उत्तर दिया—

—सुन्दरी ! पहले तुमने मेरे पूज्य बन्धु से कामयाचना की। अतः तुम मेरे लिए पूज्य हो। मैं तुम्हारे साथ विवाह करने में असमर्थ हूँ।

चन्द्रनखा ने कई बार दोनों भाइयों से आग्रह किया किन्तु वे टस से मस नहीं हुए। उसकी कामयाचना[1] ठुकरा दी गई। कामाविष्ट नारी कोपाविष्ट हो गई। चन्द्रनखा क्रोध से जलने लगी। वहाँ से चली तो

---

१ पुत्र शोक से विह्वल चन्द्रनखा की राम-लक्ष्मण से कामयाचना अटपटी सी मालूम पड़ती है। अधिकांश व्यक्तियों को इसमें उस नारी की कामलोलुपता ही दिखाई देती है जबकि इस तथ्य (अर्थात् कामुकता) की पुष्टि उसके विगत और आगामी जीवन से नहीं होती। चन्द्रनखा कभी कामुक नारी नहीं रही। ऐसा ही अचानक परिवर्तन एक व्यक्ति में फ्रांस में हुआ था। नर-नारी, मार्च ७२ में छपी घटना इस प्रकार है—

एक व्यक्ति अपने युवा पुत्र का अन्तिम संस्कार करके लौट रहा था। उसके साथी आगे निकल गये थे और वह शोकविह्वल पीछे रह

सीधी पाताल लंका पहुँची। अपने पति खर[1] को पुत्र वध का सम्पूर्ण शोक समाचार सुनाकर कहा—

गया। ट्रैफिक गाइड (नाके पर खड़ा रहने वाला सिपाही) ने देखा एक अतिशय खेदखिन्न व्यक्ति कब्रिस्तान (ईसाइयों के शव गाड़ने का स्थान) के फाटक से वाहर निकल रहा है। आँखें वुझी-वुझी, चेहरा निस्तेज, मानो उसका जीवन-रस ही सूख गया हो। तभी एक स्त्री सामने से आती हुई दिखाई दी।

इस पुरुष की आँखों में अनायास ही चमक आ गई। उसने दौड़कर महिला को पकड़ा और फुटपाथ पर ही उसके साथ वलात्कार कर डाला।

घटना चौंका देने वाली थी। पुत्र-शोक तीव्र कामुकता में कैसे वदल गया। मनोवैज्ञानिकों उस व्यक्ति पर परीक्षण करके बताया कि यह व्यक्ति पुत्रशोक से इतना विह्वल हो चुका था कि इसका विवेक अन्तर्मन की गहराइयों में डूब गया। एक स्त्री के सामने आते ही इसकी नैसर्गिक काम प्रवृत्ति भड़क उठी और उसी आवेग में इसने यह कुकृत्य कर डाला।

उस व्यक्ति ने भी न्यायाधीश के समक्ष स्वीकार किया—मैं कुछ समझ ही नहीं सका कि यह सव कैसे हुआ, पर इतना अवश्य हुआ कि इस कृत्य के वाद मेरा मानसिक तनाव समाप्त हो गया और मुझे शान्ति मिली।

उसके विगत जीवन का पता लगाया गया तो वह व्यक्ति सच्चरित्र निकला।

ऐसा ही मामला चन्द्रनखा का था। —सम्पादक

1 उन्होंने पंचवटी में आकर आश्रम वनाया। शूर्पणखा (चन्द्रनखा का विश्व प्रसिद्ध और वैदिक धर्मोक्त नाम) अकारण ही वहाँ आई और दोनों भाइयों से काम-याचना करने लगी। राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिए। वह रोती हुई अपने भाई खर के पास पहुँची।

[वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड]

—दण्डकारण्य में कहीं से राम-लक्ष्मण नाम के दो युवक एक स्त्री सीता के साथ आए हैं। उन्होंने ही मेरे पुत्र को मारा है। तुम उनको मारकर पुत्रवध का वदला लो।

पुत्र की हत्या ने पिता की क्रोधाग्नि को भड़का दिया वह अपने साथ चौदह हजार विद्याधरों को लेकर राम-लक्ष्मण को मारने चल दिया।

खर को शूर्पणखा का भाई लिखा है। उसका विवाह कालिकेय जाति के दानव राजा विद्युज्जिह्व से हुआ था। वरुण से वह युद्ध करने के पहले ही रावण ने अपनी तलवार से उसके सौ टुकड़े कर डाले क्योंकि वह युद्ध में रावण को मार डालना चाहता था। इस प्रकार राम के पास जाने से वहुत पहले ही शूर्पणखा विधवा हो गयी थी।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

विशेष—(क)उत्तर पुराण में शंबूक वध का कोई उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार चन्द्रनखा का भी कोई उल्लेख नहीं है। साथ ही खर-दूषण-त्रिशिर आदि भी वहाँ नहीं दिखलाये गये हैं। सूपर्नखा नाम की दूती का अवश्य लल्लेख है। वह सीताजी के पास भी जाती है। संक्षिप्त रूप में घटना निम्न प्रकार है—

एक वार नारदजी रावण की सभा में जा पहुँचे और उन्होंने सीता के रूप की वहुत प्रशंसा की। उन्होंने कहा—मिथिला के राजा जनक ने यज्ञ के वहाने दशरथ-पुत्र राम को वुलाया और उसके साथ जानकी का विवाह कर दिया। इस प्रकार तुम्हारा अनादर किया। (पर्व ६८, श्लोक ६७)। वह राम आजकल वनारस में राज्य कर रहा है। (श्लोक ६८) यह सुनकर रावण कामाभिभूत हो गया। (श्लोक १०२)। नारद ने ही आगे कहा—राम इस समय खूव उन्नत हो रहा है। छोटे भाई लक्ष्मण के कारण उसका प्रताप वढ़ गया है। अन्य राजा महाराजाओं ने अपनी कन्या देकर उससे सम्वन्ध जोड़ लिया है। अतः युद्ध करना ठीक नहीं।

(श्लोक १०६-१०९)

पति के जाने के पश्चात भी चन्द्रनखा के मन में लगी आग शान्त न हुई। यद्यपि उसे विश्वास था कि दोनों कुमार खर के हाथों मारे जायेंगे। वह मन में यह समझ रही थी कि 'सीता के कारण ही उन

रावण ने अपने मन्त्रियों से सलाह की और सीताहरण का विचार व्यक्त किया। पहले तो सब ने विरोध किया किन्तु जब रावण अपनी हठ पर अड़ गया तो मारीच ने कहा—पहले कोई दूती भेजकर परीक्षा कर लीजिए कि सीता आप में अनुराग रखती भी है, या नहीं। यदि अनुराग रखती होगी तो काम सहज ही बन जायेगा अन्यथा जबरदस्ती करनी पड़ेगी। (श्लोक १११-१२३)

रावण ने दूती सूर्पणखा को अपना अभिप्राय समझाकर भेज दिया। वह दूती शीघ्रता से सीता के पास जा पहुँची। (श्लोक १२४-२५)

उस समय राम-लक्ष्मण अपने अन्तःपुर सहित चित्रकूट वन में वन-क्रीड़ा कर रहे थे। विश्रान्ति हेतु राम-लक्ष्मण कुछ दूर जा बैठे। उसी समय दूती सूर्पणखा वहाँ आई और परावर्तिनी विद्या (रूप बदलने वाली विद्या) से बुढ़िया का रूप धारण करके सीताजी के पास जा पहुँची।

अन्तःपुर की रानियों ने उससे परिचय पूछा तो उसने बताया कि मैं इस उद्यान की रक्षा करने वाली माता हूँ और यहीं रहती हूँ।

बातों के दौरान ही सीता ने कह दिया कि—स्त्री जन्म में पतिव्रत और शीलव्रत पालन करने से बड़ा कोई धर्म नहीं है। पति चाहे कैसा भी हो, स्त्री को उसमें अनन्य प्रेम रखना चाहिए। स्वप्न में भी वह पर-पुरुष की ओर दृष्टिपात न करे।

यह सुनकर सूर्पणखा वहाँ से चली आई। उसे विश्वास हो गया था कि सीता परम सती है। यही बात उसने आकर रावण को बता दी।

रावण ने उसे फटकार कर भगा दिया। (श्लोक १२६-१६०)

वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

विराध का वध करने के पश्चात श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी दण्डकवन में

दोनों ने मेरी कामयाचना को ठुकराया है। अतः सीता को अवश्य दण्ड मिलना चाहिए। जिस प्रकार मैं अपमानित हुई हूँ उसी प्रकार वह भी अपमानित हो, तिरस्कृत हो, तभी मेरी हृदयज्वाला शान्त होगी।'

चन्द्रनखा नागिन की तरह बल खाने लगी। कुछ सोच-विचार कर उसने एक उपाय खोज ही निकाला—सीता को दुखी करने और अपने पति खर के पक्ष को सुदृढ़ करने का।

वह पाताल लंका से लंका की ओर चल दी।

—त्रिषष्टि शलाका, ७।५

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक ८४-१९०

❊ ❊

स्थित शरभंग ऋषि के आश्रम में आये। वहाँ अनेक ऋषियों की प्रार्थना पर उन्होंने 'राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा' की।

इस पर जानकी ने सुझाया कि हम लोग तपस्वी वेश में हैं तो हमें ऋषियों के धर्म अर्थात अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। अकारण ही किसी के प्रति शत्रुभाव रखना उचित नहीं।

रामचन्द्र ने सीता को यह कहकर चुप कर दिया कि 'मैं अपनी प्रतिज्ञा-पालन के लिए अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मण का भी परित्याग कर सकता हूँ; किन्तु प्रतिज्ञा-भंग करना असम्भव है।

[वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड]

: २ :

सीताहरण

चन्द्रनखा को दुःखी स्थिति में देखकर लंका की सम्पूर्ण राजसभा स्तब्ध रह गई। नाच-रंग सब फीका पड़ गया। क्षुब्ध होकर लंका-पति रावण ने पूछा—

—बहन ! क्या दुःख है ? तुम्हारी यह दयनीय दशा ?

—पुत्र-शोक के कारण।

—क्या हुआ तुम्हारे पुत्र को ?

—लंकेश ! तुम्हारा भान्जा शम्बूक राम-लक्ष्मण के हाथों मारा डाला गया।

रावण स्तम्भित रह गया। उसने कहा—

—बहन ! मुझे पूरी बात स्पष्ट बताओ। कौन हैं यह राम-लक्ष्मण और किस प्रकार मारा गया शम्बूक ? क्या अपराध किया उसने ?

चन्द्रनखा ने बताया—

—दण्डकारण्य में दो युवक राम और लक्ष्मण कहीं से आ गये हैं। उन्होंने मेरे पुत्र शम्बूक को निरपराध ही मार डाला। उसका कोई अपराध नहीं था, भाई !

—शम्बूक क्या कर रहा था, दण्डकारण्य में ?

—तपस्या कर रहा था।

—तपस्वी का शिरच्छेद ? घोर पाप है यह तो।

—हाँ और क्या मैं तुम्हारे पास व्यर्थ ही आई थी। जब मैं स्वयं उनके पास गई तो मुझे भी अपमानित कर दिया उन दोनों ने।

क्रोध भड़क उठा रावण का। लंकेश की बहन का तिरस्कार उसके खून में उबाल आ गया, बोला—

—जिसके नाम से ही तीनों खण्ड काँपते हैं, उसी लंकेश की बहन का अपमान कर दिया उन वनवासियों ने ! बहुत बड़ी सेना है क्या उनके साथ ?

—नहीं ! उन दोनों भाइयों के अतिरिक्त एक स्त्री और है, उनके साथ।

—स्त्री ? —विस्मित होकर पूछा रावण ने।

—हाँ लंकेश अनुपम सुन्दरी है, वह ! मैंने तो ऐसी सुन्दर स्त्री और कहीं नहीं देखी।

—अच्छा ? —आश्चर्य बढ़ता जा रहा था लंकापति का।

चन्द्रनखा ने भाई की काम भावना को भड़काते हुए कहा—

—मेरे विचार से तो उसकी रूप-राशि के समक्ष यह तीन खण्ड का राज्य धूल का एक कण भी नहीं है। ऐसी सुन्दरी तो तुम्हारे महलों में ही शोभित हो सकती है।

रावण विचारमग्न हो गया। चन्द्रनखा ने ही आगे कहा—

—मेरे पति खर चौदह हजार विद्याधरों के साथ अपने पुत्र का बदला चुकाने हेतु उन्हें मारने गये हैं। उन दोनों की मृत्यु तो निश्चित ही समझो और उनके मरते ही वह सुन्दरी अकेली ही रह जायेगी।

लंकापति की आँखों में चमक आ गई। वह तुरन्त उठा और

पुष्पक विमान में बैठकर दण्डकवन जाने को तत्पर हुआ। सौन्दर्य की प्यास उसे मौत के मुँह में धकेल रही थी।

× × ×

विद्याधर खर अपने चौदह हजार सैनिकों को साथ लेकर दण्डक-वन में आया। दूर से ही विद्याधर समूह को देखकर दोनों भाई समझ गये कि उस सुन्दरी द्वारा प्रेरित यह विद्याधर दल युद्ध के लिए कटिवद्ध होकर आया है। राम उठने लगे तो लक्ष्मण ने विनम्रतापूर्वक कहा—

—आर्य ! मेरे होते हुए आप कष्ट क्यों कर रहे हैं ?

श्रीराम अनुज के पराक्रम और वीरता से आश्वस्त थे। वोले—

—लक्ष्मण ! तुम प्रसन्नता से जाओ। मुझे तुम्हारी विजय का पूर्ण विश्वास है, फिर भी यदि कोई संकट आ पड़े तो मुझे बुलाने के लिए सिंहनाद कर देना, तुरन्त आ जाऊँगा।

'जो आज्ञा' कहकर लक्ष्मण चल दिये। राम और सीता वहीं वैठे रह गये।

× × ×

रावण पुष्पक विमान में आरूढ़ वहीं पहुँचा जहाँ राम सीता बैठे थे। राम के तेजस्वी स्वरूप को देखकर रावण भयभीत होकर कुछ दूर पीछे लौट आया। उसने समझ लिया कि राम की उपस्थिति में सीता का हरण तो क्या उसकी ओर देखना भी मृत्यु को निमन्त्रण देना है।

रावण धर्म-संकट में पड़ गया। खाली हाथ वापिस लौटता है तो लंका की राजसभा उसे कायर समझेगी। अपनी वहन की दृष्टि में उसका पराक्रम ही क्या रह जायगा ? और वलधारी राम से सीता को छीनकर ले जाना—यह कल्पना ही व्यर्थ है। उसने विद्यावल का सहारा लिया। स्मरण करते ही अवलोकनी विद्या प्रकट हुई। रावण ने कहा—

—सीताहरण में मेरी सहायता करो।

अवलोकनी विद्या भय से काँप गई। बोली—

—यह मेरी सामर्थ्य से वाहर है। मैं तो क्या देवराज इन्द्र का भी यह साहस नहीं है कि राम की उपस्थिति में सीता को आँख उठाकर भी देख सकें।

—कोई न कोई उपाय तो करना ही पड़ेगा ?—रावण के मुख से निकला।

—हाँ, एक उपाय है।

—वह क्या ?

—जब लक्ष्मण युद्ध के निमित्त गये थे तव राम ने कहा था 'संकट पड़ने पर सिंहनाद कर देना'। यदि लक्ष्मण के स्वर में सिंहनाद कर दिया जाय तो राम वहाँ चले जायेंगे और सीता अकेली रह जायेगी। —देवी ने उपाय वताया।

'जो कहे, सो करे' देवी ने उपाय वताया तो सिंहनाद भी उसे ही करना पड़ा। दूर से आये हुए सिंहनाद से राम-सीता दोनों व्याकुल हो गये। स्वर स्पष्ट ही लक्ष्मण का था। राम विचारने लगे—

—अनुज को पराजित कर दे ऐसा कोई दूसरा वली है नहीं और सिंहनाद स्पष्ट उसी का है। यह क्या माया है ?

राम इन्हीं विचारों में डूव-उतरा रहे थे कि वात्सल्यमयी जानकी बोली—

—नाथ ! वत्स लक्ष्मण संकट में है और आप विलम्व कर रहे हैं। शीघ्र उसकी सहायता कीजिए।

—देवी ! लक्ष्मण को पराजित करदे ऐसा कोई सुभट इस भरतार्द्ध में नहीं।

—लक्ष्मण संकट में हैं और आप उनका वल वखान रहे हैं। तुरन्त जाइए और अनुज की रक्षा करिए।

सीता का प्रेम लक्ष्मण पर पुत्रवत् था। जानकी ने आग्रहपूर्वक राम को वहाँ से भेज ही दिया।

राम के जाते ही सीता अकेली रह गई। वह पुत्रवत् देवर लक्ष्मण और पति की मंगल-कामना करने लगी। अवसर देखकर रावण ने विचारमग्न जानकी को उठाया और चल दिया। सीता उसकी मजबूत पकड़ से छूटने के लिए छटपटाने लगी।[1]

---

1 उत्तर पुराण में सीताहरण के निमित्त मारीच के मणिमय हरिण वनने की घटना का वर्णन है।

दूती सूर्पणखा के वचन सुनकर रावण अपने मन्त्री मारीच को साथ लेकर पुष्पक विमान द्वारा चित्रकूट उद्यान में जा पहुँचा। रावण की आज्ञा से मारीच ने मणिमय हरिण-शावक का रूप धारण किया और सीता के सामने होकर निकला। सीता ने मृग को पकड़ लाने का राम से हठ किया तो राम उसके पीछे चले गये। मायावी हरिण उन्हें वहुत दूर ले गया।

इसी वीच रावण ने पुष्पक विमान को पालकी का रूप दिया और स्वयं राम का रूप रखकर सीता के पास आकर वोला—'हरिण तो मैंने पकड़कर सेवकों को दे दिया है। अव सन्ध्या का समय हो रहा है। इस पालकी में वैठो। नगर की ओर चलें।'

सीता उस पालकी में वैठ गई। रावण उसे लंका में ले आया तव उसने उसके समक्ष अपना असली रूप प्रगट किया।

जानकी इस आकस्मिक विपत्ति से अचेत हो गई। विद्याधारियों के शीतोपचार से सचेत हुई तो उसने अभिग्रह धारण किया 'जव तक रामचन्द्र की कुशल-क्षेम न सुन लूंगी, तव तक न कुछ वोलूंगी और न कुछ खाऊँगी।'

उसी समय रावण की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ।

साधर्मी वन्धु जटायु ने सती पर संकट देखा तो रक्षा के लिए जी-जान से तत्पर हो गया। पक्षी था वेचारा, मनुष्य की भाषा में तो ललकार सकता ही नहीं था किन्तु अपनी चोंच और पंजों के तीक्ष्ण प्रहार से उसने लंकापति को विह्वल कर दिया। उसके वक्षस्थल की खाल ही उधेड़ डाली।

रावण ने देखा कि पक्षी तो पर्वत के समान अड़ गया है। उसके प्रहार साधारण नहीं, वज्र से भी तीखे और भयंकर हैं तो उसने कमर से तलवार निकाली और जटायु पर प्रहार करने लगा।

इधर मायामयी हरिण उड़कर आकाश में चला गया और राम निराश वापिस लौट आये। सीता को वहाँ न देखकर वे अन्य लोगों से पूछने लगे। सवने एक ही उत्तर दिया—'आप ही के साथ तो गई थी सीता पालकी में वैठकर। आपको ही मालूम होगा।'

राम समझ गये कि सीता किसी मायावी के जाल में फँस गई। वे विरह-शोक से व्याकुल होकर अचेत हो गये। (श्लोक १६१-२४६)

यहीं राजा दशरथ के एक दूत द्वारा सीता का पता वतला दिया गया है :

जब राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ शोक-विह्वल वैठे थे उसी समय राजा दशरथ के एक दूत ने आकर कहा—'स्वामी! आपके पिताश्री महाराज दशरथ ने स्वप्न में देखा था कि राहु चन्द्रमा की रानी रोहिणी को लेकर आकाश में चला गया है, और चन्द्रमा अकेला इधर-उधर भटक रहा है। इस स्वप्न का फल पुरोहित ने वताया कि मायावी रावण सीता का हरण कर ले गया है और रामचन्द्र शोक से व्याकुल इधर-उधर भटक रहे हैं।'

दूत अपनी वात समाप्त कर ही पाया कि राजा जनक, भरत, शत्रुघ्न अपनी सेनाएँ लेकर आ गये। लक्ष्मण की भी सेना आ गई। सभी सीता को वापिस लाने का उपाय सोचने लगे। (श्लोक २४७-२६८)

कहाँ निहत्था पक्षी जटायु और कहाँ महावली लंकेश और वह भी सशस्त्र। कुछ क्षणों में ही लहूलुहान होकर भूमि पर गिर पड़ा। रावण ने खड्ग प्रहार से पंख काट दिये थे उसके।

उसकी आँखों के सामने ही रावण सीता को पुष्पक विमान पर बिठाकर ले चला। अपनी विवशता पर आँसू वहाने लगा जटायु।

पुष्पक विमान आकाश में चला जा रहा था और सीता आर्तनाद कर रही थी—'हा नाथ राम! अरे वत्स लक्ष्मण! मुझे वचाओ। भाई भामण्डल! तुम्हारी विद्याएँ कव काम आयेंगी? आज तुम्हारी वहन को छलपूर्वक यह दुष्ट लिए जा रहा है।'

सीता का रुदन आकाश में गूँज रहा था। मार्ग में अर्कजटी के पुत्र रत्नजटी ने सीता का रुदन सुना तो सोचा—'अवश्य ही यह

वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

(१) खर की सेना से भागकर आये हुए राक्षस अकम्पन ने रावण को भड़काया था। (अरण्यकाण्ड)

(२) मारीच समुद्र तट पर एक आश्रम बनाकर वहाँ तपस्या किया करता था। (अरण्यकाण्ड)

(३) मारीच ने कपट मृग का रूप धारण किया। उसके पीछे राम जाते हैं। मृग ने मरते समय 'हा लक्ष्मण' कहा। यह पुकार सुनकर सीता ने कठोर वचनों से प्रहार करके लक्ष्मण को भेज दिया।

नोट—यहाँ लक्ष्मण द्वारा रेखा खींचने का कोई उल्लेख नहीं है।

—सम्पादक

(४) हरण होने से पहले सीता और रावण का परस्पर विवाद दिखाया गया है। (अरण्यकाण्ड)

तुलसीकृत रामचरित मानस में भी इस घटना का उल्लेख इसी प्रकार हुआ है।

राम की पत्नी सीता है जिसको लंका का राजा रावण वलपूर्वक लिए जा रहा है। इस समय मैं अपने स्वामी भामण्डल की वहन की रक्षा करूँ।'

रत्नजटी तलवार खींचकर रावण की ओर वढ़ा और ललकार कर वोला—

—छोड़ दे इस सती को।

—नहीं तो तू क्या कर लेगा ?

—मैं……मैं तुझे मार डालूँगा। जानता नहीं अनेक विद्याओं का स्वामी हूँ। —रत्नजटी ने अपना विद्यावल वखानते हुए कहा।

हो-हो करके हँस पड़ा लंकेश ! व्यंगपूर्वक वोला—

—नाम नहीं सुना मेरा ! जिसके नाम से समस्त दक्षिण भरतार्द्ध काँपता है, सम्पूर्ण मानव और विद्याधर समूह जिसके अधीन हैं, अनेक देव जिसके वश में होकर दासों की भाँति सेवा करते हैं वह त्रिखण्ड विजयी लंकापति रावण हूँ मैं। अब तुम चुपचाप चले जाओ। मेरे मार्ग में मत आओ।

—मार्ग तो मैं तुम्हारा तभी छोड़ूँगा जव तुम सीता को छोड़ दोगे।

रावण वोला—

—देखो विद्याधर ! मुझे व्यर्थ का रक्तपात पसन्द नहीं है। किसी के प्राण लेना और वह भी अकारण मेरी नीति के विरुद्ध है। मैं तुम्हें एक छोटा-सा दण्ड दिये देता हूँ।

यह कहकर महावली लंकेश ने रत्नजटी की सारी विद्याएँ हरण कर लीं। परकटे पक्षी की भाँति रत्नजटी भूमि पर आ गिरा और असमर्थ सा कम्बुगिरि पर रहने लगा।

रावण का विद्यावल देखकर सीता गम्भीर विचार में निमग्न हो गई। लंकेश ने समझा कि सती उसके वल से प्रभावित हो गई है। दर्पोन्नत मुख लेकर वोला—

—तुम क्यों चिन्ता करती हो ? तुम्हें तो पटरानी बनाकर रखूँगा ।

—नहीं चाहिए मुझे पटरानी का पद । मुझे तो तू छोड़ दे । इसी में मैं प्रसन्न हूँ ।

तिरस्कारपूर्ण वचनों से क्रोध तो आया उसे, परन्तु पी गया । मधुर स्वर में बोला—

—सुन्दरी ! मैं दास की तरह तुम्हारी सेवा करूँगा । एक बार तुम मुझे अपना पति स्वीकार तो कर लो ।

—पति तो मेरे श्रीराम हैं । मुझे किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं है । —सीता ने क्रोधित होकर कहा ।

—क्रोध से कोई लाभ नहीं है, सुन्दरी ! मेरी इच्छा तुम्हें स्वीकार करनी ही पड़ेगी ।

—पापी ! तेरी यह दुष्ट इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकेगी ।

रावण सीता को फुसलाता रहा और सीता उसका तिरस्कार करती रही । इसी बीच विमान लंका में पहुँच गया ।

सारण आदि मन्त्री तथा अन्य सामन्तों ने रावण का स्वागत किया ।

सीता ने उसी समय अभिग्रह लिया कि 'जब तक राम-लक्ष्मण का कुशल-समाचार नहीं मिलेगा मैं भोजन नहीं करूँगी ।'

लंकानगरी की पूर्व दिशा में स्थित देवरमण उद्यान में रावण की आज्ञा से सीता पहुँचा दी गई । रक्त अशोक वृक्ष के नीचे त्रिजटा तथा अन्य राक्षस नारियों का पहरा उस पर लगा दिया गया ।

रावण ने हर्षपूर्वक राजमहल में प्रवेश किया ।

—त्रिषष्टि शलाका ७।५

—उत्तर पुराण ६८।१६१-२६८

❋ ❋

: ३ :

पाताल लंका की विजय

जहाँ लक्ष्मण शत्रुओं से रणक्रीड़ा कर रहे थे वहीं राम शीघ्रता पहुँचे। अग्रज को देखते ही लक्ष्मण विस्मित होकर बोले—

—आर्य ! आप यहाँ कैसे ?

—तुम्हीं ने तो कष्टसूचक सिंहनाद करके बुलाया था।

—नहीं तो ! मैंने तो कोई सिंहनाद नहीं किया।

अब विस्मित होने की बारी राम की थी। क्या कहें, कुछ सूझ ही नहीं रहा था।

लक्ष्मण ही पुनः बोले—

—सीताजी अकेली रह गई हैं। आप तुरन्त जाकर उनकी रक्षा कीजिए।

—किन्तु वह सिंहनाद किसने किया था ?

—कोई राक्षसी माया होगी। इसीलिए तो सीताजी के पास आपका जाना बहुत आवश्यक है। जल्दी कीजिए, तात !

राम उल्टे ही पैरों लौट पड़े। आकर देखा तो वहाँ भी सब उलट गया था। सीताजी का कहीं पता नहीं था। जटायु[1] अन्तिम साँसें गिन रहा था।

---

१ जटायु तक पहुँचने में वन के मृगों ने सहायता दी। उनके संकेत पर ही राम-लक्ष्मण दक्षिण दिशा की ओर चले। वहाँ उन्हें युद्ध के चिह्न दिखाई दिये। एक ओर रावण का टूटा हुआ रथ दिखाई पड़ा जो जटायु

जटायु की मृत्यु समीप ही जानकर परोपकारी राम अपना दुःख कुछ समय के लिए भूल गये। उन्होंने परलोक के संबलस्वरूप नवकार मन्त्र उसे सुनाना प्रारम्भ कर दिया। जटायु के प्राण सन्तोष-पूर्वक निकले और महामन्त्र के प्रभाव से वह माहेन्द्र स्वर्गलोक में देव हुआ।

अब श्रीराम को अपना शोक याद आया। वे इधर-उधर चारों ओर सीता की खोज करने लगे। सीता वहाँ होती तो मिलती, वह तो देवरमण उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी आँसू बहा रही थी। राम भी निराश होकर एक वृक्ष के नीचे आ बैठे। उन्हें विश्वास हो गया था कि 'किसी मायावी ने छलपूर्वक सीता का हरण कर लिया है।' वे पश्चात्ताप करने लगे—'हाय मैंने अपनी दुर्बुद्धि से सीता को अकेला वन में छोड़ा और अनुज लक्ष्मण को भी रण में अकेला ही छोड़ दिया। मेरी बुद्धि को न जाने क्या हो गया है।' शोक की अधिकता से रामचन्द्र मूर्च्छित हो गये।

× × ×

अकेले लक्ष्मण खर के चौदह हजार विद्याधरों से युद्ध कर रहे थे। उसी समय खर का छोटा भाई त्रिशिरा उनके सामने आया और रण-कौशल दिखाने लगा। किन्तु लक्ष्मण का एक प्रहार भी न सह सका और धराशायी हो गया।

ने तोड़ दिया था। जटायु भी दूसरी ओर मरणासन्न दशा में पड़ा था। वहीं रावण का सारथि भी मरा पड़ा था। जटायु ने बता दिया कि रावण उसे हर ले गया है।

[वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड]

यहाँ रावण सीताजी को अंक में भरकर उठा ले गया था। पुष्पक विमान में बिठाकर ले जाने का उल्लेख नहीं है।

[वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड]

उसी समय राजा चन्द्रोदर का पुत्र विराध[1] अपनी सम्पूर्ण सेना लेकर आया और लक्ष्मण से बोला—

—महाभुज ! मैं आपके शत्रुओं का शत्रु हूँ। इसीलिए आपकी सहायता करना चाहता हूँ।

लक्ष्मण ने हँस कर कहा—

---

१ (क) यह विराध चन्द्रोदर राजा का वनवासी पुत्र था। जिस समय चन्द्रनखा से गान्धर्व से विवाह कर विद्याधर खर पाताल लंका गया तो वहाँ आदित्यराजा का पुत्र चन्द्रोदर राजा राज्य कर रहा था। चन्द्रोदर को वानरवंशी राजा आदित्यराजा किष्किंधा जाते समय पाताल लंका के सिंहासन पर बिठा गये थे। खर ने चन्द्रोदर को वहाँ से मार भगाया और स्वयं राजा बन बैठा। उसकी गर्भिणी रानी अनुराधा ने वन में ही पुत्र प्रसव किया जिसका नाम विराध पड़ा। इसी कारण विराध खर से शत्रुता रखता था और वह लक्ष्मण की सहायता के लिए आया। (विस्तार के लिए देखिए 'सहस्रांशु की दीक्षा' का पाद टिप्पण।

(ख) वाल्मीकि रामायण में विराध को राम-लक्ष्मण का शत्रु माना गया है। इसकी कथा संक्षेप में निम्न है—

दण्डकारण्य में प्रवेश करने पर राम-लक्ष्मण-जानकी के सामने एक विशालकाय राक्षस आ खड़ा हुआ। उसका नाम विराध था। वह जब नाम के राक्षस और शतह्रदा (माता का नाम) का पुत्र था। उसे ब्रह्माजी से यह वरदान प्राप्त था कि उसकी मृत्यु किसी शस्त्र से न होगी।

राक्षस विराध ने सीताजी को उठा लिया। इस पर राम-लक्ष्मण दोनों ने उसे बाणों से व्यथित कर दिया। उसने सीता को छोड़कर दोनों हाथों से दोनों भाइयों को उठाया और ले जाने लगा। दोनों भाइयों ने बलपूर्वक उसकी दोनों भुजाएँ उखाड़ लीं। तब वह भूमि पर गिर पड़ा। लक्ष्मण उसे जमीन में गाड़ने के लिए गड्ढा खोदने लगे।

—भद्र ! तुम चुपचाप एक ओर बैठकर मेरा रण-कौशल ही देखो। मैं अकेला ही इन सबके लिए काफी हूँ।

—इस खर ने मेरे पिता से पाताल लंका का राज्य छीन लिया था........

—चिन्ता मत करो। पाताल लंका का राज्य तुम्हें ही मिलेगा। यह मेरा वचन है।

युद्धभूमि में बातों के लिए अवकाश नहीं होता। इसलिए लक्ष्मण ने बात समाप्त कर दी।

त्रिशिरा की मृत्यु से कुपित होकर खर लक्ष्मण के सम्मुख आया और कहने लगा—

—अरे पापी ! मेरे निरपराध पुत्र शम्बूक के प्राणहन्ता ! ऐसा घोर अपराध करके भी तू इस दीन विराध की सहायता से स्वयं को रक्षित समझता है ?

—शम्बूक की मृत्यु का तो मुझे भी पश्चात्ताप है लेकिन विद्याधर मैं किसी अन्य की नहीं अपनी ही शक्ति पर विश्वास रखता हूँ।

—देखता हूँ कितना विश्वास है तुझे अपनी शक्ति पर। अभी यमपुरी पहुँचाये देता हूँ। यह कहकर खर लक्ष्मण पर तीक्ष्ण प्रहार करने लगा। लक्ष्मण और खर के बीच घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। तभी आकाशवाणी हुई—

विराध ने विनीत स्वर में कहा—मैं तुम्बरु नाम का गन्धर्व हूँ। रम्भा अप्सरा में आसक्त होने के कारण कुबेर ने मुझे शाप दे दिया था। उसी शाप के कारण मैं राक्षस हो गया। अब आपके प्रताप से मेरी राक्षस योनि से मुक्ति हो गई।

यह कहकर विराध राक्षस ने देह-त्याग कर दिया। [अरण्यकाण्ड]

इस प्रकार यह घटना सीताहरण से पूर्व की है। सम्पादक

'वासुदेव के सम्मुख प्रतिवासुदेव की शक्ति तो कम होती ही है किन्तु खर राक्षस की शक्ति प्रतिवासुदेव से अधिक है।

आकाशवाणी सुनकर लक्ष्मण ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया और क्षुरप्र अस्त्र से खर का मस्तक छिन्न कर डाला।

खर की मृत्यु के पश्चात उसका भाई दूषण युद्ध करने लगा किन्तु वह भी मारा गया।[1]

समस्त शत्रु-सेना का संहार करने के पश्चात लक्ष्मणजी विराध को साथ लेकर राम के पास आये। राम को वृक्ष के नीचे अचेत दशा में पड़ा देखकर वे विह्वल हो गए। शीतोपचार से जब श्रीराम सचेत हुए तो सीताहरण की बात सुनकर लक्ष्मण बोले—

—आर्य किसी मायावी ने ही मेरे स्वर में सिंहनाद किया और अकेली पाकर सीता माता का हरण कर ले गया। मैं उस दुष्ट का हनन करके अवश्य उनको वापिस लाऊँगा। चलें, उनकी खोज करें।

राम ने विराध को देखकर पूछा—

—अनुज ! तुम्हारे साथ यह भद्र युवक कौन है ?

लक्ष्मण ने बताया—

—तात ! इसका पिता पहले पाताल लंका का स्वामी था। खर ने उसे निष्कासित कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। मैंने इसे वचन दिया है कि पाताल लंका के सिंहासन पर इसे बिठाऊँगा।

विराध ने अपने अधीन विद्याधरों को सीताजी की खोज में भेजा किन्तु सभी निराश लौट आये। उन्हें लज्जित देखकर राम ने उनको आश्वस्त किया—

---

१ खर-दूषण का वध श्रीराम ने किया था।

[वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीकृत रामायण, अरण्यकाण्ड]

—सुभटो ! तुमने यथाशक्ति कार्य किया किन्तु सफलता तो भाग्य से मिलती है। असफलता का दुःख मत करो। जब तक भाग्य विपरीत है, कोई कर भी क्या सकता है ?

विनम्रतापूर्वक विराध ने श्रीराम से कहा—

—प्रभु ! तेजस्वी पुरुष कभी निराश नहीं होते। मेरी सेना तैयार है। आप पाताल लंका चलिए। वहीं से सीताजी की खोज करायेंगे।

श्रीराम ने विराध की इच्छा स्वीकार की और पाताल लंका के वाह्य भाग में जा पहुँचे। खर राक्षस का दूसरा पुत्र सुन्द उनका सामना करने आया।

सुन्द और विराध में युद्ध होने लगा। दोनों वीर जी-जान से लड़ रहे थे किन्तु जय-पराजय का निर्णय नहीं हो पा रहा था।

काफी समय तक निर्णय न हो पाया तो महाभुज लक्ष्मण रण में कूद पड़े। उनके आते ही सुन्द की सेना विह्वल हो गई। उनके तेजस्वी रूप और विकट मार से सुन्द घवड़ा गया।

चन्द्रनखा ने पुत्र की यह दशा देखी तो उससे बोली—

—पुत्र ! अब युद्ध से कोई लाभ नहीं। तुम इनसे जीत नहीं सकोगे।

सुन्द ने ऐतराज किया—

—माँ यह कायरतापूर्ण वचन क्यों बोल रही हो ?

—यह कायरता नहीं, नीति है पुत्र ! जिस महाभुज लक्ष्मण ने अकेले ही चौदह हजार विद्याधरों सहित तुम्हारे पिता खर को धराशायी कर दिया। त्रिशिरा और दूषण जैसे सुभटों को वात की वात में यमपुरी पहुँचा दिया। उस पर विजय पाना हँसी खेल नहीं है।

—तो क्या कायरतापूर्वक युद्ध क्षेत्र छोड़ दिया जाय ?

—हाँ ! इस समय यही उचित है ।

माता की आज्ञानुसार सुन्द वहाँ से चल दिया । साथ ही चन्द्रनखा भी । दोनों ने लंका में जाकर शरण ली ।

सेनापति के पलायन करते ही सेना शान्त हो गई ।

श्रीराम ने लक्ष्मण का वचन पूरा किया । विराध को पाताल लंका के सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया ।[1]

जिस महल में अब तक सुन्द रहता था उसमें विराध निवास करने लगा ।

राम और लक्ष्मण महल के उस भाग में ठहर गये जहाँ खर का निवास था ।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

❋ ❋

१ पाताल लंका विजय के सम्बन्ध में वाल्मीकि तथा तुलसीकृत दोनों रामायण मौन हैं ।

: ४ :

नकली सुग्रीव

—महाराज सुग्रीव तो अभी अन्दर गये हैं, तुम कौन हो मायावी ? —यह कहकर द्वारपालों ने उसे राजमहल में जाने से रोक दिया।

—क्या तुम अपने राजा को भी भूल गये ?

—नहीं, हम तो राजा को खूब जानते हैं।

—तो फिर अन्दर क्यों नहीं जाने देते ?

—इसीलिए कि तुम हमारे राजा नहीं हो।

किष्किंधा नगरी के राजमहल के द्वार पर द्वारपालों और राजा सुग्रीव में विवाद चल रहा था। द्वारपाल उसे प्रवेश नहीं करने दे रहे थे और वह उन पर जोर-जोर से गर्ज रहा था।

'द्वार पर यह शोर कैसा है ?' —कहता हुआ वालि-पुत्र चन्द्ररश्मि बाहर आया। उसे देखते ही आगन्तुक सुग्रीव बोल उठा—

—चन्द्ररश्मि ! मेरे वत्स ! यह क्या मजाक है ? ये द्वारपाल मुझे मायावी समझ रहे हैं। राजमहल में प्रवेश नहीं करने देते।

भ्रमित तो चन्द्ररश्मि भी हो गया था। एक सुग्रीव को तो वह अभी राजमहल में देखकर आया था और दूसरा द्वार पर खड़ा है। यह क्या माया है !

अपना बचाव करते हुए द्वारपाल बोले—

—आप ही कहिए युवराज ! अभी-अभी हमारे राजा अन्दर गये हैं। यह मायावी न जाने कहाँ से आ गया और स्वयं को किष्किंधा नरेश वताता है।

चन्द्ररश्मि ने खूव सोच-विचारकर कहा—

—इसका निर्णय सार्वजनिक रूप से होगा कि असली राजा सुग्रीव कौन सा है ?

युवराज के निर्णय से विस्मित रह गया, सुग्रीव। प्रातः ही तो वह उद्यान-क्रीड़ा हेतु गया था और अभी तो सन्ध्या ही हुई है। लौटकर आया तो कोई दूसरा सुग्रीव ही राजा बना बैठा है। उसका मुख उदास हो गया—धम्म से वहीं बैठ गया वह !

चन्द्ररश्मि ने मधुर स्वर में कहा—

—भद्र ! आप निराश मत होइए। प्रातः सभी के समक्ष बात स्पष्ट हो जायगी कि कौन असली है और कौन नकली ?

नकली सुग्रीव था विद्याधर साहसगति[1]। साहसगति विद्याधर चक्रांक का पुत्र था। तारा को पाने के लिए ही तो उसने प्रतारणी

---

१ वैताढ्यगिरि पर ज्योतिःपुर नगर में विद्याधर ज्वलनशिख राज्य करता था। उसकी श्रीमती रानी से तारा नाम की अति सुन्दरी कन्या हुई। पुत्री के युवा होने पर राजा को उसके विवाह की चिन्ता लगी। चक्रांक विद्याधर के पुत्र साहसगति की दृष्टि तारा पर पड़ी। उसने अपने लिए तारा की माँग की। उसी समय वानरेन्द्र सुग्रीव ने भी उसकी याचना की। राजा किसी को रुष्ट करना नहीं चाहता था और दोनों ही साहसगति तथा सुग्रीव अपनी-अपनी जिद पर अड़े थे। ज्वलनशिख ने अपनी समस्या एक निमित्तज्ञानी के सम्मुख रखी तो उसने वताया—'सुग्रीव अधिक आयु वाला है और साहसगति की मृत्यु उससे पहले ही हो जायगी।' पुत्री का सुख देखते हुए राजा ने तारा का विवाह सुग्रीव

विद्या सिद्ध की थी और अब विद्या सिद्ध होने पर वह सुग्रीव का-सा रूप बनाकर राजमहल में प्रवेश कर गया था।

निराश असली सुग्रीव वहाँ से चला आया। जब युवराज चन्द्ररश्मि ने ही उसे न पहिचाना तो और चारा भी क्या था ?

किन्तु दो सुग्रीवों को देखकर चन्द्ररश्मि के हृदय में भी शंका हो गई। नकली सुग्रीव राजमहल में तो प्रवेश कर गया परन्तु चन्द्ररश्मि ने उसे अन्तःपुर में जाने से रोक दिया। उसने दास-दासियों और रक्षकों को स्पष्ट आदेश दिया—'जब तक असली-नकली का निर्णय न हो जाय, किसी भी सुग्रीव को अन्तःपुर में मत जाने दो।'

युवराज के आदेश का पालन हुआ और नकली सुग्रीव की इच्छा मन की मन में ही रह गई। राजमहल में छलपूर्वक प्रविष्ट होकर भी वह तारा को न पा सका।

प्रातः चौदह अक्षोहिणी सेना एकत्र हुई। दोनों सुग्रीव खड़े थे। सभी भ्रमित हो गये। कौन असली है और कौन नकली—निर्णय न हो सका। सुग्रीव के पुत्र अंगद और जयानन्द[1] भी न पहचान सके।

से कर दिया। क्षुभित होकर साहसगति क्षुद्र हिमालय में जाकर विद्या सिद्ध करने लगा। उसने निश्चय कर लिया था 'बल से या छल से मैं तारा को अवश्य प्राप्त करूँगा।'

(त्रिषष्टि शलाका ७।२ —गुजराती अनुवाद पृष्ठ २१-२२)

अब वह प्रतारणी (इच्छानुसार रूप बनाने वाली) विद्या सिद्ध करके किष्किधा आया और असली सुग्रीव की अनुपस्थिति में सुग्रीव का रूप बनाकर राजमहल में प्रवेश कर गया। —सम्पादक

१ रानी तारा से सुग्रीव के अंगद और जयानन्द नाम के दो पराक्रमी पुत्र हुए। (देखिए त्रिषष्टि शलाका ७।२ —गुजराती अनुवाद, पृष्ठ २२)

सभी भ्रमित थे। अतः सेना दो भागों में बँट गई। सात अक्षोहिणी असली सुग्रीव की ओर और सात अक्षोहिणी नकली की तरफ।

भयंकर युद्ध हुआ। सेना कुछ तो कट मरी और कुछ विह्वल होकर युद्ध-क्षेत्र ही छोड़ गई। अन्य सुभटों के अभाव में दोनों वीर मल्लयुद्ध करने लगे। नकली ने असली को मार-पीटकर भगा दिया।

विजयी नकली सुग्रीव पुनः राजमहल में जा पहुँचा और पराजित असली सुग्रीव नगर के बाहर।

असली सुग्रीव ने अपनी सहायता के लिए पवनपुत्र हनुमान को बुलाया। पवनपुत्र के समक्ष दोनों में पुनः मल्ल युद्ध हुआ परन्तु हनुमान भी असली-नकली का भेद न कर सका और तटस्थ दर्शक की भाँति खड़ा रहा। अबकी वार तो नकली ने असली को रुई की तरह धुनक दिया। प्राण बचाकर भागा असली सुग्रीव तो सीधा नगर से बाहर आकर ही रुका। उसका साहस जवाब दे गया था।

अंजनीसुत हनुमान भी निरुपाय होकर चले गये। सुग्रीव निराशा-नद में डूब गया।

वह विचार करने लगा—'ऐसी कठिन परिस्थिति में किसकी सहायता लूँ? रावण की? नहीं, वह तो परस्त्री लंपट है दोनों को मारकर तारा को बलात् ले जायगा। पाताललंकापति खर की? वह तो लक्ष्मण ने मार डाला। तो राम की ही सहायता लूँ? वे भी स्त्री वियोग से दुःखी है और मैं भी! मेरी पीड़ा को जितनी अच्छी तरह वे समझेंगे दूसरा कोई नहीं।'

निर्णय करके उसने अपना दूत पाताल लंका में भेजा। दूत के मुख से सब कुछ सुनकर विराध ने उत्तर दिया—

—दूत ! तुरन्त सुग्रीव राजा को यहाँ भेजो। श्रीराम लक्ष्मण जैसे प्रतापी पुरुषों के दर्शन सुलभ नहीं होते। वे दयालु और परोपकारी हैं। किष्किधानरेश की व्यथा अवश्य दूर कर देंगे।

अभिवादन करके दूत वहाँ से चला और सुग्रीव के पास आकर सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया।

डूबते को तिनके का सहारा ही वहुत होता है जिसमें तो राम-लक्ष्मण जैसे तेजस्वी पुरुषों का आश्रय। दौड़ पड़ा सुग्रीव और सीधा पाताल लंका जा पहुँचा।

विराध उसे राम के पास ले गया और वोला—

—प्रभो ! ये किष्किधानरेश सुग्रीव हैं। इनका कष्ट दूर कीजिए।

राम के चरणों में नत होकर सुग्रीव ने अपनी सम्पूर्ण कथा कह सुनाई और अन्त में वोला—

—यद्यपि आपको मुझ जैसे असमर्थ की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सीताजी की खोज में कोई कसर नहीं छोड़ूँगा।

वरवस ही राम के मुख पर मुस्कराहट आ गई। उन्होंने सुग्रीव को आश्वासन दिया—

—किष्किधानरेश ! हम स्वयं तुम्हारे साथ चलकर इस रहस्य से परदा उठा देंगे। तुम्हें तुम्हारी पत्नी और राज्य वापिस मिल जायेगा।

सुग्रीव के साथ राम किष्किधापुरी की ओर चलने को तत्पर हुए। विराध ने भी साथ चलने का आग्रह किया तो उसे समझा-बुझाकर गहीं रोक दिया।

किष्किधा पहुँचकर राम नगरी के वाहर रुक गये। उनके

निर्देशानुसार असली सुग्रीव ने पुनः ताल ठोकी और असली-नकली में मल्लयुद्ध होने लगा। कुछ देर तक तो राम भी संशय में रहे कि असली कौन है और नकली कौन ? किन्तु उन्हें एक उपाय सूझ गया। उन्होंने वज्रावर्त धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर धनुष्टंकार कर दिया। धनुष्टंकार के तीव्र और तीक्ष्ण घोष को प्रतारणी विद्या न सह सकी और विद्याधर साहसगति के शरीर में से निकलकर भाग गई। विद्याधर अपने असली रूप में आ गया।

विशेष—(१) उत्तर पुराण में भी सुग्रीव राम-लक्ष्मण से भेंट करने जाता है किन्तु पाताल लंका में नहीं, चित्रकूट वन में और अकेला नही वरन् हनुमान के साथ। यहीं वह अपना और हनुमान का परिचय देता है। संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है :—

चित्रकूट वन में राम-लक्ष्मण सीता को वापिस लाने का उपाय सोच ही रहे थे कि उसी समय दो विद्याधर उनसे मिलने आये। राम ने उनका परिचय पूछा तो सुग्रीव कहने लगा—

विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में किलकिल नाम का नगर है। उसमें प्रसिद्ध विद्याधर राजा वलीन्द्र राज्य करता था। उसकी प्रियंगुसुन्दरी रानी से वाली और सुग्रीव दो पुत्र हुए। वाली मेरा बडा भाई है और मेरा नाम सुग्रीव है। पिता ने राज्य त्याग किया तो वाली को राज्य मिला और मुझे युवराज पद। लोभ के वशीभूत होकर बड़े भाई ने मुझे राज्य से वाहर निकाल दिया।

हनुमान का परिचय देते हुए उसने वताया—

यह मेरी वगल में वैठा हुआ विद्याधर भी विद्युत्कांता नगर के राजा प्रभंजन का पुत्र अमितवेग है। इसकी माता अंजना देवी है। यह तीनों प्रकार की विद्याओं का ज्ञाता और परम पराक्रमी है। एक वार विद्याधर कुमारों का समुदाय अपनी-अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करने के लिए विजयार्द्ध पर्वत के शिखर पर गया। वहाँ पर इसने

राम ने विद्याधर से कहा—

—अरे दुष्ट ! विद्याबल से सभी को मोहित करके तू पराई स्त्री को भोगने की इच्छा करता है। अब अपना धनुष सँभाल।

विद्याधर थर-थर काँपने लगा। राम के रूप में उसे साक्षात् मृत्यु दिखाई दे रही थी।

अपना दाहिना पैर तो पर्वत पर ही रखा और बायें पैर से सूर्यमण्डल को छूकर अपना शरीर त्रसरेणु के समान बना लिया। तभी से सब विद्याधरों ने इसका नाम अणुमान रख दिया। यह अनेक शास्त्रों में भी निपुण है।

एक बार मैं सम्मेत शिखर पर वन्दना करने गया। दैवयोग से वहाँ नारद मुनि भी आ गये। उनसे मैंने पूछा कि 'मुझे अपना युवराज पद मिलेगा या नहीं।' उन्होंने बताया कि 'श्री रामचन्द्र की पत्नी सीता का हरण लंकापति रावण कर ले गया है। यदि तुम उनका कार्य करोगे तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो जायगी।'

इसीलिए हम दोनों आपके पास आये हैं।

(२) यहीं राम हनुमान को अपना दूत बनाकर लंका भेज देते हैं।

हनुमान ने लंका में प्रवेश करते ही भ्रमर का रूप धारण कर लिया और उसी रूप में समस्त लंका में घूमकर सीताजी को खोज निकाला। वानर रूप रखकर सीता के सामने प्रगट हुए। राम की मुद्रिका दिखाकर उनका सन्देश दिया और सीता को धैर्य बँधाकर लौट आये।

नोट—यहाँ देवरमण उद्यान को उजाड़ने, अक्षकुमार वध, विभीषण से भेंट, रावण की राजसभा में जाना, इन्द्रजित द्वारा नागपाश में बाँधा जाना, रावण का मुकुट भंग आदि किसी भी घटना का उल्लेख नहीं है। हाँ, रावण-पत्नी मन्दोदरी की सीता से भेंट का वर्णन अवश्य है। मन्दोदरी

धनुष पर वाण चढ़ाया श्रीराम ने और शर-संधान कर दिया। एक ही वाण से साहसगति प्राणहीन होकर गिर पड़ा।

किष्किधा की जनता, रानी तारा और युवराज चन्द्ररश्मि को इस संशयात्मक स्थिति से छुटकारा मिला।

का चरित्र दूसरे ढंग से दिखाया गया है। वह सीता को उसके सतीत्व पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देती है; रावण के साथ भोग करने की नहीं। (विस्तार के लिए देखिए—'सीता पर उपसर्ग'—का पाद टिप्पण ! मंजरिका नाम की दूती ने अवश्य सीता को रावण में अनुरक्त करने का प्रयास किया था।)

हनुमान से सीता का समाचार पाकर राम ने उन्हें सेनापति वनाया और सुग्रीव को युवराज। इसके वाद अंगद आदि की सम्मति से हनुमान को पुनः दूत वनाकर भेजा गया। तव वे विभीषण से मिले। विभीषण उन्हें साथ लेकर रावण की राजसभा में गया, वहाँ वार्तालाप का कुछ भी फल न निकला तो वापिस लौट आये। उन्होंने रामचन्द्रजी को आकर वता दिया कि रावण से युद्ध अनिवार्य है।

राम चातुर्मास (वर्षावास) करने वहीं टिक गये।

(३) इसी समय चित्रकूट वन में किष्किधा नरेश वाली के दूत ने आकर राम से कहा—'यदि आप सीता को वापिस चाहते हैं तो सुग्रीव हनुमान आदि को सेवा में न रखें। हमारे महाराज वाली अकेले ही आपका मनोरथ पूरा कर देंगे।'

किन्तु राम ने उसे प्रत्युत्तर दिया—यदि वाली की यही इच्छा है, तो वह अपने सर्वश्रेष्ठ हाथी महामेघ को मुझे समर्पित करे और मेरा अनुयायी वनकर लंका चले।

इसी पर वात आगे वढ़ गई और लक्ष्मण ने युद्ध में वाली को मार डाला।

(श्लोक ४६४)

सुग्रीव को अपना पद मिल गया।

सुग्रीव ने विनत होकर श्रीराम से अपनी तेरह कन्याएँ ग्रहण करने की प्रार्थना की। किन्तु राम ने उत्तर दिया—

नोट—इस प्रकार उत्तर पुराण के अनुसार वाली का वध लक्ष्मण के द्वारा हुआ। वाली सुग्रीव का सहोदर ही था। नकली सुग्रीव अर्थात् विद्याधर साहसगति का कोई उल्लेख नहीं है। —सम्पादक

वाल्मीकि रामायण के अनुसार सुग्रीव का पता कवन्ध राक्षस वताता है। घटना यह है—

(१) वन में सीता की खोज करते हुए दोनों रघुवंशी वीर पश्चिम दिशा की ओर चले। वहाँ एक राक्षस दिखाई पड़ा। वह कवन्ध (धड़ मात्र) था। उसका मुँह उसके पेट में ही वना हुआ था। उसकी भुजाएँ वहुत लम्बी थीं।

कवन्ध दोनों भाइयों पर झपटा। दोनों ने तलवार से उसकी भुजाएँ काट दीं। तव उसने पूछा—'वीरो! तुम कौन हो और किस अभिप्राय से वन में भटक रहे हो?' लक्ष्मण ने अपना परिचय देकर उसे सीताहरण का समाचार वता दिया।

राक्षस कवन्ध ने अपना परिचय दिया—पहले मैं वड़ा पराक्रमी और वली था। लोगों को भयभीत करने के लिए मैं अपना रूप राक्षस का-सा वना लिया करता था। एक वार मेरे उत्पात से कुपित होकर स्थूलशिरा ऋषि ने मुझे राक्षस रूप में ही रहने का शाप दे दिया। मेरी कुप्रवृत्ति और भी वढ़ गई। मैंने तपस्या करके ब्रह्माजी से दीर्घजीवी होने का वरदान प्राप्त कर लिया। अहंकारवश मैंने देवराज इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। उनके वज्र प्रहार से मेरा सिर और जाँघें मेरे शरीर में ही घुस गईं। तव मेरी प्रार्थना पर उन्होंने मेरा मुँह पेट में ही वना दिया। अव आपने मेरी भुजा काटकर मुझे शाप से मुक्त कर दिया है। जल्दी से मेरा अन्तिम संस्कार कर दीजिए। इससे मुझे मेरा

—वानरराज ! तुम पुनः राजा बन गये। सम्पूर्ण प्रजा को हर्ष हुआ। यही वहुत है।

लुप्त विशेष ज्ञान पुनः प्राप्त हो जायगा और मैं आपको ऐसे मित्र का पता दूँगा जो सीताजी को प्राप्त करने में आपका सहायक होगा।

राम-लक्ष्मण ने उसकी मृत-देह का अग्नि-संस्कार किया। उसी समय दिव्य तेज धारण किये हुए कवन्ध प्रगट हुआ और उसने सुग्रीव का पता वताया। (अरण्यकाण्ड)

(२) यहीं शवरी भीलनी की प्रसिद्ध कथा है।

शवरी पम्पासरोवर के पश्चिम तट पर आश्रम वनाकर रहती थी। उसने दोनों भाइयों का सत्कार किया और दिव्य लोक की प्राप्ति की। (अरण्यकाण्ड)

(३) पम्पासरोवर के समीप ही ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव रहता था। दोनों रघुवंशी भाइयों को भटकते देखकर हनुमानजी (हनुमान यहाँ सुग्रीव के मन्त्री वताये गये हैं) को भेजा। हनुमान के प्रयास से ही राम-सुग्रीव की मित्रता हुई। (किष्किंधाकाण्ड)

(४) वाली और सुग्रीव की शत्रुता की घटना का उल्लेख इस प्रकार किया गया है। सुग्रीव राम को अपनी कथा सुनाता हुआ कहता है—

पिता की मृत्यु के वाद वड़े भाई वाली को राज्यपद और मुझे (सुग्रीव को) युवराज पद मिला। उस समय मायावी नाम का एक वलवान दानव था। एक रात उसने आकर ललकारा। मैं और वड़े भाई वाली वाहर निकले। वड़े भाई को देखकर वह दानव भागा और एक गुफा में घुस गया। हम दोनों भी उनका पीछा करते हुए वहाँ जा पहुँचे। तव वड़े भाई मुझे वाहर विठाकर उस दानव को मारने के लिए गुफा में घुस गये। एक वर्ष से अधिक समय वीत गया। मैं पहरेदार वना गुफा के द्वार पर वैठा रहा। तव एकाएक गुफा में से रक्त की धार निकली।

—आपके स्वागत में मैं क्या करूँ ? —सुग्रीव ने पुनः पूछा ।

—कुछ नहीं वानरेन्द्र ! सीता की खोज के अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए ।

मैंने समझा कि उस दानव ने वाली को मार डाला है । इसलिए गुफा-द्वार पर भारी पत्थर रखकर किष्किधा लौट आया और राज्य करने लगा ।

परन्तु स्थिति विपरीत थी । मृत्यु वाली की नहीं, उस दानव की और उसके समस्त परिवार की हुई थी । कुछ दिनों बाद अग्रज आये । उन्होंने समझा कि राज्यलिप्सा के कारण मैंने कन्दरा का द्वार बन्द करके उन्हें मार डालने की चेष्टा की थी । इसी भ्रान्त धारणा के कारण उन्होंने कुपित होकर मुझे निकाल दिया और मेरी पत्नी रुक्माभा भी छीन ली ।

मैं निराश होकर इस ऋष्यमूक पर्वत पर चला आया क्योंकि मतंग ऋषि के शाप से वाली यहाँ नहीं आ सकता । [किष्किधाकाण्ड]

(५) यहाँ भी वाली के बल का वर्णन करते हुए बताया गया है कि वह पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर प्रतिदिन घूम आता है और थकता नहीं । [किष्किधाकाण्ड]

(६) वाली के पुत्र का नाम अंगद है और सुग्रीव ने अपने सिंहासनारोहण के बाद उसे ही अपना युवराज बनाया । [किष्किधाकाण्ड]

(७) वाली का वध श्रीराम ने छिपकर अपने तीर से किया ।

[किष्किधाकाण्ड]

यहाँ वाली और सुग्रीव का युद्ध दिखाया गया है । साहसगति विद्याधर का कोई उल्लेख नहीं है ।

—सम्पादक

(८) वाली और सुग्रीव दोनों के पिता का नाम ऋक्षराज बताया है ।

[किष्किधाकाण्ड]

श्रीराम तो नगरी के वाहर उद्यान में ही ठहर गये और उनकी आज्ञा लेकर सुग्रीव ने नगर में प्रवेश किया।

अपने राजा के स्वागत में प्रजाजनों ने वड़ा उत्सव किया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

—उत्तर पुराण पर्व ६८ श्लोक २६९-३३९

तथा ३६३-४६५

❋❋

---

(९) सुग्रीव और वाली का युद्ध एक वार हनुमान के समक्ष भी हुआ था किन्तु हनुमान सुग्रीव को वचा न सके। इसका एक अन्य कारण दिया गया है :—

अनेक देवताओं से वरदान पाकर वाल्यावस्था में हनुमान उद्दण्ड हो गये। वे निर्भय होकर मुनियों के आश्रमों में उपद्रव करने लगे।

उस पर भृगु और अङ्गिरावंशीय मुनियों ने कुपित होकर इन्हें शाप दिया—

'अरे वानर ! जिस वल के घमण्ड से तू हम लोगों को पीड़ित करता है उसे भूल जायगा और तव तक भूला रहेगा जव तक कि कोई तुझे तेरे वल का स्मरण नहीं करायेगा।'

इस कारण हनुमानजी अपना वल भूल गये और सुग्रीव की वुद्धि वाली के भय से भ्रमित हो गयी थी इसलिए वह इन्हें इनके वल का स्मरण न करा सका।

आगे जव समुद्र लांघकर लंका जाने और सीता की खोज-खवर लाने का प्रसंग आया तव ऋक्षराज वृद्ध जाम्ववान ने इन्हें इनके वल का स्मरण कराया तव इन्हें अपने वल की स्मृति हो आई और ये सागर-संतरण कर सके। [वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

यही सव वर्णन तुलसी के रामचरितमानस में भी है।

: ५ :

सीता पर उपसर्ग

पाताल लंका से भाग कर चन्द्रनखा अपने पुत्र सुन्द के साथ लंकापुरी में जा पहुँची। अन्त:पुर में भाई रावण के समक्ष वहन चन्द्रनखा फूट-फूटकर रोने लगी। काफी देर तक धैर्य बँधाने के बाद चुप हुई और अपने शोक का कारण वताया—

—भाई ! मेरे पति, पुत्र, दोनों देवरों (त्रिशिरा और दूषण) को चौदह कुलीन सामन्तों सहित लक्ष्मण ने मार गिराया है। उसने पाताल लंका का राज्य विराध को दे दिया और मुझे अपने पुत्र सुन्द के साथ वहाँ से प्राण वचाकर भाग आना पड़ा।

रावण ने आश्वासन दिया—

—वहन ! तुम्हारे पति और पुत्र के हत्यारे को शीघ्र ही मार गिराऊँगा। शोक मत करो।

चन्द्रनखा आश्वस्त हो गई।

× × ×

सीता का आकर्पण रावण के शरीर को दावानल की भाँति जला रहा था। उसे न रात को नींद थी, न दिन को चैन। पटरानी उसकी ऐसा दशा देखकर चिन्तित हो गई। मन्दोदरी से जब न रहा गया तो एक रात को पति के शयन कक्ष में जा पहुँची। देखा—लंकेश

बेचैनी से इधर-उधर करवटें बदल रहा है और दीर्घ निश्वास छोड़ रहा है। विह्वल होकर मन्दोदरी ने पूछा—

—स्वामी ! इस तरह करवटें कब तक बदलते रहेंगे ?

—और कर भी क्या सकता हूँ ? —रावण ने प्रतिप्रश्न कर दिया।

—बहन चन्द्रनखा विधवा हो गई, पाताल लंका का राज्य चला गया और त्रिखण्ड विजयी लंकेश मुँह छिपाये पड़ा है। क्या यह आपको शोभा देता है ?

अभिमानी रावण ऐसे शब्दों को सुनकर भड़क गया होता लेकिन आज वह कामदेव के अधीन हो चुका था। उसकी कोपाग्नि काम-वासना ने बुझा-सी दी थी। निश्वास लेकर बोला—

—रानी ! जब तन-मन अस्वस्थ हो तो समर्थ भी असमर्थ हो जाता है।

—असमर्थ और आप ? —मन्दोदरी के स्वर में विस्मय था।

—असमर्थ ही नहीं, विवश भी।

मन्दोदरी ने आज से पहले दशमुख के मुख से ऐसे दीन शब्द नहीं सुने थे। वह पति का मुख देखती रह गई। बड़ी कठिनाई से बोल सकी—

—नाथ ! क्या है, आपकी विवशता ?

—गुरु की साक्षी में लिया हुआ यह नियम 'अनइच्छती परस्त्री को मैं कभी नहीं भोगूँगा' मेरे हाथों की हथकड़ी और पाँवों की बेड़ी बन गया है। मेरा तन बन्धनों से जैसे जकड़ गया है।

पटरानी मन्दोदरी समझ गई कि पति सीता के विरह में व्याकुल है। 'समझाने का कोई असर होगा नहीं, उपदेश से कामाग्नि और भी भड़केगी।' वह चुपचाप खड़ी रह कर विचार करने लगी। किन्तु

विचार करने से तो काम नहीं चलता। उत्साह दिलाने का प्रयास करती हुई कहने लगी—

—प्राणेश ! इस प्रकार प्राण जलाने से क्या होगा ? मेरी ओर भी तो देखिए। आपके विना मेरा और कौन है ?

लंकेश के मुख से आह निकली। वोला—

—प्रिये ! मुझे जीवित देखना चाहती हो तो तुम्हें वलिदान करना पड़ेगा।

—नारी तो होती ही है वलिदान के लिए। आप आज्ञा दीजिए।

—आज्ञा नहीं, केवल इच्छा है मेरी।

—पति की इच्छा ही पत्नी के लिए आज्ञा है।

—तुम किसी तरह सीता को मेरे अनुकूल कर दो।

वज्रपात सा हुआ मन्दोदरी पर किन्तु पतिभक्ता ने मुख पर खेद की रेख नहीं आने दी। संयत स्वर में वोली—

—पति की जीवन-रक्षा के लिए यह भी करूँगी, लेकिन नाथ ! मुझे तनिक भी आशा नहीं कि वह तिल भर भी डिगेगी।

—मैं जानता हूँ कि वह अत्यन्त दृढ़ है किन्तु सम्भवतः तुम्हारे समझाने का कुछ प्रभाव पड़ जाय।

'जैसी स्वामी की इच्छा'—कहकर मन्दोदरी वहाँ से चल दी।

दूसरे दिन मन्दोदरी देवरमण उद्यान में सीता के पास गई और उससे प्रार्थना की—

—सीते ! मैं लंकापति की पटरानी मन्दोदरी हूँ। लंकेश की समृद्धि विशाल है और उसकी शक्ति असीम। मैं तुम्हारी दासी वनकर रहूँगी।........

सीता ने वीच में ही टोका—

—आप कहना क्या चाहती हैं ? व्यर्थ के वाग्जाल से कोई लाभ नहीं, सीधी-सादी बात कहिए।

—तो सती शिरोमणि ! सीधी सी बात इतनी है कि तुम लंकेश को स्वीकार कर लो।

—आप ! आप सती होकर ऐसी बात कह रही हैं ? —सीता ने विस्मित होकर पूछा।

—नारी की व्यथा नारी ही जानती है। पति की जीवन रक्षा के लिए अधिकार तो क्या वह तन का त्याग भी कर देती है। —मन्दोदरी के स्वर में विवशता थी।

—तो करिए अपने पति की जीवन रक्षा।

—किन्तु लंकेश के प्राण तो तुम्हारी एक 'हाँ' पर निर्भर हैं।

—तो आप लंकेश की दूती बनकर मुझे धर्म से डिगाने आई हैं। एक सती का दूसरी सती को वरगलाना, आपका यह प्रयास अनूठा है !—सीता के स्वर में व्यंग्य उभर आया था।

—पति के हित के लिए ....

—खूब पति का हित कर रही हैं, आप ! अच्छी है आपकी पति-भक्ति और पातिव्रत धर्म जो उसको नर्क की आग में धकेले दे रही हैं। धर्म-विरुद्ध आचरण करके पति-सेवा और उसकी मंगल-कामना का ढोंग पटरानीजी आप खूब निभा रही हैं।

मन्दोदरी सीता की इस युक्तियुक्त बात का उत्तर न दे सकी। सीता ही आगे कटु स्वर में बोली—

—कुटिनी का कार्य कर रही हैं आप ! आपका तो मुख देखना भी पाप है। बात करने की तो बात ही क्या ? या तो आप यहाँ से चली जाइये और या मुझे कहीं और भिजवा दीजिए।

निराश मन्दोदरी सती की प्रतारणा मुख नीचा किये सुनती रही। सीता ही श्राप सा देते हुए कहने लगी—

—आज आपने सतीधर्म को कलंकित कर दिया है। जब आप जैसी सती मोहान्धकार में ग्रसित होकर अपनी मर्यादा और धर्म का मर्म भुला बैठीं तो अब लंका और लंकेश का विनाश अवश्यम्भावी है। इसे कोई नहीं रोक सकता।

सती के शब्दों को सुनकर मन्दोदरी काँप गई। वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलती हुई उठी और वापिस चल दी।

मन्दोदरी गई तो लंकेश आ गया। उसकी आज्ञा से दासियों ने सीता को बलात पुष्पक विमान में बिठा दिया। रावण आकाश मार्ग से चला और लंका की समृद्धि दिखाने लगा। वह अपनी समृद्धि और शक्ति का बखान कर रहा था किन्तु सीता जैसे कुछ सुन ही नहीं रही थी। बुत बनी बैठी रही—हृदय में श्रीराम के चरणों का ध्यान करती हुई।

जब रावण ने देखा कि उसकी बातों का सीता पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा है तो उसे देव-रमण उद्यान के अशोक वन में उतारकर चला आया।

× × ×

सीता जब समझाने से नहीं मानी तो रावण ने विद्याबल का सहारा लिया। रात्रि के अन्धकार में सीता पर अनेक प्रकार के उप-सर्ग होने लगे। विद्याएँ अनेक विकराल रूप धारण करके उसे डराती रहीं—कभी सर्प का रूप धारण करके तो कभी सिंह का। किन्तु सती महामन्त्र नवकार का जाप करती रही। इस मन्त्र के अचिन्त्य प्रभाव से कोई विद्या उसे छू न सकी। दूर से ही भूत-प्रेत-पिशाच-वैताल अपने भयंकर रूप दिखाते रहे किन्तु उसके पास आने का साहस न कर सके।

कालरात्रि के समान महा भयंकर अँधेरा प्रातःकालीन सूर्य किरणों के प्रभाव से छंट गया। उपसर्ग समाप्त हुए। सती अब भी पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन थी।

इन भयंकर उपसर्गों और आवाजों का रहस्य मन्त्री विभीषण को ज्ञात हुआ तो प्रातः ही सीता के पास आकर पूछा—

—देवि ! आप कौन हैं और यहाँ कैसे आ गईं ? मैं पर-स्त्री का सहोदर हूँ—निर्भय होकर मुझे सब कुछ स्पष्ट बताओ।

सहोदर शब्द सुनकर जानकी आश्वस्त हुई और कहने लगी—

—मैं जनक राजा की पुत्री जानकी हूँ और लंकापति मुझे उठाकर ले आया है।

—पूरा परिचय बताओ भद्रे ! —विभीषण ने आग्रह किया।

सीता ने बताया—

—मैं मिथिलापति राजा जनक की पुत्री हूँ और विद्याधर भामण्डल मेरे भाई हैं। दशरथ पुत्र राम मेरे पति हैं।

—क्या कहा ? दशरथ पुत्र राम ! —विभीषण ने चौंक कर बीच में ही पूछा। वह तो दशरथ को अपने विचार से मार ही आया था फिर यह पुत्र कहाँ से आ गया ? वह चकित था।

—हाँ अयोध्यापति सूर्यवंशी महाराज दशरथ की मैं पुत्रवधू हूँ।

चिन्तित हो गया विभीषण। अपनी चिन्ता छिपाकर बोला—

—आगे बताओ सुन्दरी, फिर क्या हुआ ?

सीता बताने लगी—

—मैं अपने पति और देवर के साथ दण्डकवन में आई। वहाँ अनजाने में ही देवर के हाथों एक तपस्वी की हत्या हो गई। वे पश्चात्ताप कर ही रहे थे कि एक स्त्री वहाँ आकर उनसे कामयाचना करने लगी। जब मेरे पति और उनके अनुज ने उसकी कामयाचना ठुकरा दी तो बहुत बड़ी सेना लेकर एक राजा उन पर चढ़ आया। अनुज लक्ष्मण तो उससे युद्ध करने चले गये और पति मेरे पास ही बैठे थे। इतने में मुझे अपने देवर का सिंहनाद (सहायता के लिए

पुकार) सुनाई दिया। मैंने पति को उसकी सहायता के लिए भेज दिया। वस मुझे अकेली देखकर लंकापति यहाँ उठा लाया।

सीता ने अपनी वात समाप्त कर दी।

चिन्तित होकर विभीषण उठने लगा तो सीता ने कहा—

—परस्त्री-सहोदर विना एक शब्द भी कहे उठ कर चला जा रहा है!

विभीषण को जैसे स्थिति का भान हुआ। उसे अपनी उपेक्षा पर लज्जा आई। वोला—

—चिन्ता मत करो जानकी! तुम्हारे वचाव का कोई न कोई उपाय निकल ही आवेगा।

—आज की रात्रि ही वड़ी भयंकर थी, आगे न जाने क्या होगा? —सीता ने आशंका व्यक्त की।

—होगा कुछ नहीं। रावण यह इन्द्रजाल भले ही दिखा ले किन्तु वलात्कार नहीं कर सकता।

—क्यों?

—उसने स्वर्णतुंग पर्वत पर केवली 'अनन्तवीर्य के समक्ष यह प्रतिज्ञा ली है कि 'नहीं इच्छती परस्त्री के साथ कभी रमण नहीं करूँगा।' अतः तुम्हारे शील को कोई खतरा नहीं।

—रावण अपनी प्रतिज्ञा तोड़ भी सकता है?

—असम्भव! वह अपनी प्रतिज्ञा का पालन प्राण देकर भी करेगा।

विभीषण की वातों से सीता आश्वस्त हो गई। उसको विश्वास हो गया कि उसके शील की रक्षा स्वयं रावण की प्रतिज्ञा करेगी। आवश्यकता है दृढ़ रहने की और सुमेरु के समान अचल तो वह थी ही।

सीता के पास से उठकर विभीषण सीधा रावण के पास पहुँचा। उसको नमस्कार करके कहने लगा—

—तात ! यह क्या अधर्म कर दिया आपने ? आपके इस कार्य से हमारा कुल कलंकित हो जायगा। तुरन्त सीता को राम-लक्ष्मण के पास छोड़ आओ।

—सीता को छोड़ आऊँ ? इस कार्य से कुल कलंकित हो जायगा ? क्या कायरता की वात कर रहे हो, विभीषण ! —रावण ने दर्पपूर्ण स्वर में उत्तर दिया।

—दुर्लंघ्यपुर विजय के समय नलकूवर की पत्नी उपरम्भा का

विशेष—उत्तर पुराण में सीता पर उपसर्ग तथा विभीषण से उसकी भेंट का कोई उल्लेख नहीं है। मन्दोदरी का रावण के साथ आने का उल्लेख है। यहाँ मन्दोदरी का दूसरा ही रूप चित्रित किया गया है। जव रावण सीता पर कुपित होता है तो वह कहती है—

—हे स्वामी ! सतियों का तिरस्कार करने से आपकी समस्त विद्याएँ नष्ट हो जायेंगी। आप पक्षरहित (पंखहीन) पक्षी के समान हो जायेंगे। इसलिए आप सीता को छोड़ दीजिए (श्लोक ३४२-३४५)।

रावण के चले जाने के वाद उसके हृदय में मातृत्व भाव जाग्रत हो जाता है। वह कहती है—हे कमलनेत्रे ! तू मेरी पुत्री ही जान पड़ती है (श्लोक ३५१)। यह विद्याधरों का स्वामी (रावण) तुझे पत्नी वनाना चाहता है। परन्तु हे पुत्री ! तू मर जाना किन्तु उसकी इच्छा पूरी मत करना (श्लोक ३५२)। सीता को भी ऐसा महसूस हुआ मानो उसकी माता ही मिल गई हो उसके नेत्रों में आँसू भर आये (श्लोक ३५५)। हे पुत्री ! तू आहार ग्रहण कर क्योंकि शरीर का साधन भोजन ही है (श्लोक ३५७)। यदि तुझे अपने पति श्रीराम के दर्शन न हो सकें तो घोर तपश्चरण करना (श्लोक ३५८)।

वृत्तान्त याद कीजिए। आपने मुझे कैसा फटकारा था ? —विभीषण ने रावण को पिछली घटना याद दिलाने का प्रयास किया।

—वह युद्धस्थल था। तब और अब की मेरी शक्ति में जमीन आसमान का अन्तर है।

—क्या शक्ति प्राप्त होने के बाद अधर्म धर्म हो जाता है ? —विभीषण के स्वर में कुछ व्यंग का पुट आ गया।

भड़क उठा लंकेश। उत्तेजित होकर बोला—

—तुम देखना सीता मेरे अनुकूल हो जायगी और राम-लक्ष्मण को मैं मार डालूँगा।

विभीषण ने बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा। वह नमस्कार करके

इस प्रकार मन्दोदरी का उत्तर पुराण में दूसरा ही रूप दिखाया गया है।

वाल्मीकि रामायण में सीता पर एक और भयंकर उपसर्ग दिखाया गया है—

जब श्रीराम की सेना ने समुद्र पर पुल बना लिया तथा रावण का मनोबल कुछ क्षीण हो गया। उसने एक अन्य मायावी राक्षस विद्युज्जिह्व (यह शूर्पणखा का पति नहीं था, कोई अन्य मायावी राक्षस था; क्योंकि शूर्पणखा का पति तो वरुण-युद्ध से पहले ही रावण द्वारा मारा जा चुका था) की सहायता से सीताजी को राम का कटा हुआ सिर (यह सिर मायामयी था असली नहीं) दिखाया। सीताजी उसे देखकर रोने लगी। रावण अपनी विजय के गीत गाने लगा। उसी समय एक राक्षस की प्रार्थना पर वह वहाँ से चला गया। तब सरमा नाम की राक्षसी (विभीषण की पत्नी) ने उसे सच्चाई बताकर आश्वासन दिया। उसके आश्वासन से सीता का शोक कम हुआ। (युद्धकाण्ड)

अपने निवास पर चला आया और अन्य मन्त्रियों को बुलाकर कहने लगा—

—मन्त्रियो ! इस समय दशमुख तो कामान्ध हो गया है। सीता के कारण विपत्ति आने ही वाली है। क्या किया जाय ?

मन्त्रियों ने उत्तर दिया—

—हम तो नाम के मन्त्री हैं। वास्तविक मन्त्री तो आप हैं। आप की जैसी आज्ञा हो, हम लोग वैसा ही करने को तैयार हैं।

विभीषण ने खूब सोच-विचार कर लंका के किले पर यन्त्र आदि लगवा दिए। सभी भविष्य की चिन्ता में मग्न हो गये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

—उत्तर पुराण पर्व ६८ श्लोक ३४०-३६२

: ६ :

सीता की खोज

राम सीता के विरह में व्याकुल थे और सुग्रीव सुख में मग्न। राम की कृपा से उसे किष्किंधा का राज्य पुनः प्राप्त हुआ और वह राम को ही भूल गया। राम के पास लक्ष्मण भी आ चुके थे। उनका दुःख उन्हें शूल की भाँति चुभता, सुग्रीव की उपेक्षा पर क्रोध भी आता लेकिन मन मसोसकर रह जाते। भाई की आज्ञा पाये बिना वे कुछ नहीं करना चाहते थे।

एक दिन राम ने अनुज लक्ष्मण से कहा—

—भाई! ऐसा मालूम होता है कि सुग्रीव अपना वचन भूल गया। तुम जरा उसे याद दिला आओ।

लक्ष्मण तो हृदय से यही चाहते थे। आज्ञा की देर थी तुरन्त प्रणाम करके चल दिये। वीर लक्ष्मण की मुख-मुद्रा भयंकर थी, नेत्र लाल थे और होठ फड़क रहे थे।

राजमहल के द्वारपाल उनके इस भयंकर रूप को देखकर काँप उठे। किसी का साहस न हुआ कि उन्हें रोके। लक्ष्मण धड़धड़ाते हुए महल में घुस गये। दास-दासियों ने उनके आगमन की सूचना तुरन्त दौड़कर सुग्रीव को दी। वह अन्तःपुर से निकलकर बाहर आया तो लक्ष्मण एकदम फट पड़े—

—अरे वानर ! काम निकलते ही कृपालु राम को ही भूल गया। अभी मृत्यु का द्वार बन्द नहीं हुआ है।

सुग्रीव थर-थर काँपने लगा। वह खड़ा न रह सका, लक्ष्मण के चरणों में गिर पड़ा और बोला—

—क्षमा महाभुज ! अपराधी को क्षमा करो।

अनेक प्रकार से विनय करके उसने लक्ष्मण के कोप को शान्त किया।

लक्ष्मण को आगे करके लज्जा से नीचा मुख किये अपने सुभटों के साथ सुग्रीव तुरन्त राम के सम्मुख आया और चरणों पर गिरकर बोला—

—प्रभु ! मेरे प्रमाद को क्षमा कीजिए। मैं अल्पबुद्धि सुखों में डूबकर आपको ही भूल गया। नाथ ! आप स्वामी हैं और मैं सेवक। मुझ पर प्रसन्न हों।

विशालहृदय राम ने उसे अभय दिया। स्वामी का वरद् हस्त सिर पर आते ही सुग्रीव का साहस लौटा। उसने अपने सुभटों को आज्ञा दी—

—जाओ, सब जगह सीताजी की खोज करो।

पराक्रमी और अस्खलित गति वाले वेगवान सुभट सभी दिशाओं की ओर चल दिये।

राम से आज्ञा लेकर सुग्रीव भी स्वयं सीताजी की खोज में निकल पड़ा।

अनुक्रम से घूमते-घामते सुग्रीव कम्बुद्वीप में आया। दूर से ही रत्नजटी ने उसे देखा तो सोचने लगा—'अब रावण ने मुझे मारने के

लिए इस वानरपति सुग्रीव[1] को भेजा है।' इन विचारों में निमग्न वह स्तंभित सा खड़ा रह गया।

सुग्रीव ने भी उसे देख लिया था। उसके पास आकर वोला—

—रत्नजटी ! तुम मुझे देखकर भी खड़े रह गये। आकाश में उड़कर मिले भी नहीं। इतना आलस्य हो गया है तुम्हें ?

—आलस्य नहीं मित्र ! मैं विद्याहीन हो गया हूँ। —रत्नजटी ने निराश स्वर में कहा।

—क्यों ? किसने कर दिया तुम्हें विद्याहीन ?—सुग्रीव ने विस्मित होकर पूछा।

रत्नजटी ने वताया—

—क्या वताऊँ मित्र ! अच्छा करते, बुरा हो गया। एक वार लंकापति रावण जानकी को जवर्दस्ती विमान में विठाकर लिए जा रहा था। उसकी पुकार सुनकर मैंने वचाने का प्रयास किया तो दशमुख ने मेरी सारी विद्याएँ छीन लीं। अव मैं परकटे पक्षी की भाँति यहाँ अपने दिन पूरे कर रहा हूँ।

जानकी का समाचार पाकर सुग्रीव की आँखों में चमक आ गई। फिर भी उसने पूर्ण रूप से आश्वस्त होने के लिए पूछा—

—कौन जानकी ? क्या तुम उससे पूर्व परिचित थे ?

—हाँ मित्र ! मैं उसे पहले से भी जानता था।[2] इसके अलावा

---

१ रत्नजटी की आशंका का कारण यह था कि सुग्रीव अभी तक रावण के अधीन राजा था।

—सम्पादक

२ त्रिगुप्त और सुगुप्त दो चारण ऋद्धिधारी देवों को दान देते समय रत्नजटी विद्याधर ने राम-लक्ष्मण-सीता को देखा था।

[देखिए—'पाँच सौ श्रमणों की वलि']

वह विमान से पुकार कर रही थी—'हा नाथ रामचन्द्र ! अरे वत्स लक्ष्मण ! हे भाई भामण्डल मुझे बचाओ।' इसी से मुझे विश्वास हो गया कि वह जानकी ही थी।

प्रसन्न होकर सुग्रीव बोला—

—मित्र ! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। अभी मेरे साथ चलो।

यह कहकर सुग्रीव उसे उठाकर राम के पास ले आया। राम उससे बार-बार सीता का समाचार पूछते और वह बार-बार बताता। फिर भी राम की तृप्ति नहीं हो रही थी। विरह व्याकुल हृदय ऐसा ही होता है।

राम ने सुग्रीव आदि से पूछा—लंकापुरी यहाँ से कितनी दूर है ?

सुभटों ने एक स्वर से उत्तर दिया—

—पास हो या दूर, क्या अन्तर पड़ता है ?

—क्यों ?

—इसलिए कि त्रिखण्डेश्वर रावण के सामने हम सब तिनके हैं। उस पर विजय पाना हमारे लिए असम्भव है।

—असम्भव है, या सम्भव, तुम लोग इसकी चिन्ता मत करो। तुम तो हमें लंकापुरी दिखा दो।

—नहीं स्वामी ! लंका की ओर आँख उठाकर देखना भी मृत्यु को निमन्त्रण देना है। —सभी सुभटों के स्वर भयभीत थे।

लक्ष्मण से रहा नहीं गया। वे बोल पड़े—

—कौन है, यह रावण ? जिसने कौए की भाँति अन्यायपूर्ण आचरण किया है। मैं इसका सिर काटकर जमीन पर पटक दूँगा।

जंबवान ने विनीत शब्दों में कहा—

—स्वामी ! उत्तेजित होने से क्या लाभ ? शान्तिपूर्वक सोच-विचारकर कार्य कीजिए। रावण का वध बच्चों का खेल नहीं है।

—बच्चों का खेल नहीं है तो क्या रावण अमर है ? —लक्ष्मण ने भी शान्तिपूर्वक जंबवान से पूछा।

—अमर तो नहीं है, किन्तु उसको वही बलवान मार सकेगा जो कोटिशिला को बाएँ हाथ से उठा लेगा। —जंबवान ने बताया।

किसने बताया तुम्हें यह सब ? —लक्ष्मण ने पूछा।

—एक बार अनलवीर्य नाम के ज्ञानी साधु ने मुझे यही बताया था कि जो महाभुज कोटिशिला को उठा लेगा वही रावण को मार सकेगा।

—कहाँ है वह कोटिशिला ?

जंबवान लक्ष्मण की इच्छा को समझ गये। उन्होंने कहा--

—यदि आप उस शिला को उठा लेंगे तो हमें विश्वास हो जायगा।

लक्ष्मण तैयार थे ही। जंबवान आकाश-मार्ग से उन्हें कोटिशिला के पास ले गये। वह शिला महाभुज लक्ष्मण ने लता के समान उठा ली। उसी समय देवों ने आकाश से 'साधु-साधु' कहकर उनका अभिनन्दन किया और पुष्प वृष्टि की। जंबवान उन्हें लेकर वापिस लौट आये। उन्होंने आकर घोषणा कर दी—लक्ष्मणजी निस्सन्देह रावण को मार देंगे।

इस घोषणा से सभी को हर्ष हुआ।

जंबवान ने श्रीराम से प्रार्थना की—

—स्वामी ! आप समर्थ हैं। रावण के काल रूप लक्ष्मण आपके अनुज हैं किन्तु........

—किन्तु क्या ! —राम ने पूछा।

—नीति यह है कि पहले दूत भेजना चाहिए। यदि शत्रु समझाने से न माने तो युद्ध अनिवार्य है ही।

राम ने जंववान की वात स्वीकार कर ली। वोले—

—आप लोग किसी को भी दूत वनाकर भेज दीजिए।

जंववान ने फिर ऐतराज किया—

—किसी को भी नहीं, स्वामी ! लंकापुरी के लिए शक्तिशाली और वुद्धिमान दूत ही आवश्यक है। साधारण पुरुप का काम नहीं।

—क्यों ?

—इसलिए कि पहले तो लंका में प्रवेश करना ही दुष्कर ! यदि किसी प्रकार प्रवेश भी हो गया तो निकल आना और भी कठिन। लंकापुरी को यम की दाढ़ समझिए।

'एक वात और'—जंववान आगे कहने लगे—

—दूत सीधा अभिमानी रावण की सभा में न चला जाय। वह पहले विभीषण से मिले।

—विभीषण से ही क्यों ? —राम ने पूछा।

—विभीषण ही राक्षस कुल में सर्वाधिक नीतिमान और सदाचारी पुरुष है। यदि रावण विभीषण की भी वात न माने तो तुरन्त लौट आना चाहिए। लंका में रुकना साक्षात मृत्यु को निमन्त्रण देना होगा।

जंववान इतना कहकर चुप हो गये। अव ऐसे योग्य दूत की खोज होने लगी जो वुद्धिमान, नीति-निपुण, शक्तिशाली और निर्भय हो। सुग्रीव ने सुझाव दिया—'पवनंजय के पुत्र हनुमान को भेजा जाय।'

पवनसुत के नाम पर सभी एकमत हो गये। सुग्रीव ने श्रीभूति के द्वारा हनुमान को वुलवाया।

हनुमान ने आकर राम को प्रणाम किया। सुग्रीव ने उठकर कहा—

—यह पवनंजय के पुत्र हनुमान महापराक्रमी और हमारे मित्र हैं। सम्पूर्ण विद्याधर जाति में इनके समान दूसरा कोई वीर नहीं है। इसलिए हे स्वामी ! आप इन्हें दूत बनाकर भेजिए।

अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए पवनसुत ने विनम्र स्वर में कहा—

—यहाँ एक से एक सुभट बैठे हैं—नल, नील, अंगद, गव, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, द्विविद, मैंद, जंबवान आदि। फिर भी आपने मुझे इस योग्य समझा, मेरा अहोभाग्य !

श्रीराम हनुमान की विनयशीलता से प्रसन्न हो गये। उन्होंने हनुमान को पास बुलाया और अपनी अँगूठी देकर कहा—

—अंजनीनन्दन ! तुम्हारी विनयशीलता मेरे कार्य को सम्पन्न करने की गारण्टी है। तुम अवश्य सफल होगे। यह मुद्रिका ले जाओ और सीता के समाचार लाकर मुझे दो।

—माता सीता से भी कोई निशानी लाऊँ। —हनुमान ने जिज्ञासा प्रकट की।

—वीर ! तुम्हारे शब्द ही विश्वास दिलाने के लिए काफी हैं। और फिर उसके पास आभूषण ही कौन-सा है। एक चूड़ामणि है—यदि वह स्वेच्छा से दे तो ले आना।

'जो आज्ञा' कहकर हनुमान चलने को तत्पर हुए तो राम ने कहा—

—पवनसुत ! उसको मेरा सन्देश यह कह देना कि राम तुम्हारी ओर से गाफिल नहीं है। वह शीघ्र ही तुम्हारे संकटों को दूर करेगा।

और यह भी कह देना पवनकुमार—कि राम तुम्हारे विरह में पीड़ित है और रात-दिन तुम्हारा ही नाम लेता है। —कहते-कहते राम का कण्ठ अवरुद्ध हो गया और नेत्र सजल।

वीर हनुमान ने राम को प्रणाम करके अपनी इच्छा प्रगट की—

—स्वामी ! जब तक मैं लंका से वापिस लौटूँ, आप यहीं मेरी प्रतीक्षा कीजिए।

रामदूत हनुमान परिकर सहित एक शीघ्रगामी विमान में बैठकर लंका की ओर चल दिये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

❊ ❊

विशेष—वाल्मीकि रामायण में सीता की खोज में सुग्रीव का जाना, रत्नजटी विद्याधर द्वारा पता बताना, लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला उठाना आदि घटनाओं का उल्लेख नहीं है।

किन्तु सुग्रीव का सुख-भोग में लीन हो जाना और लक्ष्मण की फटकार से कर्तव्य के प्रति जागरूक हो जाने का उल्लेख है। साथ ही राम हनुमान को मुद्रिका देते हैं। हनुमानजी अपने साथी वानर-भालुओं के साथ जाते हैं। वे विमान में बैठकर नहीं जाते।

[वाल्मीकि रामायण : किष्किंधाकाण्ड]

: ७ :

उपसर्ग शान्ति

हनुमान का शीघ्रगामी विमान आकाश मार्ग से चला जा रहा था। मार्ग में महेन्द्रगिरि का शिखर दिखाई दिया। वहीं उनके नाना (मातामह) का नगर था महेन्द्रपुर। नगर पर दृष्टि पड़ते ही हनुमान को क्रोध आ गया। वह विचार करने लगे—'यह मेरे नाना का नगर है। इन्होंने ही मेरी निरपराधिनी माता को घर से निकाल दिया था।'

माता के अपमान की कहानी ने हनुमान के रक्त को गरमा दिया। उनकी भुजाएँ फड़क उठीं। वदला लेने और सवक सिखाने की दृष्टि से हनुमान ने कुपित होकर रणभेरी वजा दी।

शत्रु को आया जानकर राजा महेन्द्र भौंचक्के रह गये। वे आनन फानन में तैयार हुए और सेना लेकर नगर से वाहर रणक्षेत्र में आ डटे।

दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक ओर अकेले हनुमान और दूसरी तरफ राजा महेन्द्र, उसका पुत्र प्रसन्नकीर्ति और महेन्द्रपुर की पूरी सेना।

हनुमान ने अकेले ही सेना भंग कर दी। उसके प्रबल पराक्रम को देखकर प्रसन्नकीर्ति सम्मुख आया। दोनों वीर युद्ध करने लगे। युद्ध करते-करते हनुमान को विचार आया—'मैं व्यर्थ ही राम के कार्य

में विलम्ब कर रहा हूँ। निकला था सीता की खोज में जूझ पड़ा रण में। पर अब क्या हो सकता है? यह युद्ध तो जीतना ही पड़ेगा।' यह सोचकर वीर हनुमान ने क्रोध मे शस्त्र प्रहार किया और प्रसन्नकीर्ति के रथ सारथि आदि का विग्रह कर दिया। प्रसन्नकीर्ति को बाँध लिया। राजा महेन्द्र युद्ध करने आये तो पराक्रमी हनुमान ने उनकी भी यही दशा की।

पिता-पुत्र दोनों को बाँधकर हनुमान ने विनयपूर्वक कहा—

—मैं सती अंजना का पुत्र हनुमान हूँ। आपने मेरी माता को निरपराध ही निकाल दिया था—यह स्मृति आते ही मुझे क्रोध आ गया और आपसे युद्ध कर बैठा। आप मुझे क्षमा करें।'

यह कहकर हनुमान ने उनके बन्धन खोल दिये।

क्रोध का आवेग उतर जाने पर व्यक्ति विनम्र हो ही जाता है। हनुमान भी विनम्र हो गये थे। राजा महेन्द्र ने उन्हें गले लगा कर कहा—

—मैंने तुम्हारी वीरता की चर्चा तो बहुत सुनी थी आज अपनी आँखों से देख ली। अब घर चलो और सुख से रहो।

—घर तो मैं नहीं जा सकूँगा।—हनुमान ने विनम्र प्रतिवाद किया।

—क्या अब भी तुम्हारा क्रोध शान्त नहीं हुआ?

—क्रोध तो शान्त हो गया, किन्तु स्वामी के कार्य से जा रहा हूँ।

—कौन स्वामी? कैसा कार्य?—राजा महेन्द्र ने पूछा।

हनुमान ने अपने मातामह को पूरी बात कह सुनाई। राजा महेन्द्र ने सब कुछ सुनकर प्रेरणा दी—

—तो तुम शीघ्र ही जाओ। तुम्हारा मार्ग सुखमय हो।

मातामह का आशीर्वाद लेकर हनुमान लंका की ओर चल पड़े।

विमान से हनुमान ने नीचे की ओर दृष्टि डाली तो दो मुनि कायोत्सर्ग में लीन दिखाई पड़े और समीप ही तीन निर्दोष अंग वाली कुमारियाँ विद्या साधन करती हुईं। अभी हनुमान नीचे उतरने का प्रयास कर ही रहे थे कि अचानक दावानल जल उठा। चकित रह गये वे। तुरन्त विद्याबल से मेघों की सृष्टि की और जल बरसाकर दावानल शान्त कर दिया। उन्होंने उतरकर ध्यानमग्न मुनियों की वन्दना की।

उसी समय तीनों कन्याएँ उठीं और मुनियों की तीन प्रदक्षिणा देकर नमन किया। हनुमान को वहाँ बैठा देखकर उनसे बोली—

—हे परमार्हत ! तुमने हमारा उपसर्ग टालकर बहुत अच्छा किया। हमारी विद्याएँ अल्प समय में ही सिद्ध हो गईं।

हनुमान ने कन्याओं से पूछा—

—भद्रे ! आप कौन हैं ?

कन्याओं ने अपना परिचय दिया—

इस दधिमुख द्वीप में दधिमुख नगर है। उसका अधिपति गन्धर्व-राज है और उसकी रानी है कुसुममाला। हम तीनों इन्हीं की पुत्रियाँ हैं। हमारे साथ अनेक विद्याधर विवाह करने को उत्सुक हैं। इनमें अंगारक नाम का विद्याधर कुछ ज्यादा ही लालसावान है। किन्तु पिताजी स्वतन्त्र विचारधारा के हैं। उन्होंने इनमें से किसी की भी इच्छा स्वीकार नहीं की।

एक बार पिताजी ने एक मुनि से पूछा—'इन पुत्रियों का पति कौन होगा ?' तो मुनिराज ने बताया—'जो साहसगति विद्याधर का वध करेगा, वही इनका पति होगा।'

मुनिराज के वचन प्रमाण मानकर उस पुरुष की बहुत खोज की गई किन्तु उसका कहीं पता नहीं लगा। उसी का पता लगाने के लिए हमने विद्या सिद्ध करना प्रारम्भ किया।

विद्याधर अंगारक ने उपसर्ग करने के लिए यह दावानल प्रज्वलित किया था जिसे आपने बुझा दिया।

आपकी सहायता से छह मास में सिद्ध होने वाली मनोगामिनी विद्या क्षणभर में सिद्ध हो गई।

आपका हम पर बहुत उपकार है।

इस प्रकार कहकर तीनों कन्याएँ चुप हो गई।

हनुमान ने पूछा—

—अब क्या आप लोग यह जानना चाहती हैं कि साहसगति विद्याधर का हनन किसने किया था ?

—अवश्य ! आप बता दें तो बड़ी कृपा होगी।

—तो सुनिये—साहसगति को मारा था श्रीराम ने।

—कहाँ हैं वे ?

हनुमान ने बताया—

—इस समय श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण सहित वानर-नरेश सुग्रीव की नगरी किष्किंधा के बाहर उद्यान में ठहरे हैं। पाताल लंका का स्वामी विराध भी सेना सहित उनकी सेवा में प्रवृत्त है।

यह सुनकर उन तीनों को बहुत हर्ष हुआ। कहने लगीं—

—भद्र ! आप यह समाचार पिताजी को भी दे दीजिए।

—नहीं कुमारियो ! मैं उन्हीं श्रीराम के कार्य से लंका जा रहा हूँ। —हनुमान ने कहा।

तीनों कन्याओं ने यह समाचार अपने पिता गन्धर्वराज को जा सुनाया।

गन्धर्वराज तीनों पुत्रियों के साथ एक बड़ी सेना सजाकर राम से आ मिला।

वीर हनुमान कुछ समय तक तो मुनियों की भक्ति करते रहे और फिर उन्हें श्रद्धापूर्वक नमन वन्दन करके लंका की ओर चल दिये।

जैसे ही हनुमान लंका के पास पहुँचे—कालरात्रि के समान भयंकर शालिका विद्या ने ललकार कर कहा—

—अरे वानर ! तू कहाँ जाता है ? अनायास ही मेरा भोजन बन गया।

यह कह विद्या ने अपना मुख फाड़ दिया। ज्यों-ज्यों हनुमान बचने का प्रयास करते विद्या का मुख और भी विस्तृत होता जाता। अन्त में जब निकलने का कोई मार्ग ही न रहा तो हनुमान ने हाथ में गदा लेकर उसके मुख में प्रवेश किया और जिस प्रकार बादलों को फाड़कर सूर्य निकल आता है उसी प्रकार उसके उदर से निकल आये। विद्या पराजित हो गई। उस विद्या ने लंका के आस-पास किला बना रखा था। वह हनुमान जी ने अपने विद्याबल से कच्चे घड़े के समान फोड़ दिया।

किले का रक्षक वज्रमुख युद्ध में प्रवृत्त हुआ तो उसे भी उन्होंने मार गिराया।

---

१ वाल्मीकि रामायण में भी हनुमान के महेन्द्रगिरि के शिखर से सागर-सन्तरण के लिए उड़ने का उल्लेख है। [किष्किंधाकाण्ड]

२ वाल्मीकि रामायण में शालिका विद्या की बजाय सुरसा देवी उल्लेख किया गया है।

देव, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियों ने नाग माता सुरसादेवी से कहा—तुम इन रामदूत हनुमान के बुद्धि बल की परीक्षा के लिए इनके मार्ग में विघ्न डालो।

सुरसा ने अपना आकार विशाल राक्षसी का-सा बनाया और हनुमान का मार्ग रोक दिया। हनुमानजी ने अपना आकार अंगूठे के समान छोटा-सा बनाया और उसके मुख में प्रवेश करके तुरन्त बाहर निकल आये।

वज्रमुख की मृत्यु से उसकी कन्या लंकासुन्दरी कुपित हो गई। उसे अपने विद्यावल का वहुत अभिमान था। वह वीर हनुमान पर विद्यावल से प्रहार करने लगी। हनुमानजी ने कुछ समय तक तो उसकी चतुराई देखी और फिर उसे परास्त कर दिया।

इस प्रकार अपने वुद्धि वल से सुरसा को पराजित करके हनुमान आगे वढ़ गये। [सुन्दरकाण्ड]

३ यहाँ लंकासुन्दरी का नाम लंकापुरी दिया है और उसे लंकानगरी का ही राक्षसी रूप माना है। वह हनुमान को तमाचा (थप्पड़) मारती है और हनुमान उसे मुष्टिका प्रहार से व्यथित कर देते हैं। तव वह हनुमान को लंका प्रवेश करने की अनुज्ञा देती है और राक्षसों के नाश की आशंका प्रगट करती है। [सुन्दरकाण्ड]

तुलसीकृत रामचरितमानस में सुरसा को वुद्धि वल से परास्त करके आगे वढ़ने पर छायाग्राही राक्षसी से मुठभेड़ का वर्णन है। वह राक्षसी आकाश में उड़ते हुए पक्षियों आदि की समुद्र जल में गिरती छाया को ही पकड़ लेती थी जिससे वे उड़ नहीं पाते थे और समुद्र में गिर पड़ते थे। इस प्रकार वह राक्षसी समुद्रजल में रहकर ही अपना आहार प्राप्त कर लेती थी। हनुमानजी ने उसका कपट जान लिया और उसे मारकर आगे वढ़ गये। [तुलसी : सुन्दरकाण्ड, दोहा ३]

लंकापुरी का नाम लकिनी दिया है।

[तुलसी : सुन्दरकाण्ड, दोहा ४]

४ यहाँ सागर तट पर वानर-भालू हनुमान को उनके वल की याद दिलाते हैं तभी हनुमान को अपने विस्मृत वल का ध्यान आता है और वे सागर संतरण को प्रस्तुत होते हैं। वानर भालुओं ने यहाँ हनुमान के वल का वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की है।

[तुलसी एवं वाल्मीकि रामायण, किष्किधाकाण्ड]

लंकासुन्दरी आश्चर्यपूर्वक उनकी ओर देखने लगी। हनुमान से दृष्टि मिलते ही वह काम-पीड़ित हो गई। उसे एक साधु के वचन स्मरण हो आये—'तेरे पिता को मारने वाला तेरा पति होगा।' यह विचार आते ही वह विनम्र स्वर में बोली—

—हे वीर ! पिता की मृत्यु से मैं क्रोधित होकर तुमसे युद्ध करने लगी थी। तुम जैसा सुभट मेरी दृष्टि में कोई नहीं आया। अब तुम मेरा पाणिग्रहण करो।

—क्यों ? अचानक ही इस अनुराग का कारण ? —हनुमान ने पूछा।

—एक साधु ने मुझे यही बताया था कि 'तुम्हारे पिता को मारने वाला ही तुम्हारा पति होगा।'

हनुमान ने भी लंकासुन्दरी की प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब तक सन्ध्याकाल समाप्त होकर रात्रि प्रारम्भ हो गई थी और दोनों ने रात्रि एक साथ व्यतीत की।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

: ८ :

लंका में प्रवेश

प्रातःकाल लंकासुन्दरी से मधुर शब्दों में विदा लेकर हनुमान ने लंका में प्रवेश किया। सर्वप्रथम वे विभीषण के निवास पर पहुँचे और अपना परिचय देकर बोले—

—आप लंकापति रावण के भाई हैं। इसीलिए आप उससे कहकर सीताजी को वापिस पहुँचवाने की व्यवस्था कीजिए।

दुःखी स्वर में विभीषण ने उत्तर दिया—

—वीर हनुमान! मैंने तो पहले भी एक वार प्रयास किया था किन्तु वह माना नहीं। अपने वल के मद में अन्धा है।

—भद्र! संसार में एक से एक वली मौजूद हैं। उसे इस अधर्माचरण से विमुख करो अन्यथा लंका का सर्वनाश हो जायगा।

—यह तो मैं भी जानता हूँ पर करूँ क्या, विवश हूँ।

—एक वार फिर प्रयास कर लो, शायद सफलता मिल जाय और रावण की मृत्यु टल जाय। —हनुमान ने कहा।

विभीषण ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया तो हनुमान ने उसे समझाने का प्रयास किया—

—विभीषण! यों तो रावण स्वयं समझदार है और आपकी शुभवृत्तियाँ भी जग-जाहिर हैं लेकिन इतना समझा देना कि परस्त्री

के कारण पुरुष को इस जन्म में दुःख और अपयश उठाना पड़ता है तथा मृत्यु के वाद तो नरकगति का द्वार खुला ही है।

—अवश्य ही प्रयास करूँगा कि भाई की दुर्गति न हो। —यह कहकर विभीषण ने वात समाप्त कर दी।

वीर हनुमान निर्भय लंकापुरी में विचरण करते हुए देवरमण उद्यान के समीप आये। दूर से ही उन्होंने देखा—सीताजी अशोकवृक्ष के नीचे वैठी थीं। उनके रूखे केश कपोलों पर उड़ रहे थे, होठ सूखे, मुख उदास, वस्त्र मलीन, शरीर सूखकर काँटा हो गया था। निरन्तर वहती अश्रुधारा से भूमि गीली हो गई थी। उस विरह विधुरा सती की ऐसी दीन दशा देखकर हनुमान की आँखें भी भर आईं। उनके हृदय में विचार-तरंग उठी—'अहो! यह सीता महासती है। इसके दर्शन मात्र से ही तन-मन पवित्र हो जाता है। ऐसी सुशील पतिव्रता पत्नी के विरह से राम व्याकुल क्यों न हों? बड़े भाग्य से ऐसी सती प्राप्त होती है। इसका विरह-दावानल अवश्य रावण को जलाकर खाक कर देगा।'

यह सोचकर हनुमान विद्यावल से अदृश्य हो गये। उन्होंने श्रीराम की मुद्रिका सीता के अंक में डाल दी। मुद्रिका देखते ही सीता के सूखे होंठों पर मुस्कान खेल गई मानो द्वितीया का चन्द्र विहँस गया हो। उत्सुक होकर सती इधर-उधर देखने लगी। किन्तु कोई भी दिखाई नहीं पड़ा—सिवाय त्रिजटा आदि रक्षिकाओं के।

त्रिजटा ने सीता की मुख-मुद्रा देखकर अनुमान लगा लिया कि वह आज प्रसन्न है। दासी ने अपना कर्तव्य पालन किया। तुरन्त रावण को समाचार पहुँचाया कि 'आज पहली वार सीता के मुख पर मुस्कराहट आई है।'

रावण ने समझा कि सीता मुझ पर अनुरक्त हो गई है।

बिल्ली को स्वप्न में भी चूहे नजर आते हैं। तुरन्त मन्दोदरी से बोला—

—देवि ! तुम तुरन्त जाकर सीता को समझाओ।

—क्यों ! ऐसा क्या परिवर्तन हो गया उस सती में ? —विस्मित सी मन्दोदरी ने पूछा।

—परिवर्तन ? आज वह मुस्कराई है। मुझे ऐसा लगता है कि वह राम को भूल गई और मेरे साथ क्रीड़ा करने की इच्छा कर रही है। —रावण के मुख पर प्रसन्नता की लहर आ गई।

—आपका भ्रम है, नाथ ! सुमेरु हिल सकता है मगर सीता······ वह महासती रंच मात्र भी नहीं हिलेगी।

—मेरी मनोकामना पूरी होने वाली है तो तुम अड़ंगा बन गई।

—नहीं स्वामी ! मैं क्यों अड़ंगा बनूंगी ?

—तो तुरन्त जाओ और उसे अपनी चतुराई से मेरे अनुकूल बनाओ।

'जो आज्ञा' कहकर मन्दोदरी चली और सीधी सीता के समीप जा पहुँची। सीता को लुभाने के लिए मनोहर वचन कहने लगी—

—हे जानकी ! तीन खण्ड के स्वामी के पास चलो और उसे स्वीकार करो ! मैं तथा अन्य पत्नियाँ दासी बनकर तुम्हारी सेवा करेंगीं। लंकेश तुम्हारे चरणों में अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि और समृद्धि न्यौछावर कर देगा।

मन्दोदरी के इन शब्दों को सुनकर सीता के ललाट पर बल पड़ गये। वह कुपित होकर बोली—

—अरे कामान्ध की दूती ! तुम फिर यहाँ चली आईं। रावण को स्वीकार करने की तो बात ही क्या ? उसका मुख भी कौन

देखे। मुझे उससे, तुमसे और उसकी ऋद्धि-समृद्धियों से हार्दिक घृणा है।

—तो क्या त्रिजटा ने झूठ बोला था। तुम्हारे मुख पर मुस्कराहट नहीं आई थी ?

—आई थी ? क्यों नहीं आवेगी ? —सीता ने व्यंगपूर्वक कहा।

—लंकेश तो समझे कि उनकी इच्छा पूर्ण होने वाली है।

—अवश्य पूरी होगी तुम्हारे पति की इच्छा ! वत्स लक्ष्मण आने ही वाले हैं। यमपुरी भेजकर उनकी सभी इच्छाएँ पूर्ण कर देंगे। सुनो मन्दोदरी ! मेरे पास मेरे प्रभु राम का संकेत आया था और यही रहस्य था मेरी मुस्कराहट का।

मन्दोदरी विस्मित होकर सुन रही थी और सीता कहती जा रही थी—

—जाओ, जल्दी से अपने पति को उसकी मृत्यु का समाचार सुना दो, जल्दी करो, चली जाओ यहाँ से। —सीता चीख-सी पड़ी।

सीता के इस रूप की आशा मन्दोदरी को बिल्कुल न थी। सती के इन शब्दों को सुनकर उसका हृदय धक् से रह गया, आँखों के सामने अँधेरा छा गया, पृथ्वी घूमने सी लगी। वह जानती थी कि सती के वचन मिथ्या नहीं हो सकते। बड़ी कठिनाई से वह रथ पर सवार हुई और राजमहल की ओर चल दी।

मन्दोदरी के जाने के पश्चात् हनुमान प्रगट हुए और प्रणाम करके अंजलि बाँधकर बोले—

—हे देवी ! मैं राम का दूत हूँ। आपकी खोज करने उनकी आज्ञा से यहाँ आया हूँ। मेरे जाते ही राम-लक्ष्मण लंका पर चढ़ाई कर देंगे।

सीता के नेत्रों में आँसू भर आये। राम के दूत को देखकर उन्हें हर्ष भी हुआ और अपनी दशा पर विषाद भी। पूछने लगीं—

—हे वीर तुम कौन हो ? यह दुर्लंघ्य समुद्र कैसे पार किया ?

—मैं पवनंजय और अंजना का पुत्र हनुमान हूँ। आकाश-गामिनी विद्या के सम्मुख यह विशाल समुद्र नदी की क्षीण रेखा के समान है। स्वामी की कृपा से सरलता से पार हो गया ?

—कहाँ रहते हैं प्राणनाथ, अनुज लक्ष्मण के साथ ? कैसे हैं वे ?

हनुमान ने बताया—

—प्रभु राम अनुज सहित किष्किंधापुरी में रहते हैं। हे देवि ! आपके विरह में रात-दिन तड़पते हैं और लक्ष्मण तो गाय से बिछुड़े बछड़े (गो वत्स) के समान निरन्तर दिशाओं को देखते रहते हैं। एक क्षण शोक में तो दूसरे ही पल क्रोध में तपने लगते हैं। सम्पूर्ण वानरों का स्वामी सुग्रीव, पाताल लंकापति विराध, विद्याधरपति भामण्डल, महेन्द्र, गन्धर्वराज आदि उनकी सेवा करते हैं; परन्तु उनके मुख पर क्षीण मुस्कराहट भी नहीं आती। उनके हृदय में तो एक मात्र तुम्हारा ही ध्यान रहता है।

सीता आँख बन्द करके हनुमान के शब्द सुन रही थी। ये शब्द नहीं थे, अमृत की बूँदें थीं। पति का अविचल प्रेम जानकर सती का हृदय हर्ष-विभोर हो गया। अनायास ही मुख से निकल पड़ा—

—धन्य भाग्य हैं मेरे, जो मुझे पति का ऐसा अनुपम प्रेम मिला।

हनुमानजी ने उनकी हीन दुर्बल काया देखकर समझ लिया कि देवि ने भोजन आदि का त्याग कर रखा है। उन्होंने बहुत आग्रह किया तो पति-वियोग के २१वें दिन सीता ने भोजन किया।

सीताजी ने अपना स्मृति चिह्न देकर कहा—

—वीर ! प्रमाणस्वरूप मेरा चूड़ामणि ले जाओ। प्रभु राम से इतना ही कह देना कि दर्शन देकर शीघ्र ही मेरे संताप को मिटावें।

हनुमान ने आदरपूर्वक चूड़ामणि लिया और अपलक उसे देखने लगे।

सीता ने चिन्तित स्वर में कहा—

—अरे वत्स ! तुम शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। यदि राक्षसों ने देख लिया तो गजब हो जायेगा।

अपने लिए वत्स का सम्बोधन सुनकर हर्ष-विभोर हो गये हनुमान ! उत्साहपूर्वक वोले—

—माता ! आपका मुझ पर पुत्रवत् स्नेह है इसीलिए चिन्तित हो रही हैं। किन्तु मैं भी श्रीराम का दूत हूँ। यह रावण मेरे सम्मुख है ही क्या ? कहो तो सेना सहित इसे मारकर आपको कन्धे पर विठाकर ले जाऊँ और श्रीराम को सौंप दूँ।

मुस्कराकर सीता ने कहा—

—जानती हूँ वत्स ! तुम परम पराक्रमी हो। तुम्हारे लिए सव कुछ सम्भव है। किन्तु प्रभु की आज्ञा का ही पालन करो।

—जाऊँगा तो अवश्य ! परन्तु अपना पराक्रम तो इन्हें दिखा जाऊँ। यह रावण अपने दर्प में किसी को वीर ही नहीं मानता। रामदूत का थोड़ा-सा बल तो देख ले। —हनुमान ने हठपूर्वक कहा।

सती समझ गई कि हनुमान मानने वाले नहीं है। रोकना व्यर्थ होगा। 'जैसी तुम्हारी इच्छा' कहकर मौन हो गई।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

**

विशेष—वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण ने सीताजी को प्रमदा वन की अशोकवाटिका में रखा था। [सुन्दरकाण्ड]

: ९ :

रावण का मुकुट-भंग

सीताजी का मौन हनुमान ने आशीर्वाद भी समझा और स्वीकृति भी। उन्होंने उद्यान को उजाड़ना प्रारम्भ कर दिया। उद्यान-रक्षकों ने मुद्गर आदि अस्त्रों द्वारा उन्हें रोकना चाहा तो वृक्ष उखाड़कर हनुमान उनके पीछे भागे। भयतीत होकर रक्षक रावण के पास गये और उसे सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया।

उद्यान की रक्षा के लिए रावण ने अपने पुत्र अक्षकुमार को आज्ञा दी। पिता की आज्ञा से अक्षकुमार देवरमण उद्यान में आया और अपना वल प्रदर्शित करने लगा। कुछ समय तक तो हनुमान उससे क्रीड़ा करते रहे और अन्त में उसे यमलोक को विदा कर दिया।

अक्षकुमार की मृत्यु का समाचार पाकर इन्द्रजित क्रोध से पागल हो गया। पिता से आज्ञा लेकर तुरन्त उद्यान में आया और दर्पपूर्वक बोला—

—अरे मूर्ख! अव तू काल के गाल में आ गया है। मुझसे वच कर जा नहीं सकता।

—रणक्षेत्र में जिह्वा नहीं, शस्त्र चलाये जाते हैं। —हनुमान का प्रत्युत्तर था।

इन्द्रजित की कोपाग्नि में घी पड़ गया। वह और उसके सुभट जीन-जान से युद्ध करने लगे। हनुमान ने अकेले ही उनको विह्वल

कर दिया। सुभटों में ऐसा कोई नहीं बचा था जिसके शरीर से रक्त न वह रहा हो। सभी भयभीत थे।

अन्तिम शस्त्र के रूप में इन्द्रजित ने नागपाश छोड़ा। नागपाश ने हनुमान को आपाद-मस्तक जकड़ लिया। राक्षसों के मुख प्रसन्नता से खिल उठे।

यद्यपि हनुमान नागपाश को कमलनाल के समान तोड़ सकते थे। उनके अतुलित बल के समक्ष उसकी गणना एक कच्चे धागे से से अधिक न थी। किन्तु राक्षसों के खिले चेहरों को देखकर उन्होंने सोचा—'कुछ देर तक इन्हें भी प्रसन्न हो लेने दो। अपना क्या जाता है और फिर इस वहाने रावण से भी भेंट हो जायगी। सम्भवतः उसे सद्बुद्धि आ जाय और विनाश न हो।' अहो! परोपकार के लिए महापराक्रमी हनुमान ने शक्ति होते हुए भी अपना पराभव स्वीकार कर लिया—ऐसी होती है, सदाशयी पुरुषों की वृत्ति।

इन्द्रजित ने वन्धनग्रस्त हनुमान को लंका की राज्यसभा में ला खड़ा किया और पिता से कहा—

—लंकापति! उत्पाती वानर हाजिर है।

पिता की दृष्टि पुत्र से मिली—दोनों की आँखों में दर्प जाग उठा। रावण ने सम्पूर्ण सभासदों पर नजर डाली—मानो कह रहा था देखा मेरे पुत्र का कमाल। इन्द्रजित का मुख दर्प से दमदमा रहा था।

हनुमान की उपेक्षापूर्ण दृष्टि सम्पूर्ण सभासदों पर घूमती हुई रावण पर जा टिकी। दोनों आँखों में आँखें डाले एक-दूसरे को घूर रहे थे। सभासद आश्चर्य में थे कि हनुमान वजाय अभिवादन करने के लंकेश को घूरे जा रहे थे। न उनके पलक झपक रहे थे और न सिर नीचा हो रहा था। सभा में पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी। सभी दम साधे आगत की प्रतीक्षा कर रहे थे।

आखिर रावण ने ही मौन तोड़ा—

—तुम तो पवनंजय के पुत्र हो ?

—हाँ लंकेश ! मैं वही हूँ जिसने वरुणयुद्ध में तुम्हारी प्राण रक्षा की थी।

—वह तो सेवक का कर्तव्य था। तुमने अपना कर्तव्य निभाया। हम भी तुम से प्रसन्न हुए। —रावण ने वात को मोड़ देना चाहा।

हनुमान ने मुस्कराकर कहा—

—लंकापति ! तथ्य को छिपाकर अपने अभिमान को पोषित करने से क्या लाभ ? आत्मतुष्टि भले ही हो जाय सत्य तो सत्य ही रहेगा।

रावण के ललाट पर बल पड़े—

—क्या मैं झूठ वोलता हूँ ? तुम हमारे सेवक नहीं हो ?

—कौन स्वामी और कौन सेवक ? लंकेश ! लज्जा करो। अपने प्राणरक्षक को सेवक कहना कितना अनुचित है ? —हनुमान के शब्दों में तल्खी थी।

सम्पूर्ण सभा स्तब्ध रह गई, हनुमान की निर्भीकता पर। आगे वात न बढ़े, इसलिए छल-निपुण रावण मुख पर मुस्कान लाकर वोला—

—वीर ! लंका में आये तो सीधे राजसभा में आना चाहिए था। देवरमण उद्यान में क्या रखा था जो वहाँ जा पहुँचे।

श्रीराम का सन्देश देना था सीताजी को ? —हनुमान का सपाट उत्तर था।

रावण चौंक कर वोला—

—क्या ? क्या·······तुम राम का सन्देश लाये थे।

—हाँ लंकेश ? मैं राम का दूत हूँ।

कूटनीति से काम लेते हुए रावण ने कहा—

—वड़े खेद की बात है तुम जैसे पराक्रमी ने राम का दूत वनना स्वीकार कर लिया। वन-वन भटकने वाला, दीन-हीन, निर्बल; है ही क्या उस राम के पास?

—रावण! राम के पास वह है, जो शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे पास नहीं है। उनके पास सद्धर्माचरण और सच्चरित्रता की वह पूँजी है जिसके सम्मुख त्रिलोक की सम्पत्ति भी फीकी है। मुझे गर्व है कि मैं राम का दूत हूँ।

—हाँ! हाँ!! होना ही चाहिए। राम की सेवा का सुफल भी तुम्हें तत्काल ही मिल गया। वन्धन में जकड़े कितने शोभायमान लग रहे हो? हृदय प्रसन्न हो गया। —व्यंगपूवक रावण ने कहा।

—हृदय तो तुम्हारा प्रसन्न तव भी हुआ था जव चोरों की भाँति सीताजी को उठा लाये थे। यदि कुशल चाहते हो तो उन्हें तुरन्त लौटा दो।

—न लौटाऊँ तो?

—तो सर्वनाश हो जायगा, तुम्हारा।

—मेरा सर्वनाश! —हो हो करके हँस पड़ा रावण।

—हँस क्या रहे हो राक्षसराज! यह अट्टहास करुण-क्रन्दन में परिर्वतित हो जायगा।

हँसी रोककर दशमुख कहने लगा—

—गर्वोक्ति खूब कर लेते हो! अपने प्राणों की खैर मनाओ।

—प्राण तो तुम्हारे ही यमलोक को जायेंगे। मेरे यहाँ से जाते ही श्रीराम-लक्ष्मण लंका पर आक्रमण कर देंगे और तुम तो क्या तुम्हारे परिवार में भी कोई जीवित नहीं वचेगा। परस्त्री-प्रसंग के

पाप का फल तुम्हारे साथ-साथ परिवार को भी भोगना पड़ेगा।
—हनुमान ने उत्तेजित होकर कहा।

दर्प मण्डित दशमुख को हनुमान के शब्द तीर से लगे। कुपित होकर बोला—

—जाओगे तो सही, उससे पहले लंका का प्रसाद तो लेते जाओ।

और अपने सुभटों को आदेश दिया—

—इस दुर्विनीत को काला मुँह करके गधे पर चढ़ाओ और सारी लंका में घुमाओ। राक्षस-लोग इसे देख-देखकर प्रसन्न होंगे। बच्चे किलकारियाँ भर-भरकर उछलेंगे-कूदेंगे और हाँ सीता को अवश्य दिखाना जिससे उसे मेरी शक्ति और राम तथा रामदूत हनुमान की अशक्तता का विश्वास हो जाय।

रावण का दर्प हनुमान को खल गया। उन्होंने समझ लिया कि यह लातों का भूत बातों से नहीं मानेगा। इसे अपना बल दिखाना ही पड़ेगा।

बलधारी ने बल लगाया। नागपाश कच्चे धागे के समान टूट गया। अचानक बिजली सी कौंधी। वीर हनुमान का सुवर्ण शरीर उछला और सीधा लंकापति के सिंहासन पर जा पहुँचा। विद्युत वेग से हाथ बढ़े। रावण का मुकुट उतर गया। मणिजटित स्वर्ण मुकुट जमीन पर गिर गया और कन्दुक के समान उछलकर एक ही पदाघात में उसका चूरा कर दिया अंजनीनन्दन ने।

संभ्रमित होकर रावण चीख पड़ा—अरे कोई पकड़ो, मारो इस दुष्ट को।

किन्तु तब तक हनुमान वहाँ कहाँ थे। वे तो राजसभा से निकल कर लंका के राजमार्ग में आ चुके थे।

पलक झपकते ही जैसे जादू सा हो गया था। सभी आश्चर्य

चकित थे। बहुत गर्व था इन्द्रजित को अपने नागपाश पर, उसका मुख लज्जा से नीचा हो गया।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में—

१ प्रमदा-वन (अशोक वाटिका) को उजाड़ना, जम्बुमाली आदि राक्षसों तथा अक्षकुमार के वध का वर्णन है। साथ ही इन्द्रजित के द्वारा नागपाश में बांधने ने बजाय ब्रह्मास्त्र से बांधने का उल्लेख है। [सुन्दर काण्ड]

२ जब ब्रह्मास्त्र से बँधकर हनुमानजी पृथ्वी पर गिर पड़े तो अन्य राक्षसों ने उन्हें वल्कल से बाँध दिया। इस पर ब्रह्मास्त्र के बन्धन स्वयं ही खुल गये क्योंकि वह दिव्य अस्त्र दूसरे बन्धनों के साथ नहीं रह सकता। अत: रावण की राज्य सभा में हनुमान ने ब्रह्मास्त्र के बन्धन को नहीं तोड़ा, क्योंकि वह तो पहले ही खुल चुका था, साधारण वल्कल बन्धन को ही तोड़ा था। [सुन्दर काण्ड]

३ यहाँ लंका दहन का वर्णन है। रावण ने रुष्ट होकर हनुमान को प्राण दण्ड दिया। किन्तु विभीषण के यह समझाने पर कि 'दूत अवध्य होता है' उसने हनुमान की पूछ जलाने की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा से राक्षसों ने हनुमान की पूछ में पुराने कपड़े लपेटकर आग लगा दी और उन्हें लंका के राजमार्गों पर घुमाने लगे। यह अप्रिय समाचार राक्षसियों ने सीता से कहा तो हनुमान की रक्षार्थ सीता ने अग्निदेव से प्रार्थना की—'यदि मैं मन-वचन-काया से पतिव्रता हूँ तो हे अग्नि! तुम हनुमान के लिए हिम के समान शीतल हो जाओ।' सती की इस प्रार्थना के कारण ही हनुमान की पूछ नहीं जली। इस शीतलता को हनुमान ने भी सती का प्रभाव समझा। लंका को जलते देखकर भी उन्होंने समझ लिया कि 'सीताजी अपने धर्म प्रभाव से ही सुरक्षित रहेंगी।' इसके बाद हनुमान ने समुद्र के जल से अपनी पूछ की आग बुझाई और सीताजी के पुन: दर्शन करके समुद्र लांघकर अपने विश्राम स्थल वानर भालुओं के बीच आ गये।

[सुन्दर काण्ड]

मान भंग के कारण रावण का चित्त खेद-खिन्न हो गया।

तव तक हनुमान के पदाघात से सम्पूर्ण लंका काँप उठी। राक्षस

---

४ तुलसीकृत रामायण में रावण का मुकुट-भंग श्रीराम के वाण से हुआ है।

सुवेल पर्वत पर खड़े होकर राम चन्द्रोदय का दृश्य देख रहे थे। तभी उन्हें दक्षिण दिशा में वादल और विजली का भ्रम हुआ। विभीषण ने वताया—'यह वादल और विजली नहीं है वरन् रावण का मुकुट और मन्दोदरी के कर्णफूल हैं।' यह सुनकर राम ने शर संधान किया और उस वाण से रावण का मुकुट तथा मन्दोदरी के कर्णफूल कट कर गिर पड़े। [लंका काण्ड, दोहा १३]

इसके वाद जव अंगद राम के दूत वनकर जाते हैं तो रावण के दर्पपूर्ण वचनों से उन्हें क्रोध आ जाता है। क्रोधित होकर जैसे ही अंगद ने अपने भुजदण्ड सभा-भवन की भूमि पर मारे तो सम्पूर्ण सभा-भवन हिल गया और सभासद अपने आसनों से जमीन पर लुढ़क गये। रावण भी गिरते-गिरते वचा किन्तु उसका मुकुट जमीन पर आ गिरा।

अंगद ने लंकेश का मुकुट उठा कर फेंका तो समुद्र पार राम की सेना में आ गिरा। [लंका काण्ड, दोहा ३२]

अंगद का वल दिखाने के लिए आगे एक घटना और दी गई है—

कुपित होकर वीर अंगद से अपना पैर रावण की सभा में जमा दिया और कहा—'यदि कोई सुभट मेरे पाँव को उठा देगा तो मैं सीताजी को हार जाऊँगा।'

सभी राक्षस योद्धाओं ने अपना वल लगाकर देख लिया किन्तु वे अंगद का पैर रंचमात्र भी न हिला सके।

तव लंकेश स्वयं उठा। अंगद ने यह कहकर पाँव उठा लिया कि 'मेरे पाँव पकड़ने से क्या होगा? श्रीराम के चरण पकड़, जिससे तेरा उद्धार हो जाय।' [लंका काण्ड, दोहा ३४-३५]

नर-नारी भयभीत हो गये। उन्होंने समझा कि सम्भवतः भूचाल आ गया है।

सीताजी ने उछलकर आकाश में उड़ते हुए रामदूत को देखा तो समझ गई कि यह सब हनुमान की ही करतूत है। उनके हृदय से मंगल-कामनाएँ निकलने लगीं।

रामदूत चले जा रहे थे, अपने स्वामी की ओर।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

❋ ❋

: १० :

विभीषण का निष्कासन

हनुमान ने आकर सर्वप्रथम जानकीजी का सन्देश कहा। राम कभी चूड़ामणि को नेत्रों से लगाते और कभी हृदय से। उनके हृदय की विह्वलता को कौन जान सकता है ? हनुमान ने ही आगे कहा—

—प्रभु ! अभिमानी रावण अपनी हठ से रंचमात्र भी नहीं हिला। युद्ध के विना माता-सीता को आपके दर्शन नहीं हो सकेंगे और यदि उन्हें आप नहीं मिले तो········

आगे के शव्द हनुमान वोल नहीं सके। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

सुग्रीव, भामण्डल आदि राजा वोल उठे—

—प्रभु ! अव देर किस वात की है।

हनुमान बोल उठे—

—आपका समाचार पाकर ही महासती ने वड़े आग्रह के पश्चात् भोजन किया था। स्वामी ! वे इक्कीस दिन से निराहार थीं।

सती के त्याग ने राम को हिला दिया। वे उछलकर खड़े हो गये। उनका आदेश गूँजा—

—शीघ्र प्रयाण किया जाय।

सभी तैयार थे। तुरन्त उठ खड़े हुए और विद्यावल से राम को सेना ने आकाश-मार्ग से लंका की ओर प्रयाण कर दिया।

सैन्य सहित आकाश में उड़ते हुए श्रीराम शीघ्र ही वेलंधर पर्वत पर स्थित वेलंधरपुर के समीप आये। नगराधीश समुद्र और सेतु दो राजा उद्धत होकर सेना के अग्रभाग से युद्ध करने लगे।

स्वामी की सेवा में चतुर और पराक्रमी नल ने समुद्र राजा और नील ने सेतु राजा को बाँधकर श्रीराम के सम्मुख पेश कर दिया।

कृपालु राम उन्हें बन्धनग्रस्त न देख सके। उन्होंने उन दोनों को क्षमा करके पुनः राज्यासीन कर दिया। महापुरुष स्वभाव से ही दयावान होते हैं। कृतज्ञ राजा समुद्र ने अपनी तीन रूपवती कन्याएँ लक्ष्मणजी को देकर अपनी स्वामिभक्ति प्रगट की।

रात्रि वहीं व्यतीत करके श्रीराम समुद्र और सेतु राजा के साथ ससैन्य आगे चल दिये। सुवेलगिरि के समीप आये तो वहाँ के उद्धत राजा ने विरोध किया। सेना ने उसका विरोध क्षण भर में दवा दिया। एक रात्रि वहीं विश्राम करके राम का कटक आगे वढ़ा।

तीसरे दिन लंका के पास आकर हंसद्वीप के राजा हंसरथ को वशीभूत करके राम की सेना वहाँ विश्राम करने लगी।

राम के आगमन का समाचार लंका में भी पहुँच गया। सभी नगर-निवासी क्षुभित होकर प्रलयकाल की आशंका करने लगे।

हस्त, प्रहस्त, मारीच और सारण आदि हजारों सुभट युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। रणभेरी वजने के साथ ही राक्षसों में युद्धोन्माद वढ़ने लगा।

उसी समय विभीषण ने राजसभा में आकर रावण से विनय की—क्षण भर को शान्तचित्त मेरी बात सुन लीजिए, लंकापति !

विभीपग के यह शब्द सुनते ही सभा मौन हो गई। रावण ने आज्ञा दी—कहो विभीषण ! क्या कहना चाहते हो ?

रावण के शान्त स्वर को सुनकर विभीषण उत्साहित होकर उसे समझाने लगा—

—तात ! इस युद्ध से न तो सुकृत मिलेगा, न लाभ ! सीता को लौटाकर अपने दुष्कृत्य पर पश्चात्ताप करना ही उचित है।

—विभीषण, सीता को नहीं लौटाऊँगा, यह मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूँ।

—चाहे उसके कारण राक्षस जाति का नाश ही हो जाय ? कुछ तो विवेक से काम लो, राक्षसपति !

—क्यों हो जायेगा राक्षस जाति का विनाश ! मेरे सुभट राम-लक्ष्मण का ही प्राणान्त कर देंगे।

—राम और लक्ष्मण की तो बात ही क्या ? उनके एक दूत का पराभव भी आप न कर सके। उसने अक्षकुमार को मारा, आपका मुकुट भंग किया और कमलनाल के समान नागपाश को तोड डाला। सम्पूर्ण लंका को हिलाकर बेदाग बच निकला। क्या बिगाड़ लिया आपने रामदूत का जो राम को मारने का दम्भ कर रहे हैं। —विभीषण के शब्द कठोर थे।

इन्द्रजित का युवा रक्त इन शब्दों को न सह सका। सत्य कडवा होता ही है और अभिमानी सत्य वचनों को सुनकर भड़क जाते ही हैं। रावण का अभिमानी पुत्र इन्द्रजित बोल उठा—

—काकाजी ! आप तो जन्म के कायर हैं ही। स्वयं तो कर्तव्य-पालन करते नहीं और दूसरों को भी रोकते हैं। दशरथ वध न करके भी अपने पिताजी को विश्वास दिला दिया और उन्हें धोखे में रखा। विश्वासघाती हैं आप ! राक्षसकुल का नाश कराने के लिए राम से मिले हुए हैं।

विभीपण ने उत्तर दिया—

—इन्द्रजित ! जोश में होश मत गँवाओ। राक्षसकुल के नाश का कारण वनेगा लंकेश्वर का परस्त्री दोष और तुम लोगों का अविवेक तथा दम्भ।

—संसार में दो ही तो विवेकी हैं और दो ही धर्मात्मा—एक आप और दूसरे राम। निरपराध शम्बूक का वध करने वाले, वूआ (फूफी) चन्द्रनखा का अपमान करने वाले तो आपको धर्मात्मा दिखाई दे रहे हैं और हम लोग पापी !—इन्द्रजित उत्तेजित हो चुका था।

—कामयाचना करने वाली नारी की काम-पिपासा पूर्ण न करना अपराध नहीं है, वरन् धर्म है इन्द्रजित !—विभीषण ने भी नहले पर दहला लगाया।

अभी तक रावण बैठा सुन रहा था। विभीषण के शब्दों से उसका क्रोध उत्तरोत्तर वढ़ता जा रहा था। कुपित स्वर में उसने कहा—

—विभीषण तुम्हारी जवान बहुत चलने लगी है। अव राक्षसकुल के लिए तुम्हारा जीवित रहना सर्वथा अनुचित है।

यह कहकर रावण ने तलवार खींची और विभीषण को मारने के लिए लपका। विभीषण भी कौन कम था उसने सभाभवन का एक स्तम्भ ही उखाड़ लिया और भाई से युद्ध करने को तत्पर हो गया। दोनों भाई पैंतरे वदलने लगे।

इस असह्य स्थिति को कुम्भकर्ण न देख सका। उसने आकर विभीषण को पकड़ लिया और इन्द्रजित ने अपने पिता रावण को। आग्रहपूर्वक इन्द्रजित ने पिता को सिंहासन पर जा विठाया। रावण क्रोध में आग-बबूला हो रहा था। गह गरजा—

—इस विश्वासघाती और उद्दार को मेरी आँखों से दूर कर दो। इससे कह दो कि लंका से वाहर चला जाय।

रावण के इन शब्दों को सुनकर विभीषण राजसभा से वाहर आया और विद्याधर तथा राक्षसों की तीस अक्षौहिणी सेना के साथ लंका से वाहर निकल गया।

राजनीति का सिद्धान्त है शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है। इस समय रावण विभीषण का शत्रु था और रावण के शत्रु थे राम। विभीषण भी इसी सिद्धान्त के अनुसार राम के समीप जा पहुँचा।

सुभटों ने जो विभीषण को तीस अक्षौहिणी सेना के साथ आते देखा तो चिन्तित हुए। उन्होंने तत्काल यह समाचार राम को वताया। राम अपने विश्वासपात्र सुग्रीव की ओर देखने लगे।

श्रीराम का आशय समझकर सुग्रीव बोला—

—स्वामी ! राक्षस तो स्वभाव से ही मायावी होते हैं। विभीषण

विशेष—उत्तर पुराण में यहाँ कुछ विशेषता है—

(१) लक्ष्मण ने जगत्पाद नाम के पर्वत पर प्रज्ञप्ति विद्या सिद्ध की।

(उत्तर पुराण ६८, ४६८-४७०)

सुग्रीव ने सम्मेतशिखर पर अनेक विद्याओं की पूजा की।

कुम्भकर्ण आदि भाइयों ने भी रावण के इस कार्य (सीताहरण) की भर्त्सना की है। (पर्व ६८, श्लोक ४७३-७४)

(२) यहाँ रावण और विभीषण में तलवार खींचने तथा स्तम्भ उखाड़कर सामना करने का कोई उल्लेख नहीं है।

(३) विभीषण श्रीराम की सेवा में गया तो उसके साथ कोई सेना नहीं थी।

विभीषण ने सोचा इसने (रावण ने) मेरा तिरस्कार करके निकाल दिया है यह मेरे हित में ही है। 'अव मैं रामचन्द्रजी के चरणों में जाता हूँ' यह निश्चय कर वह सुजनता के साथ चला और शीघ्र ही रामचन्द्रजी के पास जा पहुँचा। (श्लोक ४९९-५०१)

आता है तो आने दीजिए। उसके मनोभावों को जानकर जैसा उचित समझेंगे, वैसा करेंगे।

उसी समय विभीषण को अच्छी तरह जानने वाला विद्याधर विशाल बोल उठा—

—प्रभु! राक्षसों में विभीषण ही धार्मिक वृत्ति वाला है। रावण ने कुपित होकर इसे लंका से निकाल दिया है। इसीलिए आपकी शरण में आ रहा है।

बड़े और छोटे भाई में इतना मतभेद हो सकता है, राम स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे। वे तो समझते थे कि जैसे उनके भाई एक-दूसरे पर प्राण निछावर करते हैं वैसे ही सभी भाई करते होंगे। विस्मित होकर पूछने लगे—

—अग्रज ने अनुज को निकाल दिया? ऐसा क्या कारण है?

—कारण हैं सीताजी।

—कैसे?

वाल्मीकि रामायण में—

(१) रावण ने सुग्रीव को लंका छोड़ने की आज्ञा नहीं दी, केवल कठोर वचन ही कहे। वह स्वयं ही उन वचनों को न सह सका और चार योद्धाओं के साथ राजसभा छोड़कर श्रीराम की शरण में चला गया। [युद्धकाण्ड]

(२) प्रसन्न होकर राम ने लक्ष्मणजी से कहा—'समुद्र का जल ले आओ और उससे तुरन्त ही इस परम चतुर विभीषण का राक्षसों के राजा के रूप में अभिषेक कर दो। मैं इस पर बहुत प्रसन्न हूँ।

इस प्रकार राम ने लंका के और राक्षसों के स्वामी के रूप में विभीषण का राज्याभिषेक उसके शरण में आते ही कर दिया।

[युद्धकाण्ड]

—स्वामी ! विभीषण ने कहा था सीताजी को वापिस लौटा दो और अपने दुष्कर्म पर पश्चात्ताप करो। इसी पर बात बढ़ गई और विभीषण को देश निकाला मिल गया।

—ओह ! मैं उसे लंका का राज्य दे दूंगा। —राम स्वयं ही वचनवद्ध हो गये।

राम की आज्ञा से विभीषण को अन्दर लाया गया। विभीषण ने उनके चरणों में मस्तक नवाकर अपनी सम्पूर्ण गाथा कह सुनाई। अन्त में बोला—

—प्रभु ! सुग्रीव के समान ही मेरी भी रक्षा कीजिए।

करुणावत्सल राम ने उसे अभय दिया और साथ ही लंका का स्वामी बनाने का वचन भी।

—त्रिषष्टि शलाका, ७।७

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक ४६८-७०

तथा ४७३-५०४

* *

: ११ :

हस्त-प्रहस्त की मृत्यु

हंसद्वीप में आठ दिन विश्राम के पश्चात श्रीराम ने सेना सहित लंका की ओर प्रयाण किया। वहाँ पहुँचकर लंका के बाहर खुले मैदान में राम की सेना ने शिविर लगा दिया। उनके विशाल कटक से बीस योजन भूमि आच्छादित हो गई।

राम की सेना के कोलाहल से लंकापुरी क्षुभित हो गई। तत्काल राक्षस वीर युद्ध के लिए सजने लगे। कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, कोई महिष पर तो कोई पैदल ही चल दिया। सभी योद्धा लंकापति रावण के चारों ओर एकत्र हो गये।

रावण क्रोध से लाल नेत्र किये हुए अपने रथ पर सवार हुआ। उसके एक ओर कुम्भकर्ण और दूसरी तरफ इन्द्रजित तथा मेघवाहन आ खड़े हुए। उनके पीछे मय, मारीच, सुन्द, शुक्र, सारण आदि असंख्य वीर थे। इस प्रकार असंख्य अक्षौहिणी सेना लेकर रावण लंका से बाहर निकला।

रावण की सेना में सिंह, अष्टापद, सर्प, मार्जार, श्वान आदि की ध्वजा वाले असंख्य सहस्र कोटि वीर थे। विभिन्न प्रकार के आयुध— त्रिशूल, मुद्गर, कुठार, पाश आदि हाथ में लिए वे सुभट यमराज के समान ही दिखाई पड़ते थे। पचास योजन भूमि पर सेना ने अपना शिविर लगा दिया।

रणवाद्य बजते ही सुभट परस्पर भिड़ गये। वानर और राक्षस वीरों में घोर युद्ध होने लगा। खड्ग, मुगद्र, गदा आदि अस्त्रों का खुलकर प्रयोग हुआ। युद्ध में वानर वीरों ने राक्षसों के विचलित कर दिया। राक्षस सेना भंग हो गई।

अपनी सेना को भंग होते देख राक्षसवीर हस्त और प्रहस्त आगे आये। उनका मुकाविला किया वानरवीर नल और नील ने। नल ने हस्त और नील ने प्रहस्त की गति को रोक दिया।

चारों वीर परस्पर युद्ध करने लगे। एक क्षण एक की विजय

विशेष—(१) लंका दहन की घटना उत्तर पुराण में विभीषण के राम से मिल जाने के वाद हुई है। घटना का उल्लेख इस प्रकार है—

हनुमान ने राम से निवेदन किया—'आप आज्ञा दें तो हम लंका में जाकर उत्पात करें और उसके उद्यान को नष्ट कर रावण का मान भंग करें। इससे वह कुपित होकर वाहर निकल आयेगा और उसे मारना सुलभ होगा।

राम ने आज्ञा दे दी। हनुमान ने जाकर उद्यान को नष्ट कर दिया। राक्षसों ने विरोध किया तो वानरी विद्या से वानर-सेना बनाकर उनसे युद्ध किया और अन्त में महाज्वाल विद्या की सहायता से उसने नगर-रक्षकों को सूखी घास के समान जलाकर राख कर डाला।

इस प्रकार के उत्पात से हनुमान ने लंका में उपद्रव खड़ा कर दिया और वापिस चला आये। (श्लोक ५०५-५१५)

(२) यह घटना युद्ध से पहले ही रावण को उत्तेजित करने के लिए हुई थी।

वाल्मीकि रामायण में भी युद्ध के दिनों का विभाजन नहीं किया गया है; केवल वीरों के युद्ध और राक्षसों की मृत्यु आदि घटनाओं का विवरण है। यहाँ रात्रि को भी युद्ध हुआ वताया और युद्ध तभी रुका है जब कोई विशिष्ट घटना हो गई, जैसे—लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर।

होती दिखाई देती तो दूसरे ही क्षण दूसरे की। समान पराक्रमी वीरों की जय-पराजय का पूर्व अनुमान नहीं हो पाता। घोर युद्ध के मध्य नल ने क्षुरप्रवाण से हस्त का कण्ठच्छेद कर दिया। उसी समय नील

---

१. युद्ध की व्यूह रचना के समय ही सुग्रीव और रावण का मल्लयुद्ध गोपुर के चबूतरे और दुर्ग की खाई में हुआ। [युद्ध काण्ड]

२. यहाँ अंगद का दूत कर्म दिखाया गया है। [युद्ध काण्ड]

३. हस्त-प्रहस्त की मृत्यु यहाँ भी नल और नील के हाथों हुई है। [युद्ध काण्ड]

(३) तुलसीकृत रामचरितमानस में भी युद्ध के दिनों की सख्या तो स्पष्ट नहीं बताई है किन्तु रात्रि होते ही युद्ध बन्द होने का स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रकार गणना करने से यह प्रतिभासित होता है कि राम-रावण युद्ध ८ दिन तक चला।

पहले ही दिन हनुमानजी ने मेघनाद के सारथि को मार दिया, रथ तोड़ दिया और मेघनाद के वक्षस्थल पर पाद-प्रहार करके उसे विह्वल कर दिया। तब दूसरा सारथि उसे उठाकर उसके निवास पर ले गया। इसके पश्चात हनुमान और अंगद ने मिलकर रावण का महल ढहा दिया।

[लंका काण्ड दोहा, ४३-४४]

अपनी सेना को विह्वल और रणक्षेत्र से भागती देखकर अकंपन और अतिकाय नाम के राक्षस सेनापतियों ने माया फैलाई। पलभर में चारों ओर अन्धकार छा गया।

श्रीराम ने यह रहस्य जान लिया। उन्होंने धनुष पर चढ़ाकर अग्नि बाण छोड़ा जिससे चारों ओर प्रकाश फैल गया और राक्षसी माया नष्ट हो गई।

इसके पश्चात सूर्यास्त तक वानर तथा राक्षस वीरों में युद्ध होता रहा और सूर्यास्त के बाद दोनों सेनाएँ अपने-अपने शिविरों को लौट गईं।

[लंका काण्ड, दोहा ४५-४७]

ने भी प्रहस्त को मार गिराया। देवताओं ने नल-नील पर पुष्पवृष्टि करके हर्ष प्रगट किया।

हस्त-प्रहस्त की मृत्यु से रावण-दल के योद्धा कुपित हो गये। मारीच, सिंहजघन, स्वयंभू, सारण, शुक्र, चन्द्र, अर्क, उद्दाम, वीभत्स, कामाक्ष, मकर, ज्वर, गभीर, सिंहस्थ और अश्वरथ आदि वीर एक साथ युद्ध में उतर पड़े।

राम की ओर से मदनांकुर, संताप, प्रथित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न तथा प्रीतिकर आदि वानरवीर मैदान में आकर शत्रुओं से जूझने लगे। अनेक अस्त्रों से युद्ध करते हुए मारीच राक्षस ने संताप वानर को, नन्दन वानर ने ज्वर राक्षस को, उद्दाम राक्षस ने विघ्न वानर को, दुरित वानर ने शुक्र राक्षस को, और सिंहजघन राक्षस ने प्रथित वानर को तीव्र और तीक्ष्ण आघातों से व्यथित कर दिया।

तव तक सन्ध्याकाल आ गया और अंशुमाली पश्चिम में अस्त हो गये।

राम और रावण की सेना युद्ध बन्द करके अपने-अपने शिविरों में लौट गई।

दोनों ओर के सैनिक अपने-अपने घायलों और मृतकों को खोजने लगे।

हस्त-प्रहस्त की मृत्यु और नल-नील की विजय के साथ युद्ध का प्रथम दिवस समाप्त हुआ।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

—उत्तर पुराण ६८।५०५-५१५

* *

: १२ :

युद्ध का दूसरा दिन

सूर्योदय के साथ ही राक्षस सेना युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर आगे वढ़ी। मध्य में मेरुगिरि के समान राक्षसराज रावण स्वयं सैन्य संचालन करने लगा।

राम और रावण की सेना में घोर युद्ध हुआ। रावण द्वारा प्रेरित किये जाने के कारण राक्षस वीरों के हौसले वढ़े हुए थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण वल लगाकर वानर सेना को पीछे धकेल दिया। वानरों में भगदड़ मच गई।

सेना भंग से सुग्रीव को क्रोध चढ़ आया। वह अपने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा तो हनुमान ने आगे वढ़कर कहा—

—वानरेश ! आप यहीं ठहरें और मेरा पराक्रम देखें।

यह कहकर हनुमान ने सुग्रीव को तो वहीं रोका और स्वयं राक्षसों के सैन्य में मंदराचल की भाँति कूद पड़े। उनकी भयंकर मार से राक्षस वीरों में हलचल मच गई। ऐसा प्रतीत होता था मानो हनुमान रूपी मंदरगिरि राक्षस सेना रूपी समुद्र को मथे दे रहा हो।

उनका सामना करने के लिए आया वृद्ध राक्षस मालो। माली महावलवान और दुर्जेय था। किन्तु वृद्धावस्था के कारण उस की फूर्ती और स्ति में कमी आ गई थी। फिर भी वह हनुमान से खूब

लड़ा। दोनों वीर वार-बार धनुष्टंकार करके एक-दूसरे पर वाण वर्षा करते। अनेक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते हुए परस्पर युद्ध करते रहे। अन्त में जवानी जीती और बुढ़ापा हार गया। हनुमान ने माली के सभी अस्त्रों को विफल करके उसे अस्त्रहीन कर दिया। निःशस्त्र माली स्तम्भित सा खड़ा रह गया। हनुमान ने कहा—

—अरे वृद्ध राक्षस! यहाँ से चले जाओ। तुम्हें मारकर क्या बल दिखाना ?

माली तो कुछ बोल नहीं सका किन्तु वज्रोदर राक्षस सामने आकर कहने लगा—अरे पापी! वृद्ध माली[1] को क्या पराक्रम दिखाता है। मेरे साथ युद्ध कर।

वज्रोदर के इन शब्दों का उत्तर दिया हनुमान की क्रोध भरी हुंकार ने। दोनों के शस्त्र परस्पर टकराने लगे। वाण युद्ध में दोनों ने एक-दूसरे को मानो ढक ही दिया।

आकाश से युद्ध देखने वाले देवों के मुख से सहसा निकला—

'अहो! वीर हनुमान और वज्रोदर समान पराक्रमी हैं। एक-दूसरे के लिए समर्थ और शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी है।'

पराक्रमी पुरुष किसी को भी अपने समान नहीं समझते। देव-वाणी ने हनुमान को उत्तेजित कर दिया। उन्होंने तीक्ष्ण शस्त्र-प्रहार करके वज्रोदर को यमपुर पहुँचा दिया।

---

१ यह वृद्ध माली विख्यात जगत्प्रसिद्ध राक्षस राजा माली नहीं था। वह तो इन्द्र के साथ युद्ध में ही मारा गया था। यह अवश्य ही कोई अन्य वृद्ध वीर होगा जो इस राम-रावण युद्ध में हनुमान के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में रावण की ओर से आया और पवनपुत्र ने उसका पराभव कर दिया।

—सम्पादक

राक्षस वज्रोदर के धराशायी होते ही रावण का पुत्र जम्बूमाली हनुमान से युद्ध करने आया। पवनपुत्र ने तीव्र वाण-वर्षा और शस्त्राघातों से उसे सारथी सहित मार डाला। इसके पश्चात राक्षस महोदर आया तो उसकी भी यह दशा हुई। पवनकुमार के पवनवेग में वह भी उड़ गया।

वीर हनुमान अपने प्रचण्डवेग से राक्षस-सेना का विध्वंस कर रहे थे। राक्षस-सेना विह्वल होकर भागने लगी।

अपनी सेना को भंग होते देख कुम्भकर्ण स्वयं रण-क्षेत्र में कूद पड़ा। उस विशालकाय और महावली ने अनेक वानरों को तो पैरों से ही कुचल डाला। उसने हाथों से, पैरों से, त्रिशूल, मुद्गर आदि से भयंकर युद्ध किया। इस विचित्र रण कौशल से वानर सेना में घवड़ाहट फैल गयी। वानर-वीर पीछे की ओर भागने लगे।

भामण्डल, दधिमुख, महेन्द्र, कुमुद, अंगद आदि कुम्भकर्ण से लोहा लेने दौड़ पड़े। उन्होंने शिकारियों की भाँति उसे चारों ओर से घेर लिया। सिंह समान प्रतापी कुम्भकर्ण पर चारों ओर से शस्त्र प्रहार होने लगे। इस परिस्थिति से उबरने का कोई और उपाय न देखकर उसने प्रस्वापन अस्त्र उन पर छोड़ दिया।

प्रस्वापन अस्त्र अमोघ था। तत्काल उसने अपना प्रभाव दिखाया। सम्पूर्ण सेना निद्रामग्न हो गई। उसका प्रतीकार किया प्रबोधिनी महाविद्या द्वारा वानरराज सुग्रीव ने। 'कहाँ है कुम्भकर्ण ?' 'कहाँ है कुम्भकर्ण ?' चिल्लाते हुए वानर सुभट जाग पड़े।

सुग्रीव ने तीक्ष्ण वाण-वर्षा करके उसके रथ सारथि आदि को धराशायी कर दिया। कुम्भकर्ण भूमि पर आ टिका। महाराक्षस अपने हाथ में मुद्गर उठाये हुए सुग्रीव को मारने दौड़ पड़ा मानो मत्तगयन्द अपनी सूँड़ ऊपर किये हुए चला जा रहा था। अनेक कपि तो मार्ग में ही उसके चरण-प्रहारों से मर गये। कुम्भकर्ण ने मुद्गर-

प्रहार से सुग्रीव का रथ भंग कर दिया। वानरराज आकाश में उड़ा और उस पर एक वड़ी शिला फेंक दी। कुम्भकर्ण ने मुद्गर-प्रहार से शिला को चूर्ण कर दिया और शिला के छोटे-छोटे खण्ड चारों ओर विखर गये।

शिला को खण्ड-खण्ड होते और कुम्भकर्ण को अक्षत देखकर सुग्रीव को क्रोध चढ़ आया। उसने महाप्रचण्ड विद्युत्दण्ड अस्त्र का प्रहार कुम्भकर्ण पर कर दिया।

महाउग्र विद्युत्दण्ड तड़-तड़ की ध्वनि करता हुआ कुम्भकर्ण की ओर चला। उसका प्रतीकार करने हेतु उसने अनेक अस्त्र छोड़े किन्तु सव निष्फल हुए। कुम्भकर्ण भूमि पर मूच्छित होकर गिर गया।

भाई कुम्भकर्ण के मूच्छित होते ही रावण क्रोधित होकर युद्ध की ओर जाने लगा। उसी समय इन्द्रजित ने आकर विनम्र स्वर में कहा—

—पिताजी! आपके सम्मुख यम, वरुण, इन्द्र, कुवेर जैसे पराक्रमी न ठहर सके। इन वानरों के समक्ष आपका जाना क्या उचित है? आप यहीं रहे और मुझे आज्ञा दें।

यह कहकर इन्द्रजित वानर सेना के मध्य में प्रवेश कर गया। उसका मुकावला हुआ वानरराज सुग्रीव से। इन्द्रजित का छोटा भाई मेघवाहन आगे वढ़ा तो भामण्डल ने उसे रोक लिया। चारों सुभट प्रलयदूत के समान युद्ध करने लगे। सामान्य और दिव्यास्त्रों से वहुत समय तक युद्ध होता रहा किन्तु कोई भी विजयी न हो सका। प्रतिपक्षी के अस्त्रों का प्रतिकार तुरन्त ही दूसरा पक्ष कर देता। अन्त में मेघवाहन और इन्द्रजित ने नागपाश छोड़ा। भामण्डल और सुग्रीव दोनों उस पाश में जकड़ गये। वन्धन इतने कठोर और दृढ़ थे कि उन्हें साँस लेना भी कठिन हो गया। वानर सेना में हाहाकार मच गया।

इस हाहाकार से वीर कुम्भकर्ण की मूर्च्छा टूटी तो उसे समीप ही हनुमान दिखाई दे गये। उसने अवसर का लाभ उठाया और पूरी शक्ति से गदा प्रहार किया। अचानक प्रहार से हनुमान मूर्च्छित हो गये तो कुम्भकर्ण ने उन्हें हाथों में उठाया और बगल में दबाकर लंका की ओर चल दिया।

श्रीराम के पक्ष के तीनों महावीरों का पराभव देखकर विभीषण चिन्तित हो गया। वह तुरन्त श्रीराम से बोला—

—स्वामी! अपने पक्ष के तीनों वीरों (भामण्डल, सुग्रीव और हनुमान) का पराभव हम पर वज्रपात है। आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उन्हें बन्धनमुक्त कराके लाऊँ।

विभीषण अभी बात ही कर रहा था कि रणक्षेत्र में सुग्रीव-पुत्र अंगद कुम्भकर्ण से आक्षेप युद्ध[1] करने लगा। अंगद की इस नोच-खसोट से बचने के लिए कुम्भकर्ण ने हाथ ऊपर उठाया तो हनुमान स्वतन्त्र हो गये। कुम्भकर्ण हाथ मलता ही रह गया। अब क्या हो सकता था?

श्रीराम से आज्ञा लेकर विभीषण युद्धक्षेत्र में आया। उसे देखकर इन्द्रजित और मेघवाहन ने सोचा—'यह विभीषण हमारा काका (पिता का छोटा भाई) है। इसके साथ कैसे युद्ध करेंगे? शत्रु तो नागपाश में बँधे हुए ही मर जायेंगे। चलो, यहाँ से खिसक चलें।

पूज्य और गुरुजनों के सामने न पड़कर चले जाने में न अपवाद होता है और न लज्जा। दोनों भाई वहाँ से चले गये। विभीषण आया तब तक मैदान खाली था—न वहाँ इन्द्रजित था न मेघवाहन।

---

1 आक्षेप युद्ध का अभिप्राय है—प्रहार करके तुरन्त इधर-उधर भाग जाना। जैसा वानरों का चपल स्वभाव होता है वैसा ही यह युद्ध भी था।

—सम्पादक

भामण्डल और सुग्रीव के पास वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रह गया।

विशेष—(१) वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

युद्ध की पहली झपट में ही रात्रि के समय अदृश्य रहकर इन्द्रजित ने युद्ध क्रिया और राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को वाणों से वींध कर नागपाश में जकड़ दिया।

यहाँ राम का विलाप दिखाकर गरुड़जी के द्वारा उन्हें वन्धनमुक्त करने का वर्णन है। गरुड़जी वहाँ राम के प्रति मित्र भाव से आये थे।

[युद्ध काण्ड]

(२) तुलसीकृत रामचरित में दूसरे ही दिन इन्द्रजित और लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन है। यहीं इन्द्रजित वीरघातिनी शक्ति द्वारा लक्ष्मण को मूच्छित करता है। [लंका काण्ड, दोहा ४५]

युद्ध वन्द हो जाने के पश्चात रात्रि को राम करुण विलाप करते हैं। तव विभीषण की सलाह से लंका से सुषेण वैद्य को हनुमानजी उसके घर सहित उठा लाते हैं।

सुषेण से नाम जानकर हनुमानजी औषधि लेने चल दिये। यह सव समाचार गुप्तचर ने रावण से कहे तो उसने हनुमान का मार्ग रोकने के लिए कालनेमि राक्षस को भेजा।

कालनेमि ने हनुमानजी के मार्ग में ही एक सुन्दर आश्रम वनाया और राम कथा कहने लगा।

मार्ग की थकावट के कारण हनुमान को प्यास लग आई थी इसलिए उन्होंने उस मुनि से जल माँगा। मुनि ने अपना कमण्डल देकर समीप का सरोवर वता दिया। ज्योंही हनुमानजी ने पानी पीना चाहा त्योंही एक मकरी ने उनका पैर पकड़ लिया। हनुमान ने उसका प्राणान्त कर दिया। तव उस मकरी ने दिव्य रूप धारण किया और हनुमान से कहने लगी—

भामण्डल और सुग्रीव की चिन्ता श्रीराम को भी बहुत थी। जब मनुष्य पर दुर्निवार विपत्ति पड़ती है तो वह अपने उपकारी और मित्रों को याद करता है। राम ने भी महालोचन देव[1] का स्मरण किया। देव तुरन्त उपकारी राम के पास आया। उसने उन्हें सिंह-निनादा विद्या, मूशल, हल और रथ दिये तथा लक्ष्मण को रथ,

---

हे कपिश्रेष्ठ! तुम्हारे कारण मेरा शाप मिट गया। यह मुनि नहीं है घोर निशाचर है और इसलिए राम-कथा कह रहा है कि तुम सूर्योदय से पहले औषधि लेकर न पहुँच सको।

यह सुनकर हनुमानजी ने लौटकर उस राक्षस को मार डाला।

औषधियों से भरे पर्वत को लेकर लौटते समय जब हनुमान अयोध्या के ऊपर पहुँचे तो भरतजी ने इन्हें कोई राक्षस समझकर बाण मारकर गिरा लिया।

तब भरत को हनुमानजी के मुख से राम-रावण युद्ध का समाचार ज्ञात हुआ।

वहाँ से चलकर हनुमानजी राम के शिविर में आये। सुषेण की औषधि से लक्ष्मण सचेत हुए और हनुमान पुनः वैद्य सुषेण को वापिस लंका पहुँचा आये।

यह सब घटनाएँ एक रात्रि में ही घट गईं।

[लंका काण्ड, दोहा ५४-६१]

१ महालोचन देव केवली कुलभूषण और देशभूषण का पिता था। वह अपने पुत्रों के दीक्षा ले जाने के पश्चात मरकर सुपर्णकुमार (गरुड़) जाति का देव हुआ था। श्रीराम-लक्ष्मण ने जो मुनिद्वय का उपसर्ग दूर किया था उससे प्रसन्न होकर उसने उन्हें सहायता का वचन दिया था।

(देखिये त्रिषष्टि शलाका ७।५, गुजराती अनुवाद पृष्ठ ९४)

नोट—इसी देव ने श्रीराम को बलभद्र के योग्य चार और लक्ष्मण को वासुदेव के योग्य ६ दिव्यास्त्र दिये होंगे। —सम्पादक

गारुड़ी विद्या और विद्युद्वदना नाम की गदा दी। इसके अतिरिक्त दोनों वीरों को गारुड़, आग्नेय, वायव्य तथा अन्य दूसरे अस्त्र-शस्त्रों तथा दो छत्रों ने सुसज्जित कर दिया।

दिव्यास्त्रों से सुसज्जित होकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई सुग्रीव और भामण्डल के पास आये। गारुड़ी विद्या सम्पन्न उन दोनों को समीप आते जानकर नागपाश स्वयमेव ही विलीन हो गया। सुग्रीव और भामण्डल स्वतन्त्र होकर उठ खड़े हुए।

राम की सेना में जय-जयकार हुआ और राक्षसों की सेना में विषाद व्याप्त हो गया।

उस समय तक सन्ध्याकालीन सूर्य भी अस्ताचल की ओट में जा छिपा।

राम की सेना अपने शिविर में लौट आई और राक्षस सेना अपने शिविर में।

युद्ध वन्द हो गया। दिनभर के कोलाहल से पश्चात मौन-नीरवता छा गई।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

❊ ❊

: १३ :

लक्ष्मण पर शक्ति-प्रहार

तीसरे दिन राक्षस-सेना का सेनापतित्व सँभाला स्वयं महाबली रावण ने। उसके अतुल बल-शौर्य के कारण राक्षस-वीरों का साहस बहुत बढ़ा हुआ था। दिन के प्रथम प्रहर में ही वानर-सेना भंग हो गई। राक्षस-वीरों के प्रहार आज कई गुने तीक्ष्ण और तीव्र थे।

भंग होती हुई वानर सेना की ढाल बनकर सुग्रीव आदि आये। सेना का साहस बँधा और पुनः जमकर युद्ध करने लगी। वानरों के उखड़ते हुए पाँव जम गये। इस बार राक्षस-सुभट पीछे हटने लगे।

रावण स्वयं युद्ध में कूद पड़ा। उसके आते ही वानरों में त्राहि-त्राहि मच गयी। कोई भी सुभट टिक नहीं सका।

राम स्वयं युद्ध के लिए चलने लगे तो विभीषण ने कहा—

—स्वामी ! आप यहीं रुकिये। मैं स्वयं रावण का प्रतीकार करने जाता हूँ।

इतना कहकर विभीषण वहाँ से चला और रावण के सम्मुख जा पहुँचा। उसे देखकर रावण का भ्रातृ स्नेह उमड़ आया। वह बोला—

—विभीषण ! तुम व्यर्थ ही काल के गाल में चले आये। वापिस लौट जाओ।

—वापिस चला जाऊँगा, लंकेश्वर ! आप सीताजी को दे द।

सीताजी का नाम सुनते ही रावण की भृकुटी टेढ़ी हो गई। बोला—

—मूर्ख ! वार-वार तू मुझे सीता का नाम लेकर चिढ़ाता है। मैं आज राम-लक्ष्मण दोनों को मारकर इस रोग की जड़ ही मिटाये देता हूँ।

—आप क्या मारेंगे उनको ! स्वयं अपने प्राणों की खैर मनाइये।

—वहुत घमण्ड हो गया है अपने आश्रयदाता का ! कल ही तो आश्रय लिया है और आज ही उनका गुणगान करने लगा।

—गुणवानों की प्रशंसा तो की ही जाती है।

—खुशामदी और देश तथा कुल के गद्दार ! कल तक लंकापुरी, राक्षसकुल और मेरे गुणगान करता था और आज गिरगिट की तरह रंग वदल गया। अव तुझ पर स्नेह दिखाना वेवकूफी है। सँभाल अस्त्र ! —रावण क्रोध से धकधका उठा।

उसने धनुष्टंकार किया। तीव्र और कठोर ध्वनि से दिशाएँ काँप गईं। विभीषण भी पीछे न रहा, उसने भी धनुष पर वाण चढ़ाया और अग्रज पर छोड़ दिया। अनुज और अग्रज सांघातिक युद्ध में लीन हो गये—मानो जन्म-जन्म के शत्रु हों।

भाई-भाई को आपस में भिड़ा देखकर कुम्भकर्ण आदि सभी युद्ध में कूद पड़े। कुम्भकर्ण का प्रतीकार राम ने, इन्द्रजित का लक्ष्मण ने, सिंहजघन का नील ने, घटोदर का दुर्मर्ष, दुर्मति का स्वयंभू, शम्भू का नील, मय राक्षस का अंगद, चन्द्रनख का स्कन्द, केतु का भामण्डल ने प्रतीकार किया। जम्बूमाली के समक्ष श्रीदत्त आ डटा तो कुम्भकर्ण के पुत्र के सम्मुख हनुमान। सुमाली का मुकावला सुग्रीव ने और धूम्राक्ष का कुन्द ने किया। सारण राक्षस और

वालीपुत्र चन्द्ररश्मि आमने-सामने आ डटे। सभी में भयंकर युद्ध होने लगा।

इन्द्रजित ने लक्ष्मण पर तामस[1] अस्त्र छोड़ा तो उन्होंने उसका निवारण पवनास्त्र से कर दिया।

जब इन्द्रजित ने ही दिव्यास्त्र का प्रयोग कर दिया तो लक्ष्मण ही क्यों चूकते। उन्होंने नागपाश द्वारा इन्द्रजित को बाँध लिया और विराध को आज्ञा दी—

—इसे रथ में डालकर शिविर में ले जाओ।

विराध उसे शिविर में ले गया।

श्रीराम ने भी कुम्भकर्ण को नागपाश में जकड़ दिया और उनकी आज्ञा से भामण्डल उसे शिविर में ले गया।

राम के पक्ष के अन्य योद्धाओं ने भी अपने प्रतिद्वन्द्वी राक्षस-सुभटों को बाँध लिया और अपने शिविर में ले गये।

रावण ने देखा कि उसके पक्ष के सभी सुभट बन्दी हो चुके हैं और वह अकेला ही रह गया है तो शोक से व्याकुल हो गया। किन्तु युद्ध-भूमि में शोक नहीं क्रोध कार्यकारी होता है। उसने विभीषण पर त्रिशूल छोड़ा। लक्ष्मण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसे बीच में ही केले के पत्ते की भाँति विदीर्ण कर दिया।

त्रिशूल के निष्फल हो जाने पर रावण ने क्रोधित होकर धरणेन्द्र प्रदत्त अमोघविजया शक्ति का स्मरण किया। धक्-धकायमान प्रज्वलित अग्निशिखा जैसी तड़-तड़ शब्द करती हुई शक्ति आकाश में चक्कर काटने लगी। उसके प्रबल तेज के समक्ष आकाश में युद्ध

---

१ तामस अस्त्र के प्रयोग से दूर-दूर तक अँधेरा फैल जाता है। चारों ओर अन्धकार छा जाता है। —सम्पादक

देखते हुए देव भी न ठहर सके। वे भी इधर-उधर खिसक गये। राक्षस और वानर सैनिकों की आँखें चुँधिया गयीं। तभी राम ने लक्ष्मण से कहा—

—भाई ! यह शक्ति अमोघ है। यदि विभीषण मारा गया तो हमारी शरणागत वत्सलता को धिक्कार है। संसार यही कहेगा कि राम अपने शरणागत की रक्षा न कर सका।

लक्ष्मण ने अग्रज को कोई उत्तर नहीं दिया। वस सिर झुकाकर चले और विभीषण के आगे जाकर खड़े हो गये। रावण एकदम वोल पड़ा—

—अरे लक्ष्मण ! तुम क्यों वीच में आ गये ? मैं तो विभीषण को मारना चाहता हूँ।

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

—रावण ! शरणागत की रक्षा करना मेरा धर्म है।

—व्यर्थ ही प्राण चले जायेंगे।

—क्षात्र धर्म का पालन तो हो जायगा।

—नहीं हटोगे।

—कदापि नहीं।

—तो विवशता है। —यह कहकर रावण ने अमोघविजया शक्ति छोड़ दी।

धकधकाती हुई शक्ति लक्ष्मण की ओर जाने लगी। मार्ग में सभी वीरों ने अपने-अपने अस्त्रों से उसे रोकने की वहुत चेष्टा की किन्तु सम्पूर्ण प्रयास निष्फल हो गये। शक्ति लक्ष्मण के वक्षस्थल से टकराकर उनके शरीर में प्रवेश कर गई और वे मूच्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। राम की सेना में भयंकर हाहाकार मच गया।

अनुज के गिरते ही राम तीव्र क्रोध में महाज्वाल की भाँति जल उठे। वे पंचानन रथ में वैठकर रावण के सम्मुख पहुँचे और तीव्र

वाण वर्षा करने लगे। रावण ने वहुत प्रतीकार किया किन्तु उसका रथ-सारथी आदि पलक झपकते ही भंग हो गये। दूसरे रथ पर राक्षसराज वैठा तो उस रथ की भी यही दशा हुई। एक के वाद एक पाँच वार राम ने रावण को विरथ किया।

रावण ने समझ लिया कि 'राम इस जगत में अद्वितीय पराक्रम वाले हैं। इनसे युद्ध करना लोहे के चने चवाना है।'

राम की कोपाग्नि के सम्मुख रावण का टिकना असम्भव-सा हो गया। उसने हृदय में विचार किया—'इस प्रकार राम को युद्ध में पराजित करना तो असम्भव है। इनका अपने अनुज पर अत्यधिक स्नेह है और लक्ष्मण मर ही जायगा। उसके शोक में राम भी स्वयमेव प्राण त्याग देगा फिर लड़ने से क्या लाभ ?'

यह विचार करके रावण रथ में वैठकर लंका में प्रवेश कर गया।

सामने अपकारी शत्रु न होने से कोप का स्थान शोक ने ले लिया। वे लक्ष्मण के पास आकर करुण-क्रन्दन करने लगे—

—अरे भैया ! तू वोलता क्यों नहीं ! तेरे मधुर वचनों को सुने विना मैं कैसे धैर्य रखूँ ? माता सुमित्रा को क्या उत्तर दूंगा ? संसार यही कहेगा कि राम ने स्त्री के लिए छोटे भाई की भेंट चढ़ा दी। हाय ! मैं ऐसा निर्वल हूँ कि तुम्हारी रक्षा भी न कर सका। अब मेरा ही जीवित रहकर क्या होगा ? मैं भी तुम्हारे साथ ही मृत्यु का आलिंगन करता हूँ।

इस प्रकार उनके करुण विलाप को सुनकर सभी विह्वल हो गये। सभी शोक-मग्न थे।

स्वामी के शोक में यदि सेवक का विवेक भी जाग्रत न रहे तो काम ही विगड़ जाय। सुग्रीव ने निवेदन किया—

—स्वामी ! यह अवसर शोक का नहीं, वरन् लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने का है।

विभीषण ने स्थिति स्पष्ट की—

—इस शक्ति द्वारा आहत पुरुष के शरीर में एक रात्रि तक ही प्राण रहते हैं। सूर्योदय के साथ ही उसके प्राण शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इसलिए स्वामी! लक्ष्मणजी का जीवन बचाने की चिन्ता तुरन्त कीजिए।

राम ने उनकी बात स्वीकार कर ली। सुग्रीव आदि वानरों ने विद्याबल से राम-लक्ष्मण के चारों ओर चार-चार द्वार वाले सात किलों का निर्माण किया। पूर्व दिशा के द्वाररक्षकों का भार सँभाला—सुग्रीव, हनुमान, तार कुन्द, दधिमुख, गवाक्ष और गवय ने, उत्तर दिशा के द्वारों पर अंगद, कूर्म, अंग, महेन्द्र, विहंगम, सुषेण और चन्द्ररश्मि जा बैठे। पश्चिम दिशा के द्वारों की रक्षा की—नील, समरशील, दुर्धर, मन्मथ, जय, विजय और सम्भव ने तथा दक्षिण दिशा के द्वार पर भामण्डल, विराध, गज, भुवनजित, नल, मैंद और विभीषण रहे। राम और लक्ष्मण को बीच में रखकर सुग्रीव आदि सभी चौकसी करने लगे।

'आज लक्ष्मण मारा गया' यह सोचकर रावण को क्षणभर के लिए तो सन्तोष हुआ किन्तु इन्द्रजित, कुम्भकर्ण आदि की स्मृति आते ही उसका हर्ष शोक में बदल गया। राजमहल से रानियों के करुण-क्रन्दन की आवाजें आने लगीं।

किसी ने आकर सीता से भी कह दिया—'रावण की शक्ति से आज लक्ष्मण मारा गया है और भाई के स्नेह के कारण प्रातः तक राम भी मर जायेंगे।'

वज्र के समान इन कठोर शब्दों को सुनकर सीता मूच्छित हो गई। रक्षा करने वाली राक्षसियों ने जल सिंचन किया तो सचेत होकर रुदन करने लगी—

—हाय मैं कैसी मन्दभागिनी हूँ। मेरे ही कारण मेरे देवर और स्वामी दोनों संकट में पड़ गये हैं।

विशेष—(१) वाल्मीकि रामायण में इन्द्रजित द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगने का उल्लेख नहीं है केवल इतना ही वताया है कि ब्रह्मास्त्र द्वारा इन्द्रजित ने राम-लक्ष्मण सहित वानर सेना को मूर्च्छित कर दिया था। हनुमानजी ने औषधि युक्त पहाड़ लाकर सबको सचेत और स्वस्थ कर दिया। (युद्धकाण्ड)

हाँ रावण के शक्ति प्रयोग से लक्ष्मण के अचेत हो जाने का अवश्य वर्णन है। यह भी उल्लेख है कि सुषेण की औषधि से उनकी मूर्छा दूर हुई। यहाँ सुषेण रावण की लंका का वैद्य नहीं, अपितु वरुण देव का पुत्र वानर सुषेण है।

संक्षिप्त घटना इस प्रकार है:

राम और रावण में युद्ध हो रहा था। श्रीराम रावण के दिव्यास्त्रों को काटते जा रहे थे। इसी वीच विभीषण ने रावण के रथ में जुते घोड़ों को गदा प्रहार से मार डाला। रावण रथ से कूद पड़ा और विभीषण को मारने के लिए एक विशाल शक्ति हाथ में ली। इस शक्ति का वेग काल भी नहीं रोक सकता था। इतने में विभीषण को बचाने के लिए लक्ष्मण वीच में आ गये। रावण ने मय-दानव द्वारा दी गई वह शक्ति चला दी। शक्ति लगते ही लक्ष्मण अचेत हो गये।

इस पर राम क्रोध से आग-बबूला हो उठे और अपने तीव्र शस्त्र प्रहारों से रावण को विह्वल कर दिया। वह भयभीत होकर लंका को भाग गया।

लक्ष्मण को सचेत करने हेतु महाबुद्धिमान वानर सुषेण ने हनुमानजी को महोदय पर्वत से विशल्यकरणी (शरीर में धंसे हुए वाण आदि को निकालकर घाव भरने और पीड़ा दूर करने वाली), सावर्ण्यकरणी (शरीर में पहले की सी रंगत लाने वाली), संजीवकरणी (मूर्छा दूर करके

सीता के विलाप से एक विद्याधरी के हृदय में करुणा जाग्रत हो आई। इसने विद्यावल से जानकर वताया—

—हे देवि ! विलाप मत करो। मेरी वात ध्यान से सुनो।

सती सीता चुप होकर उसकी ओर देखने लगी। विद्यावरी ने आश्वासन दिया—

चेतना लाने वाली) और संधानी (टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाली) —ये चार औषधियाँ लाने को कहा।

हनुमानजी तुरन्त चल दिये किन्तु उन औषधियों को न पहचान सकने के कारण महोदयगिरि को ही उठा लाये।

तदनन्तर वानर श्रेष्ठ सुषेण ने दवा उखाड़कर पीसी और लक्ष्मण को सुँघाई। उसे सूँघते ही लक्ष्मण नीरोग हो गये। (युद्धकाण्ड)

नोट—वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही इस घटना से पहले ही इन्द्रजित लक्ष्मण द्वारा मारा जा चुका था। —सम्पादक

(२) तुलसीकृत रामचरितमानस के अनुसार—

युद्ध के तीसरे दिन कुम्भकर्ण श्रीराम के हाथों मारा गया। राम के वाण से कुम्भकर्ण का धड़ तो युद्ध-भूमि में ही गिर गया और सिर रावण के समक्ष जा गिरा। (लंकाकाण्ड, दोहा ७१)

चौथे दिन मेघनाद तथा जंववान का युद्ध हुआ और जंववान ने उसे पैर पकड़कर लंका में फेंक दिया। (लंकाकाण्ड, दोहा ७४)

इसके वाद मेघनाद अजेय होने के लिए यज्ञ करने लगा। तव पाँचवें दिन उसका यज्ञ ध्वंस और प्राणान्त करने के लिए लक्ष्मण अन्य वीरों के साथ पहुँचे और उसका यज्ञ भंग करके उसे यमलोक भेज दिया। (लंनाकाण्ड, दोहा ७५-७६)

छठवें दिन रावण स्वयं युद्ध करने आया। यहाँ रावण का लक्ष्मण से युद्ध हुआ। लक्ष्मण के वाणों से विह्वल होकर वह एक वार तो अचेत हो गया। पुनः सचेत होकर उसने ब्रह्माजी द्वारा प्रदत्त शक्ति

—चिन्ता मत करो ! तुम्हारा देवर प्रातःकाल तक बिल्कुल ठीक हो जायगा और दोनों भाई शीघ्र ही तुम्हें दर्शन देकर प्रसन्नता प्रदान करेंगे ।

विद्याधरी के शब्द सुनकर सीता को सन्तोष हुआ । वह रात भर पंच-परमेष्ठी का जाप करती हुई जागती रही । उसके हृदय में पति और देवर राम-लक्ष्मण की मंगल-कामना व्याप्त थी ।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

* * *

लक्ष्मण पर चलाई । इस शक्ति के आघात से लक्ष्मण से अचेत हो गये । हनुमान लक्ष्मण को उठाकर राम के पास लाये । राम ने उनका स्पर्श किया और उद्बोधक वचन कहे । राम के स्पर्श मात्र से ही वह शक्ति निकलकर आकाश को चली गई और लक्ष्मण सचेत होकर उठ खड़े हुए ।

इसके पश्चात् पुनः लक्ष्मण-रावण युद्ध हुआ । लक्ष्मण के तीरों से वह अचेत हो गया और सारथि उसे लंका में लौटा ले गया ।

(लंकाकाण्ड, दोहा ८३-८४)

: १४ :

संजीवनी बूटी

—मेरी भेंट श्रीराम से करा दो।

—इस समय वे भ्रातृशोक से विह्वल हैं, उन्हें व्यर्थ ही परेशान करने की आवश्यकता नहीं।

—उनके शोक का उपाय मैं जानता हूँ। यदि लक्ष्मण को जीवित करना हो तो मेरी उनसे भेंट जरूरी है।

विद्याधर के ये शब्द सुनते ही भामण्डल उतावला हो गया। तुरन्त उस आगन्तुक विद्याधर को साथ लेकर राम के पास पहुँचा। श्रीराम को नमस्कार करके विद्याधर बोला—

—यदि लक्ष्मण को सजीवन करना है तो विशल्या के स्नान जल से इनका अभिसिंचन कर दीजिए।

राम ने अपने हितैषी विद्याधर को कृतज्ञतापूर्वक देखा और उससे पूछा—

—भद्र ! आप कौन हैं और मुझ पर यह प्रीति कैसे उत्पन्न हुई ?

आगन्तुक विद्याधर बताने लगा—

श्रीराम ! मैं संगीतपुर के राजा शशिमण्डल और रानी सुप्रभा का पुत्र हूँ। मेरा नाम प्रतिचन्द्र है। एक बार स्त्री सहित मैं आकाश मार्ग से जा रहा था कि सहस्रविजय विद्याधर ने मुझे देख लिया।

स्त्री के कारण उसने मुझसे शत्रुता बाँध ली और युद्ध करने लगा। वहुत समय तक हम दोनों में युद्ध होता रहा। अन्त में उसने चन्डरवा शक्ति का प्रयोग करके मुझे भूमि पर गिरा दिया। मैं जमीन पर पड़ा-पड़ा तड़पने लगा। असह्य पीड़ा से मेरी वड़ी दुर्दशा थी।

जहाँ मैं गिरा था वह अयोध्या नगरी का माहेन्द्रोदय नाम का उद्यान था। तुम्हारे दयालु भाई भरत ने मुझे देखा। उन्होंने सुगन्धित जल से मेरा सिंचन किया। गजव का प्रभाव था उस जल में। शक्ति तुरन्त ही मेरे शरीर से वाहर निकल गई और तत्काल ही घाव भी भर गया।

आपके वन्धु ने मेरी प्राणरक्षा की तो क्या मैं आपकी इतनी भी सहायता न करूँ कि लक्ष्मण को सजीवन करने का उपाय ही वता दूँ। आप विलम्व मत करिए विशल्या का अभिसिंचन जल मँगवाइये।

श्रीराम ने उत्सुक होकर पूछा—

—विद्याधर ! यह जल कहाँ मिलेगा और कौन है यह विशल्या ?

विद्याधर ने वताया—जब मैं स्वस्थ हो गया तो मुझे भी उस चमत्कारी जल के सम्बन्ध में उत्सुकता जाग्रत हुई थी। तव मैंने भी भरतजी से यही पूछा था। उन्होंने जो कुछ वताया वही मैं आपको उन्हीं के शब्दों में सुनाये देता हूँ।

यह कहकर विद्याधर ने आगे वताया—

एक समय विंध्य नाम का सार्थवाह गजपुर से अयोध्या आया। उसके साथ एक पाड़ा (भैंस का वच्चा) भी था। अतिभार (अत्यधिक वोझ लदा होना) के कारण वह मार्ग में ही गिर पड़ा। पाड़ा एक वार गिरा तो फिर उठ न सका। सार्थवाह तो उसे छोड़कर आगे चल दिया और पाड़ा यहीं पड़ा-पड़ा अपने जीवन के अन्तिम दिन गिनने लगा।

लोगों ने उसके सिर पर पाँव रखकर चलना प्रारम्भ कर दिया। पाड़ा विवशतापूर्वक सब कुछ सहता रहा। विवश प्राणी को और भी तंग करना कुछ लोगों की आदत-सी होती है। इस मानवकृत उपद्रव से मरकर पाड़ा श्वेतंकर[1] नगर का राजा पवनपुत्रक वायुकुमार देव बना।

अवधिज्ञान से उसे अपनी कष्टप्रद मृत्यु का ज्ञान हुआ। उसे उन लोगों पर बड़ा क्रोध आया जिन्होंने उसे अकारण ही पीड़ा पहुँचाई थी। कुपित होकर उसने अयोध्या नगर में विभिन्न प्रकार की महामारियाँ फैला दीं। सम्पूर्ण नगर रोगग्रस्त हो गया किन्तु एक व्यक्ति ऐसा भी था जिस पर इन महामारियों का कोई प्रभाव न हुआ। उसका नाम था राजा द्रोणमेघ ! न तो वह स्वयं ही बीमार पड़ा और न उसके परिवार का ही कोई व्यक्ति। द्रोणमेघ मेरा (भरत का) मामा था किन्तु उस समय अयोध्या में ही रहता था।

जब उससे इसका कारण पूछा गया तो उसने बताया—मेरी रानी प्रियंकरा पहले एक भयंकर रोग से पीड़ित थी। अनेक इलाज कराये पर कोई लाभ न हुआ। वैद्य, तांत्रिक, मांत्रिक, सभी अपने-अपने प्रयास करके निराश हो गये। मैं भी बहुत दुःखी था और रानी भी। इसी दशा में एक बार उसने गर्भ धारण कर लिया। गर्भ के प्रभाव से उसकी व्याधि शान्त हो गई। अनुक्रम से गर्भकाल पूरा होने पर उसने एक पुत्री को जन्म दिया। उसका नाम हम लोगों ने विशल्या रखा। एक बार हमारे देश में भी महामारियों का प्रकोप हुआ तो विशल्या के स्नानजल से सब की सब शान्त हो गईं। कुछ समय पश्चात सौभाग्य से मुझे सत्यभूति नाम के चारण मुनि के दर्शन हो गये। विशल्या के सम्बन्ध में पूछने पर मुनिदेव ने बताया—यह

---

१ यह नगर भुवनपति देवों का मालूम पड़ता है।

(देखिये त्रिषष्टि शलाका ७।७ गुजराती अनुवाद पृष्ठ १३३)

विशल्या के पूर्वजन्म के तप का प्रभाव है। इसके स्नानजल के सिंचन से रोग, व्याधि, आदि तो शान्त होंगे ही; संसार की कोई भी शक्ति इसके पुण्य प्रभाव के समक्ष न ठहर सकेगी। शक्ति के आघात से हुआ घाव भी तुरन्त भर जायगा। इसके बाद पूछने पर मुनिश्री ने कहा—राम का छोटा भाई लक्ष्मण इसका पति होगा। मुनिराज के यह वचन सुनकर मुझे सन्तोष हुआ।

राजा द्रोणमेघ यह कहकर चुप हो गया और मेरे (भरत के) अभिसिंचन करते ही समस्त नगर व्याधिमुक्त हो गया।

विद्याधर आगे कहने लगा—

—स्वामी ! उसी जल से सिंचन करके भरतजी ने मेरे प्राणों की रक्षा की। आप भी उसी जल को तुरन्त मँगवाइये जिससे लक्ष्मणजी के जीवन की रक्षा हो।

यह वार्ता विभीषण भी बैठा सुन रहा था। वह तुरन्त बोल उठा—

—स्वामी जल्दी करिए। सूर्योदय होते ही अनर्थ हो जायगा और हम कुछ न कर सकेंगे।

जितनी उतावली विभीषण आदि को थी उससे भी ज्यादा उतावले श्रीराम थे। उनके भ्रातृस्नेह को कौन जान सकता था। लक्ष्मण तो मूर्च्छित, स्तब्ध पड़े थे और राम के हृदय में सुलगता हुआ दावानल—उसके प्रचण्ड ताप से तड़पते हुए प्राणों की घोर वेदना को वही जानते थे। उन्होंने तत्काल ही भामण्डल, हनुमान और अंगद को विशल्या का स्नानजल शीघ्र से शीघ्र लाने की आज्ञा दी।

लक्ष्मण की प्राण-रक्षा हेतु चिन्तातुर तीनों सुभट अतिशीघ्रगामी विमान में बैठकर अयोध्या की ओर चल दिये।

— त्रिषष्टि शलाका ७।७

: १५ :

विशल्या द्वारा स्पर्श-उपचार

रात्रि के निविड़ अन्धकार में भरत अयोध्या के राजमहल की छत पर प्रगाढ़ निद्रा में लीन थे। विमान से महल की छत पर उतर कर तीनों वीरों (हनुमान, भामण्डल और अंगद) ने भरत को सोता हुआ देखा तो चिन्ता में पड़ गये। स्वामी का कार्य तो करना ही था। भरत को जगाये बिना वह कैसे होता? और यदि असमय जगाने पर भरत नाराज हो गये तो……?

उन्होंने सोच-विचारकर एक युक्ति निकाली। मधुर स्वर में उनकी शय्या के समीप खड़े होकर गाने लगे। स्वर-लहरी के कानों में प्रवेश करते ही भरत की निद्रा टूट गई। भामण्डल ने तुरन्त नमस्कार किया। रात्रि के समय भामण्डल की चिन्तित मुख-मुद्रा देखकर भरत विस्मित रह गये। इधर-उधर देखा तो दो वीर और खड़े थे। अचकचाकर पूछा—

—भद्र भामण्डल! तुम्हारे साथ ये दोनों वीर कौन हैं?

इंगित करते हुए भामण्डल ने बताया—यह पवनंजय के पुत्र महापराक्रमी वीर हनुमान हैं और यह हैं वानरराज सुग्रीव के सुपुत्र अंगद।

—तुम सबके चेहरों पर हवाइयाँ क्यों उड़ रही हैं? आधी रात के समय आगमन का कारण?

भामण्डल ने बताया—

—भरत ! राम-रावण युद्ध में लक्ष्मणजी को शक्ति लग गई है। उन्हें सजीवन करने के लिए हमें विशल्या का स्नान-जल चाहिए।

—राम-रावण युद्ध ? लक्ष्मण को शक्ति ? यह क्या पहेली है ? स्पष्ट बताइए। —भरत ने संभ्रमित होकर पूछा।

—अभी समय नहीं है, फिर कभी पूछना। यदि सूर्योदय हो गया तो लक्ष्मणजी के प्राण नहीं बच सकेंगे। जल्दी करिए। —आतुरतापूर्वक भामण्डल ने कहा।

प्रिय भाई के प्राणों पर संकट आया जानकर भरत एकदम उछल कर खड़े हो गये।

—चलो मेरे साथ ? —उनके शब्दों में चिन्ता झलकने लगी।

—कहाँ ?

—कौतुकमंगल नगर, जहाँ विशल्या रहती है।

भरतजी के इन शब्दों के साथ सभी विमान में बैठे और शीघ्र गति से चलकर कौतुकमंगल नगर पहुँचे। मार्ग में भामण्डल ने सीताहरण से लेकर युद्ध तक की सभी बातें संक्षेप में बता दीं।

रात्रि को ही भरत ने मामा द्रोणमेघ को जगाया और विशल्या का स्नानजल माँगा।

उनकी इस अकस्मात् माँग से द्रोणमेघ चकित रह गये। बोले—

—वत्स ! बात क्या है ? तुम घबराये हुए क्यों हो ?

—लक्ष्मण युद्ध-स्थल में मूर्च्छित पड़े हैं। उन्हें सजीवन करने हेतु विशल्या का स्नानजल तुरन्त चाहिए। —भरत ने उत्तर दिया।

—स्नानजल क्या, विशल्या को ही ले जाओ। लक्ष्मण ही तो

इसका पति है। —यह कहकर राजा द्रोणमेघ ने एक हजार कन्याओं के साथ विशल्या को भेज दिया।

भामण्डल आदि ने भरत को तो अयोध्या में उतारा और वे सब लंका की ओर चल दिये। दूर से आते हुए विमान के तीव्र प्रकाश से लोगों को भ्रम हो गया कि सूर्य की पहली किरण गगन-मण्डल में चमक रही है। सुभटों के मुख-मण्डल म्लान हो गये।

कुछ ही देर में जब विशल्या सहित भामण्डल, हनुमान, अंगद विमान से उतरे तो लोगों को सन्तोष हुआ।

एक पल का भी विलम्ब किये बिना सभी लक्ष्मण के पास पहुँचे।

पंच परमेष्ठी का ध्यान करके विशल्या ने लक्ष्मणजी का स्पर्श किया। विशल्या का स्पर्श पाते ही महाशक्ति अमोघविजया लक्ष्मण के शरीर से निकलकर जाने लगी। तभी वीर हनुमान ने उछलकर उस शक्ति को पकड़ लिया। शक्ति बोली—

—हनुमान! मुझे क्यों पकड़ा है?

—तुमने हमारे स्वामी के अनुज को मूर्च्छित किया था। मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।

अमोघविजया की खिलखिलाहट चारों ओर गूँज गयी। कहने लगी—

—विशल्या का सान्निध्य पाकर तुम भी मुझे रोकने का दम भरने लगे। रहा लक्ष्मण को मूर्च्छित करने का प्रश्न तो उस समय तो मैं दासी थी रावण की। उसकी आज्ञा मानना मेरा कर्तव्य था। इसमें मेरा क्या दोष? मुझे इनके शरीर में प्रवेश करना ही पड़ा।

—तो अब क्यों जा रही हो?

—मैं विशल्या के पूर्वभव के तप-तेज को सह सकने में असमर्थ

हूँ। इसलिए निकलकर जा रही हूँ। मुझे छोड़ दो। मेरे रोकने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। जानते नहीं, मैं महाशक्ति प्रज्ञप्ति की बहन हूँ।

—तो ?

—तो क्या ? विशल्या की उपस्थिति में तो कुछ कर ही नहीं सकती। हनुमान ! व्यर्थ की बातों से कोई लाभ नहीं। बच्चों की सी उद्दण्डता मत करो। मुझे छोड़ दो और अपने कर्तव्य पालन की ओर ध्यान दो।

हनुमान ने शक्ति को छोड़ दिया। तुरन्त ही अमोघविजया अन्तर्धान हो गई।

विशल्या ने पुनः लक्ष्मण का स्पर्श किया और गोशीर्ष चन्दन आदि का लेप किया। लक्ष्मण का घाव भर गया। वे सचेत होकर उठ बैठे। अग्रज ने अनुज को कण्ठ से लगा लिया। विशल्या लज्जा से मुख नीचा किये बैठी रह गई।

लक्ष्मण ने राम से पूछा—

—तात ! यह स्त्रीरत्न और युद्ध-स्थल में ?

राम ने अनुज को विशल्या का सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया। सभी घायलों पर विशल्या के स्नानजल का सिंचन किया गया। सैनिक और सुभट स्वस्थ हो गये।

चारों ओर विशल्या का जय-जयकार होने लगा।

राम की आज्ञा से वहीं लक्ष्मण का पाणिग्रहण विशल्या और उसके साथ आई एक हजार कन्याओं के साथ हो गया।

लक्ष्मण के पुनः जीवित होने और उनके विवाह के उपलक्ष्य उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाने लगा। राम की सेना हर्ष विभोर होकर उछलने-कूदने लगी। मंगल-वादित्र बजने लगे। हर्ष की लहर

चारों ओर छा गई। राम के कटक की प्रसन्नता भरी आवाजें लंका के राजमहल तक जा पहुँची।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

※ ※

विशेष—(१) वाल्मीकि रामायण के अनुसार लक्ष्मण का उपचार किया था वानर सुषेण ने महोदय पर्वत पर उत्पन्न हुई चार औषधियों से जिसे हनुमानजी लाये थे। [युद्ध काण्ड]

(२) तुलसीकृत में नाम तो सुषेण ही रहा किन्तु वह वानर न रहा। वह हो गया लंका का वैद्य। हनुमान उसे घर सहित लंका से उठा लाये और उसने लक्ष्मण को सजीवित किया। [लंका काण्ड, दोहा ६१]

यहाँ भी हनुमान के द्वारा पर्वत लाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त हनुमान के द्वारा ही अयोध्या में भरत को भी राम-रावण युद्ध और लक्ष्मण के अचेत होने की सूचना मिलती है।

[लंकाकाण्ड, दोहा ५९-६०]

: १६ :

बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि

राम के कटक की प्रसन्नता भरी आवाजों से रावण का कुतूहल जाग्रत हो गया। तभी गुप्तचरों ने आकर सूचना दी—'लक्ष्मण जीवित हो उठे हैं।' इस समाचार को सुनकर रावण के पैरों के नीचे से जमीन ही निकल गई। बड़ी कठिनाई और अपनी सर्वश्रेष्ठ शक्ति के प्रयोग से तो वह लक्ष्मण को मूच्छित कर पाया और वह भी स्वस्थ हो गये। उसके मुख पर निराशा स्पष्ट खेलने लगी।

तुरन्त मन्त्रियों को बुलवाया और उनसे सलाह करने लगा—अब क्या किया जाय ?

मन्त्रियों के हृदय काँप रहे थे। उन्हें दोनों ओर से भय था। यदि सीताजी को लौटाने की सम्मति देते हैं तो रावण के कोप का भाजन बनना पड़ता है और नहीं तो लंका का विनाश स्पष्ट ही है। मन्त्रियों ने ऐसे संकटकाल में स्वहित को त्यागकर देशहित को सामने रखा। उन्होंने कहा—

—महाराज ! राम की अनुनय के सिवाय और कोई उपाय नहीं।

अनुनय शब्द दम्भी रावण को बुरा लगा। वह बोला—

—अनुनय तो जीवन में मैं कभी कर नहीं सकता। किसी मनुष्य का अनुनय करे और वह भी दशमुख, यह असम्भव है। कोई और युक्ति सोचिए आप लोग।

मन्त्रियों ने अनुभव किया कि उनके मुख से ऐसा शब्द निकल गया जो स्वामी की रुचि के प्रतिकूल है। सँभलकर वोले—

—तो सन्धि का प्रयास किया जा सकता है। यह कार्य राजाओं के लिए उचित और सम्माननीय है।

—हाँ, सन्धि अवश्य की जा सकती है किन्तु इसमें भी कुछ न कुछ देना पड़ेगा। —दशमुख ने सोचते हुए कहा।

—देना पड़ेगा तो प्राप्त भी होगा। —मन्त्रियों ने वात सँभाली।

—हाँ, यह तो सत्य है। सन्धि में लेन-देन दोनों ही होते हैं। यह वात अलग है कि किसी को कम मिले और किसी को अधिक।

मन्त्रियों ने समझाया—

—लंकेश्वर ! आपको कुम्भकर्ण जैसा भाई और इन्द्रजित तथा मेघवाहन जैसे सुपुत्रों के साथ अनेक राक्षसवीर माँग लेने चाहिए। सभी वन्दियों को मुक्त करा लेना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है।

दशमुख ने निराश स्वर में कहा—

—मैंने तो सोचा था कि लक्ष्मण मेरी शक्ति से प्रातः तक मर ही जायेगा और भ्रातृस्नेह के कारण राम भी प्राण त्याग देगा। मेरे सभी सुभट स्वयं ही मुक्त हो जायेंगे। किन्तु लक्ष्मण के सजीवित होने से स्थिति वदल गई है। सन्धि करके ही स्वजनों को वन्धन-मुक्त करना पड़ेगा।

—यही उचित है। —मन्त्रियों ने समर्थन कर दिया।

रावण ने सामन्त नाम के चतुर दूत को वुलाया और अपना अभिप्राय समझाकर कहा—राम को साम-दाम-दण्ड-भेद किसी भी प्रकार से अपने अनुकूल करना है।

'जो आज्ञा' कहकर दूत चलने लगा तो मन्त्रियों ने दवी जवान से सीताजी को वापिस देने की वात कही। लेकिन रावण ने स्पष्ट कह

दिया कि—एक सीता के वदले मैं आधा राज्य और तीन हजार सुन्दरियाँ दे सकता हूँ।

चतुर दूत ने लंकेश की यह बात भी गाँठ बाँध ली। उसने प्रणाम किया और लंका से निकलकर राम के शिविर में जा पहुँचा। आदर-पूर्वक प्रणाम करके राम से बोला—

—श्रीराम ! मैं लंकेश्वर का दूत हूँ और उनकी ओर से सन्धि करने आया हूँ।

— क्या चाहता है तुम्हारा स्वामी ? —राम ने किंचित् मुस्कराहट से कहा।

दूत बहुत चतुर था। एक-एक वात कहने लगा—

—आप हमारे सभी वन्दियों को मुक्त कर दें।

—और······ ? —राम ने पूछा।

—आधा राज्य और तीन हजार कन्याएँ ग्रहण कीजिए।

राम के मुख पर हँसी खेल गई। उन्होंने पूछा—

—इन सबके वदले क्या चाहता है, लंकापति ?

—वस ! एक छोटी सी वात ! —दूत ने उत्तर दिया।

—वह क्या ?

—सीताजी से लंकेश के विवाह की आपकी सम्मति। —दूत ने कह ही तो दिया हिम्मत बाँधकर।

शिविर में उपस्थित हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल, लक्ष्मण आदि सभी के मुख रक्तवर्णी हो गये किन्तु उन्होंने वीच में वोलना उचित न समझा। राम ने शान्त स्वर में कहा—

—दूत ! न तो मुझे राज्य की आकांक्षा है और न सुन्दरियों की इच्छा। मुझे तो केवल सीता चाहिए क्योंकि वह मेरी धर्मपत्नी है।

—एक स्त्री के लिए, इतने वैभव को ठोकर मार रहे हैं, आप ! दूत ने पुनः समझाने की चेष्टा की।

—भूलते हो भद्र ! सीता मेरी धर्मपत्नी है और उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य। रावण ने अधर्म किया है। पराई स्त्री को हरण करके उसने अपनी श्वान-वृत्ति ही दिखाई है। मैं सीता को अवश्य ही वापिस लूँगा।

चतुर दूत साम और दाम का प्रयोग तो कर चुका था। अब उसने दण्ड के प्रयोग का निश्चय किया।

—आप सीता को वापिस तो ले ही नहीं सकेंगे; अपने प्राणों से भी हाथ धो बैठेंगे। लंकेश्वर अविजेय है और आपकी हार निश्चित। —दूत दृढ़तापूर्वक बोला—

—भद्र ! हार अधर्म की होती है, पाप की होती है। रावण का मार्ग अधर्म का है। मेरी जीत सुनिश्चित है—जहाँ धर्म वहाँ जय।

—नहीं ! जहाँ शक्ति वहाँ जय। लंकापति शक्तिसम्पन्न है। एक वार तो लक्ष्मण जीवित हो उठे हैं किन्तु अबकी वार इनकी प्राणरक्षा असम्भव ही समझिये और इनके प्राणान्त के साथ ही अपनी हार भी।

दूत सामन्त के शब्द आवश्यकता से अधिक कर्कश थे। शान्त-गम्भीर राम की मुख-मुद्रा भी कठोर हो गई। चेहरा तमतमा गया। लक्ष्मणजी से रहा न गया। उन्होंने दूत को फटकारते हुए कहा—

—अरे अधम दूत ! तू और तेरा स्वामी हमारी शक्ति को तो जानता नहीं और व्यर्थ ही वक-वक करता जाता है। लंका के सभी वीर हमारे वन्दी हैं। रह गया अकेला रावण सो उसे तो मैं ही

यमराज के पास भेज दूँगा। वहीं वह अपने कुकर्मों का फल भोगता रहेगा। जाकर कह दे अपने स्वामी से कि उसके सिर पर काल नाच रहा है। नरक का द्वार उसके लिए खुला पड़ा है।

कुछ कहने के लिए रुका दूत तो लक्ष्मणजी गरजे—

—तुरन्त निकल जा, यहाँ से।

स्वामी की कुपित मुद्रा देखकर वानर भी उत्साहित हो गये। उन्होंने गरदन पकड़कर दूत को वाहर निकाल दिया।

दूत सामन्त ने अपनी निष्फलता और पराभव की करुण कथा लंका की राजसभा में आकर कह दी।

रावण ने मन्त्रियों से पुनः पूछा—

—अव क्या उपाय शेष है ?

मन्त्रियों ने स्पष्ट कहा—

—स्वामी ! अव तो सीताजी को देने के अलावा और कोई उपाय शेष नहीं है।

अभिमानी रावण को यह वात नहीं रुची। उसने सभी को विदा कर दिया और स्वयमेव ही युक्ति सोचने लगा। भय की लहर तो उसके हृदय में भी व्याप्त थी। राम के सम्मुख उसे अपनी शक्ति तुच्छ लगने लगी थी।

शक्ति चुकने के वाद प्राणी को भक्ति की स्मृति आती है। रावण की भी यही दशा हुई। तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ की स्तुति-पूर्वक उसने वहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने का निश्चय किया। मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक उसने शान्ति जिनेश्वर की स्तुति की और वहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने लगा। पति का ध्यान निर्विघ्न पूरा हो—इसलिए पटरानी मन्दोदरी ने लंका में घोषणा करा

दी—'आठ दिन तक सभी नगरवासी निष्ठापूर्वक अहिंसामूलक जैनधर्म का पालन करें।'

सुग्रीव के गुप्तचरों ने यह सूचना लाकर उसे दी। तुरन्त वह राम के पास पहुँचा और बोला—

—स्वामी ! रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। विद्या सिद्ध हो उससे पहले ही उसे वश में कर लिया जाय तो ठीक है अन्यथा वह दुर्निवार हो जायगा।

राम ने हँसकर उत्तर दिया—

—वानरराज ! ध्यानपरायण रावण पर कैसे शस्त्र प्रहार किया जा सकता है ?

—किन्तु बाद में तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जायगी। असम्भव ही हो जायगा उसका मरण। बहुरूपिणी विद्या अत्यधिक शक्तिशाली होती है।

—धर्म से अधिक शक्ति किसी में नहीं है, किष्किधानरेश ! हमारा मार्ग धर्म का है। हम अवश्य विजयी होंगे।

राम के इस उत्तर से सुग्रीव समझ गया कि ध्यान-मग्न रावण के विरुद्ध न तो राम स्वयं कुछ करेंगे और न करने की अनुमति देंगे। वह चुपचाप वहाँ से चला गया। किन्तु उसको चैन नहीं पड़ा। उसके संकेत पर अंगद रावण के ध्यान में विघ्न डालने लंका जा पहुँचा।

अंगद ने अनेक प्रकार के उपद्रव किये किन्तु रावण अपने ध्यान से तनिक भी विचलित न हुआ।

अन्य कोई उपाय न देखकर अंगद रावण की पटरानी मन्दोदरी को उसके सामने पकड़ लाया और बोला—

—अरे ! रावण तू किस पाखण्ड में लीन है। जैसे तूने सीता का

हरण किया था वैसे ही मैं तेरी रानी मन्दोदरी का हरण करके लिए जाता हूँ।

यह कहकर उसने मन्दोदरी के केश खींचे। पीड़ा से विह्वल मन्दोदरी चीखने-चिल्लाने लगी। इसके करुण रुदन से अंगद का हृदय तो पसीज गया लेकिन दृढ़ निश्चयी रावण का ध्यान भंग न हुआ।

उसी समय अपनी दिव्य आभा से आकाश को प्रकाशित करती हुई वहुरूपिणी विद्या प्रगट होकर वोली—

—रावण! मैं सिद्ध हो गई हूँ। मैं सम्पूर्ण विश्व को तेरे वश में कर सकती हूँ तो राम-लक्ष्मण किस खेत की मूली हैं।

दशमुख ने उत्तर दिया—

—इस समय मुझे तुमसे कोई काम नहीं है। जव तुम्हारा स्मरण करूँ तव मेरी सहायता करना।

विद्या तुरन्त अन्तर्धान हो गई और अंगद सहित समस्त वानर भी उसी समय उड़कर अपने शिविर में जा पहुँचे।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

**

विशेष—तुलसीकृत में भी रावण द्वारा यज्ञ किये जाने का उल्लेख है। सुग्रीव ने राम को इसकी सूचना दी। श्रीराम ने हनुमान अंगद आदि वानरों को भेजा। वानर उसकी स्त्रियों को पकड़ लाये और केश पकड़कर घसीटने लगे। इस पर कुपित होकर रावण उठा और वानरों को मारने लगा। तव तक वानरों ने उसका यज्ञ नष्ट कर दिया।

इस प्रकार रावण अपना यज्ञ पूरा नहीं कर सका। यह युद्ध का सातवाँ दिन था। [लंका काण्ड, दोहा ८५]

: १७ :

रावण वध

विद्या सिद्ध हो जाने के उपरान्त जैसे ही रावण अपने आसन से उठा तो पटरानी मन्दोदरी ने अंगद के दुर्व्यवहार का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। अभिमानपूर्वक उसने हुंकार भरी। मन्दोदरी समझ गई कि रावण को विद्या सिद्ध हो चुकी है।

स्नान भोजन आदि आवश्यक शारीरिक क्रियाओं से निपटकर लंकेश्वर अभिमान से ऊँचा मुँह किये देवरमण उद्यान पहुँचा और सीताजी से कहने लगा—

—सुन्दरी! आज तक तो मैंने तेरी खुशामद की। मेरा नियम भंग न हो इसलिए तुझे छोड़ता रहा किन्तु जानकी! अब स्पष्ट सुन ले। राम-लक्ष्मण को मारकर तुझ पर बलात्कार करूँगा।

रावण के वज्र समान कठोर शब्दों ने जानकी के मर्म पर तीव्र प्रहार किया। वह अचेत हो गई। रक्षक राक्षसियों के शीतोपचार से सचेत हुई तो सामने यमदूत के समान रावण अब भी खड़ा था शीलवती ने सस्वर कहा—

—दुष्ट! उससे पहले ही मेरे प्राण निकल जायेंगे।

मुस्कराकर दशमुख बोला—

—सीते! न तो मुझे आत्महत्या का कोई साधन मिलेगा और न तू मर सकेगी। मैं तुझे प्रत्येक दशा में जीवित रखूँगा।

सती ने तुरन्त अभिग्रह लिया—

—यदि उनकी (राम-लक्ष्मण की) मृत्यु हो जाय तो उसी समय से मुझे आमरण अनशन हो।

सीता की अविचल पति भक्ति देखकर रावण का पापी हृदय भी डोल गया। वह सोचने लगा—'अरे! मैंने व्यर्थ ही इस सती को भी संताप पहुँचाया और स्वयं भी कामाग्नि में जला। यह शरीर छोड़ सकती है किन्तु राम को नहीं। इसके रोम-रोम में राम बसा है।'

उसकी विचारधारा पुनः पलटी—'अब क्या हो सकता है? इसे वापिस देना तो अपमान और लज्जा की बात होगी। संसार में यही अपयश होगा कि महाबली रावण एक नारी के सम्मुख झुक गया, पराजित हो गया। अपमान का जीवन भी कोई जीवन है, इससे तो मृत्यु लाख गुनी अच्छी।'

लंकेश ने निश्चय किया—'युद्ध में मैं राम-लक्ष्मण को मारूँगा नहीं, मात्र बन्दी बना लूँगा और यहाँ लाकर सीता उन्हें सौंप दूँगा। इसमें मेरा सम्मान भी रह जायगा, यश भी फैलेगा और इस सती का संताप मिट जायेगा। और यदि मैं ही मर गया तो·······राम से इसका मिलाप स्वयं ही हो जायगा। मेरी मृत्यु हो या विजय सीता का कल्याण दोनों दशाओं में ही निश्चित है। आज का दिन सीता के कल्याण का ही होगा।

गम्भीर ऊहापोह, सोच-विचार में निमग्न रावण वहाँ से चला आया। इन्हीं विचारों में उसे रात को नींद भी नहीं आई। प्रातःकाल हो गया।

सती के अविचल पातिव्रत्य ने रावण जैसे दुर्मद का भी हृदय परिवर्तित कर दिया। धन्य है सती शिरोमणि सीता।

× × ×

सूर्योदय के साथ ही रावण अपनी सेना सहित युद्धक्षेत्र में आ डटा। राम की सेना के वीर तो सन्नद्ध थे ही। दोनों ओर के सुभट युद्ध में रत हो गये।

राक्षससेना का संचालन रावण स्वयं कर रहा था और राम की सेना का लक्ष्मण। महाभुज लक्ष्मण राक्षससेना को चीरते हुए रावण के सम्मुख आ डटे। पराक्रमी पुरुषों के हृदय कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर होते हैं। युद्ध-भूमि में ही उनके वज्र हृदय की झाँकी मिलती है। यद्यपि रावण लक्ष्मण को मारना नहीं चाहता था किन्तु शस्त्र-प्रहार में निर्बलता दिखाना उसकी कायरता होती। किन्तु लक्ष्मण के हृदय की दशा इसके विपरीत थी। वे रावण का प्राणान्त करने के लिए दृढ़-संकल्प थे।

दोनों वीर विभिन्न प्रकार के साधारण शस्त्रों से युद्ध करने लगे। एक प्रहार करता तो दूसरा प्रतिकार। सामान्य शस्त्रों से जय-पराजय का निर्णय न हो पाया तो दिव्यास्त्रों की बारी आई। रावण ने अनेक दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया किन्तु वीर लक्ष्मण ने सभी को विफल कर दिया। पसीना आ गया लंकेश को। समझ गया कि प्रतिपक्षी वीर भी सामान्य कोटि का नहीं है। उसके सभी छल-प्रपंच व्यर्थ ही गये। लक्ष्मण के सम्मुख उसकी एक न चली।

अपनी विजय को असम्भव जानकर रावण ने बहुरूपिणी विद्या का स्मरण किया। विद्या तत्काल उपस्थित हुई। रावण ने उसकी सहायता से अनेक प्रकार के भयंकर रूप बनाकर लक्ष्मण को भयभीत करने का प्रयास किया। उसके इन अनेक रूपों को देखकर लक्ष्मण ने व्यंग किया—

—क्या मदारी के से खेल दिखा रहे हो, लंकेश ? तुम समझते हो इस नटविद्या से मैं डर जाऊँगा।

उत्तर दिया रावण के विकट अट्टहास ने।

ज्यों-ज्यों लक्ष्मण उसके विभिन्न रूपों पर वाण वरसाते त्यों-त्यों रावणों की संख्या वढ़ती जाती। युद्ध-भूमि में चारों ओर रावण ही रावण दिखाई देने लगे। उन सवके सम्मिलित अट्टहासों से दिशाएँ काँप उठीं। वानर और राक्षस दोनों ओर के वीर रावण की इस माया को संभ्रमित से देखते रह गये।

संभ्रमित न हुए तो एक लक्ष्मण। वे अकेले ही अनेक रावणों से युद्ध कर रहे थे, पूर्ण पराक्रम से। न उनके तन पर स्वेद था न मन में खेद।

उनकी विकट मार से रावण घवड़ा गया। उसने विद्या का संकोचन कर लिया। वहुरूपिणी विद्या भी लक्ष्मण के पराक्रम के समक्ष सफल न हुई।

अर्द्ध चक्री के चिह्न के रूप में रावण ने दिव्य चक्ररत्न का स्मरण किया। शत-शत प्रकाश रश्मियाँ विखराता हुआ चक्र उसके हाथ में आ गया। चक्र को घुमाते हुए उसने कहा—

—लक्ष्मण ! अव भी समय है, प्राण वचाकर युद्ध-क्षेत्र से वापिस चला जा अन्यथा यह चक्र तेरा कण्ठच्छेद ही कर देगा।

लक्ष्मण ने मुस्कराते हुए कहा—

—रावण ! तेरा मार्ग अधर्म का है। तेरी सभी विद्याएँ निष्फल हो चुकी हैं। यह चक्र ही तेरा काल वनेगा। परस्त्री-प्रसंग के दोष से तेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है।

कुपित होकर रावण ने चक्र लक्ष्मण पर फेंक दिया। दिव्य चक्र अपनी आभा फैलाता हुआ लक्ष्मण के पास आया और उनकी प्रदक्षिणा देकर दाएँ हाथ की ओर आकर ठहर गया। चक्र की आभा से लक्ष्मण की शरीर-कान्ति अनेक गुनी वढ़ गई।

दशमुख ने यह दृश्य देखा तो अवाक् रह गया उसका अमोघ अस्त्र भी लक्ष्मण के वश में हो गया। उसके मानस में केवली अनन्त-वीर्य के वचन कौंध गये—'भविष्य में होने वाले वासुदेव के हाथों परस्त्री प्रसंग के दोष के कारण तुम्हारी मृत्यु होगी।' उसे अपनी मृत्यु साक्षात् दिखाई देने लगी।

लक्ष्मण ने उसे विचार-मग्न देखकर चेतावनी दी—

—रावण ! अब भी समय है। सीताजी को वापिस देकर अग्रज श्रीराम से क्षमा माँग और सुख से लंका का राज्य भोग।

इन नीति पूर्ण शब्दों को सुनकर भी अभिमानी का अभिमान कम न हुआ वरन् और भी बढ़ गया। दर्पपूर्वक बोला—

—प्राण रहते मैं राम से क्षमा माँगकर सीता को वापिस न दूँगा।

—तो अब तेरे प्राण ही न रहेंगे। —लक्ष्मण ने उत्तर दिया और घुमाकर चक्र उस पर दे मारा।

साक्षात् कालचक्र के समान ही चक्र गया और रावण का शिरच्छेद करता हुआ वापिस लक्ष्मण के हाथ में आकर ठहर गया।

लंकेश का अभिमानी सिर जमीन की धूल चाटने लगा। उसका धड़ रथ से गिरा और धूल में जा पड़ा। रक्त के फव्वारों से भूमि लाल हो गई।

रावण का शरीर तो युद्ध-भूमि में पड़ा था और उसकी आत्मा ज्येष्ठ कृष्णा ११ (एकादशी) दिन के पिछले प्रहर के समय चौथे नरक में दुःख भोगने के लिए चली गई।

यह था परस्त्री प्रसंग के दोष का फल। और सती सीता को सन्तापित करने का परिणाम।

दशमुख की मृत्यु होते ही आकाश से देवों की जय-जय ध्वनि के

साथ पुष्प वृष्टि हुई। विस्मित से सभी राक्षस और वानर वीर ऊपर की ओर देखने लगे। देववाणी हुई—

विशेष—(१) उत्तरपुराण में राम-रावण युद्ध में दिनों का विभाजन नहीं किया गया है। केवल युद्ध के मध्य ही इतनी सूचना दी गई है।

इस तरह उस युद्ध-स्थल में संग्राम होते-होते बहुत दिन व्यतीत हो गये। (श्लोक ६०४)

घटना क्रम इस प्रकार है—

हनुमान के उत्पात के बाद भी रावण युद्ध हेतु लंका से बाहर नहीं निकला तो राम ने विभीषण से इसका कारण पूछा। विभीषण ने बताया कि रावण इस समय अपनी रक्षा के लिए इन्द्रजित को नियुक्त करके आदित्यपाद नामक पर्वत पर विद्या सिद्ध करने में लगा है। हमें इसी समय विघ्न करके लंका में प्रवेश कर जाना चाहिए।

राम की आज्ञा पाकर विद्याधर कुमार पहाड़ पर जाकर विघ्न करने लगे तो रावण ने अपने अधीन देवों को उनसे युद्ध करने की आज्ञा दी। देवों ने स्पष्ट उत्तर दिया कि 'आपका पुण्य कर्म क्षीण हो चुका है। इसलिए हम आपकी कोई सहायता नहीं कर सकते।' और वे सब चले गये।

रावण क्रोधित होकर नगर में आया और सेना सजाकर युद्ध करने हेतु निकला।

इसके पश्चात युद्ध का वर्णन है।

भाग्य प्रतिकूल होने से रावण की सेना भंग होने लगी तो उसने सीताजी का मायामयी सिर राम के सामने फेंक दिया। राम बहुत दुःखी हुए। तब विभीषण ने बताया यह तो रावण की माया है। (श्लोक ६११-६१२)

उसके पश्चात माया युद्ध प्रारम्भ हुआ। रावण अपने ही चक्र से लक्ष्मण के द्वारा मारा गया।

—वीरो ! संभ्रमित मत हो। ये श्री लक्ष्मण भरतक्षेत्र के आठवें वासुदेव हैं और इनके अग्रज श्रीराम आठवें बलभद्र। इनकी शरण में जाओ।

यहीं सुग्रीव और हनुमान ने अपनी सिद्ध की हुई गरुड़वाहिनी, सिंहवाहिनी, बन्धमोचनी, हननावरणी, चार विद्याएँ राम-लक्ष्मण को अलग-अलग दीं।

(श्लोक ५२१)

यहाँ लक्ष्मण को शक्ति लगना, विशल्या का उपचार, आदि किसी भी घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) मायामयी सीता के शिरच्छेद की घटना का वर्णन वाल्मीकि रामायण में तनिक विस्तार से किया गया है। वहाँ यह माया इन्द्रजित की बताई गई है—

राक्षसों की बड़ी सेना लेकर इन्द्रजित लंका के पश्चिम द्वार से निकला। उस समय खोटी बुद्धि वाले राक्षस ने मायामयी सीता अपने रथ पर बिठा ली। सीता को देखकर वानर उसके विरुद्ध शस्त्र प्रयोग भी न कर सके क्योंकि सीता के घायल हो जाने का भय था। उसने उस मायामयी सीता का सिर काटकर वानरों के समक्ष फेंक दिया और कहा—'अब तुम्हारा युद्ध करना व्यर्थ है।'

हनुमानजी के मुख से यह बात सुनकर राम मूर्च्छित हो गये। तब विभीषण ने बताया कि यह राक्षसों की चालाकी है। आप इस पर विश्वास मत करिए।

विभीषण के वचनों से राम सन्तुष्ट हो गये और पुनः युद्ध करने को तत्पर हुए।

[युद्धकाण्ड]

लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजित (द्वन्द्व युद्ध में) और राम के द्वारा कुम्भकर्ण और रावण का वध रण-भूमि में ही हुआ है। [युद्धकाण्ड]

राम ने रावण का वध ब्रह्मबाण से किया। जब राम अपने तीरों से रावण का सिर काटने लगे तो कटे सिर के स्थान पर दूसरा

सभी वीरों ने अपने शस्त्र नीचे करके श्रीराम लक्ष्मण को हृदय से प्रणाम किया।

सिर तुरन्त आ जाता। राम सौ सिर काटकर खेदखिन्न होने लगे तब उनके सारथि मातलि (यह सारथि और रथ इन्द्र द्वारा ही श्रीराम को दिया गया था) ने उनसे कहा कि 'आप अमोघ ब्रह्मबाण को छोड़िये। देवताओं ने इसके विनाश के लिए उसी बाण को निश्चित किया है।' तब श्रीराम ने अग्नि के समान तेजस्वी और वायु जैसे वेगवान बाण से रावण के वक्षस्थल को विदीर्ण कर दिया। [युद्धकाण्ड]

(३) तुलसीकृत रामचरित मानस में युद्ध के सातवें रावण का दिन का जंबवान, हनुमान, अंगद आदि के साथ युद्ध हुआ। इन वीरों ने रावण की बहुत दुर्गति की। वह कई बार अचेत हुआ और कई बार सचेत।

तब रावण ने अपनी माया फैलाई। वह क्षण भर को अदृश्य हो गया और फिर करोड़ों रावणों के रूप में प्रगट हुआ।

युद्ध-भूमि में चारों ओर रावण ही रावण दिखाई देने लगे। राक्षस और वानर सभी सुभट इस माया से संभ्रमित हो गये।

वानरों ने भयभीत होकर वह विचित्रता राम को सुनाई तो उन्होंने कृपा करके एक शर का सन्धान किया और रावण की सारी माया काट दी।

अब युद्ध-भूमि में एक ही रावण रह गया।

इसके पश्चात राम अपने बाणों से महाबली रावण के सिर और भुजाएँ काटने लगे। किन्तु वे पुनः-पुनः उग आते। इसी में रात हो गई।

युद्ध के आठवें दिन इस विचित्रता से खेदखिन्न होकर राम ने विभीषण की ओर देखा तो उसने बताया—'रावण की नाभि में अमृत कुण्ड है। उसी के कारण इसके सिर और भुजाएँ बार-बार उग आते हैं और इसका मरण नहीं होता।'

लक्ष्मण ने उच्च स्वर से सबको आश्वासन दिया—

—सुभटो ! मेरी किसी से शत्रुता नहीं है। सभी निर्भय होकर अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करो।

वासुदेव लक्ष्मण के इन वचनों से सभी आश्वस्त हुए। वानर-वीरों में हर्ष की लहर दौड़ गई और वे उछल-कूदकर अपनी प्रसन्नता प्रगट करने लगे।

—त्रिषष्टि शलाका ७।७

—उत्तर पुराण ६८।५१६-६३१

※ ※

तब कृपालु राम ने एक विकराल वाण उसकी नाभि में मारा जो उसका सारा अमृत सोख गया। इसके पश्चात तीस वाणों से उसके दश सिर और वीस भुजाएँ काट दीं। रावण का धड़ प्रचण्ड वेग से राम की ओर दौड़ा तो एक वाण से उसके भी दो टुकड़े कर दिये। रावण का धड़ भी पृथ्वी पर गिर पड़ा। [लंकाकाण्ड दोहा, ८५-१०३]

राम-कथा

४ : त्याग के पथ पर

: १ :

विभीषण का राज्यतिलक

समस्त वानर-सेना तो रावण की मृत्यु पर हर्ष से नाच रही थी किन्तु विभीषण का भ्रातृप्रेम जाग उठा। वह रावण के शव को देखकर विलाप करने लगा—'अरे भैया! तुम कहाँ जाते हो? सदा तो साथ रखा और अब अकेले ही चल दिये। मैं भी तुम्हारे पास आता हूँ।' इस प्रकार शोक संतप्त होकर उसने अपनी छुरी निकाली और आत्मघात करने लगा। उसी समय श्रीराम ने उसका हाथ पकड़ लिया और समझाते हुए कहने लगे—

—भद्र! तुम्हारा बड़ा भाई महा पराक्रमी था। उसने युद्ध क्षेत्र में वीर-गति पाई है। उसके लिए शोक न करके अन्तिम क्रिया का प्रबन्ध करो।

श्रीराम के बार-बार समझाने से विभीषण को कुछ धैर्य बँधा। सब नियति खेल मानकर उसने सन्तोष धारण किया।

विभीषण चुप हुआ तो रावण का अन्तःपुर कल्पांत करता हुआ आ गया। मन्दोदरी आदि के करुण क्रन्दन के कारण वानरों का विजयोल्लास फीका पड़ गया। सभी के रुदन से उस महाबली के प्रति संवेदना उमड़ आई। राम की आज्ञा से कुम्भकर्ण, इन्द्रजित आदि बन्धनमुक्त हुए तो वे भी रावण के शव के पास आकर शोकपूर्ण रुदन करने लगे। आँसुओं की झड़ी लग गई।

मानव सदैव ही शोक-संतप्त नहीं रह सकता। नियति के समक्ष सिर झुकाकर उसे सन्तोष करना ही पड़ता है। शोक का आवेग कुछ कम हुआ तो चिता सजाई गई और महाबली दशमुख का शव उस पर रख दिया गया। श्रीराम ने अपने आँसुओं की जलांजलि उस पर चढ़ाई। सभी ने संवेदना और सहानुभूति प्रकट की। चिता को आग लगा दी गई और रावण का पार्थिव शरीर लपटों के मध्य चमकने लगा।

रावण की अन्तिम क्रिया पूरी हुई तो राम-लक्ष्मण ने अमृतसम मधुर शब्दों से कुम्भकर्ण आदि राक्षसवीरों को सम्बोधित करके कहा—

—वीरो! पहले के समान ही तुम लोग अपना राज्य करो। हमें इसकी आवश्यकता नहीं है।

राम-लक्ष्मण की उदारता से सभी चकित रह गये। उन्होंने तो समझा था कि अब लंका का राज्य राम के अधीन हो गया। उनके हृदय में भी राज्य के प्रति विरागता के भाव जागे। गद्गद स्वर से बोले—

—इस राज्य के प्रति हमें भी मोह नहीं रहा। हम तो अक्षय राज्य (मोक्ष पद) के अभिलाषी हैं। आप हमें आज्ञा दीजिए।

उनके उच्च विचारों से राम-लक्ष्मण के हृदय कमल खिल गये।

सौभाग्य से दूसरे दिन प्रातः ही देव दुन्दुभि बजने लगी और आकाश में देव-विमान जाते हुए दिखाई देने लगे। वे सब कुसुमायुध उद्यान में केवली अप्रमेयबल का कैवल्योत्सव मनाने जा रहे थे। रात्रि को ही चतुर्ज्ञानी मुनि को केवलज्ञान हुआ था।

राम-लक्ष्मण तथा कुम्भकर्ण, इन्द्रजित, मेघवाहन आदि सभी केवली के समवसरण में पहुँचे। केवली भगवान की कल्याणकारी देशना सुनने के पश्चात इन्द्रजित और मेघवाहन ने वैराग्य पाकर अपने पूर्व-भव पूछे।

केवली भगवान ने वताया—

इस भरतक्षेत्र की कौशाम्वी नगरी में तुम दोनों प्रथम और पश्चिम नाम के दो निर्धन भाई थे। एक वार भवदत्त मुनि से धर्म-श्रवण कर दोनों भाइयों ने व्रत ग्रहण कर लिए और श्रीसंघ के साथ विचरण करने लगे।

विहार करते-करते दोनों मुनि पुनः कौशाम्वी नगरी में आये। उस समय सम्पूर्ण नगर वसन्तोत्सव मना रहा था। राजा नन्दिघोप भी अपनी रानी इन्दुमुखी के साथ वसन्त क्रीड़ा में तल्लीन था। उसे देखकर पश्चिम मुनि ने निदान किया कि 'इस तपस्या के फलस्वरूप मैं इन्हीं राजा-रानी का पुत्र होकर ऐसे ही सुख भोगूँ।' साथी साधुओं ने इस निदान का प्रायश्चित्त करने का वहुत आग्रह किया किन्तु पश्चिम मुनि नहीं माने और मरकर रानी इन्दुमुखी के गर्भ से रतिवर्द्धन नाम के पुत्र हुए। यौवन वय प्राप्त करके रतिवर्द्धन भोगोपभोगों में लीन हो गया। प्रथम मुनि ने भी कालधर्म प्राप्त किया और पाँचवें देवलोक में महर्द्धिक देव वने। अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव जानकर उनका भ्रातृप्रेम उमड़ आया। रतिवर्द्धन को प्रतिवोध देने हेतु वह मुनि का वेश वनाकर कौशाम्वी जा पहुँचा। उसने रतिवर्द्धन को उसका पूर्वभव सुनाया तो उसको भी जातिस्मरण ज्ञान हो गया। संसार को त्याग कर उसने जिन दीक्षा ली और कालधर्म प्राप्त करके व्रह्मलोक में देव हुआ। वहाँ से च्यवकर दोनों देव महाविदेह क्षेत्र में विवुद्ध नगर के राजा हुए और प्रव्रजित होकर कालधर्म प्राप्त किया। दोनों भाई पुनः अच्युत देवलोक में देव हुए। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर तुम दोनों प्रतिवासुदेव रावण के पुत्र इन्द्रजित और मेघवाहन हुए हो। रतिवर्द्धन के जन्म की माता इन्दुमुखी ही तुम दोनों की माता मन्दोदरी वनी है।

इस वृतान्त को सुनकर मन्दोदरी, इन्द्रजित, मेघवाहन, कुम्भकर्ण आदि ने तत्काल व्रत ग्रहण कर लिए।

श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि ने केवली भगवान की वन्दना की और वहाँ से चल कर लंका में प्रवेश किया। उस समय विभीषण नम्रतापूर्वक आगे-आगे चलता हुआ लंका का परिचय देता जा रहा था। विद्याधर और राक्षस स्त्रियाँ मंगलगान कर रही थीं।

आगे चलते-चलते देवरमण उद्यान आया। वहाँ राम को विरह-विधुरा चन्द्रमा की लीक के समान सीता दिखाई दी। मानो राम के प्राण ही लौट आये हों, उनका सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो गया। सती भी पति को देखकर उठ खड़ी हुई। राम ने आगे बढ़कर सीता को प्रेम-विह्वल होकर अपने पार्श्व (बगल) में बिठा लिया।

सीता की करुणदशा देखकर लक्ष्मण कातर हो गये। उनकी आँखों से नीर बहने लगा। कण्ठ से शब्द नहीं निकल सके। झुक गया सीता के चरणों में। देवर की यह दशा देखकर सीता भी करुणार्द्र हो गई। गद्‌गद स्वर से बोली—'चिरकाल जीओ, सुखी रहो और विजय पाओ।' और उनका ललाट चूम लिया। धन्य हो गये लक्ष्मण सीता का आशीर्वाद प्राप्त करके। इसके पश्चात भामण्डल ने बहिन को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया।

सुग्रीव आदि ने भी परिचय देते हुए सीताजी को प्रणाम किया। सभी को सती की आशिष मिली। अंजनिनन्दन हनुमान को तो परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं थी। उन्होंने बार-बार माथा टेका और आशीर्वचन प्राप्त किये।

भामण्डल आदि की प्रेरणा से राम-सीता भुवनालंकार हाथी पर बैठे। उस समय सीता-राम की युगल जोड़ी अति शोभायमान हो रही थी। सीता सहित राम-लक्ष्मण रावण के महल में पहुँचे। उसकी अद्‌भुत शोभा देखकर हर्ष विभोर हो गये।

विभीषण राम-लक्ष्मण-सीता सुग्रीव आदि को अपने घर ले गया और भोजनादि से उनका सत्कार किया। उसके पश्चात् श्रीराम को सिंहासन पर बिठाकर विभीषण बोला—

—स्वामी ! यह सब आपका है। आप ही इस समस्त राज्य, समृद्धि, धन-सम्पत्ति आदि के स्वामी हैं। मैं तो आपकी आज्ञा का पालन करने वाला दास हूँ।

—विभीषण ! तुम ऐसे विपरीत वचन क्यों वोलते हो ? लंका का राज्य तो मैं पहले ही तुम्हें दे चुका हूँ। तुम यह क्यों भूल गये ?

यह कहकर राम ने उसका राज्याभिषेक कर दिया।

सिंहोदर आदि विभिन्न राजाओं को दिये हुए वचनों की स्मृति श्रीराम को हो आई। विद्याधरों द्वारा उन सवके पास निमन्त्रण भेज दिया गया। सभी अपनी-अपनी कन्याओं के साथ आये और उन सब के साथ अपनी-अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार लक्ष्मण का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हो गया।

सुग्रीवादि की सेवा से राम-लक्ष्मण और सीता का समय सुख से व्यतीत हो रहा था।

वहुत दिनों के वियोग के वाद सीता का मिलन राम से हुआ था। उसके हर्ष की सीमा न थी। इसी प्रकार वनमाला भी लक्ष्मण को पाकर स्वयं को सौभाग्यशाली समझ रही थी।

लंका में निवास करते-करते सवको छह वर्ष का लम्वा समय व्यतीत हो गया किन्तु ऐसा मालूम हुआ मानो दो-चार दिन बीते हों। सुख के दिन वास्तव में वड़े छोटे होते हैं।

इसी वीच विन्ध्यस्थली पर इन्द्रजित और मेघवाहन ने सिद्धि प्राप्त कर ली। उन्हीं के नाम पर उस तीर्थ का नाम मेघरथ पड़ गया।

नर्मदा नदी में कुम्भकर्ण के सिद्धि पाने के कारण उस तीर्थ का नाम पृष्ठरक्षित पड़ा।

× × ×

एक दिन मुनि नारद लंका की राज्य सभा में जा पहुँचे। विभीषण आदि सभी ने उनका अभिवादन किया और आदरपूर्वक विठाया। श्रीराम ने पूछा—

—देवर्षि ! कहाँ से आगमन हो रहा है ?

—अयोध्या से।—देवर्षि का संक्षिप्त सा उत्तर था।

—क्या दशा है अयोध्या की, भाई भरत, शत्रुघ्न और माताओं के समाचार भी वताइये। —राम की उत्सुकता जाग उठी थी।

—तुम्हें क्या मतलव है इन सव वातों से, तुम तो यहाँ सुख भोगो।—नारद के मुख पर उत्तेजना आ गई।

राम का हृदय आशंका से भर गया। आग्रह करने लगे—

—वताइये नारदजी ! अयोध्या में सव कुशल तो हैं। मुझसे किसी को कोई शिकायत तो नहीं।

—और किससे शिकायत है ?

—कहिए तो मेरा अपराध क्या है ?

नारद कहने लगे—

—मैं धातकीखण्ड से आया तो अयोध्या के राजमहल में उदासी और चिन्ता छाई हुई थी। मैंने माताओं से पूछा—'आप लोगों को क्या चिन्ता है ?' तो उन्होंने वताया—'सीता को रावण चुरा ले गया है। इसी कारण राम और रावण में युद्ध ठन गया है। लक्ष्मण को शक्ति लगी है। उसके वाद की हमको कोई खवर नहीं। न जाने हमारे पुत्रों पर क्या गुजरी ? हम सव इसी वात से चिन्तित हैं।' मैं पूछता हूँ कि तुम उन्हें अपनी कुशलता के समाचार भी न दे सके। तुम्हें अपने सुखों से इतना भी अवकाश नहीं मिला !

श्रीराम ने अपनी भूल अनुभव की। वे लज्जित स्वर में वोले—

—मैं अभी माता के पास कुशलता के समाचार भेजता हूँ।

—क्या होगा कुशल-समाचार भेजकर ?

—क्यों ?

—मैं तुम्हारी भेंट का वचन देकर आया हूँ। राम ! मातृप्रेम की गहराई पर विचार करो। वे तुम्हारे वियोग में व्याकुल हैं। तुम्हें साक्षात देखे विना उन्हें कैसे सन्तोष होगा ?

राम भी माताओं और भाइयों के दुख से दुखी हो गये। उन्होंने विभीषण से कहा—

—लंकापति ! हमारा जाना आवश्यक है। अब हमें जाने दो।

विभीषण विनम्र स्वर में बोला—

—स्वामी ! वैसे तो मैं आप लोगों को न जाने देता किन्तु माताओं को दुःखी भी नहीं देख सकता। पर मेरी एक विनय स्वीकार कीजिए।

—वह क्या ?

—केवल सोलह दिन और रुक जाइए।

—क्यों ?

विभीषण ने अपनी इच्छा बताई—

—तब तक मैं लंका के कुशल कारीगरों को भेज कर अयोध्या-पुरी को और भी सुन्दर बनवा दूंगा।

राम ने व्यथित स्वर में उत्तर दिया—

—विभीषण ! तुम अयोध्या की सुन्दरता बढ़ाते रहोगे और माताओं के दुःख का क्या होगा ? जब से नारदजी ने मुझे बताया है मेरा हृदय व्याकुल हो गया है।

—मेरे दूत आपके आगमन की सूचना अयोध्या में शीघ्र ही पहुँचा देंगे। केवल सोलह दिन लंका-निवास की मेरी अनुनय मान जाइये। —विभीषण के स्वर में विनयपूर्ण आग्रह था।

श्रीराम उसकी इच्छा की अवहेलना न कर सके। किन्तु उन्होंने साथ ही चेतावनी भी दी—

—इस अवधि के पश्चात हम एक दिन भी नहीं ठहरेंगे।

—बिल्कुल नहीं, एक क्षण भी नहीं, मैं भी आपके साथ चलूँगा और माताओं के दर्शन तथा भरत शत्रुघ्न से भेंट करके स्वयं को कृतार्थ मानूँगा। —विभीषण ने राम को आश्वस्त कर दिया।

विशेष—विभीषण के राज्याभिषेक के पश्चात् लक्ष्मण की दिग्विजय का उल्लेख है। दोनों भाई दिग्विजय करके अयोध्या जा पहुँचे।

[उत्तर पुराण : श्लोक ६३२-६६१]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

(१) श्रीराम ने रावण वध के बाद भी लंका में प्रवेश नहीं किया। विभीषण का राज्याभिषेक भी रावण के दाह-संस्कार के पश्चात् वहीं समीप के एक उत्तम स्थान पर लक्ष्मण द्वारा करा दिया गया।

[युद्धकाण्ड]

(२) जानकी को विभीषण की आज्ञा से हनुमान वहाँ लाये। श्रीराम ने उन्हें अस्वीकार करते हुए कहा—'अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिए मनुष्य का जो कर्तव्य है, मैंने किया। अपने सम्मान के लिए रावण पर विजय पायी, तुम्हें प्राप्त करने के लिए नहीं; सदाचार की रक्षा, अपने को अपवाद से मुक्त रखने और अपने विख्यात वंश का कलंक मिटाने के लिए ही यह सब किया है। तुम्हारे चरित्र में सन्देह का अवसर उपस्थित है। कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को ग्रहण करेगा? अतः अब तुम जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो।'

यह सुनकर रोती हुई जानकी ने स्वयं ही लक्ष्मण से चिता तैयार कराके अग्नि-प्रवेश किया। अग्निदेव स्वयं उस चिता को फोड़कर प्रगट हुए और सीता के सती होने की साक्षी दी। अन्य देवों ब्रह्मा आदि ने भी सीता को निष्कलंक बताया। श्रीराम के पिता दशरथ भी देवलोक-वासी हो गये थे उन्होंने भी सती सीता के निर्मल चरित्र की साक्षी देकर

नारदजी इतनी देर तक चुपचाप बैठे राम और विभीषण का वार्तालाप सुन रहे थे। वे बोले—

—विभीषणराज ! अयोध्या में दूत भेजने की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं यह समाचार राजमहल में पहुँचा दूँगा।

—बड़ी कृपा होगी, मुनिवर ! —राम और विभीषण का समवेत स्वर निकला।

देवर्षि लंका से चलकर अयोध्या पहुँचे और उन्होंने राम के सपरिवार आगमन का समाचार सुना दिया। नारदजी तो अपनी राह चले गये और अयोध्या में हर्ष की लहर दौड़ गई।

लंका के कुशल कारीगरों और शिल्पियों ने अयोध्यापुरी को सोलह दिन में ही स्वर्गपुरी से भी अधिक सुन्दर बना दिया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।८
उत्तर पुराण ६८।६३२-६६१

* *

राम को उसे ग्रहण करने की प्रेरणा दी तब श्रीराम ने उन्हें स्वीकार किया।

[युद्धकाण्ड]

[नोट—इस प्रकार सीता की अग्नि-परीक्षा लंका के बाहर ही खुले मैदान में देवताओं और वानर-भालुओं की उपस्थिति में हुई।

—सम्पादक]

(३) यहाँ अयोध्या जाने की प्रेरणा नारद ने नहीं वरन् अन्य देवताओं ने दी है और वहीं से राम-लक्ष्मण-सीता आदि सभी वानरों सहित पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या की ओर चल दिये। मार्ग में सीता की प्रार्थना पर तारा आदि (यहाँ तारा सुग्रीव की पत्नी बताई है) सुग्रीव की पत्नियाँ तथा अन्य वानर-पत्नियों को भी साथ लिया और अयोध्या के समीप जा पहुँचे।

[युद्धकाण्ड]

: २ :

भरत और कैकेयी की मोक्ष-प्राप्ति

सोलहवें दिन राम-लक्ष्मण अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ पुष्पक विमान में वैठकर अयोध्या की ओर चल दिये। उनके पीछे-पीछे भामण्डल, सुग्रीव, विभीषण आदि भी थे। अल्पकाल में ही वे सब अयोध्या आ पहुँचे। साथ ही भुवनालंकार हाथी भी था।

वड़े भाइयों का स्वागत करने हेतु भरत और शत्रुघ्न गजेन्द्र पर सवार होकर वाहर निकले। दूर से ही राम-लक्ष्मण का विमान देखकर वे हाथी से नीचे उतरे। विमान जैसे ही पृथ्वी पर टिका राम-लक्ष्मण भी उतरकर आगे वढ़े। भरत ने राम के चरण पकड़कर उन्हें प्रणाम किया। राम ने उसे उठाकर कण्ठ से लगा लिया। चारों भाई परस्पर मिले। सुखाश्रुओं की सरिता वहने लगी।

वड़े उत्सव के साथ चारों भाइयों ने पुष्पक विमान में वैठकर अयोध्या में प्रवेश किया। नगरवासियों ने दिल खोलकर उनका स्वागत किया। मंगल-वाद्य वज रहे थे, सन्नारियाँ स्वागत गीत गा रहीं थीं।

विमान से उतरकर राम-लक्ष्मण-सीता मातृगृह में गये। रानी अपराजिता पुत्रों को सकुशल देखकर प्रसन्न हो गई। सभी माताओं को उन्होंने प्रणाम किया। सीताजी ने भी सवके चरण छुए। विशल्या आदि ने भी परिचय देकर सासुओं (पति की माता) के चरण स्पर्श

किये। सासुओं के 'हमारी ही तरह वीर प्रसविनी हो,' 'पति का तुम्हें सदैव ही प्रेम प्राप्त होता रहे,' आदि आशीर्वचनों से महल गूँज गया। राजमहल में हर्ष छा गया।

रानी अपराजिता (कौशल्या) बार-बार लक्ष्मण के शरीर पर हाथ फेरकर कहने लगी—

—वत्स ! बड़े भाग्य से तुम्हें देखा है। तुम्हारा तो दूसरा जन्म ही हुआ। राम और सीता की सेवा करके तुमने वन में बहुत कष्ट उठाये।

विनत स्वर में लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

—नहीं माँ ! कष्ट तो मेरे कारण अग्रज राम और माता तुल्य भगवती सीता को हुआ। इन्होंने पुत्र के समान ही मेरा पालन किया। हर मुसीबत से बचाया। मैं तो उद्धत हूँ। इन्हें आपत्तियों में फँसाता रहा और ये मेरी रक्षा करते रहे।

गद्गद हो गई अपराजिता लक्ष्मण की विनीत वाणी सुनकर। कैसा स्पृहणीय प्रेम था भाइयों का !

भाइयों के आगमन की खुशी में भरत ने अयोध्या में बहुत बड़ा उत्सव कराया। प्रेरणा भरत की थी और उत्साह नगर-वासियों का। अयोध्या का कण-कण खुशी से झूम उठा था।

× × ×

एक दिन अवसर पाकर भरत ने राम से निवेदन किया—

—आर्य ! आपकी आज्ञा से आज तक राज्य का संचालन किया अब यह भार आप सँभालिए।

—क्यों अब क्या नई बात हो गई ? —राम ने पूछा।

—बात नई नहीं, बहुत पुरानी है आर्य ! मैं व्रत लेना चाहता हूँ। —भरत ने अपनी इच्छा बताई।

राम की आँखों में आँसू आ गये। कठिनाई से वोल सके—

—भाई! हमारा त्याग करके हमें दुःखी क्यों करते हो? पहले के समान ही शासन करो और हमें सुखी करो।

राम के आग्रह का उत्तर न दे सका शीलवान भरत! मुँह लटकाये उठकर चलने लगा। लक्ष्मण तुरन्त उठे और भरत को हाथ पकड़कर विठा लिया। भाई का आग्रह न टाल सके। भरत मौन होकर वैठ गये किन्तु उनके हृदय की वैराग्य-भावना में तनिक भी कमी न आई।

भरत के इस निश्चय से अन्तःपुर में विशल्या आदि सभी रानियाँ संभ्रमित हो गईं। किसी प्रकार उनका हृदय भोगों में रमे इसलिए रानियों ने जल-क्रीडा की योजना बनाई। भरत ने भी उनकी यह इच्छा स्वीकार कर ली। सवने समझा कि भरत अब संसार-भोगों की ओर मुड़ जायेंगे।

सरोवर के निर्मल जल में रानियाँ भरत के साथ जल-क्रीड़ा करने लगीं। एक मुहूर्त तक तो भरत क्रीडा करते रहे और फिर जल से बाहर निकलकर सरोवर के किनारे आ खड़े हुए। उनका वैराग्य-पूर्ण हृदय जल-क्रीड़ा से उचट गया था। वे यों ही नगर की ओर देखने लगे।

उसी समय भुवनालंकार गजेन्द्र उन्मत्त होकर अपने बन्धन तुड़ाकर भाग निकला था। दैवयोग से वह सरोवर की ही ओर आ निकला। मत्त गजेन्द्र की नजरें भरत से टकराईं और वह निर्मद हो गया। भेड़ जैसा बिलकुल शान्त वन गया। उसे पकडने के लिए पीछे से राम-लक्ष्मण अनेक सामन्तों के साथ चले आ रहे थे। उन सवने यह चमत्कार देखा तो चकित रह गये।

राम ने देखा गजेन्द्र भरत की ओर देख रहा है और भरत उसकी ओर। भरत की आँखों में हर्ष की चमक थी मानो किसी पुराने साथी

को पहचानने का प्रयास कर रहे हों और गजेन्द्र की आँखें कृतज्ञता से भरी थीं।

महावतों ने राम की आज्ञा से हाथी को हस्तिशाला में ले जाकर बाँध दिया।

संयोग से उसी समय कुलभूषण और देशभूषण केवलियों का अयोध्या में आगमन हुआ। 'उद्यान में केवली भगवान विराजमान हैं' यह समाचार प्राप्त होते ही राम-लक्ष्मण आदि परिकर और परिवार सहित उनकी वन्दना को गये। केवली के समवसरण तक उनको ले जाने का सौभाग्य भुवनालंकार हाथी को प्राप्त हुआ। राम-भरत आदि तो केवली को वन्दन करके मनुष्यों के लिए नियत स्थान में जा विराजे और भुवनालंकार पशु-समाज में।

केवली भगवान से राम ने अंजलि बाँधकर जिज्ञासा की—

—प्रभो ! यह भुवनालंकार हाथी भरत को देखकर ही शान्त क्यों हो गया ?

देशभूषण केवली ने बताया—

इस अवसर्पिणी काल में भरतक्षेत्र के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के साथ चार हजार राजाओं ने श्रामणी दीक्षा धारण की थी। प्रभु तो निराहार ही विहार करने लगे किन्तु अन्य लोग भूख-प्यास की वेदना न सह सके और धर्म से च्युत हो गये। उन च्युत हुए श्रमणों में प्रह्लादन और सुप्रभ राजाओं के पुत्र चन्द्रोदय और सुरोदय भी थे। इसके पश्चात उन्होंने सुदीर्घकाल तक भव-भ्रमण किया।

भव-भ्रमण करते-करते एक बार चन्द्रोदय तो गजपुर के राजा हरिमती और उसकी रानी चन्द्रलेखा का कुलंकर नाम का पुत्र हुआ और सुरोदय उसी नगर में विश्वभूति ब्राह्मण की पत्नी अग्निकुण्डा का पुत्र श्रुतिरति हुआ। अनुक्रम से कुलंकार राजा बना।

अन्यदा कुलंकर एक तापस के आश्रम को जा रहा था। मार्ग में सौभाग्य से अवधिज्ञानी मुनि अभिनन्दन के दर्शन हो गये। कुलंकर उनको नमन करके आगे जाने लगा तो मुनि ने एक जीव की प्राण-रक्षा के विचार से उससे कहा—"हे राजन् ! तुम जिस तापस के पास जा रहे हो वह पंचाग्नि तप तपता है। वहाँ जलाने के लिए लाये हुए लट्ठे में एक सर्प है। वह सर्प पूर्वभव में तुम्हारा पितामह क्षेमंकर था। इसलिए लट्ठे को सावधानी से चिरवाकर उसकी जीवन-रक्षा करना।"

मुनि के ये वचन सुनकर राजा कुलंकर व्याकुल हो गया। जितनी शीघ्र हो सका वह वहाँ पहुँचा और लट्ठा चिरवाकर सर्प की प्राण-रक्षा की। उसे श्रमण साधुओं पर प्रतीति हुई। उसके अन्तर्हृदय में भावना उठी—'अहो धन्य हैं, ये श्रमण साधु जिनका लौकिक व्यवहार ही परोपकार है।'

राजा कुलंकर के हृदय में वैराग्य भावना जाग्रत हुई। उसने व्रत ग्रहण करने का अपना विचार प्रगट किया तो पुरोहित श्रुतिरति ने रोड़ा अटकाया—'महाराज ! आपका यह विचार उचित नहीं है। प्रव्रज्या वृद्धावस्था में लेनी चाहिए। अभी से वैरागी होने से क्या लाभ ?'

पुरोहित के इन वचनों से राजा का उत्साह भंग हो गया। 'मुझे क्या करना चाहिए'—यह सोचता हुआ राजा कुलंकर व्रत ग्रहण से परांगमुख होकर रहने लगा।

कुलंकर राजा की एक रानी थी श्रीदामा। वह पुरोहित के साथ सदा आसक्त रहती थी। राजा के व्रत लेने के निश्चय से वह प्रसन्न हुई किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि प्रव्रजित होने का निर्णय टल गया तो उसका हृदय शंका से भर उठा। उसने सोचा—'संभवतः राजा को मेरे गुप्त सम्बन्धों का पता चल गया है। या तो मैं इसे मार

डालूँ अन्यथा यह मुझे मार डालेगा।' पापियों को धर्मात्माओं की सभी क्रियाओं में छल ही दिखाई पड़ता है। श्रीदामा ने पुरोहित की सम्मति से विष देकर राजा को मार डाला। पुरोहित श्रुतिरति भी कुछ काल पश्चात मर गया। दोनों चिरकाल तक विभिन्न योनियों में भ्रमण करते रहे।

बहुत लम्बा समय व्यतीत होने के पश्चात राजगृह नगर में कपिल ब्राह्मण की पत्नी सावित्री ने विनोद और रमण दो पुत्रों को जन्म दिया। रमण वेदों का अध्ययन करने के लिए चला गया। कितने ही वर्ष बाद वह वेदाभ्यास करके लौटा तो रात्रि का समय हो चुका था। नगर-रक्षकों ने इसे नगर में प्रवेश नहीं करने दिया। परिणामस्वरूप उसे यक्ष मन्दिर में रात्रि व्यतीत करनी पड़ी। रात्रि के समय विनोद की स्त्री शाखा किसी ब्राह्मण दत्त के संकेत पर वहाँ आई और रमण को दत्त समझकर जगाया। रमण भी उसके साथ रति-क्रिया में लीन हो गया। विनोद भी अपनी स्त्री के पीछे-पीछे आया। उनके इस पापाचार को देखकर वह क्रोध में भर गया। उसने रमण को मारना प्रारम्भ कर दिया। रमण भी शान्त न बैठा रहा। इस संघर्ष में दोनों का ही प्राणान्त हो गया। पुनः वे संसार में भटकने लगे।

भटकते-भटकते विनोद एक धनाढ्य श्रेष्ठि का धन नाम का पुत्र हुआ और रमण लक्ष्मी नाम की स्त्री का भूषण नाम का पुत्र। धन की प्रेरणा से भूषण का विवाह बत्तीस श्रेष्ठि कन्याओं से हो गया। एक रात्रि को वह अपने घर के सामने बैठा था कि उसे श्रीधर मुनि का कैवल्योत्सव मनाने जाते हुए देव विमान दिखाई पड़े। उसके हृदय में भी धर्मभावना जगी। वह उठकर चलने लगा, उसी समय एक सर्प ने डस लिया। शुभ परिणामों से मरकर वह कितने ही काल तक शुभ-योनियों में जन्म-मरण करता रहा। पश्चात् इसी जम्बूद्वीप के अपर

विदेह क्षेत्र के रत्नपुर नगर के अचल चक्रवर्ती की पत्नी हरिणी के गर्भ से प्रियदर्शन नाम का पुत्र हुआ। उसकी इच्छा तो बाल्यावस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण करने की थी किन्तु पिता के आग्रह से तीन हजार कन्याओं के साथ विवाह करके गृहवास में रहा। गृहस्थधर्म पालन करते हुए भी चौंसठ हजार वर्ष तक वह संवेगपूर्वक रहा और कालधर्म प्राप्त कर ब्रह्मलोक में देव हुआ।

धन भी संसार भ्रमण करता हुआ पोतनपुर में अग्निमुख ब्राह्मण की पत्नी शकुना के गर्भ से मृदुमति नाम का पुत्र हुआ। अविनीत होने के कारण पिता ने उसे घर से निकाल दिया। अनेक देश-विदेशों में घूमता हुआ वह सभी कलाओं में चतुर हो गया। जब वह पुनः घर लौटकर आया तो पक्का धूर्त था। द्यूत-क्रीड़ा में उसे कोई जीत नहीं सकता था। द्यूत-क्रीड़ा और धूर्तता से उसने प्रचुर धन का उपार्जन किया। विपुल धन के कुप्रभाव के रूप में उसे वेश्यागमन की भी लत पड़ गई। वसन्तसेना वेश्या के साथ भोग भोगते हुए वृद्धावस्था में उसे धर्मबुद्धि जागी। उसने प्रव्रजित होकर तपस्या की और मरकर ब्रह्मलोक में देव पर्याय पाई। वहाँ से च्यवकर पूर्वजन्म के कपट-दोष के कारण उसने पशु पर्याय पाई और भुवनालंकार हाथी बना। प्रियदर्शन के जीव ने भी अपना आयुष्य पूर्ण करके भरत के रूप में जन्म लिया।

केवली ने राम को सम्बोधित करके कहा—

—हे राम! तुम्हारे भाई भरत को देखकर भुवनालंकार को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया। इसी कारण उसका मद उतर गया क्योंकि विवेक जाग्रत होने पर रौद्रता मिट जाती है।

अपने पूर्वभव सुनकर भरत की वैराग्य-भावना दृढ़ हो गई और उन्होंने एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर

ली। चिरकाल तक तपस्या करके उन सबने अव्यय मोक्ष-पद प्राप्त किया।[1]

भुवनालंकार हाथी ने भी अनेक प्रकार के अभिग्रह ग्रहण किये और जीवन-भर उनका पालन करता रहा। अन्त समय में उसने अनशन व्रत धारण करके प्राण छोड़े और ब्रह्म देवलोक में देव हुआ।

भरत की माता कैकेई ने भी संयम धारण किया और अविनाशी मोक्ष-पद प्राप्त किया।

राम के अनुज भरत के प्रव्रजित होने के पश्चात प्रजा ने उनसे राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। किन्तु राम तो राज्य के प्रति निस्पृह थे। उन्होंने आज्ञा दी 'लक्ष्मण वासुदेव है, राज्यतिलक इसका होगा।'

आज्ञाकारी लक्ष्मण ने अग्रज का आदेश शिरोधार्य किया और उनका राज्याभिषेक धूमधाम से सम्पन्न हो गया।

—त्रिषष्टि शलाका ७।८

❋ ❋

---

[1] वाल्मीकि रामायण में भरत अयोध्या में श्रीराम के साथ ही सदेह ब्रह्मतेज में विलीन होकर विष्णुधाम प्राप्त करते हैं और विष्णु में लीन हो जाते हैं।

[उत्तरकाण्ड]

: ३ :

शत्रुघ्न के पूर्वभव

वासुदेव लक्ष्मण के राज्यतिलक के पश्चात राम ने विभीषण को राक्षस द्वीप, सुग्रीव को वानर द्वीप, हनुमान को श्रीपुर, विराध को पाताल-लंका, नील को ऋक्षपुर, प्रतिसूर्य को हनुपुर, रत्नजटी को सुरसंगीतपुर और भामण्डल को वैताढ्य गिरि पर स्थित रथनूपुर का राज्य भार दिया। इनके अतिरिक्त और भी योद्धाओं को उनकी योग्यतानुसार विभिन्न राज्य प्रदान करने के बाद सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न से पूछा—

—जो देश तुम्हें पसन्द हो, वही माँग लो।

शत्रुघ्न ने उत्तर दिया—

—आर्य प्रसन्न हैं तो मुझे मथुरा जाने की आज्ञा दीजिए।

राम ने समझाया—

—अनुज ! मथुरा का राजा मधु दुःसाध्य है। उसके पास चमरेन्द्र प्रदत्त एक त्रिशूल है। वह त्रिशूल दूर से ही शत्रु-सेना का हनन करके वापिस उसके पास आ जाता है। इसीलिए मथुरा को छोड़कर किसी और देश की इच्छा करो।

—आर्य ! मैं आपका अनुज हूँ। जब अग्रज लक्ष्मण ने अनेक विद्या-सम्पन्न रावण का वध कर दिया तो क्या मैं मधु को भी पराजित नहीं कर सकूँगा। —शत्रुघ्न ने साग्रह कहा।

राम समझ गये कि शत्रुघ्न को समझाना निरर्थक है। वह मथुरा अवश्य ही जायगा। भ्रातृस्नेह वश उन्होंने सावधान किया—

—जैसी तुम्हारी इच्छा ! किन्तु जब मधु राजा त्रिशूल रहित और प्रमाद में पड़ा हो तभी युद्ध करना।

शत्रुघ्न ने राम की इच्छा शिर झुकाकर स्वीकार कर ली।

श्रीराम ने अक्षय बाण वाले दो तरकस दिये और कृतान्तवदन सेनापति को साथ जाने का आदेश। लक्ष्मण ने अग्निमुख बाण और अपना अर्णवावर्त धनुष दिया। बड़ी सेना लेकर शत्रुघ्न मथुरा की ओर चल दिये। निरन्तर चलते हुए वे मथुरा के समीप पहुँचे और नदी किनारे रुक गये।

नगर-प्रवेश से पहले उन्होंने अपने चार गुप्तचर नगर के समाचार लाने के लिए भेजे। गुप्तचरों ने लौट कर बताया—

—इस समय राजा मधु अपनी रानी जयन्ती के साथ नगर की पूर्व दिशा में स्थित कुबेरोद्यान में क्रीड़ा रत है। उसका दिव्य त्रिशूल शस्त्रागार में रखा है।

अवसर अनुकूल था। शत्रुघ्न ने रात्रि के समय उद्यान के पीछे से मथुरा में प्रवेश किया और शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया। मधु का पुत्र लवण युद्ध करने आया तो उसे क्षणमात्र में मार गिराया। मधु शत्रुघ्न के साथ युद्ध करने लगा। जब सामान्य शस्त्रों से मधु पराजित न हो सका तो शत्रुघ्न ने अर्णवावर्त धनुष की सहायता से अग्निमुख बाण छोड़ा। उस बाण के आघात को मधु न सह सका और आहत होकर गिर गया। उस समय मधु का विचार प्रवाह बदला। वह सोचने लगा—'अरे त्रिशूल के अभिमान में मैंने धर्म कार्य नहीं किया। अब शत्रुघ्न ने मुझे मार डाला तो त्रिशूल किस काम आया। सच है—मृत्यु से कोई नहीं बचा सकता। केवल धर्म ही लोक परलोक में सहायक होता है।' इस विचारधारा के अनुसार उसने

भाव संयम ग्रहण कर लिया। संयम के प्रभाव से वह देह त्यागकर सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देव हुआ। उसी समय विमानवासी देवों ने पुष्प वृष्टि करके उद्घोष किया—'मधु देव जयवन्त हो।'

दिव्यास्त्रों की विशेषता होती है कि वे व्यक्ति विशेष के लिए ही होते हैं और उसके मरते ही देने वाले देवता के पास वापिस चले जाते हैं। दिव्य त्रिशूल भी चमरेन्द्र के पास पहुँच गया। त्रिशूल को देखते ही चमरेन्द्र ने अवधिज्ञान से सब कुछ जान लिया। उसे अपने मित्रघाती शत्रुघ्न पर बड़ा क्रोध आया और बदला लेने उद्यत को हुआ। उसी समय गरुड़पति इन्द्र ने पूछा—

—आप कहाँ जा रहे हैं ?

—अपने मित्रघाती शत्रुघ्न को मारने मथुरा नगरी जा रहा हूँ। —चमरेन्द्र ने उत्तर दिया।

—रावण के पास धरणेन्द्र प्रदत्त उत्कृष्ट अमोघविजया शक्ति थी उसे भी महापुण्यवान लक्ष्मण ने मार गिराया तो यह मधु कौन चीज है।

—वह शक्ति तो विशल्या के पूर्व-जन्म के तप-तेज के कारण पराजित हो गई थी। शत्रुघ्न के पास ऐसा कोई सहायक नहीं है।

—हे चमरेन्द्र ! महापुण्यशाली राम-लक्ष्मण और विशल्या जैसी तपोतेज धारिणी उसकी रक्षा कर लेंगी।

—कुछ भी हो मैं उसे मारने जाऊँगा अवश्य।

यह कहकर चमरेन्द्र वहाँ से चल दिया। मथुरा पहुँचकर उसने देखा प्रजा सुखी थी। उसने विचार किया—'पहले प्रजा में उपद्रव करके शत्रुघ्न को व्याकुल कर दूँ, तब मारना सरल होगा।' इस विचार के अनुसार चमरेन्द्र ने मथुरा की प्रजा को रोग महामारियों आदि से व्याकुल कर दिया। कुल देवता ने आकर शत्रुघ्न को चेतावनी दी कि

'यह सव उपद्रव चमरेन्द्र का फैलाया हुआ है। वह अपने मित्र मधु का वदला लेने को उत्सुक है। प्रजा के दुख से जव तुम्हारा मनोवल क्षीण हो जायगा तव वह तुम पर घात करेगा।'

कुल देवता की चेतावनी को सुनकर शत्रुघ्न राम-लक्ष्मण के पास अयोध्या आ गये।

× × ×

इसी समय केवली देशभूषण और कुलभूषण जगत का उपकार करते हुए अयोध्या के वाहर उद्यान में आ विराजे।

राम ने उनसे जिज्ञासा प्रगट की—

—स्वामी ! शत्रुघ्न ने मथुरा लेने का ही आग्रह क्यों किया ?

देशभूषण केवली ने वताया—

—राम शत्रुघ्न का जीव अनेक वार मथुरा नगरी में उत्पन्न हुआ है। इसी कारण इसका उस नगर पर विशेष मोह है। इसके पूर्वभव सुनो—

किसी समय श्रीधर नाम का ब्राह्मण था। वह रूपवान तो था ही साथ ही सदाचारी भी था। एक वार वह मार्ग पर चला जा रहा था। राजा की मुख्य रानी ललिता की उस पर दृष्टि पड़ गई। उसके मनोहर रूप को देखकर रानी के अंग में अनंग समा गया। सेवक भेजकर तुरन्त उसने उसे वुलवाया और रतिक्रीड़ा की इच्छा प्रगट करने लगी किन्तु उसकी इच्छा पूरी न हो सकी। वाधक वनकर राजा अचानक ही आ गया। रानी ने अपने वचाव के लिए शोर मचा दिया—चोर ! चोर !!

श्रीधर पकड़ा गया और उसे फाँसी की सजा हुई। वधस्थान पर उसे राजसेवक ले गये। उस समय उसने व्रत लेने की प्रतिज्ञा की। कल्याण नाम के मुनि ने उसकी धर्म भावना देखकर छुड़ा

लिया। बन्धनमुक्त होकर श्रीधर ने श्रामणी दीक्षा ग्रहण की और कालधर्म प्राप्तकर तपस्या के प्रभाव से देवगति पाई।

देवगति से च्यवकर श्रीधर का जीव मथुरा के राजा चन्द्रप्रभ की रानी कंचनप्रभा की कुक्षि में अवतरित हुआ। जन्म होने पर उसका नाम अचल रखा गया। अचल अपने पिता चन्द्रप्रभ को विशेष प्रिय था। अचल के भानुप्रभ आदि आठ सौतेले बड़े भाई थे। भाइयों ने सोचा—'यद्यपि अचल हम सबसे छोटा है किन्तु पिताजी इसे ही अधिक प्यार करते हैं। राज्य इसी को मिलेगा और हम सब देखते ही रह जायेंगे। इसलिए इसे मार ही डालना चाहिए।'

भाइयों की यह दुर्मन्त्रणा मन्त्री से छिपी न रह सकी। उसने अचल को सावधान कर दिया। अचल वहाँ से भाग निकला और वन में भटकने लगा। भटकते-भटकते उसके पाँव में एक तीक्ष्ण काँटा चुभ गया। पीड़ा से बिलबिला उठा वह और जोर-जोर से आक्रन्दन करने लगा।

श्रावस्ती नगरी का निवासी अंक नाम का एक पुरुष सिर पर ईंधन (जलाने की लकड़ी) का गट्ठा लिये हुए वहाँ आ निकला। अचल के विलाप को सुनकर सहानुभूतिपूर्वक उसने उसके पैर का काँटा निकाल दिया। अचल की पीड़ा मिट गई।

उसने पूछा—मित्र तुम कौन हो और इस निर्जन वन में क्यों रहते हो?

उस पुरुष ने उत्तर दिया—मेरा नाम अंक है। मुझे पिता ने घर से निकाल दिया है। इस कारण इस निर्जन वन में जीवन यापन कर रहा हूँ।

अचल ने उससे कहा—मित्र तुमने मुझ पर उपकार किया है। जब भी सुनो कि अचल मथुरा नगरी का राजा बन गया है तो आ जाना।

अंक समझ गया कि उसका नाम अचल है। अचल वहाँ से उठकर चल दिया और कौशाम्वी नगरी में जा पहुँचा। वहाँ उसे इन्द्रदत्त राजा सिंहगुरु के पास धनुर्विद्या का अभ्यास करता दिखाई दिया। कुछ देर तक तो वह उन्हें देखता रहा तत्पश्चात उसने अपना वाण विद्या कौशल उन्हें दिखाया। प्रसन्न होकर इन्द्रदत्त ने उसे अपनी पुत्री दत्ता अर्पण की और साथ में कितनी ही भूमि। इसके पश्चात अचल ने अंग आदि अनेक राज्य विजय कर लिए। वह सैन्य सहित मथुरा नगरी पर चढ़ आया। भानुप्रभ आदि भाइयों ने उसका मुकाविला किया तो उन्हें पकड़कर बन्दी बना लिया।

वृद्ध राजा चन्द्रप्रभ ने पुत्रों के छुड़ाने के लिए मन्त्री को भेजा। मन्त्री अचल को देखकर सब कुछ समझ गया। उसने आकर वताया—'महाराज ! वह तो आपका ही पुत्र है।' हर्षित होकर राजा ने अचल को आदर सहित नगर-प्रवेश कराया। सबसे छोटा होने पर भी राजा ने उसी का राज-तिलक कर दिया और भानुप्रभ आदि की दुर्मन्त्रणा के कारण उन्हें देश निकाले का दण्ड दिया। किन्तु अचल ने विनती करके भाइयों का दण्ड क्षमा करा लिया। सभी भाई प्रेमपूर्वक रहने लगे।

एक वार अचल ने देखा कि एक पुरुष नाट्यशाला में प्रवेश करने का इच्छुक है और द्वारपाल उसे धक्के मारकर बाहर निकाल रहे हैं। अचल ने ध्यान से देखा तो पहचान गया कि वह तो उसका उपकारी अंक है।

सेवकों को भेजकर उसने अंक को अपने पास वुलवा लिया। उचित आदर-सत्कार के वाद उसने अंक को उसकी जन्मभूमि श्रावस्ती का राजा वना दिया। दोनों मित्र साथ-साथ रहते हुए राज्य-संचालन करने लगे।

कुछ समय पश्चात दोनों ने समुद्राचार्य के चरणों में श्रामणी दीक्षा ले ली। निरतिचार संयम की साधना करके उन्होंने कालधर्म प्राप्त किया और ब्रह्मदेवलोक में देव पर्याय पाई।

ब्रह्मदेवलोक से अपना आयुष्य पूर्ण करके अचल का जीव तो शत्रुघ्न हुआ और अंक का जीव कृतांतवदन ।

विशेष—(१) उन दोनों भाइयों ने कुछ वर्ष तो अयोध्या में बिताए फिर भरत और शत्रुघ्न को वहाँ का राज्य देकर स्वयं (राम-लक्ष्मण दोनों) बनारस चले गये । (पर्व ६८ श्लोक ६३८-८६)

(२) वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

(१) राज्याभिषेक (अयोध्या का राज्याधिकार) राम का हुआ था; लक्ष्मण का नहीं । [युद्ध काण्ड]

(२) राज्याभिषेक के पश्चात सभी वानर-वीरों को यथायोग्य सम्मान और भेंट देकर विदा कर दिया गया । [युद्ध काण्ड]

(३) ऋषियों ने आकर राम से प्रार्थना की कि वे मधु के पुत्र लवणासुर से उनकी रक्षा करें । तब शत्रुघ्न लवणासुर को मारने मधुरा (मथुरा) जाते हैं ।

(४) लवणासुर मधु का पुत्र था और मधु लोला दैत्य का ज्येष्ठ पुत्र था । मधु की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने अपने त्रिशूल से चम-चमाता हुआ शूल दिया था । मधु की प्रार्थना पर शिवजी ने वह शूल उसके पुत्र के पास रहने का भी वरदान दिया था ।

(५) मधु की पत्नी कुम्भीनसी थी । उसी के उदर से लवण ने जन्म लिया था ।

(६) मधु उस देश को छोड़कर समुद्र में रहने चला गया था । अतः शत्रुघ्न का मधु के साथ युद्ध होने का प्रश्न ही नहीं था । उनके हाथ से लवणासुर मारा गया और उसके मरते ही दिव्य शूल महादेवजी के पास वापिस जा पहुँचा ।

(७) यहाँ च्यवन ऋषि के मुख से शूल की शक्ति का वर्णन कराते हुए भरत के पूर्वज मान्धाता के विनाश की घटना कही गई है—

मान्धाता जब स्वर्गलोक पर अपना अधिकार जमाने को उत्सुक हुए तो इन्द्र ने बताया—'अभी मर्त्यलोक में ही मधुवन (मथुरा) का राजा

इसी कारण इन दोनों में इतना प्रेम है और शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी का ही राज्य लेने का आग्रह किया।

यह वृत्तान्त सुनाकर दोनों केवलीमुनि तो वहाँ से विहार कर गये और राम-लक्ष्मण शत्रुघ्न आदि अपने महल को लौट आये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।८
—उत्तर पुराण, पर्व ६८।६८८-८९

**

लवणासुर ही तुम्हारे अधीन नहीं है। पहले उसे विजय करो तब स्वर्ग लोक की ओर देखना।' राजा मान्धाता लवणासुर को जीतने गये तो लवणासुर ने इसी शूल से उनको सम्पूर्ण सेना सहित भस्म कर दिया।

(८) लवणासुर को मारने हेतु अयोध्या से जाते समय शत्रुघ्न ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे थे। उसी रात्रि को सीताजी के कुश और लव दो पुत्रों का जन्म हुआ।

(९) शत्रुघ्न लवणासुर वध के पश्चात् शूरसेन जनपद की स्थापना करते हैं और बारह वर्ष बाद श्रीराम से मिलने जाते हैं तथा अयोध्या में सात दिन रहकर राम की आज्ञा से वापिस मधुवन आ जाते हैं।

[वाल्मीकि रामायण : उत्तर काण्ड]

(३) तुलसीकृत में लवणासुर का वध अश्वमेघ यज्ञ के दौरान दिखाया गया है। शत्रुघ्न जी उसे मारने जाते हैं।

अन्य बातों के अतिरिक्त यहाँ विशेषता यह है कि लवणासुर शिवजी के त्रिशूल को लेकर आता है और उसके आघात से शत्रुघ्न मूर्च्छित हो जाते हैं।

कुछ समय बाद शत्रुघ्न सचेत हो जाते हैं और राम का स्मरण करके उसे बाण से मार डालते हैं।

लवणासुर के साथ-साथ कैटभ और लवणासुर के पुत्र मातंग का वध भी दिखाया गया है। [लवकुश काण्ड, दोहा २९-४२]

: ४ :

सप्तर्षियों का तपतेज

सुरनन्द, श्रीनन्द, श्रीतिलक, सर्वसुन्दर, जयन्त, चामर और जयमित्र—सातों भाई प्रजापुर के राजा श्रीनन्दन की रानी धारणी के पुत्र थे। जब राजा श्रीनन्दन का आठवाँ पुत्र एक मास का ही था तभी उन्होंने उसका राज्यतिलक करके सातों पुत्रों सहित श्रामणी दीक्षा ले ली थी। राजा श्रीनन्दन तो अविनाशी सुख में जा विराजे और उनके सातों पुत्र घोर तपस्या के फलस्वरूप जंघाचारण ऋद्धि के धारी हो गये।

सातों महर्षि एक बार बिहार करते-करते मथुरापुरी में आ पहुँचे। तभी वर्षाकाल (बरसात के चार महीने) प्रारम्भ हो गया। मुनियों ने नगर के समीप एक गिरिकन्दरा में चातुर्मास व्यतीत करने का निश्चय किया। आकाश मार्ग से उड़कर वे अपने छट्ठम-अट्ठम आदि अनशनों का पारणा करते और पुनः कन्दरा में आकर ध्यान-लीन हो जाते।

उनके तपोतेज से चमरेन्द्र कृत उपद्रव शान्त हो गये। मथुरा की प्रजा ने सुख-सन्तोष की साँस ली।

एक समय वे महर्षि पारणे के निमित्त अयोध्यापुरी गये। वहाँ वे सेठ अर्हद्दत्त के घर भिक्षा के लिए पहुँचे। उनकी अवज्ञापूर्वक

वन्दना करके सेठ विचारने लगा—'ये कैसे साधु हैं ? वर्षा-ऋतु में विहार कर रहे हैं। जैन साधु तो ऐसे होते नहीं। इनसे पूछूँ।' उसकी विचारधारा पलटी—'कौन इनके मुँह लगे ? व्यर्थ का वितण्डावाद खड़ा हो जायगा। क्या लाभ है संक्लेश रूप परिणाम करने से ?'

तब तक सेठ की धर्मपत्नी ने साधुओं को भिक्षा से प्रतिलाभित कर दिया।

भिक्षा ग्रहण करके सातों महर्षि अयोध्या में ही स्थित आचार्य द्युति के उपाश्रय में पहुँचे। आचार्य ने तो गौरवतापूर्वक उनका स्वागत किया किन्तु उपाश्रय के अन्य साधुओं ने 'ये अकाल गमन करने वाले हैं' ऐसा समझकर वन्दना नहीं की।

आचार्य द्युति ने मुनियों को उचित आसन दिया। मुनियों ने वहीं बैठकर पारणा किया। तत्पश्चात आचार्य द्युति ने पूछा—

—ऋषिवर ! आप लोग कहाँ से आ रहे हैं और अब कहाँ जायेंगे ? आपने अपने चातुर्मास से किस भूखण्ड को पवित्र किया है ?

सप्तर्षियों ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—

—आचार्यश्री ! हम मथुरा नगरी से आये हैं और वहीं वापिस जा रहे हैं।

परस्पर नमन-वन्दन के पश्चात् सातों ऋषि उड़कर अपने स्थान को चले गये।

आचार्य द्युति मुनियों को जाते हुए देखते रहे। जब मुनि आँख से ओझल हो गये तो वे भाव-विभोर होकर उनकी गुण-स्तुति करने लगे। शिष्य परिवार ने देखा कि गुरुदेव उन मुनियों की स्तुति कर रहे हैं तो वे आश्चर्यचकित होकर पूछने लगे—

—गुरुदेव ! आप उन अकाल विहारी मुनियों की स्तुति इतने भाव-विभोर होकर क्यों कर रहे हैं ?

—भद्र ! वे महामुनि अकाल विहारी नहीं है ।

—चातुर्मास काल में मथुरा से अयोध्या आगमन और क्या है ?

—अनेक ऋद्धियों के स्वामी, तपोतेज में अप्रतिम, अपनी चरण रज से भूतल को पवित्र करने वाले वे महामुनि श्रमणाचार का निर्दोष पालन कर रहे हैं ।

शिष्य परिवार अवाक् होकर गुरुदेव की ओर देख रहा था। महाराजश्री ने उनकी जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा—

—वे जंघाचारण ऋद्धि के धारक हैं। उनकी अवहेलना करना श्रीसंघ की ही अवज्ञा करना है ।

साधुओं को मुनियों के प्रति की गई अवहेलना के कारण खेद हुआ । उन्होंने महाराजश्री से प्रायश्चित्त ग्रहण करके अपना पश्चात्ताप प्रगट किया ।

यह समाचार सेठ अर्हद्दत्त को ज्ञात हुआ तो उसे घोर दुःख हुआ। 'मुनिश्री की अशातना मैंने की' यह विचार बार-बार उसके मानस को उद्वेलित करता रहता ।

सेठ अर्हद्दत्त कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन मथुरापुरी पहुँचा और उनकी वन्दना करके अपनी अवज्ञा की क्षमा माँगी ।

निस्पृह जगत् हितकारी मुनि नाराज ही कब थे जो क्षमा करने का प्रश्न उठता । हाँ सेठ ने अवश्य अपने अवज्ञा दोष जन्य पाप का क्षय कर लिया ।

'सप्तर्षियों के प्रभाव से मथुरा की प्रजा की व्याधि शान्त हो गई है' यह जानकर शत्रुघ्न ने भी मथुरा जाकर कार्तिकी पूर्णिमा के दिन उनकी वन्दना की। वन्दना के पश्चात् शत्रुघ्न ने मुनियों से विनय की—

—गुरुदेव ! एक दिन मुझे भी आपको प्रतिलाभित करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय ।

—राजन् ! श्रमणों को राजपिण्ड नहीं कल्पता ।

मन मसोस कर रह गये शत्रुघ्न ! उन्होंने फिर प्रार्थना की—

—पूज्य ! कुछ दिन और रुकिये ।

—वर्षाकाल समाप्त हो गया है नरेश ! श्रमण साधु इससे अधिक नहीं ठहर सकते ।

—आपके निमित्त से प्रजा का वहुत उपकार हुआ है । सारी व्याधियाँ शान्त हो गई हैं । यदि फिर उठ खड़ी हुई तो·······

—पंच परमेष्ठी—देवाधि देव अर्हन्त भगवान की स्तुति, गुण चिन्तवन होता रहेगा तो कोई संकट नहीं आयेगा । सम्पूर्ण व्याधियाँ शान्त रहेंगी ।

यह कहकर सातों ऋषि आकाश में उड़ गये । दूर जाते हुए वे ऐसे दिखाई देने लगे मानो आकाशस्थ सप्तर्षि मण्डल ही हो ।

शत्रुघ्न ने उनके कहे अनुसार पंच परमेष्ठी के गुण स्मरण करने की नगर भर में आज्ञा करा दी और मथुरापुरी के वाहर चारों दिशाओं में उन मुनियों की रत्नमय प्रतिमायें स्थापित करा दीं ।

× × ×

रत्नपुर नगर वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी में रत्न के समान सुशोभित होता था । राजा रत्नरथ वहाँ राज्य करता था । उसकी रानी चन्द्रमुखी से मनोरमा नाम की कन्या हुई । मनोरमा की सुन्दरता लोगों का मन हरण कर लेती—वह युवती हो चुकी थी ।

घूमते-घामते भ्रमणप्रिय नारद मुनि रत्नपुर के राजमहल में जा पहुँचे । वाल ब्रह्मचारी नारद से कोई परदा तो था नहीं । सर्वत्र उनका वे-रोक-टोक आवागमन था । देवर्षि को आकर प्रणाम किया

मनोरमा ने तो वे उसकी सुन्दरता को सराहने लगे। नारद ने राजा से पूछा—

—राजन् ! कन्या युवती हो गई है, कहीं इसके विवाह की चर्चा भी चलाई या नहीं।

युवती कन्या के माता-पिता को एक ही चिन्ता होती है योग्य वर की। जो भी मिले, जरा-सी सहानुभूति दिखा दे उसी से किसी योग्य युवक की वात पूछ वैठते हैं। रत्नरथ ने भी प्रतिप्रश्न कर दिया—

—आप ही वताइये। आप तो निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। आप से अधिक जानकारी और किसे हो सकती है ?

—मेरी सम्मति में जैसी रूपवती तुम्हारी पुत्री है उसके योग्य वर तो अयोध्यापति लक्ष्मण ही हैं। —नारदजी ने अपनी सम्मति दे दी।

यह सुनते ही गोत्र-वैर के कारण रत्नरथ के पुत्रों को कोप चढ़ आया। 'इस ढीठ को मारो' यह कहकर ज्योंही वे उठकर खड़े हुए त्योंही जान वचाकर नारदजी वहाँ से भाग निकले।

नारद को अपना अपमान खल गया। वे सीधे लक्ष्मणजी के पास अयोध्या पहुँचे। अयोध्या की राजसभा में प्रवेश करते ही सम्पूर्ण सभा ने उनका उचित सत्कार किया। लक्ष्मण ने देखा कि नारदजी के हाथ में एक चित्रफलक और है। उत्सुकतावश उन्होंने पूछ लिया—

—देवर्षि ! आपके हाथ में नया उपकरण कैसा ?

—उपकरण नहीं एक चित्र है ! देखिए। —नारदजी ने चित्र लक्ष्मणजी की ओर वढ़ा दिया।

चित्र हाथ में लेते हुए लक्ष्मण ने विनोद किया—

—धन्य हो देवर्षि ! अव युवतियों के चित्र भी साथ रखने लगे।

—क्या करें, अयोध्यापति ! आप जैसे श्रीमानों की सेवा तो करनी ही पड़ती है, अन्यथा आदर के स्थान पर निरादर मिलने लगेगा। —नारदजी ने भी मुस्कराकर उत्तर दिया।

—निरादर और आपका ! किसमें इतना साहस है ?

—संसार में सभी तरह के लोग हैं। आदर भी करते हैं और निरादर भी। इस कन्या के पिता ने ही........

नारदजी की बात अधूरी ही रह गई। लक्ष्मण बीच में ही बोल उठे—

—कौन है इस कन्या का पिता ?

—वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी का मदोन्मत्त राजा रत्नरथ !

—क्यों ? किस बात का घमण्ड है उसे ?

—न जाने किस बात का ? मैंने कहा था कि तुम्हारी पुत्री के योग्य वर अयोध्यापति लक्ष्मण हैं, बस इतनी सी बात पर उसके पुत्र मुझे मारने दौड़े।

—क्या ? इतनी सी बात ?

—हाँ लक्ष्मण ! वह आपको इस योग्य ही नहीं समझता कि आप उसके जामाता (दामाद) बन सकें ?

यह सुनते ही लक्ष्मण उस कन्या को प्राप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये। कन्या सुन्दर थी, वैसे भी लक्ष्मण उसके प्रति अनुरागी हो चुके थे और अब..........अब तो बात योग्यता की आ गई। सामान्य व्यक्ति भी अयोग्यता का अपवाद नहीं सह सकता जिसमें लक्ष्मण तो वासुदेव थे और थे परम पराक्रमी। उनकी मुखमुद्रा कठोर हो गई।

नारदजी की इच्छा पूरी हो चुकी थी। वहाँ से चल दिये।

लक्ष्मण की आज्ञा से अयोध्या की सेना ने प्रयाण किया तो रत्नपुर जाकर ही विश्राम लिया। साथ में श्रीराम भी थे। अनुज के प्रति अपशब्द वे भी न सह सके।

कहाँ महाभुज लक्ष्मण और कहाँ राजा रत्नरथ। चींटी पर पसेरी जा पड़ी। लक्ष्मण ने चुटकी बजाते उसे पराजित कर दिया।

उसने श्रीराम को श्रीदामा और लक्ष्मण को मनोरमा नाम की अपनी पुत्रियाँ अर्पण कीं।

वैताढ्यगिरि की समस्त दक्षिण श्रेणी को जीतकर राम-लक्ष्मण दोनों भाई सेना सहित अयोध्या लौट आये और सुख से रहने लगे।

वासुदेव लक्ष्मण के सोलह हजार रानियाँ थीं।[1] इनमें से आठ थीं पटरानियाँ—विशल्या, रूपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रत्नमाला, जितपद्मा, अभयवती और मनोरमा। इन आठ पटरानियों से उनके आठ प्रमुख पुत्र हुए।[2]

विशल्या का पुत्र श्रीधर, रूपवती का पुत्र पृथ्वीतिलक, वनमाला का पुत्र अर्जुन, जितपद्मा का पुत्र श्रीकेशी, कल्याणमाला का पुत्र मंगल, मनोरमा का पुत्र सुपार्श्वकीर्ति, रीतिमाला का पुत्र विमल

---

१ लक्ष्मण की पृथ्वी सुन्दरी आदि सोलह हजार रानियाँ थीं और राम के आठ हजार।

(श्लोक ६६३)

इसके बाद दोनों भाइयों की विभूति का वर्णन है।

२ राम के देव के समान विजय राम नाम का पुत्र हुआ और लक्ष्मण के चन्द्रमा के समान पृथ्वीचन्द्र नाम का पुत्र।

(श्लोक ६६०)

और अभयवती का पुत्र सत्यकार्तिक । सभी योग्य और पराक्रमी तथा वलवान थे ।

श्रीराम की चार रानियाँ थीं—सीता, प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा ।

सती सीता श्रीराम को अति प्रिय थीं ।

अयोध्या में सभी का समय सुख से व्यतीत हो रहा था ।

—त्रिषष्टि शलाका ७।८

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक ६६१-६७८
तथा ६८८-६६१

※ ※

: ५ :

सपत्नियों का षड़यन्त्र

एक रात्रि को सीता ने स्वप्न में देखा कि दो अष्टापद प्राणी विमान में से गिरकर उसके मुख में प्रवेश कर गये। अपना स्वप्न सीता ने राम को सुनाया तो उन्होंने कहा—देवि! तुम्हारे दो वीर-पुत्र होंगे किन्तु........

—किन्तु क्या स्वामी?

—विमान से गिरना, अशुभसूचक है।

—आपके प्रताप से सब शुभ ही होगा। —सीता ने प्रसन्नमुख कहा। मातृत्व के गौरव ने उसके हृदय में अशुभ को स्थान ही नहीं दिया।

सीता पहले ही राम को प्रिय थी और गर्भवती होने के बाद तो अतिप्रिय हो गई। राम उसके चन्द्रमुख को चकोर की भाँति देखते रहते।

'सती सीता गर्भवती हो गई है', सपत्नियों की ईर्ष्या के लिए यह काफी था किन्तु राम के अत्यधिक प्रेम ने तो उनकी ईर्ष्याग्नि में घी ही डाल दिया। वे रात-दिन सीता को तिरस्कृत कराने का उपाय सोचने लगीं।

'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आखिर एक उपाय उन्हें सूझ ही गया। कपटी सपत्नियों ने बड़े मीठे स्वर में सीता से कहा—

—देवी ! आप लंका में इतने दिन रहीं। रावण के कारण आपको वड़े कष्ट भोगने पड़े। कैसी थी उसकी शक्ल-सूरत। चित्रपट पर बनाकर हमें भी तो दिखाइये।

—मैंने कभी उसका मुख देखा ही नहीं। —सीता ने सहज भाव से उत्तर दिया किन्तु रावण का नाम सुनते ही उनके शरीर में फुरफुरी दौड़ गई।

—आश्चर्य है, आपने उसका मुख ही नहीं देखा ? धन्य हैं आप ! आप जैसी सतियों से यह वसुन्धरा युग-युगों तक प्रेरणा लेती रहेगी। किन्तु देवी ! उसके किसी न किसी अंग पर तो दृष्टि पड़ी ही होगी। —सीता की चाटुकारिता करके सपत्नियाँ अपने मनोरथ पर आ गईं।

—हाँ उसके पैर जरूर दिखाई पड़ गये थे। —सीता ने अनमने स्वर से उत्तर दिया।

—तो पैरों का ही चित्र बना दीजिए। —सपत्नियों ने आग्रह किया।

—क्या होगा उसे वनाकर ? मुझे तो उसका नाम सुनते ही कँप-कँपी आ जाती है। —सीता ने अपना पीछा छुड़ाना चाहा।

किन्तु सपत्नियाँ ऐसे ही छोड़ देने वाली नहीं थीं। जब तक किसी का मनोरथ पूर्ण न हो जाय तव तक वह पीछा क्यों छोड़े ? सपत्नियों ने हठपूर्वक कहा—

—तनिक देखने की इच्छा है। आप हमारी इतनी-सी भी इच्छा पूरी नहीं करेगी। —और उन्होंने अपने मुँह लटका लिए।

सरल स्वभाव वाली सीता सपत्नियों को छोटी बहन ही समझती थी। उनकी उदासी वह देख न सकी। रावण के पैरों को चित्र-फलक पर उतारने का प्रयास करने लगी। उसे वहुत प्रयास करना

पड़ रहा था रावण के पैरों की वनावट को याद करने के लिए। घृणास्पद और दुःखदायी प्रसंग को मानव भूल ही जाता है। जैसे-तैसे चित्र वना। सीता उसे ध्यान से देखने लगी कि कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रह गई है।

जानकी तो चित्र वनाने में व्यस्त थी और सपत्नियाँ मन-ही-मन प्रार्थना कर रही थीं कि 'ऐसे में पतिदेव आ जायँ।' कपटी-कुचालियों के मनोरथ भी फलते हैं। उनकी मनो-कामना पूरी हुई। श्रीराम आ ही तो गये। देखा—सीता चित्र की ओर ध्यानपूर्वक अपलक देख रही है। सपत्नियाँ विना आहट किये तुरन्त उठीं और पति के कान में फुसफुसाकर कहा—

—देख लीजिए नाथ ! सीता अब भी रावण के चरणों की पूजा करती है।

राम की मुख-मुद्रा गम्भीर हो गई। वे उलटे पैरों वापिस लौट गये। राम क्या लौटे सीता का भाग्य ही पलट गया।

सपत्नियों ने देखा राम का सीता के प्रति प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि उनके मुख पर क्रोध की एक रेखा भी नहीं आई। काम तो वना पर आधा। सपत्नियों ने अपनी दासियों द्वारा सीता के प्रति नगर में अपवाद प्रसारित कराना प्रारम्भ कर दिया।

वसन्त ऋतु का आगमन हो गया था। राम सीता से वोले—

—प्रिये ! तुम गर्भ के भार से युक्त हो। चलो उद्यान-क्रीड़ा करें तुम्हारा मन भी वहल जायगा और वसन्तोत्सव भी मना लेंगे।

—स्वामी ! मेरा दोहद तो देवार्चन का है। —सीता ने उत्तर दिया।

—वहीं उद्यान में तुम्हारा यह दोहद भी पूर्ण हो जायगा।

राम सीता को साथ लेकर महेन्द्रोदय उद्यान में गये। वहाँ उन्होंने सीता का दोहद पूर्ण कराया और उद्यान क्रीड़ा भी की।

प्रसन्नता के सागर में विघ्न-सा पड़ गया। सीता की दाईं आँख फड़क उठी। राम बोले—दाहिनी आँख का फड़कना तो शुभ-सूचक नहीं है।

दुःखी स्वर में सीता कहने लगी—

—क्या अब भी मेरा दुर्भाग्य शेष रह गया है? अब और क्या दुःख देखना बाकी है?

राम ने मधुर वचनों से आश्वस्त किया—

—हृदयेश्वरी! सुख और दुःख तो भाग्याधीन होते हैं; और भाग्य पूर्वकृत कर्मों का संचय! आपत्ति और कष्ट में एक मात्र धर्म ही सहायक होता है। इसलिए धर्म में चित्त लगाओ।

सीता अर्हन्त स्तुति और साधु-वन्दन आदि में लीन हो गईं।

× × ×

विजय, सुरदेव, मधुमान, पिंगल, शूलधर, काश्यप, काल, क्षेम आदि राज्य के उच्चाधिकारी एक दिन राम के समक्ष आये। उनके शरीर वृक्ष-पत्रों की भाँति काँप रहे थे और आँखें भूमि पर लगी हुई। कुछ कहना चाहते थे मगर होठ मानो चिपक गये थे।

राम ने उनकी यह दशा देखी तो आश्वस्त करते हुए बोले—

—तुम लोगों को जो कुछ कहना हो, निर्भय होकर कहो।

उनमें से एक अधिकारी विजय बोला—

—स्वामी! न कहें तो कर्तव्यभ्रष्ट होते हैं और कहें तो.......

—ऐसी क्या बात है?

—बात! काश कि हम राज्य-अधिकारी न होते। हम कुछ कह नहीं सकते। आप हमें इस अधिकार के बन्धन से मुक्त कर दीजिए।

—कर्तव्यभ्रष्ट होना चाहते हो तुम लोग! स्पष्ट कहो। मेरी ओर से तुम्हें अभय है।

बड़ी कठिनाई से अधिकारी विजय बोला—

—लोग कहते हैं कि स्त्री लोलुपी रावण सीताजी का हरण करके ले गया। उसने राजी से अथवा बलात्कारपूर्वक उन्हें अवश्य दूषित कर दिया होगा।

सीता का अपवाद सुनकर राम स्तम्भित रह गये। उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी कि अयोध्या की प्रजा सीता के प्रति ऐसे विचार प्रस्तुत करेगी। किन्तु धैर्यशाली पुरुष घोर दुःख में भी विचलित नहीं होते। अधिकारियों को आश्वस्त किया—

—तुम लोगों ने मुझे समय पर सूचना दी। ठीक ही किया। तुम्हारा कर्तव्य ही यह था। विश्वास रखो—एक स्त्री के कारण मैं अपने कुल की उज्ज्वल कीर्ति पर कलंक नहीं लगने दूँगा।

अधिकारी प्रणाम करके चले गये। राम स्वयं इस अपवाद की सच्चाई जानने के लिए वेष बदलकर अयोध्या की गलियों में रात्रि के समय घूमने लगे। स्थान-स्थान पर उन्हें यही सुनाई पड़ता—

'राम तो सीता के मोह में अन्धे हो गये हैं। सीता दूषित नहीं है—इसे कौन मान लेगा?'

राम विचारने लगे—'सीता महासती है किन्तु मेरा कुल कलंकित हो रहा है। अब क्या करूँ?' उनकी रातों की नींद और दिन का चैन उड़ गया। उन्होंने विशेष छान-बीन के लिए गुप्तचरों को नियुक्त कर दिया।

गुप्तचरों ने आकर लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि की उपस्थिति में ही स्पष्ट स्वर में राम को बताया कि 'अयोध्या में सीताजी के चरित्र के प्रति अपवाद फैल गया है और कुल की कीर्ति कलंकित हो रही है।'

—माता सीता के चरित्र की निन्दा? कौन कर रहा है? —मैं उसके वंश को ही मिटा दूँगा। —क्रोधित होकर लक्ष्मण गरजे।

श्रीराम ने उन्हें रोकते हुए कहा—

—भाई ! पहले मुझसे राज्य के उच्चाधिकारियों ने कहा था। मैंने स्वयं अपने कानों से भी सुना और फिर इन लोगों को नियुक्त किया था। अयोध्या में सीता का अपवाद फैल ही रहा है।

—कौन है इसकी जड़ में ? किसने फैलाया यह अपवाद ?

—कोई भी हो ? किसी ने भी फैलाया हो ? अब तो सीता के परित्याग के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

राम के इन वचनों को सुनकर सभी पर वज्रपात हो गया। लक्ष्मण ने आग्रह किया—

—नहीं भैया ! ऐसा मत कहो।

—कुल-कीर्ति की रक्षा के लिए सीता परित्याग करना ही पड़ेगा।

लक्ष्मण राम के चरणों में गिर पड़े। रोते-रोते कहने लगे—

—भैया ! कैसे सहन हो सकेगा उनका वियोग ? मेरे तो प्राण ही निकल जायेंगे।

राम ने अपना कुसुम कोमल हृदय वज्र से भी कठोर बना लिया था। कड़ककर डाँट दिया—

—कुछ मत कहो, लक्ष्मण !

अग्रज का ऐसा रूप उन्होंने जीवन में प्रथम वार ही देखा था। उत्तरीय से मुख ढाँककर आँसू बहाते महल में चले गये।

कृतान्तवदन सारथी को बुलाकर राम ने आज्ञा दी—

—सीता को सम्मेत शिखर की यात्रा के बहाने ले जाकर किसी निर्जन वन में छोड़ आओ।

सारथी स्तम्भित रह गया। कुछ वोलने को मुँह खोला तो राम का दृढ़ स्वर गूँज गया—कुछ वोलने की आवश्यकता नहीं। आज्ञा का तुरन्त पालन हो।

सेवक धर्म के कठोरवन्धन से जकड़ा हुआ कृतान्तवदन सीताजी को रथ में बिठाकर चल दिया।[1] अत्यधिक दूर निकलकर वे गंगासागर को पार करके सिंहनिनादक वन में पहुँचे। निर्जन वन में रथ रोककर सारथी भूमि पर उतरा। शोक के कारण उसके आँसू बहने लगे। सीता ने उसे रोता हुआ देखकर पूछा—

---

१ वाल्मीकि रामायण में—

(१) सीता के अपवाद की सूचना भद्र नाम का व्यक्ति देता है।

(२) सीता को राम की आज्ञा से लक्ष्मण ऋषि वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़ आते हैं।

(३) राम को एक पत्नीव्रत धारी माना गया है इसलिए सपत्नियों का प्रश्न ही नहीं उठता। [वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

तुलसीकृत रामायण के अनुसार—

रजक (धोवी) अपनी पत्नी को डाँटते हुए व्यंग वचन कहता है। यह समाचार श्रीराम को उनका चर (नगर की दैनिक गतिविधियों की सूचना देने वाला अधिकारी) देता है। इसी पर राम अपने छोटे भाइयों को बुलाकर सीता को वन में छोड़ आने का आदेश देते हैं। छोटे भाई कारण जानना चाहते हैं तो राम कारण न बताकर कहते हैं—

आयसु मम टारइ जो ताता। रहै न प्राण तात मम गाता॥

वन में सीता को छोड़ आने के पश्चात सभी माताओं का मरण दिखाया गया है। सभी माताओं को राम ने उनका मनचाहा वर दिया और तब योगाग्नि में भस्म होकर वे स्वर्गधाम चली गई।

वर चह्यौ सोइ सोइ दियौ मातहि कारुणिक रघुपति सबै।
मन सोधकर निज योग पावक तजा तनु सादर सवै॥
योग अगनि तनु भस्म करि, सकल गईं पतिधाम।
भरत सत्रुसूदन लखन, शोक भवन भे राम॥१८॥

[तुलसीकृत : रामचरितमानस, लवकुश काण्ड, दोहा ६-१८]

—तुम्हें क्या दुःख है ? तुम रो क्यों रहे हो ?

कृतान्तवदन मुख नीचा करके बड़े शोक से बोला—

—माता ! कैसे बताऊँ मुझे क्या दुख है ? मुझे अकृत्य करना पड़ रहा है।

—क्या अकृत्य कर रहे हो तुम ?—सीता ने उत्सुक होकर पूछा।

—आप राक्षस रावण की लंका में रही थीं। उसकी काली छाया अब भी आपके सिर पर मंडरा रही है। लोकापवाद के कारण श्रीराम ने आपका परित्याग[1] कर दिया है। —कृतान्तवदन एक साँस में ही जल्दी-जल्दी बोल गया।

---

१ वाल्मीकि रामायण में सीता के परित्याग का एक अन्य कारण दिया हुआ है—

लक्ष्मणजी जब सीता को वन में छोड़कर मन्त्री सुमन्त्र के साथ लौट रहे थे तब वे बहुत दुखी थे। वे राम के इस कार्य को अधर्म समझ रहे थे। तब सुमन्त्र कहने लगा कि एक बार आपके पिता राजा दशरथ ने ऋषि दुर्वासा से अपने वंश के बारे में पूछा तब उन्होंने बताया था—राजन् ! तुम्हारा बड़ा पुत्र राम होगा और उसे बहुत दिनों तक स्त्री विछोह सहना पड़ेगा। क्योंकि—

'बहुत पुराने समय की घटना है कि एक बार देवासुर संग्राम में देवताओं से पीड़ित असुरों ने भृगु ऋषि की पत्नी की शरण ली। भृगु-पत्नी से अभय पाकर असुर सानन्द रहने लगे हैं, यह जानकर विष्णु ने अपने चक्र से ऋषि-पत्नी की गरदन काट दी। तब भृगुऋषि ने शाप दिया था कि 'विष्णु ! तुमने मेरी स्त्री को मारा। इस कारण तुम्हें भी मानव लोक में जन्म लेकर पत्नी का विछोह सहना पड़ेगा।'

विष्णु ही तुम्हारे पुत्र राम के रूप में जन्म लेंगे और इस शाप के कारण उन्हें पत्नी वियोग सहना पड़ेगा।

सारथी के यह वचन सुनते ही सीता अचेत होकर गठरी की भाँति रथ में से लुढ़की और जमीन पर आ गिरी। कृतान्तवदन विलाप करने लगा। वन की शीतल हवा से सीता सचेत हुई और फिर अचेत हो गई। यह क्रम कई बार चला।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। स्वस्थ होकर सीता ने पूछा—

—भद्र! अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है?

—बहुत दूर! किन्तु क्या लाभ होगा, यह जान कर?

—तुम तो वापिस जाओगे ही।

—जाना ही पड़ेगा, स्वामी की आज्ञा का पालन हो गया, यह सूचना देने।

—तो मेरा भी सन्देश दे देना।

—वह क्या?

सीता ने कहा—जाकर स्वामी से कहना कि अपवाद था तो मेरी परीक्षा क्यों नहीं ली? उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि मैं उनके वियोग में कैसे जी सकूँगी?

—हाँ माता! इस हिंसक पशुओं से भरे वन में तो आप अपने पुण्य से ही जी सकेंगी अन्यथा मरण तो निश्चित है ही।

—मर भी तो नहीं सकती, इस अपयश की गठरी को लादकर।

कृतान्तवदन मुख देखता ही रह गया सीता का। वह क्या उत्तर देता? सीता ही बोली—

—मैं हतभागिनी तो अपने कर्मों का फल भोगूँगी ही। किन्तु तुम मेरा इतना सा सन्देश कह देना—'जिस प्रकार लोकापवाद

इसी कारण सीताजी का परित्याग हुआ।

[वाल्मीकि रामायण, उत्तर कान्ड]

तुलसी के मानस में विश्वमोहिनी के कारण विष्णु को नारद का शाप भी था।

[तुलसी : मानस, बालकाण्ड]

से भयभीत होकर उन्होंने मेरा परित्याग कर दिया है कहीं मिथ्या-दृष्टियों के वहकावे में आकर जिनधर्म को न छोड़ दें अन्यथा भव भ्रमण की सुदीर्घ परम्परा चलती ही रहेगी; कभी भी मुक्ति न हो सकेगी।'

कहते-कहते सीता पुनः मूर्च्छित हो गई।

कृतान्तवदन सोचने लगा—'धन्य है सती, अपने दुःखों की ओर ध्यान भी नहीं है, वस पति की चिन्ता में ही डूवी हुई है। पति को दुःख न मिले, वे सभी प्रकार सुखी रहें। यही है सच्ची पति-भक्ति।'

सीता की मूर्च्छा टूटी तो कृतान्तवदन को देखकर वोली—

—जाओ भद्र ! तुम्हारा मार्ग सुखकर हो। सभी अयोध्यावासी सदा सुखी रहें।

सीता को प्रणाम करके कृतान्तवदन आँसू वहाता हुआ रथ में बैठकर वहाँ से चल दिया। सीता वहीं बैठी रह गई।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

❋ ❋

: ६ :

राजा वज्रजंघ से मिलन

सेनापति के चले जाने के बाद सीता अपने स्थान से उठी और इधर-उधर भटकने लगी। वह उच्च स्वर से विलाप करती हुई एक ओर चलने लगी। उसकी अश्रुधारा रुक ही नहीं रही थी। मृत्यु और जीवन के बीच में झूलती हुई सीता को अचानक ही वन में कुछ सैनिक दिखाई दिये। पहले तो वह भयभीत हुई और फिर भय छोड़कर पंच परमेष्ठी का ध्यान करने लगी।

उसको देखकर सभी सैनिक भयभीत हो गये। कहने लगे—'यह दिव्य रूप वाली स्त्री भूमि पर कैसे आ गई।' सैनिकों ने जाकर अपने राजा से कहा। राजा तुरन्त वहाँ आया और स्नेह भरे स्वर में कहने लगा—

—सुन्दरी ! इस गर्भावस्था में तुम्हें त्याग देने वाला वज्र हृदय पति कौन है, मुझे बताओ।

सीता मन-ही-मन पंच परमेष्ठी का स्मरण करती रही। उसने कोई उत्तर न दिया। राजा के मन्त्री सुमति ने कहा—

—देवी ! यह पुण्डरीकपुर के स्वामी राजा वज्रजंघ परम श्रावक, महासत्ववान और परनारी सहोदर हैं। रानी बन्धुदेवी और राजा गजवाहन इनके माता-पिता हैं। इस वन में हाथी पकड़ने आये थे। अपना कार्य पूरा करके जा रहे थे कि आप दिखाई दे गईं।

सीता के मुख से स्फुट रूप से पंच नमस्कार मंत्र सुनाई पड़ते ही राजा ने पुनः कहा—

—तुम मेरी धर्म वहिन हो और मैं तुम्हारा वन्धु। क्योंकि हम और तुम दोनों ही साधर्मी हैं—एक ही धर्म को मानने वाले। वहिन ! पति-गृह के अलावा स्त्री का एक और भी घर होता है—वह है भाई का घर। तुम मेरे घर चलो। मैं तुम्हारा भाई ही हूँ।

इस प्रकार का आश्वासन पाकर सीता चलने को तत्पर हुई। शिविका मँगाकर वज्रजंघ ने आदर सहित उसे विठाया और पूछा—

—वहिन ! अपना परिचय तो वता दो। भाई से क्या छिपाव ?

सीता ने रोते-रोते सारी अपबीती सुना दी। किसी के भी हार्दिक भावों को, गूढ़ रहस्यों को जानने की कला सहानुभूतिपूर्ण मीठे शव्द ही हैं। सीता की अपवीती सुनकर वज्रजंघ ने आश्वासन दिया—

—श्रीराम ने तुम्हारा त्याग लोकापवाद के कारण ही किया है। वे तुम्हें भूल नहीं सकेंगे। उन्हें वड़ा पश्चात्ताप हो रहा होगा। जल्दी ही तुम्हें ढूँढ़ने निकलेंगे।

सीता वज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर पहुँच गई।[1] वहाँ उसे वैसा ही स्वागत-सत्कार मिला मानो भाई भामण्डल का ही घर हो। सीता वहाँ आश्वस्त होकर रहने लगी। उसका अधिकांश समय धर्म ध्यान में ही व्यतीत हो जाता।

× × ×

सीता को वन में छोड़कर सेनापति कृतान्तवदन वापिस अयोध्या पहुँचा। राम के सम्मुख जाकर कहने लगा—

---

१ सीताजी को ऋषि वाल्मीकि अपने आश्रम में ले गये।
[तुलसीकृत : लवकुश काण्ड, दोहा १७, वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

—स्वामी ! मैं देवी सीता को सिंहनिनादक वन में छोड़ आया हूँ।

मानो तन्द्रा टूटी राम की, पूछने लगे—

—कहाँ ?

—सिंहनिनादक वन में।

—कुछ कहा, देवी ने ?

—हाँ, आपके लिए एक सन्देश दिया है।

—कहो।

कृतान्तवदन बताने लगा—

—देवी ने चलते समय कहा था—एक पक्ष की बात सुनकर ही निर्णय कर देना कौन सी नीति है ? श्रीराम जैसे विवेकी व्यक्ति ने भी ऐसा न्याय कर दिया—यह मेरे भाग्य का ही दोष है। वे तो सदा ही निर्दोष हैं।

—और कुछ भी कहा ?

—हाँ स्वामी ! उन्होंने कहा था 'जिस प्रकार लोकापवाद के भय से मेरा त्याग कर दिया है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टियों के कहने से अर्हन्त प्रणीत धर्म का त्याग न कर दें।'

अन्तिम शब्दों ने राम पर वज्र-प्रहार सा कर दिया। वे मूच्छित होकर गिर गये। तत्काल लक्ष्मण ने सुगन्धित जल आदि से सचेत करके विनती की—

—भैया ! महासती को आप स्वयं जाकर ले आइये।

किन्तु राम मौन हो गये। उनके हृदय का दुःख मुख पर गाम्भीर्य बनकर छा गया।

व्यक्ति की परख वियोग होने पर ही होती है। सीता के चले जाने से राजमहल सूना हो गया। अयोध्या के नर-नारी जो कल तक

उनका अपवाद कर रहे थे आज उनकी याद में आँसू वहा रहे थे। सभी की आँखें उस महासती के दर्शनों को लालायित थीं।

प्रजा ने राम से पुकार की। राम पर दवाव पड़ा। राम सीता को लाने के लिए तैयार हो गये। लक्ष्मण की तो हार्दिक इच्छा ही यह थी।

तुरन्त विमान तैयार हुआ। राम अपने अनुज लक्ष्मण, सेनापति कृतान्तवदन तथा अन्य खेचरों (विद्याधरों) के साथ सिंहनिनादक वन में आये। सेनापति ने वह स्थान बता दिया जहाँ कि वह सीताजी को छोड़ गया था।

सभी ओर खोज होने लगी परन्तु सीताजी का कहीं पता न लगा। निराश होकर सबने समझ लिया कि उन्हें व्याघ्र आदि कोई हिंसक पशु खा गया होगा।

सभी अयोध्या लौट आये।

राम की आखें सदा आँसुओं से भरी रहतीं। उनका हृदय, वाणी, दृष्टि सभी कुछ सीतामय था।

भाग्य की विडम्बना ही थी कि सीता जीवित थी और मरी समझ ली गई। यह कर्मदोष ही तो था कि राम भी सीता से मिलना चाहते थे और सीता तो राम की अनन्य भक्त थी ही, सांसारिक परिस्थितियाँ भी अनुकूल थीं, सभी चाहते थे कि राम सीता का मिलन हो किन्तु मिलन न हो सका ! राम को यह पता ही न लग पाया कि सीता वज्रजंघ राजा के घर रह रही है।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

✲ ✲

: ७ :

पुत्र-जन्म

सीता ने वज्रजंघ के घर रहते हुए अनंगलवण और मदनांकुश दो युगल पुत्रों को[1] जन्म दिया। पुत्र-जन्म पर वज्रजंघ ने हर्षित होकर खूब उत्सव मनाया।

अनुक्रम से दोनों पुत्र बढ़ने लगे। उनकी बाल-क्रीड़ाओं को देखकर राजा बहुत प्रसन्न होता।

उस समय सिद्धार्थ नाम का एक अणुव्रतधारी श्रावक समस्त कलाओं में निपुण, आगमज्ञान में विचक्षण और आकाशगामी विद्या से सम्पन्न था। एक दिन भिक्षा हेतु वह सीता के घर आया। श्रद्धापूर्वक भात-पानी से प्रतिलाभित करके सीता ने उससे कुशल समाचार पूछा। सिद्धार्थ ने भी सीता का परिचय जानने की इच्छा प्रगट की तो उसने अपने जन्म से लेकर पुत्र-जन्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया।

सर्व विद्याओं में निपुण सिद्धार्थ ने कहा—

—तुम व्यर्थ ही शोक कर रही हो। लवण और अंकुश दोनों पुत्र तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूरा कर देंगे।

---

१ इनका वैदिक परम्परा के अनुसार और लोक प्रसिद्ध नाम लव-कुश है।

—सम्पादक

यह सुनकर सीता ने आग्रह किया—

—इन दोनों की शिक्षा का भार आप ही ग्रहण करें।

सिद्धार्थ ने सीता का आग्रह स्वीकार कर लिया और वहीं रहकर लवण और अंकुश दोनों भाइयों को विद्या, कला, धर्म और शस्त्र-अस्त्रों की शिक्षा देने लगा।[1]

योग्य गुरु को पाकर दोनों पुत्र युवक होते-होते सभी कला और विद्याओं में पारगामी हो गये। वे ऐसे पराक्रमी और दुर्द्धर थे कि देवतागण भी उनके समक्ष न टिक पाते। बल में, शस्त्रास्त्र विद्या में, आगम और धर्म के गूढ रहस्यों में उनकी समता करने वाला पुरुष दूसरा कोई दिखाई नहीं देता था।

वज्रजंघ ने अपनी रानी लक्ष्मीवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्री शशिचूला तथा अन्य दूसरी बत्तीस कन्याओं का विवाह लवण के साथ कर दिया। अंकुश के विवाह के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु की रानी कनकवती से उत्पन्न पुत्री कनकमाला की माँग की।

राजा पृथु पराक्रमी होने के साथ-साथ अभिमानी भी था। उसने वज्रजंघ की माँग को ठुकराते हुए व्यंगपूर्वक कहा—

—जिसके वंश का ही पता न हो उसे अपनी कन्या कौन देगा ?

यह व्यंग्य वज्रजंघ को चुभ गया। उसने राजा पृथु पर चढ़ाई कर दी और प्रथम ही युद्ध में पृथु राजा के मित्र को बन्दी बना लिया।

---

१ (क) उत्तरपुराण में राम के पुत्र का नाम विजय राम दिया है।

(श्लोक ६९०)

(ख) राम के पुत्रों का नाम कुश और लव था। इन दोनों का जन्म वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में हुआ था और ऋषि वाल्मीकि ने ही उन्हें शिक्षित किया तथा २४००० श्लोक प्रमाण 'रामचरित' रचकर उन्हें सिखाया।

[वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड]

पृथु ने अपने मित्र पोतनपुर नरेश को बुलाया और वज्रजंघ ने अपने पुत्रों को। हठ करके लवण और अंकुश भी उनके साथ चले गये।

राजा पृथु के मित्र और वज्रजंघ के पुत्र तथा लवण और अंकुश के आने पर पुनः घोर संग्राम प्रारम्भ हुआ। पृथु की सेना ने वज्रजंघ की सेना को भंग कर दिया।

अपने मामा (वज्रसंघ) की हार होती देख लवण और अंकुश के खून में उबाल आ गया। बहुत रोकने पर भी वे वीर भाई रुक न सके।

दोनों भाई विभिन्न प्रकार के शस्त्र लेकर शत्रु दल पर टूट पड़े। केशरीसिंह के समान जिधर भी उनका मुख हो जाता शत्रु दल गीदड़ों के समान भागने लगता। अत्यल्प समय में ही उन्होंने पृथु की सेना को पृथ्वी पर सुला दिया। प्राण बचाकर राजा पृथु पीठ दिखाने लगा तो उन्होंने व्यंग्य किया—

—तुम तो जगविख्यात कुल वाले हो, हम अज्ञात वंश वालों के भय से क्यों भागते हो ?

राजा पृथु ने भयभीत होकर उत्तर दिया—

—तुम्हारे पराक्रम ने ही तुम्हारे वंश का परिचय दे दिया।

यह कहकर राजा पृथु ने सभी राजाओं के समक्ष वज्रसंघ से सन्धि कर ली। साथ ही यह वचन भी दिया कि 'मेरी पुत्री कनकमाला का पति अंकुश होगा।'

राजा वज्रसंघ शिविर डालकर कितने ही दिन वहाँ रहा। उनके साथ अन्य राजा भी थे। पृथु भी उनके साथ ही ठहर गया।

एक दिन वहाँ मुनि नारद आ गये। सत्कार करके राजा वज्रजंघ ने कहा—

—मुनिवर ! राजा पृथु अपनी पुत्री का विवाह अंकुश से करने वाले हैं किन्तु........

—किन्तु...... दुविधा क्या है ?

—इन्हें अंकुश के वंश का परिचय चाहिए। आप ही बता दीजिए कि उसका वंश क्या है, जिससे इन्हें सन्तोष हो जाये।

नारदजी वोले—

—आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के वंश के परिचय की भी आवश्यकता आ पड़ी राजा पृथु को !

विस्मित होकर पृथु ने पूछा—

—कैसे मुनिवर ? मुझे पूरी वात वताइये।

—राजा पृथु ! लवण और अंकुश सूर्य वंशोत्पन्न वलभद्र श्रीराम के पुत्र हैं जिनके वल, पराक्रम और गौरव की गाथा भरतक्षेत्र के वच्चे-वच्चे की जवान पर है। इससे अधिक परिचय चाहिए, आपको ? —नारदजी ने अंकुश का वंश परिचय दे दिया।

लज्जित होकर राजा पृथु वोला—

—नहीं, देवर्षि नहीं ! अव मुझे पूरा सन्तोष हो गया। मैं तो यह सोच रहा था कि ऐसे पराक्रमी पुत्र किसी साधारण मनुष्य के नहीं हो सकते।

अव जिज्ञासा जाग्रत हुई अंकुश को। उसने प्रश्न किया—

—देवर्षि ! पराक्रमी पिता के जीवित रहते हुए हम यहाँ कैसे आ गये ?

—दुखद घटना है पुत्र ! तुम्हारी माता के जीवन की। श्रीराम ने जंगल में छुड़वा दिया था सती शिरोमणि सीता को, जवकि वह गर्भवती थी।

माता का परित्याग पिता द्वारा—तेवर वदल गये अंकुश के। किन्तु मनोभाव दवाकर पूछने लगा—

—कहाँ रहते हैं हमारे पिता, हम भी देखें कि वे कैसे हैं ?

नारद ने देखा अंकुश के शब्दों में व्यंग्य भी मिश्रित है किन्तु वह मधुर स्वर में बोले—

—वत्स ! राम अयोध्या में रहते हैं।

—कितनी दूर है, वह ?

—यहाँ से एक-सौ साठ योजन दूर।

नारदजी इतना कहकर उठ खड़े हुए। राजा वज्रजंघ और पृथु तथा सम्पूर्ण सभा ने उठकर उनको आदरपूर्वक विदा कर दिया। अंकुश ने अयोध्या जाने की इच्छा प्रकट की तो वज्रजंघ ने तुरन्त स्वीकृति दे दी। वह युवा भानजों की इच्छा का विरोध करके उस समय बात बढ़ाना नहीं चाहता था। उसने चतुराईपूर्वक उनकी इच्छा को दूसरी ओर मोड़ने का प्रयास किया—

—वत्स ! पहले कुछ देशों को विजय कर लो तब तुम्हारा अयोध्या जाना अधिक उचित रहेगा।

अंकुश ने राजा की यह इच्छा स्वीकार कर ली। राजा पृथु की कन्या से विवाह करने के पश्चात कुमार अंकुश, अपने भाई लवण और राजा वज्रजंघ सहित सेना लेकर निकला।

मार्ग में अनेक राजाओं को नम्र बनाते हुए वे लोकपुर नगर के पास आये। वहाँ का राजा कुबेरकान्त अभिमानी था तो उसे युद्ध में जीत लिया। लंपाक देश के राजा एककर्ण और विजयस्थली के राजा भातृशत पर विजय प्राप्त की। गंगा नदी के किनारे-किनारे उत्तर दिशा में कैलाश पर्वत की ओर चले तो मार्ग में नन्दनचारु राजा का देश विजित किया। वहाँ से आगे चलकर रूष, कुन्तल, कालांबु, नन्दिनन्दन, सिंहल, शलभ, अनल, शूल, भीम और भूतरवादि देशों के राजाओं को विजय करते हुए सिन्धु नदी के किनारे आ

पहुँचे। वहाँ अनेक आर्य और अनार्य राजाओं को विजय करके सभी राजाओं के साथ पुंडरीकपुर वापिस आये।

प्रजा ने 'धन्य है राजा वज्रजंघ जिसे ऐसे पराक्रमी भानजे मिले हैं' कहकर उनका स्वागत किया।

सभी राजाओं को छोड़कर लवण और अंकुश अपनी माता सीता के पास आये और उसके चरणों में नमस्कार किया। सती अपने विजयी पुत्रों को देखकर फूली न समाई। उसने आशीर्वाद दिया—

—अपने पिता और चाचा के समान ही यशस्वी बनो।

इस आशीर्वाद ने दोनों भाइयों को अयोध्या की स्मृति पुनः ताजा करा दी। समीप ही उपस्थित राजा वज्रजंघ से उन्होंने कहा—

—आपने हमें पहले जो अयोध्या जाने की स्वीकृति दी थी, अब पूरी कीजिए। इन सब राजाओं को आज्ञा दीजिए कि सेना सहित हमारे साथ जायँ।

—क्यों इन सबका, सेना का अयोध्या में क्या होगा? —अचकचाकर वज्रजंघ ने पूछा।

—हम भी तो देखें कि निरपराधिनी माता का त्याग करने वाले हमारे पिता में कितना बाहुबल है?

सन्न रह गई सीता। उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। बोली—

—उनका बाहुबल तुम क्या देखोगे? त्रिखण्डेश्वर रावण ने वैर किया तो गीदड़ की मौत मारा गया! वे देवों से भी अजेय हैं। परम शक्तिशाली दिव्यास्त्र हैं उनके पास।

—हम भी उन्हीं के पुत्र हैं माँ! धर्म हमारे साथ है। अपने धर्मास्त्र से हम भी अजेय हैं?

—पुत्रो! गुरुजनों के प्रति विनय करनी चाहिए। उनके

दर्शन करने हों तो नम्रतापूर्वक जाओ। सैन्य सजाकर शत्रुतापूर्वक नहीं। शत्रु के लिए उन्हें साक्षात् काल ही समझो। उनके बल की कोई सीमा नहीं।

—तो उसकी भी परीक्षा हो जायगी माता ! हम भी देख लेंगे कि श्रीराम के पुत्र लवण और अंकुश पराक्रमी हैं भी या नहीं।

वज्रजंघ ने बीच में ही बात काटी—

—नहीं पुत्र ! तुम्हारा पराक्रम तो यह सम्पूर्ण नरेश जानते हैं। कौन कहता है कि तुम पराक्रमी नहीं हो।

—बल और पराक्रम की परीक्षा सर्वश्रेष्ठ बली के सम्मुख होती है। छोटे-मोटे राजाओं को वश में कर लेना भी कोई पराक्रम है। सिंह का मुकाबला जब तक सिंह से ही न हो तब तक क्या पराक्रम ?

सीता रोकती ही रह गई किन्तु दोनों कुमार न माने। वे सभी विजित राजाओं को साथ लेकर चल दिये। पीछे-पीछे विशाल सेना थी और आगे दश हजार सुभटों का अग्रगामी दल।

पिता-पुत्र के युद्ध से भविष्य के संकट की आशंका करके सीता रोने लगी।

त्रिषष्टि शलाका ७।९

—उत्तर पुराण, पर्व ६८, श्लोक ६९०

❋ ❋

: ८ :

पिता-पुत्र का मिलन

रुदन करती हुई सीताजी के पास राजा भामण्डल संभ्रमित होकर आया। भाई को देखते ही सीता ने आतुर शब्दों में कहा—

—भैया ! पिता-पुत्र में युद्ध होने वाला है। तुरन्त रोको, नहीं तो अनर्थ हो जायगा।

—हाँ, इसीलिए तो मैं आया हूँ। नारदजी ने मुझे पूरी बात बता दी है। जल्दी चलो। इससे पहले कि युद्ध प्रारम्भ हो, हममें वहाँ पहुँच जाना चाहिए।

यह कहकर भामण्डल ने सीता को विमान में बिठाया और शीघ्र गति से चलकर लवण-अंकुश के शिविर में जा पहुँचा। शिविर अयोध्या के समीप ही लगा हुआ था।

दोनों भाइयों ने माता को तुरन्त प्रणाम किया और भामण्डल की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगे। सीता ने बताया—'यह तुम्हारे मामा हैं।' उन्होंने भामण्डल को भी नमस्कार किया। हर्ष से रोमांचित होकर भामण्डल ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—

—मेरी बहन वीर-पत्नी तो थी ही, वीरमाता भी हो गई। किन्तु वीर-पुत्रों तुम अपने पिता से ही युद्ध क्यों करते हो ? वे तो अजेय हैं।

—माताजी तो ऐसे वचन कहती ही थीं आप भी हमें कायर बना रहे हैं।

शिविर में ये बातें हो ही रही थीं कि लवण-अंकुश और राम-लक्ष्मण की सेना में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। शत्रु को समीप आया देखकर राम भी चुप नहीं बैठे थे। उन्होंने भी सुग्रीव आदि के सेनापतित्व में अपनी सेना भेज दी थी। युद्ध की भयंकर आवाजें सुन कर भानजों से साथ भामण्डल तुरन्त शिविर से बाहर निकल आया।

सुग्रीव आदि ने भामण्डल को देखा तो वे तुरन्त उसके पास आये और पूछने लगे—

—ये दोनों कुमार कौन हैं ?

—श्रीराम के पुत्र ! —संक्षिप्त सा उत्तर मिला।

—विश्वपावनी सीताजी कहाँ हैं ? —प्रश्न निकला सुग्रीव के मुख से।

—पीछे शिविर में।

भामण्डल के इस उत्तर को सुनते ही सुग्रीव आदि सभी सुभट युद्ध भूमि छोड़कर शिविर में आये और सीताजी को प्रणाम करके वहीं बैठ गये। स्वामी के पुत्र से स्वामिभक्त सेवक कभी युद्ध नहीं करता।

युद्धभूमि में दुर्द्धर कुमार लवण-अंकुश ने त्राहि-त्राहि मचा दी। राम-पुत्रों के समक्ष राम की सेना भंग हो गई। अब राम-लक्ष्मण स्वयं युद्ध में उतरे और लवण-अंकुश के सम्मुख जा पहुँचे। उन्हें देखते ही राम-लक्ष्मण आयुध रखकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। लक्ष्मण ने अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए—

—भैया ! कैसे सुन्दर कुमार हैं ?

—मेरा तो मन ही नहीं करता इन पर प्रहार करने को।

—इन्हें देखकर हृदय में प्रेम उमड़ा पड़ रहा है।

—मैं तो इनका आलिंगन करके तृप्त होना चाहता हूँ।

वे दोनों इस प्रकार की वातें कर ही रहे थे कि विनीत शब्दों में अंकुश ने लक्ष्मणजी से कहा—

—आपको देखकर हृदय प्रसन्न हो गया। रावण ने जो आपकी युद्धेच्छा पूरी नहीं की, उसे हम पूरी करने आये हैं।

रावण का नाम सुनते ही राम-लक्ष्मण की मुख-मुद्रा कठोर हो गई। उनके हृदय में जो स्नेह भाव आया था, वह विलुप्त हो गया। उन्होंने तीक्ष्ण धनुष्टंकार किया। लवण-अंकुश यही तो चाहते थे। उन्होंने भी धनुष्टंकार का उत्तर धनुष्टंकार से ही दिया। कृतान्त-वदन सारथी ने राम का रथ लवण के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया और विराध ने लक्ष्मण का रथ अंकुश के सामने। चारों वीर परस्पर युद्ध करने लगे। लवण-अंकुश तो अपना सम्वन्ध जानते थे इसलिए वचाकर शस्त्र प्रहार करते और राम-लक्ष्मण उनको लक्ष्य करके ही प्रहार करते। पुत्रों की इच्छा पिता और काका (चाचा) को तनिक सा पराक्रम दिखाने की ही थी जवकि राम-लक्ष्मण उनके प्राण लेने पर ही उतारू थे। उनका हनन और युद्ध का अन्त करने की इच्छा से राम अपने सारथि से वोले—रथ को विलकुल सामने रखो।

कृतान्त ने निराश स्वर में कहा—

—कैसे सामने रखूँ रथ को? भीषण वाण-वर्षा से घोड़ों के शरीर छलनी हो गये हैं और रथ जर्जर। मेरी भुजाओं में लगाम खींचने तक की शक्ति नहीं रही। अप्रतिम योद्धा हैं यह प्रतिपक्षी कुमार!

उसी के स्वर में स्वर में मिलाकर राम कहने लगे—

—हाँ सारथी! मेरा वज्रावर्त धनुष भी शिथिल हो गया है। मूसलरत्न मानो च्यूँटी को भी नहीं मार सकता; हलरत्न अब खेत जोतने के काविल भी नहीं रहा। शत्रुओं के लिए कालरूप इन दिव्यास्त्रों की शक्ति न जाने कहाँ विलीन हो गई।

जिस प्रकार राम के दिव्य अस्त्र लवण के सम्मुख विफल हो गये

उसी प्रकार अंकुश के समक्ष लक्ष्मण के। वे भी चिन्तातुर होकर सोचने लगे। उसी समय लक्ष्मण के वक्षस्थल पर एक बाण आ लगा। वज्र समान आघात से लक्ष्मण अचेत होकर रथ में गिर गये। तुरन्त विराध ने रथ मोड़ा और अयोध्या की ओर दौड़ाने लगा। मार्ग की वायु से लक्ष्मण सचेत हुए तो विराध को फटकारने लगे—

—अरे विराध ! यह तुमने क्या अकार्य किया ? रणभूमि को छोड़कर भागना क्षत्रिय के लिए मृत्यु से भी बुरा है। तुरन्त रथ को मोड़ो।

बेचारा विराध क्या करता ? लक्ष्मणजी की रौद्र मुख-मुद्रा देखकर उसने पुनः रथ लौटाया और अंकुश के सामने ला खड़ा किया। लाल-लाल नेत्र करके उन्होंने अपना अन्तिम अमोघ अस्त्र दिव्य चक्र-रत्न अंकुश पर छोड़ा। अंकुश ने अनेक अस्त्रों से चक्र को निष्फल करने का प्रयास किया किन्तु जैसे सूर्य के प्रताप से सभी ग्रह-नक्षत्र छिप जाते हैं वैसे ही अंकुश के सभी अस्त्र व्यर्थ हो गये। दिव्य चक्र ने अंकुश की प्रदक्षिणा की और लौटकर लक्ष्मण के हाथ में आ गया। चक्र की इस क्रिया से लक्ष्मण का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने पुनः चक्र फेंका। अंकुश की प्रदक्षिणा देकर वह फिर लौट आया। तीसरी बार भी यही हुआ। विस्मित रह गये राम-लक्ष्मण दोनों। सामने खड़े लवण-अंकुश मुस्करा रहे थे।

राम-लक्ष्मण विचारमग्न हो गये—क्या भरतक्षेत्र में यही बल-भद्र-वासुदेव हैं, हम नहीं ?

उसी समय सिद्धार्थ के साथ नारद ने आकर राम-लक्ष्मण से कहा—

—अरे राम ! इस हर्ष के समय दुःखी क्यों हो ?

श्रीराम ने दुःखी स्वर में उत्तर दिया—

—आपको भी हमारी हँसी उड़ाने का अच्छा अवसर मिला है : खूब व्यंग कर लीजिए आप भी !

नारदजी ने मधुर स्वर में समझाया—

—नहीं राम ! मैं व्यंग नहीं कर रहा हूँ। ये दोनों सीताजी की कुक्षि से उत्पन्न तुम्हारे ही पुत्र हैं। जिस प्रकार भरत के चक्र ने बाहुवलि पर काम नहीं किया उसी प्रकार लक्ष्मण का चक्र भी व्यर्थ हो गया। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि वे तुम्हारे ही पुत्र हैं।

इसके वाद नारद ने सीता त्याग से लेकर अब तक का पूरा वृत्तान्त सुना दिया।

राम को विस्मय[1], लज्जा[2], खेद[3] और हर्ष[4] एक साथ ही हुए। वे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये। थोड़ी देर बाद सचेत हुए तो प्रेम-विह्वल होकर पुत्रों से मिलने के लिए आगे बढ़े। लवण-अंकुश ने पिता और काका को प्रेम-विह्वल देखा तो स्वयं दौड़कर उनके चरणों में आ गिरे।

राम ने उन्हें उठाकर कण्ठ से लगा लिया। अग्रज के अंक से दोनों कुमारों को लेकर लक्ष्मण उनसे लिपट गये। हर्ष के आँसू वहने लगे। युद्धभूमि मिलन-भूमि में परिणत हो गई। सेना के वीर भी परस्पर एक-दूसरे के कण्ठ से लग गये। मिलन का अभूतपूर्व दृश्य था। कौन किसके मिल रहा है, सुधि नहीं। शत्रु कोई नहीं सभी एक-दूसरे के मित्र थे।

सती सीता ने यह मिलन-दृश्य हर्षाश्रुपूरित नयनों से देखा। पिता-पुत्र के परस्पर प्रेम को देखकर वह सन्तुष्ट हुई। हर्ष के आँसू वहाती हुई विमान में बैठी और पुण्डरीकपुर चली गई।

---

१ पुत्रों के पराक्रम को देखकर विस्मय उत्पन्न हुआ।

२ अपनी हार से लज्जा उत्पन्न हुई।

३ सीता-त्याग से उत्पन्न हुआ वियोगजन्य खेद।

४ पुत्र दर्शन और मिलन से हर्ष हुआ।

राम-लक्ष्मण के सम्मुख आकर राजा वज्रजंघ ने नमस्कार किया तो राम ने उसका आदर करते हुए कहा—

—राजन् ! तुम हमारे लिए भामण्डल के समान ही प्रिय हो। तुम्हीं ने इन कुमारों का लालन-पालन करके इस योग्य बनाया है।

विशेष—राम एक अश्वमेध यज्ञ करते हैं। वाल्मीकि ऋषि की प्रेरणा से दोनों बालक (लव और कुश) यज्ञ-मण्डप में आकर राम का चरित्र सुनाते हैं। तब सीताजी को बुलाया जाता है और राम उन्हें अपनी शुद्धि प्रमाणित करने की आज्ञा देते हैं। सीता कहती है 'यदि मन, वचन, काय से मैंने राम को ही पति परमेश्वर माना है तो पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दे।' उसी समय नागों द्वारा उठाया हुआ एक दिव्य सिंहासन पृथ्वी में से निकला। उस पर स्वयं पृथ्वी देवी बैठी हुई थी। देवी ने सीता को उठा लिया और सिंहासन सीताजी सहित ज्यों की त्यों पृथ्वी में वापिस समा गया। [वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

तुलसीकृत रामचरितमानस में—

(१) राम अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी करते हैं। उसमें सम्मिलित होने के लिए राम के निमन्त्रण पर सुग्रीव, विभीषण, जनक आदि सभी राजा आये। यज्ञ प्रारम्भ करने से पहले गुरु वसिष्ठ ने कहा—

विनु तिय नहि फल होय खरारी। अब चहिए मिथिलेशकुमारी॥

यह सुनकर सभी मौन हो गए तब गुरु वसिष्ठ ने नारद, सनक आदि मुनियों की सलाह से—

कनक जटित मणि सुन्दरवाला। रचि सिय रूप सुशील विशाला॥

राम की बगल में बिठा दीं और यज्ञ प्रारम्भ कर दिया।

[लवकुश काण्ड, दोहा २०-२६]

(२) जैसे ही यज्ञ का घोड़ा वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के समीप पहुँचा, लव-कुश दोनों भाइयों ने उसे एक वृक्ष से बाँध दिया और घोड़े के रक्षक साठ हजार सुभटों में से अधिकांश को मार गिराया। [दोहा ४४]

इसके वाद राम अनुज और पुत्रों के साथ पुष्पक विमान में वैठकर अयोध्या लौट आये।

राजा और प्रजा दोनों ने मिलकर पुत्र-मिलन के उपलक्ष में वहुत वड़ा उत्सव मनाया।

लवण-अंकुश सहित राम-लक्ष्मण अयोध्या में आनन्द से रहने लगे।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

* *

---

(३) शत्रुघ्न को मूर्छित कर दिया। [दोहा ४५]

(४) श्रीराम ने भागे हुए सैनिकों के द्वारा शत्रुघ्न के मूर्छित होने का समाचार जाना तो लक्ष्मण को अपार सेना के साथ भेजा। लक्ष्मण ने पहले तो कुश को गदा मारकर अचेत कर दिया फिर वाण मार कर लव को। तब तक कुश ने सचेत होकर लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया। सैनिकों ने लक्ष्मण के मूर्छित होने का समाचार राम के पास आकर कह सुनाया। [दोहा ४६-४८]

(५) तव भरत के साथ हनुमान, विभीषण, अंगद, सुग्रीव, नल नील आदि को भेजा। दोनों भाइयों (लव-कुश) ने हनुमान, जामवन्त आदि को बाँध लिया और भरत को मूर्छित कर दिया। [दोहा ४६-५३]

(६) अन्त में श्रीराम पहुँचे तब वाल्मीकि ऋषि ने उन्हें लव-कुश का परिचय दिया। सभी भाई सचेत हो गये। राम ने लक्ष्मण को सीता के पास शपथ लेने हेतु भेजा। सीता ने राम की इच्छा जानकर शपथ ली और शेषनाग के हजार फनों पर रखा सिंहासन भूमि से निकला। शेषनाग ने आदर सहित सीता को सिंहासन पर विठाया और भूमि में अन्दर जाकर अलोप हो गया। राम अपने सभी भाइयों और हनुमान, सुग्रीव आदि वीरों तथा अपने दोनों पुत्रों सहित अयोध्या लौट आये।

[दोहा ४६-५८]

: ६ :

सीताजी की अग्नि-परीक्षा

लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद आदि ने सम्मिलित रूप से राम से प्रार्थना की—

—हे स्वामी ! सती सीता पति और पुत्रों के वियोग से दुःखी होकर प्राण छोड़ दें उससे पहले ही उन्हें यहाँ बुला लिया जाय ।

राम ने वहुत सोच-विचार के बाद उत्तर दिया—

—चाहता तो मैं भी हूँ कि बुला लिया जाय किन्तु लोकापवाद सबसे वड़ा रोड़ा है। सीता सती है लेकिन जब तक वह अपनी परीक्षा न दे, उसे स्वीकार करना कठिन है।

राम की आज्ञा से अयोध्या के वाहर विशाल मण्डप बनाया गया। उसमें राजाओं, नगर-जनों, अमात्यों और विद्याधरों को बैठने के लिए मंच बना दिये गये। सभी लोग उचित स्थानों पर आ बैठे तो राम के आदेश से सुग्रीव पुण्डरीकपुर पहुँचा और सीता को प्रणाम करके निवेदन किया—

—हे देवी ! आपके लिए श्रीराम ने पुष्पक विमान भेजा है। इसमें बैठकर अयोध्या पधारिये।

—वानरराज ! अभी मैं परित्याग का दुःख तो भूल नहीं सकी हूँ फिर दूसरा नया दुःख पाने के लिए अयोध्या कैसे जाऊँ ? —सीता ने विरक्ति से उत्तर दिया।

सुग्रीव ने पुनः कहा—

—विरक्ति मत दिखाइए। श्रीराम सभी नगर-जनों और अधिकारियों के साथ आपके शील की परीक्षा हेतु अयोध्या के वाहर वैठे हैं।

सीता स्वयं को निर्दोष सिद्ध करना ही चाहती थी। उसके चरित्र पर अयोध्यावासियों ने जो मिथ्यादोषारोपण किया था, वह उसके हृदय में कांटे की तरह चुभ रहा था। उसने अवसर गँवाना उचित नहीं समझा और चुपचाप विमान में बैठ गई। सुग्रीव ने विमान नगर के वाहर महेन्द्रोदय उद्यान में उतारा। लक्ष्मण आदि ने आकर सीताजी को नमस्कार किया और विनम्र स्वर में बोले—

—हे देवी ! अयोध्या नगरी और राजमहल में प्रवेश करके उसे पवित्र कीजिए।

—वत्स ! पहले ही तुम्हारा कुल मेरे ही कारण कलंकित हो चुका है। शुद्धि बिना प्रवेश करने से वह सदा के लिए कलंकित हो जायगा। इसलिए बिना परीक्षा दिए में नगर-प्रवेश नहीं करूँगी। —सीता ने दृढ़ स्वर में कहा।

सीता की यह कठिन प्रतिज्ञा लोगों ने राम को वता दी। राम ने वहाँ आकर न्याय निष्ठुर शब्दों में सीताजी से कहा—

—तुम इतने दिन रावण के घर रहीं, यदि तुम्हारा शील अखण्डित है तो दिव्य चमत्कार करो।

हँसकर उत्तर दिया सीता ने—

—दिव्य चमत्कार करना या तो देवों का कार्य है अथवा दिव्य-शस्त्रों के धारक आप जैसे लोगों का। चमत्कार तो आपने किया।

—कैसे ?

—न्याय-नीति पूर्वक अपराध का निर्णय किये विना किसी को दारुण दुःख रूपी दण्ड दे देना क्या कम चमत्कार है ? आप जैसे महान

पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं। हाँ, मैं परीक्षा देने के लिए तव भी तैयार थी और अव भी हूँ।

राम से कुछ भी उत्तर न वन सका सीताजी के इस नीतिपूर्ण तर्क का। वात वदल कर वोले—

—तो परीक्षा ही सही, कैसी परीक्षा दोगी तुम ?

सीता ने दृढ़ स्वर में कहा—दिव्य परीक्षाएँ पाँच प्रकार की हैं। मैं पाँचों प्रकार के दिव्य करने को तैयार हूँ। आप कहें तो अभिमन्त्रित तन्दुलों (चावल) का भक्षण करूँ, ताजवा पर चढ़ूँ, पिघले हुए शीशे अथवा लोहे को पी जाऊँ, जिह्वा से शस्त्र का फल ग्रहण करूँ, अथवा धकधकाती हुई अग्नि में कूद पड़ूँ।

उसी समय आकाश से सिद्धार्थ और नारद तथा पृथ्वी से अयोध्या वासियों का कोलाहल पूर्ण शब्द सुनाई दिया—

—सीता महासती है। किसी दिव्य की आवश्यकता नहीं। हमें इनके चरित्र पर पूरा विश्वास है।

जानकी के वियोग से क्षुभित राम के हृदय का दुःख आक्रोश वनकर लोगों पर वरस पड़ा—

—तुम्हारा भी कोई ठीक है ! पहले तो इस महासती का अपवाद करके विरह के दावानल में झोंक दिया और अव कहते हैं कि यह निर्दोष है। नहीं देवि ! तुम अग्नि प्रवेश करके अपने शील का प्रमाण दे दो। कैसे भी यह कलंक तो मिटे। मेरा और तुम्हारा मिलन-सुख तो भाग्य से देखा ही नहीं जाता। कभी रावण अन्तराय वनकर आ जाता है तो कभी अयोध्या की प्रजा ! हमने तो जन्म ही चिर-वियोग के लिए लिया है। वन-वन भटके। हमेशा दुःख ही सहे। कभी भी तो सुख के दिन नहीं देखे।

कहते-कहते राम का स्वर कातर हो गया। सीता की आँखों में भी आँसू भर आये।

सभी जानते थे कि राम का निश्चय अटल है और अव तो सीता भी दृढ़ प्रतिज्ञ है। अत: तीन सौ हाथ लम्बा-चौड़ा और दो पुरुष प्रमाण गहरा एक गड्ढा खोदकर चन्दन की लकड़ियों से भर दिया गया।

× × ×

उसी समय जयभूषण केवली का कैवल्योत्सव मनाने हेतु आये हुए इन्द्र से देवताओं ने कहा—स्वामी! मिथ्या लोकापवाद के कारण सती शिरोमणि सीताजी अग्नि में प्रवेश कर रही हैं।

इन्द्र नें तुरन्त अपनी पैदल सेना के अधिपति को आज्ञा दी—शीघ्र जाकर सती की रक्षा करो और शील की महिमा संसार में फैलाओ।

यह आज्ञा देकर इन्द्र जयभूपण केवली का कैवल्योत्सव मनाने लगा।

जयभूपण वैताढ्यगिरि की उत्तर श्रेणी के हरिविक्रम राजा के पुत्र थे। उनका विवाह तीन सौ स्त्रियों के साथ हुआ। एक वार उसने किरणमण्डला नाम की अपनी स्त्री को उसके मामा के पुत्र हेमशिख के साथ सोता हुआ देखा। जयभूषण ने उस स्त्री को निकाल दिया और स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली। किरणमंडला मरकर विद्युदंष्ट्रा नाम की राक्षसी हुई। पूर्वजन्म के वैर के कारण वह मुनि जयभूपण पर उपसर्ग करने लगी। मुनि ने अविचल कायोत्सर्ग धारण किया और शुक्लध्यान के वल से केवलज्ञान प्राप्त किया।

उन्हीं केवली जयभूषण का कैवल्योत्सव मनाने इन्द्र आदि देव जा रहे थे।

× × ×

राम की आज्ञा से चन्दन की लकड़ियों में आग लगा दी गई। अग्नि-स्फुलिंगों ने लपटों का रूप धारण कर लिया। विकराल ज्वालाओं को देखकर सभी के हृदय दुःख से भर गये। श्रीराम हृदय में विचारने लगे—'यह तो बड़ा विषम कार्य हुआ। अग्नि तो सर्व-भक्षी है। कौन बचा है इससे ? दावानल वन को जलाता है तो वड़वानल सागर के शीतल जल को। सीता तो निःशंक इसमें कूद पड़ेगी। हाय ! मैं कैसा मन्दभागी हूँ। कभी प्रिया को सुख नहीं दे सका। पहले वन में निकाला तो अब अग्नि में झोंक दिया। दैव की और दिव्य की अति विषम गति है। न जाने क्या होगा ?'

तभी गर्त के पास आकर सीताजी ने उच्च स्वर से कहा—

—हे लोकपालो ! सभी देवताओ ! चौंसठ प्रकार के इन्द्रो और सभी मानवो ! सुनो। यदि मैंने मन, वचन, काय से अपने पति श्रीराम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को स्वप्न में भी चाहा हो, स्वेच्छा से अथवा बलात्कारपूर्वक किसी दूसरे पुरुष ने मेरा भोग किया हो तो यह अग्नि मुझे भस्म कर दे अन्यथा मेरे मन-वचन-काय की पवित्रता से शीतल जल हो जाय।

और सती शिरोमणि ने छलांग लगा दी।[1]

---

१ वैदिक परम्परानुसार यह अग्नि परीक्षा लंका के वाहर ही खुले मैदान में हुई थी और अग्निदेव ने अपनी साक्षी देकर सीता को शुद्ध प्रमाणित किया।

[वा० रा० युद्ध काण्ड तथा तुलसीकृत दोहा, १०८-१०९]

विशेष—तुलसीकृत में एक विशेष बात सीताजी के प्रति कही गई है—

जब श्रीराम खर-दूषण-त्रिशिरा को मारकर लौटे (वैदिक परम्परा के अनुसार राम ने ही खर-दूषण-त्रिशिरा का वध किया था) उस समय वे सीताजी से कहते हैं—'मैं अब नर-लीला करना चाहता हूँ। जब तक मैं राक्षसों का नाश करूँ तुम अग्नि में निवास करो।' श्रीराम की इच्छा

हुताशन की लाल-लाल लपलपाती जिह्वाएँ मानो उसे लीलने के लिए तत्पर ही थीं। लोगों ने देखा सती का शरीर कुन्दन की तरह

से सीता अग्नि में समा गई और अपना प्रतिरूप (नकली सीता) वहाँ रख दी। लक्ष्मण को भी इस रहस्य का पता नहीं लगा।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर-लीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहुँ निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा ॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभुपद धरि हिय अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसेइ सील रूप सुविनीता ॥
लछिमनहू यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना ॥

[अरण्य काण्ड, दोहा २४]

वह नकली सीता अग्नि में प्रवेश करके जल गई (यह अग्नि-परीक्षा लंका के बाहर खुले मैदान में हुई थी) और उसके साथ ही लौकिक कलंक भी जल गया। अग्नि ने स्वयं अपने हाथ से असली सीता श्रीराम को सौंप दी।

श्रीखण्ड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस वंदित चरम रति अति निर्मली ॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥
धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जगविदित जो।
जिमि छीर सागर इन्दिरा रामपि समर्पी आनि सो ॥
सो राम वाम विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नवनील नीरज निकट मानहु कनक पंकज की कली ॥

[लंका काण्ड, दोहा १०८]

[इस प्रकार रावण द्वारा नकली सीता का हरण हुआ था असली का नहीं क्योंकि असली सीता तो अग्निदेव के पास थी; पंचवटी स्थित पर्णकुटी में नहीं।]

—सम्पादक

चमकता हुआ ज्वालाओं के बीच में से नीचे की ओर गिर रहा है। गर्त में पहुँच गयी सीता की काया। लोग हतप्रभ से रह गये।

चमत्कार सा हुआ दूसरे ही क्षण ! अग्नि ज्वालाएँ नीरव जल में परिणत हो गईं। स्वर्ण कमल के सिंहासन पर बैठी सती सीता धीरे-धीरे जल से ऊपर आई मानो स्वयं प्रभाकर के रूप में ही संसार का भ्रम रूपी अन्धकार नष्ट करने के लिए उदित हुआ हो उस समय सती का दिव्य तेज।

गर्त वापी (बावड़ी) के रूप में बदल गया। जल की सतह ऊपर उठने लगी। ऊँची, और ऊँची उठती ही चली गई। वापी में मानो आवर्त आ गया। जल बावड़ी से बाहर निकल कर चारों ओर फैलने लगा, फैलता ही गया। जल-प्लावन का-सा दृश्य दिखाई देने लगा। जल की लहरों के तीव्र आघात से मंच काँप गये।

विद्याधर तो भयभीत होकर आकाश में उड़ गये किन्तु भूमिचर मनुष्य कहाँ जायें। वे पुकार करने लगे—महासती हमारी रक्षा करो। रक्षा करो। त्राहिमाम्, त्राहिमाम् की आवाजें आने लगीं।

विश्वमंगलकारिणी सती सीता ने अपने हाथ से जल को दबा दिया। जल का जोश सती के शान्त कर-स्पर्श से ठण्डा पड़ गया। फैला हुआ पानी पुनः लौटा और वापी में ही समा गया। लोगों ने शान्ति की साँस ली।

भूमि और आकाश में सीताजी के शील की महिमा गाई जाने लगी। सुग्रीव, भामण्डल, लक्ष्मण आदि ने भक्तिपूर्वक सती को प्रणाम किया। श्रीराम ने लज्जा और पश्चात्तापपूर्वक हाथ फैलाकर कहा—

—मुझे तो तुम्हारे चरित्र पर पहले ही विश्वास था। यह सब तो लोकापवाद को शान्त करने के लिए था। अब तुम सबको क्षमा करके पुष्पक विमान में बैठो और घर चलो।

—हाँ, अब मैं अपने वास्तविक घर की ओर ही जा रही हूँ।
—यह कहकर उसने अपने केश अपनी मुट्ठी से ही उखाड़े और श्रीराम के फैले हुए हाथों पर रख दिये।

केशों पर दृष्टि पड़ते ही राम अचेत होकर गिर पड़े। इससे पहले कि वे सचेत होकर पुनः प्रेमपाश में बाँध लें सीताजी केवली जयभूषण के चरणों में जाकर प्रव्रजित हो गई।

विधिपूर्वक दीक्षा देकर केवली ने उसे सुप्रभा गणनायिका के परिवार में रख दिया।

सीता तपस्यालीन हो गई।

—त्रिषष्टि शलाका ७।६

* *

: १० :

सीता, सुग्रीव आदि के पूर्वभव

सचेत होते ही राम के मुख से सीता का ही नाम निकला। लक्ष्मण ने कहा—

—आर्य ! माता सीता तो महाव्रत धारण करके हमको मुक्ति का मार्ग दिखा गईं।

सीताजी की प्रव्रज्या ने राम को अपना स्नेह वन्धन तोड़ने के लिए विवश कर दिया। वे उनके कल्याण मार्ग में वाधक वनने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। संतोप धारण करके बोले—उसने वहुत अच्छा किया।

सभी केवली की वन्दना करने पहुँचे। राम ने नमन-वन्दन के पश्चात पूछा—

—प्रभु ! मैं भव्य हूँ या अभव्य ?

केवली ने वताया—

—राम ! तुम भव्य हो और इसी भव से मुक्त होगे।

—लक्ष्मण के प्रति मेरा दुस्त्याज्य प्रेम है। कैसे मैं दीक्षा धारण करूँगा और कैसे मुझे मुक्ति की प्राप्ति होगी। क्योंकि विना सकल संयम के मुक्ति नहीं होती। —प्रश्न उद्‌वुद्ध हुआ।

उत्तर था—

—आयु के अन्तिम समय में तुम निःसंग होकर दीक्षित भी होगे और मुक्त भी।

राम का संशय केवली के वचनों से मिट गया। किन्तु विभीषण को जिज्ञासा जाग्रत हुई। उसने अंजलि बाँधकर पूछा—

—सर्वज्ञ प्रभो ! रावण ने 'नहीं इच्छती परस्त्री का भोग न करने का' विवेकपूर्वक अभिग्रह लिया था और जीवन-पर्यन्त उसका पालन भी किया। फिर भी उसने पूर्वजन्म के किस कर्म के कारण सीता का हरण किया और प्राण दे दिये किन्तु सती को नहीं छोड़ा। लक्ष्मण ने उसे किस कर्म के कारण युद्ध में मारा। ये सुग्रीव, लवण, अंकुश और मैं—हम सबका श्रीराम से क्या पूर्व सम्बन्ध था ? इन सब बातों को जानने की जिज्ञासा मेरे हृदय में उठ रही है। इन सबसे अधिक जिज्ञासा इस बात की है कि सीता जैसी महासती का मिथ्या लोकापवाद क्यों हुआ ?

केवली जयभूषण ने कहा—

—हे विभीषण ! इन सब बातों का तुम लोगों के पूर्वजन्मों से सम्बन्ध है। तुम पूर्वभवों की कथा सुनो—

इस दक्षिण भरतार्द्ध के क्षेमपुर नगर में नयदत्त नाम का एक वणिक था। उसकी पत्नी सुनन्दा से धनदत्त और वसुदत्त दो पुत्र हुए। उन दोनों का एक मित्र था ब्राह्मण याज्ञवल्क्य। उसी नगर में सागरदत्त नाम का एक दूसरा वणिक रहता था। उसका एक पुत्र था गुणधर और पुत्री थी गुणवती। वणिक सागरदत्त ने तो अपनी पुत्री गुणवती का विवाह नयदत्त के पुत्र धनदत्त के साथ निश्चित किया किन्तु गुणवती की माता रत्नप्रभा ने धन के लोभ से उसका विवाह गुप्त रीति से धनाढ्य सेठ श्रीकान्त के साथ कर दिया। यह समाचार याज्ञवल्क्य को ज्ञात हुआ तो वह इस धोखेबाजी को न सह सका।

उसने अपने मित्रों को यह गुप्त समाचार वता दिया। वसुदत्त ने कुपित होकर रात्रि के समय जाकर श्रीकान्त को मार डाला। जीवित वसुदत्त भी न वच सका। श्रीकान्त की तलवार से उसका भी वहीं प्राणान्त हो गया। वे दोनों मरकर विन्ध्याटवी में मृग हुए। गुणवती भी कुँवारी ही मर गई और उसी वन में मृगी वनी। मृगी के कारण वे दोनों मृग लड़ पड़े और मर गये। इस प्रकार अनेक जन्मों तक वसुदत्त और श्रीकान्त के जीव गुणवती के कारण ही लड़ते-मरते रहे। उनका वैर भव-भव में वढ़ता ही रहा, कम नहीं हुआ।

इधर धनदत्त अपने भाई की मृत्यु से दुःखी होकर इधर-उधर भटकने लगा। एक रात्रि को क्षुधातुर दशा में एक मुनि को देखा और उनसे भोजन माँगा। मुनि ने उसे समझाया—

—भद्र ! हम साधु लोग दिन में भी भोजन का संग्रह नहीं करते तो रात्रि में तो प्रश्न ही नहीं उठता। और फिर रात्रि में भोजन करना ही नहीं चाहिए। अन्धकार में न जाने कैसा विषैला जीव पेट में चला जाय ? उसकी हिंसा तो हो ही जायगी और अपने भी प्राण निकल जायेंगे। यदि प्राण न भी निकले तो घोर कायाकष्ट भोगना ही पड़ेगा।

मुनि के इन वचनों से धनदत्त को सन्तोष हुआ। वह श्रावकधर्म का पालन करके मरा और सौधर्म देवलोक में देव वना। वहाँ से च्यवन करके धारिणी और मेरु सेठ का पुत्र पद्मरुचि हुआ। वह परम श्रावक था। एक वार अपने घोड़े पर वैठकर गोकुल[1] को जा रहा था कि मार्ग में एक वृद्ध वैल अन्तिम साँसें गिनता हुआ दिखाई दिया। वह तुरन्त घोड़े से उतरा और परभव के लिए संवल रूप महामन्त्र नवकार सुनाने लगा। महामन्त्र के प्रभाव से वैल के

---

१ वहुत-सी गायों को वाँधने, रहने और चरने का स्थान।

परिणाम शान्त हुए। वह मरकर उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की रानी श्रीदत्ता के उदर से वृषभध्वज नाम का पुत्र हुआ। कुमार वृषभध्वज घूमता-घामता एक बार बैल की मृत्यु-भूमि पर आ निकला। उसे जाति-स्मरणज्ञान हो गया। पूवभव को अन्तिम घटना उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। वह अपने उपकारी को खोजना चाहता था। उसने एक उपाय ढूँढ़ ही निकाला। उसी स्थान पर एक चैत्य का निर्माण कराके एक दीवार पर पूर्व-जन्म की अन्तिम घटना चित्रित करा दी। चैत्य-रक्षकों को आदेश दे दिया—'जो कोई भी इस चित्र का रहस्य बतावे, मुझे तुरन्त सूचना देना।'

एक दिन श्रावक पद्मरुचि वहाँ आया और दीवार के चित्र को ध्यानपूर्वक देखकर बोला—'यह तो मेरे ही जीवन की घटना है। किसने यहाँ चित्रित करा दी ?'

रक्षकों ने तुरन्त सूचना दी और वृषभध्वज दौड़ा हुआ चला आया। पद्मरुचि से पूछा—

—क्या आप इस चित्र का रहस्य जानते हैं ?

—हाँ, राजन् ! मरते हुए बैल को मैंने ही नवकार मन्त्र सुनाया था। न जाने इस बैल ने कौन-सी गति पाई ?

वृषभध्वज गद्गद होकर बोला—

—उपकारी सेठ ! मैं ही वह बैल हूँ। आपकी कृपा से ही मुझे यह उत्तम मनुष्य जन्म मिला है, अन्यथा न जाने किन कुयोनियों में भटकना पड़ता। अब यह राज्य-पाट आप ग्रहण करिए।

पद्मरुचि ने ऐतराज किया—

—नहीं, राजन् ! आप ही सँभालिए अपने राज्य को।

—गंगा के अमृतसम पानी को पीकर खारा जल कौन पीवे ?

सेठजी ! एक वार महामन्त्र के श्रवण का ऐसा सुफल ! मैं तो इस चिन्तामणि रत्न की आराधना में ही लीन रहूँगा। मुझे राज्य का क्या लोभ ? चैत्य का निर्माण कराके मैं तो आप ही की खोज में था। आप मिल गये, मेरा मनोरथ पूरा हुआ।

यह कहकर वृषभध्वज पद्मरुचि को अपने साथ ले गया। श्रावक पद्मरुचि चिरकाल तक श्रावक धर्म पालता रहा। दोनों मरकर ईशान कल्प में परमर्द्धिक देव हुए।

पद्मरुचि वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके मेरुगिरि की पश्चिम दिशा में स्थित वैताढ्य पर्वत पर नन्दावर्त नगर के राजा नन्दीश्वर और रानी कनकाभा का नयनानन्द नाम का पुत्र हुआ। वहाँ राज्य सुख भोगकर उसने दीक्षा ग्रहण की और मरकर चौथे स्वर्गलोक माहेन्द्र कल्प में देव हुआ। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके पूर्व विदेह में क्षेमापुरी के राजा विपुलवाहन की रानी पद्मावती के गर्भ से श्रीचन्द्रकुमार नाम का पुत्र हुआ। राज्य का सुख भोगकर समाधिगुप्त मुनि से प्रव्रज्या ली और कालधर्म पाकर पाँचवें स्वर्ग ब्रह्मलोक में इन्द्र बना। वहाँ से च्यवन करके पद्मरुचि का जीव महावलवान वलभद्र श्रीराम के रूप में अवतरित हुआ है और वृषभध्वज का जीव अनुक्रम से सुग्रीव !

श्रीकान्त सेठ का जीव भवभ्रमण करता हुआ मृणालकन्द नगर के राजा शंभु और उसकी रानी हेमवती का वज्रकुण्ड नामक पुत्र हुआ। वसुदत्त का जीव भी शम्भु राजा के पुरोहित विजय और उसकी स्त्री रत्नचूला का पुत्र श्रीभूति बना। गुणवती का जीव श्रीभूति की सरस्वती नाम की पत्नी के उदर से वेगवती नाम की पुत्री हुई।

अनुक्रम से वेगवती युवा हो गई। एक वार सुदर्शन नाम के प्रतिमाधारी मुनि को लोग वन्दन कर रहे थे। उस समय उन्हें

देखकर वेगवती ने व्यंग्यपूर्वक हँसी उड़ाई —'अरे लोगो ! इस साधु को तो मैंने कुछ दिन पहले एक स्त्री के साथ क्रीड़ा करते देखा था। उस स्त्री को मैंने दूसरे स्थान पर पहुँचवा दिया। ऐसे साधु की तुम लोग क्यों वन्दना करते हो ?' यह सुनकर सभी लोग विस्मित रह गये। मुनि ने भी अभिग्रह लिया—'जब तक मेरा यह मिथ्या कलंक नहीं मिटेगा तब तक मैं कायोत्सर्ग में लीन रहूँगा।'

मुनि पर लोग उपद्रव करने लगे। वे तो शान्त भाव से इस उपसर्ग को सहते रहे किन्तु शासन देवता को सह्य नहीं हुआ। उसने वेगवती का मुख तत्काल व्याधिग्रस्त कर दिया। पिता श्रीभूति ने भी वेगवती को बहुत धिक्कारा। पिता के रोष और व्याधि की पीड़ा से दुःखी होकर वेगवती ने मुनिश्री के समक्ष आकर सभी लोगों के सामने उच्च स्वर से अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा—'हे स्वामी ! मैंने आप पर झूठा कलंक लगाया था। आप सर्वथा निर्दोष हैं। हे क्षमासागर ! मेरा अपराध क्षमा करो।'

इन शब्दों को सुनते ही लोग उपद्रव की बजाय मुनि की पूजा करने लगे। मुनि तो उपकारी और अपकारी के प्रति समभाव ही रखते हैं। लेकिन शासन देवता ने उसे पुनः ज्यों की त्यों रूपवती बना दिया। सर्वत्र मुनि सुदर्शन की जय-जयकार होने लगी। वेगवती श्रद्धालु श्राविका हो गई।

शम्भु राजा ने वेगवती के रूप से आकर्षित होकर उसकी याचना की। श्रीभूति ने 'वेगवती का विवाह मिथ्यात्वी के साथ नहीं होगा' कहकर राजा की इच्छा ठुकरा दी। राजा ने कुपित होकर श्रीभूति को मार डाला और वेगवती पर बलात्कार किया। उस समय वेगवती ने श्राप दिया—'मैं भवान्तर में तुम्हारे नाश का कारण बनूँगी।' इस पर शम्भु राजा ने उसे छोड़ दिया। वेगवती ने हरिकान्ता आर्या के पास व्रत ग्रहण किये और आयु पूरी करके ब्रह्म-

देवलोक में गई। वहाँ से च्यवन करके जनक राजा की पुत्री सीता हुई। पूर्व में वेगवती के शाप से शापित शम्भु राजा का जीव आगे चलकर राक्षसपति रावण हुआ। इस शाप के कारण ही जानकी उसके विनाश का निमित्त बनी और पूर्वजन्म के राग के कारण ही विवेकी रावण उसका हरण करके ले गया। राग का तीव्र भाव विवेक का नाश कर देता है। सुदर्शन मुनि पर मिथ्या कलंक लगाने के ही कारण सीता का भी लोक में मिथ्या अपवाद हुआ।

राक्षसराज रावण बनने से पहले शम्भु राजा का जीव भवभ्रमण करता हुआ कुशध्वज ब्राह्मण की स्त्री सावित्री के गर्भ से प्रभास नाम का पुत्र हुआ। प्रभास ने विजयसेन मुनि के पास दीक्षा ली और तप करने लगा। एक बार इन्द्र के समान बड़ी समृद्धि वाला विद्याधरों का राजा कनकप्रभ सम्मेत शिखर की ओर जा रहा था। मुनि प्रभास ने उसे देखकर निदान किया—'इस तप के फलस्वरूप मैं भी ऐसा ही समृद्धिवान बनूँ।' वह मरकर तीसरे देवलोक में देव बना और वहाँ से च्यवकर राक्षसपति दशमुख हुआ। उस निदान के कारण ही वह समस्त विद्याधरों का राजा बना।

याज्ञवल्क्य ब्राह्मण[1] अनेक योनियों में जन्म-मरण करता रहा और इस जन्म में रावण के भाई रूप में उत्पन्न हुआ। हे विभीषण! वह याज्ञवल्क्य ब्राह्मण का जीव तुम ही हो।

राजा शम्भु द्वारा मारा गया पुरोहित श्रीभूति स्वर्ग गया। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके सुप्रतिष्ठपुर में पुनर्वसु नाम का विद्याधर हुआ। एक बार कामातुर होकर उसने पुण्डरीक विजय के त्रिभुवनानन्द चक्रवती की पुत्री अनंगसुन्दरी का हरण कर लिया। चक्रवर्ती ने उसको पकड़ने के लिए विद्याधरों की सेना भेजी। उनसे युद्ध करने के दौरान अनंगसुन्दरी विमान में से एक लता-मण्डप में

---

१ यह धनदत्त और वसुदत्त वणिक-पुत्रों का उस जन्म में मित्र था।

गिर गई। दुःखी होकर पुनर्वसु ने दीक्षा ले ली और भवान्तर में अनंगसुन्दरी को प्राप्त करने का निदान भी। तपस्यापूर्वक मरण करके वह देवलोक को गया और वहाँ से च्यवन करके वासुदेव लक्ष्मण बना।

अनंगसुन्दरी लतामण्डप से उठ कर वन को गई। वहाँ प्रव्रज्या ग्रहण करके उसने घोर तप किया। आयु के अन्त में जब वह अनशनपूर्वक कायोत्सर्ग में लीन थी उसे एक अजगर निगल गया। समाधिपूर्वक देह-त्यागकर वह देवलोक में देवी हुई और वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके लक्ष्मण की पत्नी विशल्या बनी है।

काकन्दी नगरी में वामदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम था श्यामला। श्यामला के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए—वसुनन्द और सुनन्द। एक समय वे दोनों भाई घर ही थे कि एक मासोपवासी मुनि पारणे के लिए पधारे। दोनों भाइयों ने मुनि को भक्ति भाव से भोजन आदि देकर प्रतिलाभित किया। इस दान धर्म के प्रभाव से वे दोनों उत्तरकुरु भोगभूमि में जुगलिया उत्पन्न हुए। वहाँ से आयुष्य पूरा करके सौधर्म देवलोक में देव बने। सौधर्म देवलोक से च्यव कर वे दोनों काकन्दीपुरी के राजा वामदेव की रानी सुदर्शना के गर्भ से प्रियंकर और शुभंकर दो पुत्र हुए। वहाँ उन्होंने चिरकाल तक राज्य भोगा और तत्पश्चात प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। तपस्या के फलस्वरूप उन्हें अगले भव में ग्रैवेयक में देव पर्याय प्राप्त हुई। वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण कर उन दोनों देवों ने सती सीता के गर्भ से लवण और अंकुश के रूप में जन्म लिया है। इनके पूर्वभव की माता बहुत समय तक अनेक योनियों में जन्म-मरण करते हुए सिद्धार्थ नाम का श्रावक बनी है। इसी पूर्व जन्म की प्रीति के कारण ही इस श्रावक सिद्धार्थ ने राम के दोनों पुत्रों—लवण और अंकुश को विभिन्न प्रकार से अस्त्र-शस्त्रों और आगम की शिक्षा देकर निपुण बनाया।

केवली जयभूषण से सभी के पूर्वभव सुनकर बहुत से लोगों को संवेग हो गया।

राम के सेनापति कृतान्तवदन ने तत्काल प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

केवली मुनि को नमन करके राम-लक्ष्मण सीता के पास आये। सीता को देखकर राम विचारने लगे—'यह सीता कमल से भी कोमल है। शीत और आतप को कैसे सह सकेगी?' किन्तु उसी समय उनकी विचारधारा पलटी—'अवश्य सह लेगी। जो रावण जैसे प्रतापी के उपसर्गों के समक्ष मेरु की भाँति अडिग रही। जलती हुई ज्वाला में कूद पड़ी, उसके धैर्य और प्रतिज्ञा पालन में शंका

विशेष—(१) उत्तर पुराण में श्रीराम-लक्ष्मण के पूर्वजन्म की एक अन्य कथा दी गई है। वह कथा संक्षेप में निम्न है :—

इसी भरतक्षेत्र के मलय देश में रत्नपुर नगर के स्वामी महाराज प्रजापति राज्य करते थे। उनकी गुणचूला नाम की रानी के गर्भ से चन्द्रचूल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कुमार मन्त्री-पुत्र स्वर्णचूल से बहुत प्रेम करता था। माता-पिता के अधिक लाड़-प्यार से वे दोनों ही दुराचारी हो गये।

किसी एक दिन उसी नगर के निवासी कुबेर सेठ ने अपनी पुत्री कुबेरदत्ता का विवाह नगरवासी सेठ वैश्रवण की स्त्री गौतमा के उदर से उत्पन्न श्रीदत्त नाम के पुत्र के साथ करना निश्चित किया। एक सेवक द्वारा कुबेरदत्ता के रूप की प्रशंसा सुनकर राजकुमार चन्द्रचूल उसे अपने वश में करने का उपाय करने लगा।

इस बात को जानकर वैश्यों का समूह राजा के पास राजपुत्र की शिकायत लेकर पहुँचा। न्यायप्रिय राजा ने कुमार को पकड़वा मँगाया और उसे मृत्यु दण्ड दिया। लोगों के समझाने पर भी राजा नहीं माना। अन्त में 'मैं स्वयं कुमार को दण्ड दूँगा' यह कहकर मन्त्री कुमार को अपने साथ ले गया।

करना व्यर्थ है। अवश्य ही श्रमण संयम की असि धारा पर सफलता-पूर्वक चलकर यह अपना उद्धार करेगी ?'

अपने पुत्र स्वर्णचूल और राजकुमार चन्द्रचूल को मन्त्री वनगिरि पर्वत पर ले गया। पर्वत शिखर पर उसे महावल नाम के गणधर के दर्शन हुए। मन्त्री ने उनकी वन्दना करके वहाँ अपने आने का कारण भी निवेदन कर दिया। गणधरदेव मनःपर्यव ज्ञानी थे। उन्होंने वताया—'ये दोनों ही तीसरे भव में वलभद्र और वासुदेव होने वाले हैं।'

यह सुनकर मन्त्री प्रसन्न हुआ और उसने दोनों कुमारों को धर्म श्रवण कराकर व्रत ग्रहण करा दिये।

राजा के पास लौटकर मन्त्री ने वताया कि वह दोनों पुत्रों को गिरिगुफा में रहने वाले सिंह के समान निर्भय व्यक्ति को सौंप आया है।

राजा को यह सुनकर अपने इकलौते पुत्र का दुःख सालने लगा। मन्त्री के शब्दों में छिपे हुए कुछ गूढ़ार्थ की भी शंका हुई। उसने पुत्र-वियोग से विह्वल होकर पूछा—मन्त्री ! जो सत्य हो, वही मुझे वताओ।

मन्त्री ने राजा को सत्य वात वता दी।

राजा ने मन्त्री की वहुत प्रशंसा की। 'कुपुत्र के समान ही यह सांसारिक सुख-भोग भी निन्दा के कारण है।' यह विचारकर वह गणधर महावल के चरणों में जाकर दीक्षित हो गया। उसने पुत्र से अपनी कठोरता की क्षमा माँगी।

तदनन्तर राजा प्रजापति ने केवलज्ञान प्राप्त किया और आयु पूर्ण कर सिद्धशिला में जा विराजे।

मुनि चन्द्रचूल और स्वर्णचूल एक दिन खंगपुर नगर के वाहर आतापन योग धारण कर विराजमान थे। उसी समय वलभद्र सुप्रभ और पुरुषोत्तम वासुदेव को उन्होंने ऋद्धि और समृद्धि सहित

यह विचारकर राम ने साध्वी सीता का वन्दन किया। लक्ष्मण आदि अन्य और भी अनेक राजाओं ने केवली को नमन-वन्दन किया और राम परिवार सहित अयोध्या लौट आये।

देखा। इस पर मुनि चन्द्रचूल (राजपुत्र) ने वैसा ही होने का निदान कर लिया।

कालधर्म प्राप्त कर चन्द्रचूल सनत्कुमार स्वर्ग के कनकप्रभ विमान में विजय नाम का देव हुआ और स्वर्णचूल मुनि (मन्त्री का पुत्र) उसी स्वर्ग के मणिप्रभ विमान में मणिचूल नाम का देव हुआ। दोनों की ही आयु सात सागर की थी।

देवलोक से अपना आयुष्य पूर्ण करके (स्वर्णचूल मुनि का जीव) देव मणिचूल बनारस के राजा दशरथ की सुबाला नाम की रानी के गर्भ में आया। फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी के दिन मघा नक्षत्र में रानी ने पुत्र प्रसव किया। उस पुत्र का नाम राम रखा गया। उसकी आयु १३,००० (तेरह हजार) वर्ष की थी।

उसी राजा दशरथ की सुमित्रा रानी के उदर से माघ शुक्ला एकम (पड़वा) के दिन विशाखा नक्षत्र में विजय देव का जीव (राजा का पुत्र) उत्पन्न हुआ। उसकी आयु १२,००० (बारह हजार) वर्ष की थी और उसका नाम लक्ष्मण था।

दोनों ही भाई पन्द्रह धनुष ऊँचे और ३२ शुभ लक्षणों से युक्त थे। राम के कुमार वय के पचपन वर्ष और लक्ष्मण के पचास वर्ष व्यतीत हो जाने पर उनका ऐश्वर्य प्रगट हुआ।

(२) धातकीखण्ड द्वीप के, पूर्व भरतक्षेत्र में सार समुच्चय नाम का देश है। उसी देश के नाकपुर नगर में प्रसिद्ध राजा नरदेव राज्य करता था। एक दिन उसने अनन्त नाम के गणधर से प्रव्रज्या ले ली। उसने तपश्चरण तो उत्कृष्ट किया किन्तु चपलवेग विद्याधर को देखकर

सीता और कृतान्तवदन उग्र तप करने लगे। कृतान्तवदन तो देह त्यागकर ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ। सीता साठ वर्ष तक निर्मल श्रमणाचार पालन करती रही। उसने विविध प्रकार के तप किये और तीस अहोरात्रि (एक मास) के अनशनपूर्वक मरण करके बावीस सागर की आयु वाला अच्युतेन्द्र बनी।

—त्रिषष्टि शलाका ७।१०

—उत्तर पुराण, पर्व ६७, श्लोक ९०-१५४ पर्व ६८, श्लोक ३-२७

※ ※

निदान कर लिया। मरकर वह सौधर्म देवलोक में देव हुआ और वहाँ च्यवकर दशानन ! उसकी आयु चौदह हजार वर्ष की थी।

(पर्व ६८, श्लोक ३-७ और १२)

(३) सीताजी के निदान की घटना यह है—

किसी एक दिन लंका का राजा दशमुख अपनी रानी के साथ वन-क्रीडा करने गया। वहाँ विजयार्ध पर्वत के अचलक नगर के स्वामी राजा अमिनवेग की पुत्री मणिमती विद्या सिद्ध कर रही थी। उसे देखकर वह कामासक्त हो गया। उस कन्या को वश में करने के लिए उस दुष्ट ने उसकी सिद्ध की हुई विद्या हरण कर ली। विद्या का हरण जानकर वह कन्या रावण पर बहुत क्रोधित हुई। उसने निदान किया कि 'मैं इसकी पुत्री होकर इसकी मृत्यु का कारण बनूँगी।'

आयु के अन्त में प्राण त्यागकर मणिमती मन्दोदरी के गर्भ से पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। लंका में भाँति-भाँति के उपद्रव होने और नैमित्तिकों के कहने के कारण रावण की आज्ञा से मारीच उसे राजा जनक के राज्य में गाड़ आया।

वही कन्या राजा जनक को प्राप्त हुई और सीता के नाम से जग-विख्यात हुई। (पर्व ६८, श्लोक १३-२७)

: ११ :

वासुदेव की मृत्यु

वैताढ्यगिरि पर स्थित कांचनपुर में कनकरथ विद्याधरों का राजा था। उसकी दो पुत्रियाँ थीं—मन्दाकिनी और चन्द्रमुखी। राजा कनकरथ ने पुत्रियों का स्वयंवर किया। राम और लक्ष्मण भी अपने पुत्रों सहित स्वयंवर में सम्मिलित हुए। मन्दाकिनी ने स्वेच्छा से लवण के गले में वरमाला डाल दी और चन्द्रमुखी ने अंकुश के कण्ठ में।

यह देखकर श्रीधर आदि लक्ष्मण के ढाई सौ पुत्र कुपित हो गये। उन्होंने लवण और अंकुश से युद्ध करने का विचार किया। भाइयों को युद्ध के लिए तत्पर सुनकर लवण और अंकुश ने सेवकों से कहलवाया—

—हम लोग तुमसे युद्ध करना नहीं चाहते क्योंकि भाई अवध्य होते हैं। जिस प्रकार हमारे पिता श्रीराम और काका लक्ष्मण एक हैं उसी तरह हम और तुम। इसीलिए तुम लोग ईर्ष्या मत करो।

इन शब्दों को सुनकर लक्ष्मण के पुत्र श्रीधर आदि को अपने अकृत्य पर घोर पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे—'अरे! अपने बड़े भाई श्रीराम के अनन्य सेवक लक्ष्मण के पुत्र होकर भी हमने अपने अग्रजों—लवण और अंकुश—से ही युद्ध करने का विचार

किया। यह तो घोर निंद्य कर्म है। हम किसी को क्या मुख दिखायेंगे। लोग हमें भातृद्रोही कहकर अपमानित करेंगे। ऐसे तिरस्कृत जीवन से क्या लाभ ?'

यह सोचकर उन्होंने माता-पिता से आज्ञा ली और महाबल मुनि के चरणों में जाकर प्रव्रजित हो गये।

लवण और अंकुश के साथ राम-लक्ष्मण वापिस अयोध्या लौट आये।

दोनों पुत्र लवण-अंकुश अपनी-अपनी रानियों के साथ दाम्पत्य सुख में निमग्न हो गये।

× × ×

राजा भामण्डल अपने महल की छत पर बैठा हुआ प्रकृति के दृश्यों का अवलोकन कर रहा था। उसकी दृष्टि वैताढ्यगिरि की दोनों श्रेणियों पर दौड़ रही थी। उसके हृदय में विचार तरंग उठी—'मैंने वैताढ्यगिरि की दोनों श्रेणियाँ वश में कर लीं। संसार के बहुत से सुख भोगे। किन्तु इसमें क्या ? पिछले पुण्यों का भोग ही तो किया। नया क्या उपार्जन किया ? अब तो मुझे दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण कर लेना चाहिए।'

भामण्डल की यह विचार-तरंग चल ही रही थी कि आकाश से एक विद्युत तरंग चली और उस पर विद्युत्पात हो गया। मस्तक पर बिजली गिरते ही उसकी मृत्यु हुई और वह देवकुरु भोगभूमि में युगलिया उत्पन्न हुआ।

× × ×

एक बार चैत्री पूर्णिमा के दिन वीर हनुमान मेरु पर्वत पर गये। वहाँ उन्हें सूर्य अस्त होता हुआ दिखाई दिया। उनका विचार-प्रवाह बहने लगा—'अहो ! जो उत्पन्न हुआ है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। प्रतिदिन का ढलता हुआ सूर्य हमें संसार की क्षण-भंगुरता दिखाता

है। ऐसे क्षणभंगुर संसार से जितनी शीघ्र हो सके निकल जाना ही ठीक है।'

यह विचार करके हनुमान अपने नगर आये और पुत्र को राज्य भार देकर धर्मरत्न आचार्य के पास प्रव्रजित हो गये। उनके साथ साढ़े सात सौ राजा भी दीक्षित हुए। उनकी पत्नियों ने भी लक्ष्मीवती आर्या के पास व्रत ग्रहण कर लिए।

हनुमान घोर तप करने लगे। अनुक्रम से ध्यानाग्नि में अपने सभी कर्मों का क्षय कर दिया और शैलेशी दशा प्राप्त कर अनन्त सुख में जा विराजे। उन्होंने अमर अविनाशी पद प्राप्त कर लिया।

× × ×

हनुमान की प्रव्रज्या का समाचार सुनकर श्रीराम के मुख से अनायास ही निकल गया—'अहो ! भोग-सुख का त्याग करके हनुमान ने महाकष्टकारी दीक्षा कैसे ग्रहण कर ली ?'

श्रीराम की यह विचारणा अवधिज्ञान से जानकर सौधर्म इन्द्र सभा में कहने लगा—

—देखो ! कर्म की गति कैसी विचित्र है ? राम जैसा चरम-शरीरी और विवेकी पुरुष भी अभी तक धर्म से दूर है। दूर ही नहीं वल्कि विषय सुख की प्रशंसा करता है। लक्ष्मण पर उनका ऐसा प्रगाढ़ स्नेह है कि वे दीक्षा लेने में असमर्थ हैं।

इन्द्र के इन वचनों को सुनकर दो देवताओं को कुतूहल हुआ। उन्होंने राम-लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा करनी चाही। अयोध्या में लक्ष्मण के महल में आकर उन्होंने माया रची। लक्ष्मण को अपना सारा अन्तःपुर रोता हुआ दिखाई दिया। रानियाँ रोती-रोती कह रही थीं—

—हे राम ! आपकी अकाल मृत्यु कैसे हो गई ? आप हम सब

लोगों को निराधार छोड़ गये। अब आपके अनुज किसको अग्रज कहेंगे ?

लक्ष्मण के कानों में ये शब्द पिघले हुए शीशे के समान पड़े। 'बड़े भाई राम मर गये और मैं जीवित हूँ।' इन शब्दों के साथ ही उनके भी, प्राण तो निकल गये और निर्जीव देह सिंहासन के स्वर्ण स्तम्भ से टिक गया। वे लेप्यमयी प्रतिमा के समान निष्क्रिय और स्थिर हो गये।

सहज ही हुई लक्ष्मण की मृत्यु से दोनों देवता बहुत दुःखी हुए। 'हमने यह क्या दुष्कृत्य किया ? एक महापराक्रमी पुरुष को मार डाला।' यह सोचकर उन्हें घोर पश्चात्ताप हुआ और अपनी आत्म-निन्दा करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये। उनके साथ ही उनकी माया भी लुप्त हो गई।

अहो, कर्म का विपाक दुरतिक्रम है। देवताओं का तो केवल निमित्त था। वासुदेव लक्ष्मण की मृत्यु इसी प्रकार होनी थी।

आर्तध्यान के कारण लक्ष्मण का जीव चौथी भूमि में उत्पन्न हुआ अब उनकी निर्जीव देह सिंहासन पर पड़ी थी।

अब प्रारम्भ हुआ असली रुदन। लक्ष्मण के अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। रानियों के केश खुल गये।

आक्रन्दन को सुनकर राम दौड़े आये और बोले—

—अरे यह अमंगल कैसा ? मैं जीवित हूँ और छोटा भाई लक्ष्मण जीवित है फिर यह रोना-धोना क्यों ?

लक्ष्मण की ओर देखकर बोले—

—इसे कोई रोग हो गया है। अभी वैद्यों को बुलाकर चिकित्सा कराता हूँ।

वैद्य बुलाये गये और ज्योतिषी भी। तान्त्रिक-मान्त्रिक सभी ने

उपचार का ढोंग किया। सभी जानते थे कि लक्ष्मणजी का यह शव मात्र है। इस पर किसी भी प्रकार का उपचार कर लिया जाय यह जीवित नहीं हो सकता। परन्तु राम की आज्ञा का उल्लंघन कौन करे ?

लक्ष्मण सजीवित न हो पाये तो राम जोर-जोर से विलाप करने लगे। उनके आक्रन्दन को सुनकर विभीषण आदि भी आ गये और वे भी रुदन करने लगे। माता कौशल्यादि पुत्र शोक से व्याकुल होकर बार-बार मूर्च्छित होने लगीं।

सम्पूर्ण अयोध्या में शोक व्याप्त हो गया। प्रत्येक मार्ग, गृह, दुकान सभी स्थानों पर आक्रन्द और शोक छा गया।

उस समय लवण और अंकुश ने विनीत स्वर में राम से कहा—

—पिताजी ! काका बिना हम राजमहल में नहीं रह सकते। आप हमें प्रव्रज्या की आज्ञा दीजिए।

पुत्रों की बात सुनकर राम हतप्रभ रह गये। उनसे कुछ कहते ही न बना।

दोनों भाइयों ने पिता को प्रणाम किया और अमृतघोष मुनि के चरणों में जाकर प्रव्रजित हो गये।

अनुक्रम से घोर तपस्या करके दोनों भाई—लवण और अंकुश मोक्ष गय।

श्रीराम भाई के वियोग में बार-बार मूर्च्छित होते रहे। वे पुनः-पुनः सचेत हो जाते और पुनः-पुनः अचेत। सचेत होने पर उन्मत्त की भाँति विलाप करने लगते। श्रीराम की यह दशा देखकर विभीषण आदि ने उनसे कहा—

—स्वामी ! आप तो महापराक्रमी और वीर हैं। धैर्यवान होकर भी यह अधैर्य कैसा ? लक्ष्मणजी का अग्नि-संस्कार करिये।

अग्नि-संस्कार की बात सुनते ही राम की कोपाग्नि प्रज्वलित हो गई। उनके होठ फड़कने लगे। लाल नेत्र करके बोले—

—दुर्जनो ! अग्नि-संस्कार हो तुम्हारा और तुम्हारे परिवार का। मेरे जीवित भाई का अग्नि-संस्कार करा रहे हो ?

और फिर लक्ष्मण से कहने लगे—

—अरे भाई ! हे वत्स ! हे लक्ष्मण ! तुम नहीं बोलते हो तो ये सब लोग कैसे-कैसे वचन कह रहे हैं। एक बार तुम्हारा मुँह खुल जाय तो इन सबके मुँह बन्द हो जायँ।

यह कहकर राम ने लक्ष्मण का शव कन्धे पर रखा और दूसरी ओर चले गये।

श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण के शव को नहलाते, उस पर सुगन्धित चन्दन लगाते, बहुमूल्य वस्त्र पहनाते, भोजन मँगाकर उसे खिलाने का प्रयास करते, अंक में रखकर बार-बार चुम्बन करते, उसको अपने साथ ही शैया पर सुलाते।

अहो ! मोह की कैसी झकोर कि राम जैसा चरम शरीरी तद्भव मोक्षगामी, परम पराक्रमी और उत्कृष्ट विवेकी भी ऐसा आचरण करने लगे।

राम इस प्रकार विक्षिप्त हो गये हैं—यह समाचार इन्द्रजित तथा सुन्द आदि राक्षसों के पुत्रों को भी प्राप्त हो गया। वे सभी राक्षसपुत्र अन्य विद्याधरों के साथ राम को मारने की इच्छा से अयोध्या पर चढ़ आये। जिस प्रकार प्रगाढ़ निद्रा में अचेत सिंह की कन्दरा के आस-पास की भूमि को कायर शिकारी भी रौंद डालता है वैसे ही उन राक्षसों और विद्याधरों ने अयोध्या का प्रान्त भाग भी रौंद डाला।

यह सुनकर राम ने लक्ष्मण के शव को साथ लिया और अपने

वज्रावर्त धनुष का आस्फालन किया। धनुष्टंकार का घोर शब्द दशों दिशाओं में व्याप्त हो गया। माहेन्द्र देवलोक में उनके मित्र जटायु का दृढ़ स्नेह के कारण आसन कंपायमान हुआ। वह अन्य देवों को साथ लेकर तुरन्त आया।

राक्षसों और विद्याधरों ने देखा कि अव भी इनके पक्ष में देवगण हैं तो भयभीत होकर भाग गये। उन्होंने समझ लिया कि राम के जीवित रहते उनका यह साहस कभी सफल न होने वाला दुस्साहस मात्र ही है। अपनी असफलता से उन्हें वैराग्य जाग्रत हुआ और वे अति वेग मुनि के चरणों में जाकर दीक्षित हो गये।

जटायु देव ने राम की यह उन्मत्त दशा देखी तो उसने उन्हें वोध देने का प्रयास किया। 'सोधे उपदेश का तो इन पर कोई प्रभाव पड़ेगा नहीं' यह भली-भाँति समझकर उसने उल्टे काम करने प्रारम्भ किये।

एक सूखे वृक्ष को वार-वार पानी से सींचने लगा, पाषाण के ऊपर कमल खिलाने के लिए उस पर वीज वोने लगा, मरे हुए वैल को हल में जोतकर खेती करने का प्रयास किया, सूखे खेत में वीज डाल दिये, रेती डालकर कोल्हू से तेल निकालने में प्रयत्नशील हुआ।

राम उसकी इन विचित्र क्रियाओं को देख रहे थे। वे हँसकर व्यंग्यपूर्वक वोले—

—अरे मूर्ख पुरुष ! कहीं ठूंठ भी जलसिंचन से फल-फूल सकता है, क्या पत्थर पर कभी कमल खिल सकते हैं, मरा हुआ वैल क्या खेती करेगा ? क्या सूखे खेत में कहीं अंकुर उपजते हैं ? कहीं रेती से भी तेल निकलता है ?

पुरुष रूपी देव ने उत्तर दिया—

—यदि मुर्दे जिन्दा हो सकते हैं तो मेरे प्रयास सफल क्यों नहीं हो सकते ?

—कौन मुर्दा, कैसा मुर्दा, कहाँ है मुर्दा ?

—लक्ष्मण हैं मुर्दा और आपके कन्धे पर पड़ा हुआ है उनका शव ?

श्रीराम एकदम कुपित होकर वोले—

—दुष्ट ! दूर हो जा मेरी नजरों से। मेरे जीवित भाई को मुर्दा वताता है। जान से मार डालूँगा।

जटायुदेव से राम ऐसे कठोर वचन कह ही रहे थे कि उसी समय कृतान्तवदन सारथि का जीव भी उन्हें वोध देने के लिए स्वर्ग से आया।

उसने एक पुरुष का रूप वनाया और एक स्त्री का शव अपने कन्धे पर रखकर राम के सामने होकर निकला। उसे देखकर राम वोले—

—अरे मुग्ध ! तुम तो वावले हो गये हो।

—क्यों ? —पुरुष वेशधारी देव (कृतान्तवदन के जीव) ने पूछा।

—इस स्त्री का शव लिए-लिए घूम रहे हो, यह तुम्हारी उन्मत्तता नहीं तो और क्या है ? —राम ने व्यंग्य किया।

—ऐसा अशुभ क्यों वोलते हो ? मेरी पत्नी जीवित है। वस मुझसे रूठ गई है।

'रूठ गई है' कहकर हँस पड़े श्रीराम; वोले—

—अच्छा यह वताओ कि यह साँस लेती है ?

—नहीं।

—चलती-फिरती है ?

—नहीं।

—खाती-पीती है ?

—नहीं।

—जैसे तुम इसको लिटा देते हो वैसे ही पड़ी रहती है ?

—हाँ।

—अरे मूर्ख ! यही तो लक्षण होते हैं, शव के ! तुम्हारी स्त्री अवश्य ही मर गई है। —राम ने निर्णयात्मक स्वर में कहा।

कुछ समय तक तो देव ने हतप्रभ होने का अभिनय किया और फिर बोला—

—भद्र ! आपने मुझ पर बहुत उपकार किया। मेरे विवेकचक्षु खुल गये। सचमुच ही मेरी प्रिया मर गई है। अब मुझे इसका दाह-संस्कार कर ही देना चाहिए।

—हाँ यही विवेकपूर्ण कार्य होगा। —राम ने उसके स्वर में स्वर मिलाया।

अब प्रश्न करने की बारी आई देव की और उत्तर देने की श्रीराम की। देव ने भोलेपन से पूछा—

—भद्र ! आपके कन्धे पर यह कौन है ?

—मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। मुझसे रुठ गया है।

देव ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी—

—क्या यह साँस लेता है ?

—नहीं ! —राम का उत्तर था।

—क्या यह खाता-पीता, चलता-फिरता है ?

—नहीं।

—तो क्या, जैसे आप लिटा देते हैं वैसे ही पड़ा रहता है ?

—हाँ।

—तो मेरी प्रिया और आपके भाई की दशा एक-सी है।

—हाँ।

—फिर मेरी प्रिया मुर्दा और आपका भाई........

आगे के शब्द देव ने नहीं कहे और राम के चेहरे पर प्रतिक्रिया देखने लगा।

श्रीराम की आँखों के सामने से मोह का पर्दा हट गया। उनके विवेक चक्षु खुल गये। उन्होंने समझ लिया कि अव तक वे अनुज की देह का भार ही ढो रहे थे।

जव तक वे दृष्टि ऊपर करके सामने देखें—न वहाँ वह पुरुष था और न स्त्री का शव और न ही उलटे कार्य करने वाला मनुष्य। श्रीराम ने समझ लिया कि यह सव उन्हें वोध प्रदान करने हेतु देव-माया थी।

जटायु और कृतान्तवदन दोनों देव अपने-अपने स्थानों को जा चुके थे।

श्रीराम के हृदय में वैराग्य भावना वलवती हो चुकी थी। उन्होंने लक्ष्मण का दाह-संस्कार कर दिया।

विशेष—(क) उत्तर पुराण में लक्ष्मण की मृत्यु का कारण दूसरा दिया है—

एक रात्रि को लक्ष्मणजी शय्या पर सोये हुए थे। उन्हें तीन स्वप्न दिखाई दिये—(१) मदोन्मत्त हाथी द्वारा वृक्ष का उखाड़ा जाना, (२) राहु द्वारा निगले हुए सूर्य का रसातल में चला जाना, और (३) चूने से पुते हुए विशाल राजभवन के एक अंश का गिर जाना।

(श्लोक ६९२-९४)

लक्ष्मण ने यह स्वप्न राम को सुनाये। राम ने इनका फल एकान्त में पुरोहित से पूछा। उसने वताया—पहले स्वप्न के फलस्वरूप

दाह-संस्कार के पश्चात् श्रीराम वैराग्य लेने को तत्पर हो गये किन्तु समस्या थी अयोध्या के राज्य भार की। लक्ष्मण के देहान्त के पश्चात् राज्य सिंहासन रिक्त हो चुका था। अतः श्रीराम ने शत्रुघ्न को आदेश दिया—

लक्ष्मण को असाध्य रोग होगा, दूसरे स्वप्न का फल आयु का नाश और तीसरे स्वप्न का परिणाम होगा कि आप (रामचन्द्र) दीक्षा ग्रहण कर लेंगे। (श्लोक ६९५-९६)

तदनन्तर लक्ष्मण को असाध्य रोग हुआ और माघ कृष्णा अमावस्या के दिन उसी रोग से उनकी मृत्यु हो गई तथा चौथी भूमि में गये। (श्लोक ७००-७०१)

रामचन्द्रजी ने उनका अग्नि संस्कार किया और लक्ष्मण के बड़े पुत्र पृथ्वीसुन्दर को राजा बनाया तथा अपने सबसे छोटे पुत्र अजितंजय (सीता से उत्पन्न आठ पुत्रों में सबसे छोटा) को युवराज पद दिया और मिथिला देश का भार भी उसे दिया। (श्लोक ७०४-७०६)

वे सिद्धार्थ नाम के वन में गये और शिवगुप्त केवली के पास धर्म श्रवण किया। (श्लोक ७०७-७०८)

हनुमान, सुग्रीव आदि ५०० राजाओं तथा १८० पुत्रों के साथ उन्होंने संयम ग्रहण कर लिया। (श्लोक ७११)

पृथिवी सुन्दरी आदि आठ महारानियों के साथ सीताजी ने भी श्रुतवती नाम की साध्वी के पास दीक्षा धारण कर ली। (श्लोक ७१२)

पृथिवीसुन्दर और अजितंजय दोनों ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये। (श्लोक ७१३)

(ख) वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण की मृत्यु के सम्बन्ध में निम्न घटना दी गई है—

एक दिन एक तपस्वी ने आकर लक्ष्मण से कहा 'मुझे श्रीराम से

—तुम अयोध्या का सिंहासन सँभालो। मैं प्रव्रजित होता हूँ।

—भैया! मेरा हृदय भी संसार में नहीं लगता। यह भार किसी और को दीजिए। —शत्रुघ्न ने विनीत स्वर में प्रतिरोध किया।

मिलाओ।' लक्ष्मणजी उसे राम के पास ले पहुँचे। वातचीत करने से पहले उस तपस्वी ने शर्त तय की 'यदि मेरी और आपकी वातों को कोई दूसरा सुन लेगा अथवा कोई व्यक्ति वीच में आ जायेगा तो आप उसे मरवा डालेंगे।' राम ने शर्त स्वीकार की। लक्ष्मण को पहरेदार बनाकर कक्ष के वाहर खड़ा कर दिया और वार्तालाप में मग्न हो गये।

इतने में दुर्वासा ऋषि आ धमके और राम से भेंट करने की जिद करने लगे। लक्ष्मण ने कुछ देर प्रतीक्षा करने को कहा तो वे सम्पूर्ण नगरी और श्रीराम को शाप देने को तत्पर हो गये।

निदान लक्ष्मण ने अन्दर जाकर राम को दुर्वासा के आने का समाचार सुना दिया। पहले आये हुए तपस्वी उठकर चले गये और कुछ समय वाद राम से सन्तुष्ट होकर दुर्वासा भी।

इसके पश्चात् राम खेदखिन्न हो गये। तव लक्ष्मण ने कहा—भैया! आप मुझे प्राण दण्ड देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। दुःखी क्यों होतें हैं?

वशिष्ठ आदि की सलाह से राम ने लक्ष्मण का त्याग कर दिया।

लक्ष्मण राजमहल से निकलकर सीधे सरयू तट तर पहुँचे। आचमन करके पाँचों इन्द्रियाँ अपने वश में करके प्राण वायु को स्थिर कर लिया।

इन्द्र आदि देवताओं ने उन पर पुष्प वृष्टि की। उनका शरीर अदृश्य हो गया। देवराज इन्द्र लक्ष्मण (विष्णु के चतुर्थांश) को लेकर स्वर्ग पधारे। [वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

(ग) हनुमानजी को वैदिक सनातन धर्म में सप्राण, सशरीर अमर

तव राम ने लवण के पुत्र अनंगदेव को अयोध्या का सिंहासन दिया और स्वयं प्रव्रजित होने को तत्पर हो गये। वे अर्हद्दास श्रावक के द्वारा वताये गये महामुनि सुव्रत के चरणों में जा पहुँचे। मुनि

माना गया है। उसका मूल विन्दु वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार मिलता है—

राज्याभिषेक के पश्चात जव श्रीराम वानरों और राक्षसों को विदा करने लगे तो हनुमान ने विनती की—

प्रभु! आपके प्रति मेरा प्रेम निश्चल रहे और आप में ही सदा भक्ति वनी रहे। जव तक पृथ्वी पर रामकथा रहे तव तक मेरे प्राण इसी शरीर में वने रहें जिससे मैं आपका चरितामृत पान करता रहूँ।

श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगाकर कहा—

कपिश्रेष्ठ ऐसा ही होगा। जव तक मेरी कथा रहेगी तव तक तुम्हारा सुयश भी रहेगा और इसी शरीर में तुम्हारे प्राण भी! और मेरी कथा जव तक यह लोक रहेंगे तव तक रहेगी।

एवमेतत्कपिश्रेष्ठ! भविता नात्र संशयः।
चरिष्यति कथा यावदेशा लोकश्च मामिका॥
तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यसवस्तथा।
लोका हि यावत्स्थास्यन्ति यावत्स्थास्यन्ति में कथाः॥

[वाल्मीकि रामायण : उत्तरकाण्ड ४०।२१-२२]

(श्रीराम के इस आशीर्वचन के फलस्वरूप ही सम्भवतः वाद के राम कथाकारों ने हनुमान को अमर और जाग्रत देव मान लिया है।

—सम्पादक

वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही तुलसीकृत रामायण में भी वर्णन है। [लवकुश काण्ड, दोहा ६०-६४]

सुव्रत तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत की अविच्छिन्न शिष्य परम्परा में थे। राम ने उनसे दीक्षा ग्रहण की। राम के साथ शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण, विराध आदि अनेक राजा भी प्रव्रजित हो गये। साढ़े तीस हजार (३०,५००) रानियों ने भी मुनि व्रत ग्रहण किये और श्रीमती साध्वी के परिवार में रहने लगीं।

श्रीराम अब मुनि राम बन गये।

—त्रिषष्टि शलाका ७।१०

—उत्तर पुराण पर्व ६८, श्लोक ६६२-७१३

※※

: १२ :

राम का मोक्ष गमन

गुरुदेव सुव्रत के समीप रहकर मुनि राम ने द्वादश अंग और चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। विविध प्रकार के अभिग्रह और निर्दोष श्रमणाचार का पालन करते हुए वे गुरु के साथ साठ वर्ष तक विचरते रहे। तत्पश्चात गुरु की आज्ञा से एकल विहारी हो गये।

वे निर्भय होकर एक जंगल की गिरिगुहा में ध्यानस्थ हुए। उसी रात्रि को उन्हें उत्कृष्ट अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई। वे चौदह राजू पर्यन्त सम्पूर्ण लोक को देखने-जानने लगे। समस्त लोक को देखते हुए उन्हें अपने अनुज लक्ष्मण की मृत्यु के कारणभूत दोनों कपटी देव भी देवलोक में दिखाई दिये। अनुज लक्ष्मण को देखा तो वह चौथी भूमि में थे। मुनि श्रीराम सोचने लगे—'पूर्वजन्म में जब मैं धनदत्त वणिक् था तब यह मेरा भाई वसुदत्त था। उस जन्म में इसने लोक कल्याणकारी कार्य किया नहीं और वैसे ही मर गया। अनेक भव-भ्रमण करके वह इस जन्म में मेरा छोटा भाई लक्ष्मण बना तो इस भव में भी कोई सुकृत्य नहीं किया। सौ (१००) वर्ष कुमार वय में, तीन सौ (३००) वर्ष माण्डलिकपने में, चालीस (४०) वर्ष दिग्विजय में और ग्यारह हजार पाँच-सौ साठ (११,५६०) वर्ष राज्य-भोग में इस प्रकार १२००० (बारह हजार) वर्ष की लम्बी आयु यों ही बिता दी और

न्त में मृत्यु पाकर चौथी भूमि में गया। उन कपटी देवताओं का कोई ोष नहीं, लक्ष्मण की मृत्यु इसी प्रकार होनी थी।'

यह विचारकर मुनि श्रीराम तप समाधि में समता भाव से स्थित हो गये।

एक समय छट्ठम उपवास के पारणे हेतु मुनि राम स्यन्दन-स्थल नाम के नगर में गए। उन्हें देखकर लोगों को अत्यधिक हर्ष हुआ। नगर की स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाकर अपने-अपने द्वारों पर आ खड़ी हुईं। उनके हाथों में भोजन से भरे पात्र थे।

नगर-निवासियों ने तो कोलाहल हर्षित होकर किया किन्तु यही मुनि राम के पारणे में अन्तराय बन गया।

उस कोलाहल को सुनकर हाथियों ने अपने बाँधने के कीले उखाड़ लिए और घोड़े भड़क गए। मुनि राम उज्झित[1] धर्म वाला आहार ही ग्रहण करते थे। अतः वे उनसे आहार लिए बिना राजगृह में गए। वहाँ राजा प्रतिनन्दी ने उज्झित धर्म वाले भोजन से उन्हें प्रतिलाभित किया। तत्काल देवों ने वसुधारा आदि पाँच दिव्य किए।

मुनि राम जंगल में वापिस लौट गए। हाथियों के कीले उखाड़ने और घोड़ों के भड़कने से कृपालु राम का हृदय द्रवित हो गया। वे सोचने लगे यदि पशु उत्पात कर देते तो मनुष्य पीड़ित होते हैं। पशुओं के मन में उत्तेजना न हो और कोई प्राणी उनके कारण कष्ट न पाये—यह सोचकर मुनि राम ने अभिग्रह लिया—'यदि वन में ही शुद्ध आहार मिलेगा तो पारणा करूँगा, अन्यथा नहीं।'

---

१ उज्झित आहार का अभिप्राय है—त्यक्त भोजन, भिखारियों को देने के लिए अलग निकालकर रखा हुआ भोजन, परिवार के सभी लोगों के भोजन कर लेने के पश्चात बचा हुआ भोज्य पदार्थ।

ऐसा कठोर अभिग्रह धारण करके मुनि राम शरीर से निष्पृह होकर समाधि में लीन हो गये।

× × ×

एक समय राजा प्रतिनन्दी अश्व पर सवार होकर वन की तरफ चला। अश्व विपरीत शिक्षा वाला था। ज्यों-ज्यों राजा उसकी लगाम खींचकर रोकने का प्रयास करता त्यों-त्यों वह और भी तीव्र गति से चलता। अन्त में वह नन्दनपुण्य सरोवर की कीचड़ में फँस गया।

राजा की खोज करते हुए पीछे-पीछे सैनिक भी आये। उन्होंने घोड़े और घुड़सवार दोनों को कीचड़ से निकाला। राजा प्रतिनन्दी ने वहीं शिविर डाल दिया और स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन किया।

उसी समय मुनि राम पारणे की इच्छा से वहाँ आये। राजा ने वचे हुए भात आदि से उन्हें प्रतिलाभित किया। उसी समय आकाश से देवों द्वारा पुष्प वृष्टि हुई।

मुनि राम ने धर्म-देशना दी। उसे सुनकर प्रतिनन्दी आदि राजा तथा अन्य लोगों ने सम्यक्त्व सहित श्रावक के वारह व्रत ग्रहण कर लिए।

वनवासी देवों द्वारा पूजित मुनि राम वहाँ कितने ही काल तक रहे। वे धीर-गम्भीर मुनि एक मास, दो मास, चार-चार मास वाद पारणा करते और एक ही स्थान पर अडोल-अकम्प अवस्था में ध्यानलीन रहते। मुक्ति के अभिलाषी मुनि राम कभी पर्यंकासन लगाते तो कभी खड्गासन लगाकर आत्म-ध्यान करते। इस प्रकार मुनि श्रीराम दुद्धर तप करने लगे।

× × ×

एक वार राम मुनि विचरण करते-करते कोटिशिला[1] पर आ पहुँचे। इस शिला पर रात्रि में प्रतिमा योग लगाकर उन्होंने क्षपक श्रेणी का आश्रय करके शुक्ल ध्यानांतरदशा[2] प्राप्त की। उसी समय सीता के जीव अच्युतेन्द्र ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव को जानने का प्रयास किया। उपयोग से राम की यह स्थिति जानकर उसने विचार किया—'यदि श्रीराम पुनः संसार दशा को प्राप्त हो जायँ तो मेरा उनसे अगले जन्म में सम्वन्ध हो सकता है।'

सीता का जीव मोहासक्त हो गया। अपने इस अकृत्य को सफल करने हेतु अन्य देवियों तथा विद्याधर कुमारियों को साथ लेकर वह राम के पास आया। अनुकूल उपद्रव करने के विचार से उसने सीता का रूप वनाया। कामदेव के सहकारी के रूप में वसन्त का आगमन कराया। शीतल, सुगन्धित वायु वहने लगी। सभी प्रकार से कामोद्दीपक वातावरण बनाकर सीता रूपधारी अच्युतेन्द्र विविध कामचेष्टाएँ करता हुआ राम से कहने लगा—

—हे नाथ ! मैं अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर रही हूँ। अब मैं सव कुछ छोड़कर आपके पास आ गई हूँ। जव आपने मुझे रोकने का आग्रह किया था तो मैंने मानपूर्वक ठुकरा दिया था। अव मैं आपके पास ही रहूँगी। आप एक वार तो मेरी ओर देखिए।

इस प्रकार सीता राम को लुभाकर उन्हें अपने ध्यान से विचलित

---

१ कोटिशिला—यह वही शिला थी जिसे वासुदेव लक्ष्मण ने वानरों और विद्याधरों के समक्ष उठाया था।

२ शुक्लध्यानान्तर दशा—शुक्लध्यान के प्रथम दो पायों के वाद की दशा। प्रथम दो पायों के नाम हैं (१) पृथक्त्ववितर्क विचार (२) एकत्व वितर्क विचार।

—त्रिषष्टि शलाका ७।१० गुजराती अनुवाद पृष्ठ १७६ का पाद-टिप्पण

करने लगी। अहो ! मोह का कैसा जाल है कि मन्दोदरी को धर्म का उपदेश देने वाली महासती सीता आज स्वयं ही अपने स्वामी को धर्मच्युत करने के प्रयास में लीन हो गई।

जब मुनि राम पर सीता के इन शब्दों का कोई प्रभाव न पड़ा तो अन्य देवियों और विद्याधर कुमारियों के साथ उसने नृत्य गान और संगीत छेड़ दिया। घुँघरुओं की छन-छन, वाद्यों की सुमधुर ध्वनि और कर्णप्रिय संगीत लहरी गूँजने लगी। आस-पास के पशु-पक्षी भी मोहित हो गये। समूचा वातावरण शान्त और स्तब्ध था। दिव्य संगीत से सभी प्रभावित थे।

किन्तु मुनि राम ! वे तो शरीर से ही निस्पृह थे, आत्मध्यान में लीन ! उन पर क्या प्रभाव होता ?

माघ मास की शुक्ला द्वादशी की रात्रि के तृतीय प्रहर में मुनि राम को केवलज्ञान हो गया। वे अब केवली राम हो गये।

अच्युतेन्द्र (सीता के जीव) तथा अन्य इन्द्रों, देवों आदि ने उनका कैवल्योत्सव मनाया। राम ने सुवर्ण कमल पर विराजमान होकर धर्मदेशना दी। देशना के अन्त में अच्युतेन्द्र (सीतेन्द्र) ने अपने अपराध की क्षमा माँगी और जिज्ञासा प्रगट की—

—प्रभो ! लक्ष्मण और रावण किस गति में गये ?

—चौथी भूमि में। —रामर्षि का संक्षिप्त उत्तर था।

सीतेन्द्र को लक्ष्मण के चौथी भूमि में जाने की बात से धक्का सा लगा। उसने पुनः प्रश्न किया—

—इसके बाद उनका क्या होगा ? वे कभी मुक्त हो भी सकेंगे या नहीं……।

रामर्षि कहने लगे—

इस समय शम्बूक, रावण और लक्ष्मण तीनों चौथी भूमि में हैं।

वहाँ से अपनी आयु पूरी करके रावण और लक्ष्मण पूर्व विदेह की विजयावती नगरी में सुनन्द तथा रोहिणी के पुत्र जिनदास और सुदर्शन होंगे। जिनदास होगा रावण का जीव और सुदर्शन लक्ष्मण का। वहाँ निरन्तर जिनधर्म का पालन करके सौधर्म देवलोक में देव बनेंगे। सौधर्म देवलोक से अपना आयुष्य पूर्ण करके विजयापुरी में श्रावक बनेंगे। वहाँ से मृत्यु पाकर हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिक पुरुष के रूप में जन्म लेंगे। हरिवर्ष क्षेत्र से कालधर्म प्राप्त कर उन्हें देव पर्याय की प्राप्ति होगी। देवलोक से च्यवन करके वे दोनों विजयापुरी में कुमारवर्ति राजा और उसकी रानी लक्ष्मी के गर्भ से जयकान्त और जयप्रभ नाम के पुत्र होंगे। उस भव में वे जिनोक्त संयम पालकर मरण करेंगे और दोनों लांतक नाम के छठे देवलोक में देव होंगे।

उस समय तुम्हारी भी अच्युतेन्द्र की आयु पूरी हो जायेगी। तुम अच्युत देवलोक से च्यवकर भरतक्षेत्र में सर्व रत्नमति नामक चक्रवर्ती होगी। वे दोनों भी लांतक देवलोक से अपना आयुष्य पूण करके तुम्हारे पुत्र होंगे। उनका नाम रखा जायेगा इन्द्रायुध और मेघरथ। तुम उस जन्म में श्रामणी दीक्षा लेकर वैजयन्त नाम के दूसरे अनुत्तर विमान में देव पर्याय प्राप्त करोगी।

इन्द्रायुध (रावण का जीव) इसके पश्चात तीन शुभ भवों में उत्पन्न होकर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करेगा। तुम वैजयन्त विमान से च्यवन करके उसकी गणधर बनोगी। उसी भव से तुम दोनों की मुक्ति हो जायगी।

मेघरथ (लक्ष्मण का जीव) इसके पश्चात भी अनेक शुभगतियों में भ्रमण करेगा और फिर पुष्करवर द्वीपार्द्ध के पूर्व विदेहक्षेत्र में स्थित रत्नचित्रा नगरी में चक्रवर्ती राजा बनेगा। चक्रवर्ती की सम्पत्ति और समृद्धि भोग कर वह अनुक्रम से तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन करके मुक्ति-सुख प्राप्त करेगा।

रावण, लक्ष्मण और सीता के आगामी जन्मों का वर्णन करके रामर्षि मौन हो गये।

केवली रामपि से अपने भावी जन्मों को सुनकर सीतेन्द्र ने उन्हें नमन किया और पूर्वस्नेह के कारण चौथी भूमि में पहुँचा।

वहाँ पर शम्बूक, रावण और लक्ष्मण अनेक रूप वनाकर परस्पर युद्ध में लीन थे। उनकी इस प्रवृत्ति को देखकर सीतेन्द्र का हृदय द्रवित हो गया। वह सोचने लगा—'जीवों की कैसी विचित्र प्रवृत्ति है। सदा ही वदला लेने पर उतारू रहता है। यह नहीं सोचता कि वैर की परंपरा अनन्तकाल तक चलती रही तो मुक्ति-सुख कैसे मिलेगा? भविष्य में तीर्थंकर होने वाले जीव भी मोह रूपी मदिरा से नहीं वच पाते।'

सीतेन्द्र के हृदय में उनके उद्धार की प्रेरणा जागी। वह शम्बूक और रावण को समझाते हुए कहने लगा—

—पिछले जन्म में तुमने जो हिंसात्मक कार्य और पापकर्म किये उसका फल तो अव भोग रहे हो और अव जो निरन्तर युद्ध में लीन हो तो इसके परिणाम को भी तो सोचो। अरे! अव तो छोड़ दो यह वैर भाव।

इस प्रकार उन्हें पारस्परिक युद्ध से विरत करके सीतेन्द्र ने केवलज्ञानी राम से जो आगामी भव सुने थे वे सव उन्हें सुना दिये।

भावी भवों को सुनकर लक्ष्मण और रावण को वोध हुआ। वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे—

—आपने हम पर वड़ी कृपा की। पूर्वजन्म में उपार्जित कर्मों के फलस्वरूप जो हमें यह कटु परिणाम मिला है उसे कौन मिटा सकता है।

यह आर्त वचन सुनकर सीतेन्द्र ने करुणापूर्वक कहा—

—मैं तुम लोगों को इस दुख से वचाने का प्रयास करूँगा। मैं तुम्हें देवलोक ले जाऊँगा।

यह कहकर सीतेन्द्र उन्हें उठाने लगा। परन्तु तत्काल पारे के समान उनका शरीर विखर गया। सीतेन्द्र ने कई वार प्रयास किया किन्तु सफल न हो सका। अन्त में लक्ष्मण और रावण ने सीतेन्द्र से कहा—

—हमारा उद्धार करने के प्रयास में आप भी दुःखी हो रहे हैं। हमें हमारे हाल पर छोड़कर आप देवलोक प्रस्थान कर दीजिये।

सीतेन्द्र ने भी समझ लिया कि वह उन्हें उस भूमि से बाहर नहीं निकाल सकता। 'किसी जीव की गति को वदलना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है'—यह सोचकर सीतेन्द्र उन्हें प्रतिवोध देकर वहाँ से चल दिया।

राम के पास आकर सीतेन्द्र ने उन्हें नमन किया और चल दिया। नन्दीश्वरादिक द्वीपों की यात्रा करते हुए मार्ग में देवकुरु क्षेत्र आया। वहाँ उसे पूर्वजन्म का भाई भामण्डल युगलिया के रूप में दिखाई दिया। पूर्व स्नेह के कारण सीतेन्द्र ने उसे भी प्रतिवोध दिया और अपने कल्प में चला गया।

केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात रामर्षि पच्चीस (२५) वर्ष तक विचरते हुए जीवों को कल्याण पथ दिखाते रहे। पन्द्रह हजार (१५,०००) वर्ष का[1] आयुष्य पूर्ण करके उन्होंने शैलेशी दशा अंगीकार की और सिद्ध शिला पर जा विराजे।

---

१ (क) उत्तरपुराण के अनुसार—

(१) राम की आयु तेरह हजार वर्ष थी।

(उत्तरपुराण पर्व ६७, श्लोक १५०)

(२) छद्मस्थ अवस्था के तीन सौ पिचानवे (३९५) वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात राम ऋषि को केवलज्ञान हुआ। (श्लोक ७१६)

(३) केवली होने के छह सौ वर्ष वाद फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल सम्मेत शिखर से मुक्ति प्राप्त की। उन्ही के साथ हनुमान भी मुक्त हुए। (श्लोक ७१९-७२०)

मर्यादा पुरुषोत्तम राम भगवान राम के स्वरूप में प्रतिष्ठित हुए।

त्रिषष्टि शलाका ७।१०

—उत्तर पुराण, पर्व ६८, श्लोक ७१५-७२५

---

(४) विभीषण आदि कितने ही मुनि अनुदिश विमान में अहमिन्द्र हुए और रामचन्द्रजी की पटरानी सीता एवं पृथिवी सुन्दरी आदि कितनी ही आर्यिकाएँ (श्रमणियाँ) अच्युत स्वर्ग में देव हुईं। बाकी सब सोलह स्वर्गों में उत्पन्न हुए। (श्लोक ७२१-७२२)

(ख) वाल्मीकि रामायण में—

(१) राम की आयु ११,००० वर्ष थी। उन्होंने मर्त्यलोक में इतने ही दिनों तक निवास की प्रतिज्ञा ली थी।

(२) अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर श्रीराम सरयू के तट पर पहुँचे। वहाँ ब्रह्माजी ने उनसे आग्रह किया। तब वे अपने दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) सहित ब्रह्मतेज में लीन हो गये।

(३) उस समय उनकी (श्रीराम की) कृपा से सभी वानर भालू जिस-जिस देव से उत्पन्न हुए थे उसी में समा गये। अन्य भक्त जन भी सरयू में डुबकी लगाकर स्वर्ग गये।

(४) इस प्रकार विष्णु जो राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न चार अंशों में विभाजित होकर पृथ्वी पर अवतरित हुए थे वे पुनः एक होकर विष्णु रूप में प्रतिष्ठित हुए। [वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड]

(ग) तुलसीकृत रामचरितमानस में भी यही सब वर्णन है।

[लव-कुश काण्ड दोहा ६५-६८]

जैन कथामाला

[भाग १ से ३० तक की सूची]

भाग	कथा
१.	६ महासतियों का जीवन
२.	७ महासतियों का जीवन
३.	७ महासतियों का जीवन
४.	१० तीर्थंकरों का जीवन
५.	१२ तीर्थंकरों का जीवन
६.	२ तीर्थंकरों का जीवन [भगवानपार्श्व एवं महावीर]
७.	मगधेश श्रेणिक
८.	मगधेश श्रेणिक
९.	महामन्त्री अभयकुमार
१०.	भगवान महावीर के दस श्रमणोपासक
११.	प्रसिद्ध श्रमणोपासक
१२.	वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार
१३.	वीर युग के वीर साधक
१४.	ऐतिहासिक कहानियाँ
१५.	ऐतिहासिक कहानियाँ
१६.	ऐतिहासिक कहानियाँ
१७.	ऐतिहासिक कहानियां (वीर निर्वाण सं० ५० से वीर निर्वाण सं० १७०० तक के जैन इतिहास की प्रमुख १०० कहानियां)